महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(पञ्चम खण्ड)

पृष्ठ संख्या
001-100
तक

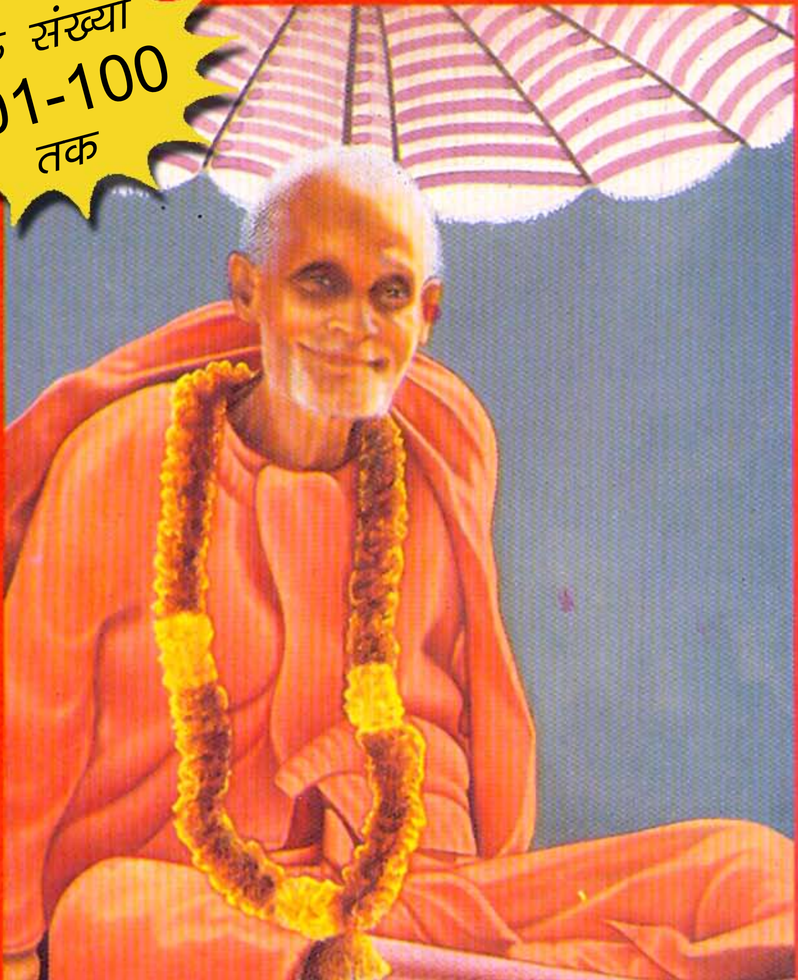

साधु कृष्णप्रेम

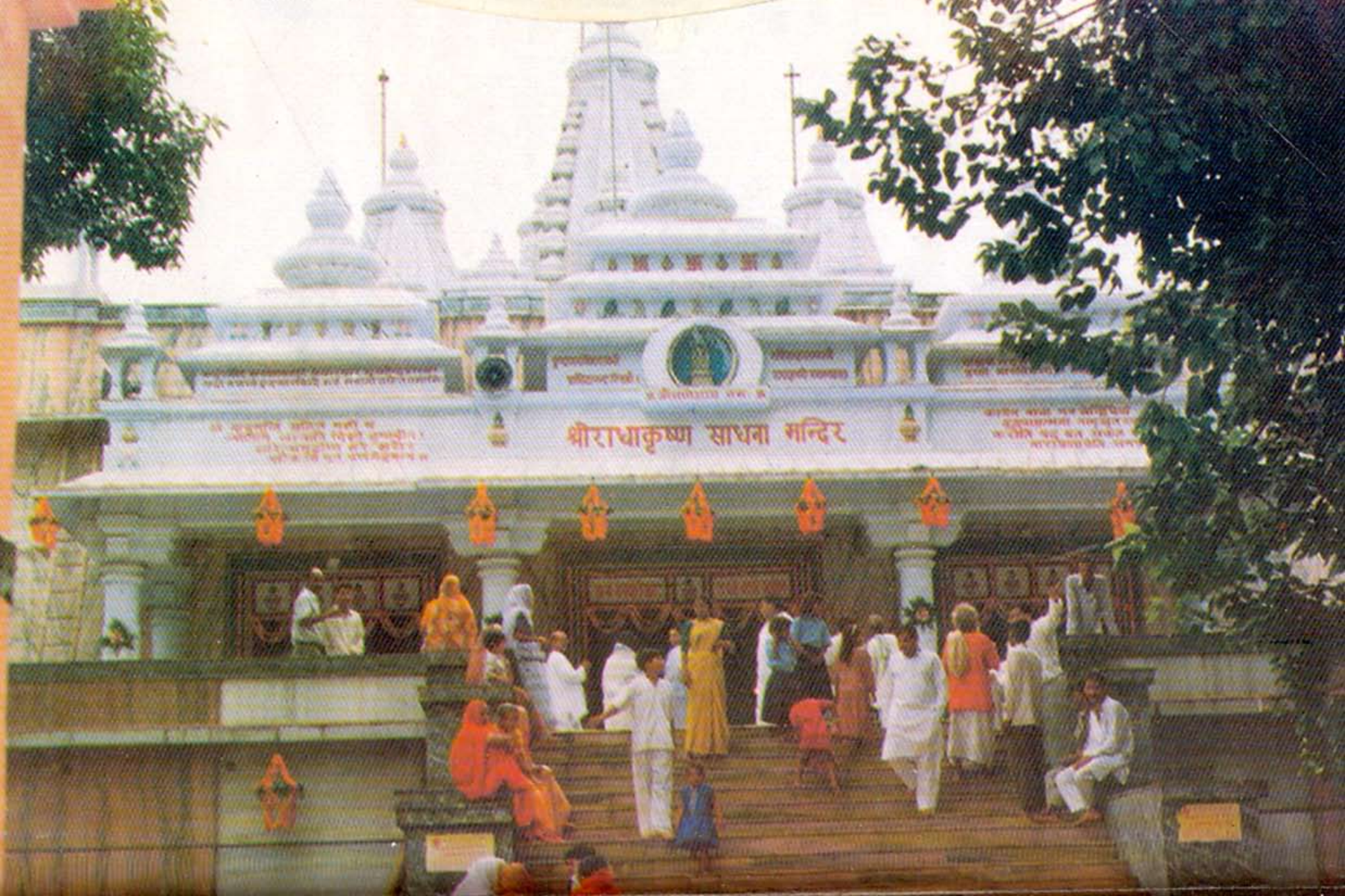
श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिर

महाभाव-दिनमणि
श्रीराधाबाबा

पञ्चम खण्ड

(१) महाक्रन्दन-निशाका रास-रसमें पर्यवसान
(२) लोहेके पेड़ हरे होंगे, तू गीत प्रीतिके गाता जा
(३) 'श्रीभाईजी'से श्रीपोद्दारमहाप्रभु – एक यात्रा
(४) बृषभानुपुर एवं ब्रजप्रदेशका प्रादुर्भाव
(५) पू.गुरुदेवको अप्राकृत जगतके श्रीराधाजन्म-महोत्सवका दिव्य अनुभव
(६) गीतावाटिका,गोरखपुरका राधाष्टमी-महोत्सव एवं उसकी परम्परा
(७) राधाष्टमीकी ऐतिहासिक परम्परा
(८) षोडश गीतोंका प्रादुर्भाव
(९) पू.गुरुदेवरचित अनुपम लीला-नाटिकाएँ

संकलन एवं सम्पादन
साधु कृष्णप्रेम

प्रकाशक

साधु कृष्णप्रेम

अध्यक्ष, श्रीमती विमलाबाई चैरिटी ट्रस्ट,
षोडशगीत मन्दिर, अनाथालयके पीछे,
बीकानेर –334001 (राजस्थान)

राधामाधव प्रकाशन, षोडशगीत मन्दिर,
अनाथालयके पीछे,
बीकानेर

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्रीराधाष्टमी, श्रीकृष्ण सं. ५२२४
(३० अगस्त, १९९८)

प्रथम प्रकाशन ११०० प्रतियाँ
न्यौछावर रु. १५०

मुद्रक

महाभाव–ज्योतिर्पुञ्ज श्रीपोद्दार महाराज

प्रियतम !

लघुतम रश्मि एक तेरी, जो जुड़ी तुझीसे, ज्योतिर्पुञ्ज !
अरुणाई बिखरा दर्पणवत् झलका गयी सुप्रीति–निकुञ्ज।।

मात्र नाम मेरा है, इसमें पूरित है तेरा ही कथ्य।
इसे जोड़ अपनेसे मैंने किया न मलिन, यही है तथ्य।।

यद्यपि हूँ सब भाँति अनधिकृत, हेतुरहित तव कृपा महान्।
चिन्मय रससरिताने सब तट तोड़ कराया मुझको स्नान।।

भरा रहा उरमें, बीते क्षण–दिवस–मास–ऋतु, बीता वर्ष।
जाग्रत–स्वप्न तुझीसे होतीं रहीं वार्त्ता, तत्व–विमर्श।।

इससे अधिक कौन शुभ संभव, रहा सदैव तुझीमें लीन।
स्मरण–मनन–लेखन–चिन्तनरत, नित्य मग्न ज्यों जलमें मीन।।

लिखवाया यों यंत्र बनाकर निर्मलतम निज प्रीति–चरित्र।
तुझे समर्पित है तेरी यह वस्तु प्राणधन ! परम पवित्र।।

साधु कृष्णप्रेम

आरती श्रीराधाबाबाकी

जय अधिकारी-वत्सल, जय राधाबाबा।
श्रीमहिपाल-तनय जय निजजन-सुख-साधा। ।।जय राधाबाबा।।
गोरखापत्तन नगरे गिरिपरिसर-मध्ये,
वसति वाटिकागीते हनुमद्गुरु-सहिते। ।।जय राधाबाबा।।
तस्मिंल्ललित सुदेशे कुटि गोमयरचिता,
कृष्णभुजापरिरम्भित निवसति रसमुदिता। ।।जय राधाबाबा।।
कोकिल कूजित खेलत महाभावमुदिता,
नित नव प्रीतिकलापं मञ्जुभगिनि-सहिता। ।।जय राधाबाबा।।
गुञ्जित मधुकरपुञ्जे कुञ्जवने गहने,
रचयति केलिविधानं नित प्रियसुखनिरते। ।।जय राधाबाबा।।
जिमि चकोर-राकाशशि जिमि अलि उरपद्मे
मीन-उदधि निवसति तिमि कृष्ण-प्राण-सद्मे। ।।जय राधाबाबा।।
निमाइ-रूप-सनातन-वल्लभ आसीसत,
उद्धव-नरसी-मीरा-तुलसी विरद कहत। ।।जय राधाबाबा।।
नारद-व्यास-सनक-शिव जय-जय नाद करत,
प्रीति-पताका फहरत, ज्ञान-विराग विनत। ।।जय राधाबाबा।।
गोलोके वन-विपिने, विरजा-नद-तीरे,
निभृत निकुञ्जे विहरति हरि-चित-वित्त-हृते। ।।जय राधाबाबा।।
ललित-विशाखा-चित्रा-चम्पक-इन्दू-रंग,
विद्यातुंग-सुदेवी निरतत बजत मृदंग। ।।जय राधाबाबा।।
चक्रावर्त्तें भ्रमयति कुरुते ता-थेइ-ता,
प्रिय वादयते वेणुं मेटत सकल व्यथा। ।।जय राधाबाबा।।
अति मृदु चरणसरोजं हृत्कमले धृत्वा,
अवलोकयति कृष्णमुख प्रिया-प्रीति-नत्वा। ।।जय राधाबाबा।।
आरति-समये पठनं यः नित्यं कुरुते,
मंजरिरूप निकुञ्जे सेवारति लभते। ।।जय राधाबाबा।।
शंखनिनादं कृत्वा झल्लरि वादयते,
नीराजयते मधुपति जय राधा ध्वनिते। ।।जय राधाबाबा।।

पुस्तकका सारसंक्षेप

भावसिन्धुकी नौ उर्मियाँ

प्रथम अध्यायमें

काष्ठमौनके अनन्तर गीतावाटिकामें अनुभूत वेदनाके प्रवाहमें बहें –"बाबा रे ! अब तुम कब मिलोगे ? बताओ, न ! अब मैं तुमसे कब मिल पाऊँगी ?" कभी किसी एकका और कभी एक साथ अनेकों – बहनों, माताओं एवं कन्याओंका क्रन्दन – इतने करुण एवं तीव्रवेगसे उठता था कि वह साधकोंकी रास-भावना और ब्रजरसके गीत-गायनका सर्व रस छिन्न-भिन्न कर देता था।

द्वितीय अध्यायमें

पू. गुरुदेवकी काष्ठमौनी लोकोत्तर दशाका दिग्दर्शन करें – दूसरे दिवस जब प्रातः सूर्योदयके पश्चात् दस बजेकी अवधि बीत गयी, पू. गुरुदेव शौच-क्रियाके लिये भी नहीं उठे तो श्रीपोद्दार महाराज स्वयं मन्द ज्वरसे पीड़ित होते हुए भी आये। वे पू. गुरुदेवके कर्ण-विवरोंमें जोर-जोरसे निम्न स्वर उच्चारित करने लगे – " बाबा ! आप चक्रधर नामक शरीर हैं। आपके लिये शौच-स्नान-भोजनकी क्रिया आवश्यक है।" इस शब्दावलीका बार-बार उच्चारण करनेपर कुछ काल पश्चात् पू. गुरुदेवकी श्वासक्रिया जो अतिशय मन्द हो रही थी, सामान्य होने लगी। जाग्रतिके चिह्न प्रकट होते देखकर श्रीपोद्दार महाराज आश्वस्त हुए।

तृतीय अध्यायमें

अवलोकन करें – श्रीभाईजी कैसे श्रीपोद्दार महाप्रभु होगये – प्रिया-प्रियतम महाभाव एवं रसराज श्रीराधा-माधवके लिये ऐसे रसिक सिद्ध भक्तका अन्तःकरण ही महारास-स्थल होता है। रसनदी कालिन्दी श्रीपोद्दार महाप्रभुके भक्तान्तःकरणमें कल-कल निनाद करती हुई प्रवाहित हो रही है।

चतुर्थ अध्यायमें

विवरण पढ़ें – पू. गुरुदेवके द्वारा बतायी हुई वृषभानुपुर एवं ब्रजप्रदेशकी विस्तृत एवं अति रसमय प्रादुर्भाव-लीलाका ।

पाँचवें अध्यायमें

पू. गुरुदेवके ही शब्दोंमें वर्णन पढ़ें – पू. गुरुदेवको सन् १९५७ ई. में श्रीराधा-जन्माष्टमीकी लीलाका अनवरत ६ माहतक जो अनुभव होता रहा, उसका विवरण उनके ही द्वारा की गयी हिन्दी भाषाकी पद्यरचनामें तथा टीकाके साथ-साथ लेखक द्वारा उसपर विस्तृत विवेचन भी देखें।

छठे अध्यायमें

विस्तृत विवरण पढ़ें – गीतावाटिकामें मनायी जानेवाली राधाष्टमी महोत्सवका।

सातवें अध्यायमें

ऐतिहासिक विवरण पढें – गीतावाटिकामें राधाष्टमी-महोत्सव मनानेकी परम्परा कैसे प्रारम्भ हुई एवं उसमें किस समय, किस प्रकारके नये समायोजन जुड़े।

आठवें अध्यायमें

विवरण देखें – श्रीपोद्दार महाराज द्वारा रचित श्रीराधामाधव-रस-सुधा (षोडश गीतों) का प्रणयन किस मंगलमयी अभिसन्धिसे हुआ था तथा इनके प्रचार-प्रसारमें पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी अभिरुचि एवं चेष्टा।

नौवें अध्यायमें

अनुशीलन करें – पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा अनुभूत तत्सुखसुखिया भावकी प्रतिनिधि लीलानाटिकाएँ – अनुरागपरीक्षालीला, कुन्दवल्लीभावकी लीला तथा राधा-मनोरथकी लीलाएँ – उनकी तात्पर्य-प्रतिपादिका भूमिका सहित ।

आत्मकथ्य

परम पवित्र, भुक्ति-मुक्ति-त्यागसे विभूषित, उज्ज्वलतम प्रेमकी सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति, पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी प्रियतम श्रीकृष्ण-सुख-लालसामयी इस कृतिको परम सौभाग्यवान् पाठकोंके सम्मुख रखते हुए परम हर्ष हो रहा है।

पूरा जीवन भोग-मोक्षकी पिपासामें ही व्यतीत हुआ। प्रथम तो जीवोंका नर-जन्म ही दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ पुरुषत्वकी प्राप्ति है, और उससे भी अत्यन्त दुर्लभ है – परमपूज्य श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव सरीखे सन्तोंका परमातिपरम शुभ दर्शन। कोटि-कोटि जन्मोंमें किये गये शुभ कर्मोंके परिपाकके बिना यह सौभाग्य तो हो ही नहीं सकता। मैं तो ऐसा ही अभागा रहा कि इन युगल महापुरुषोंकी सहज आत्मीयता और उनका अतिशय अन्तरंग नैकट्य पाकर भी जो परम दिव्य चिन्मय भगवत्प्रेम मुझे इनसे इसी जन्म और जीवनमें प्राप्त कर लेना चाहिये था, वह नहीं प्राप्त कर सका, इस स्वार्थ-साधनमें मैं पूर्णतया प्रमादी ही रहा।

अब तो रोग-ग्रस्त वृद्ध शरीर मरणोन्मुखी है। सभी कर्मशक्ति चुक गयी है। भक्तहृदय वृत्रासुरकी श्रीमद्भागवतमें वर्णित उक्ति स्मरणमें आ रही है–

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्त्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्।।

ओ बाबा ! आपने ही तो माताके सरीखा विशुद्ध वात्सल्य देकर मेरा पालन किया; अभी कहाँ पंख उगे हैं ? पंख उग जाते तो प्रेम-सुधामय गुरुदेव! आपके और प्रियतम प्रेमार्णव परम गुरुदेव श्रीपोद्दार महाप्रभुके श्रीचरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पण नहीं कर देता ? बाबा ! आपने कहा था – 'बचुआ, भूखा रहेगा तो मेरी आधी भिक्षा तेरी होगी !' भूखा तो हूँ ही। आपकी प्रेम-रस-सुधामयी भिक्षा पाये बिना मेरी यह अनादिकालीन क्षुधा भला कैसे निवृत्त हो सकती है? हाँ, मैं आतुर नहीं हूँ, यह बात प्रामाणिकतासे स्वीकार कर रहा हूँ। परन्तु माता तो समयपर बिना माँगे ही, बच्चेके मुखमें अपना स्तन दे ही देती है ! भूख तो लगी ही है ! भूख नहीं लगी होती, तो विषय-तृष्णा क्यों होती ? प्रेम-प्राप्तिकी भूख ही तो विषयोंमें भटका रही है ! बाबा! क्या अब भी समय नहीं हुआ ? छटपटा रहा हूँ; अब तो अपने चरण-कमलोंकी रज बना ले, न ! तू माता है और मैं तेरा बिना पंखका शावक हूँ, मैं वत्स हूँ और तू मेरी

कामधेनु है, तू ही प्रिया है, प्रियतम है, मेरा तो सर्वस्व एकमेव तू ही है – यह अकाट्य, अखण्ड, सत्य है। जीवनकी सन्ध्यामें रुग्णता एवं वृद्धावस्थासे जर्जर यह जीवन पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा अनुभूत प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव एवं गोपीजनोंकी मधुरतम स्वरूपभूत लीला-रसकी आस्वादन-प्रवाहिणीमें निपतित हो गया है – यह उनकी चरणरजका ही तो प्रत्यक्ष, जीवन्त एवं जाज्वल्यमान प्रमाण है !

क्या यह मेरी माँगके फलस्वरूप हुआ है ? नहीं,कदापि नहीं !

उमा राम-स्वभाव जे जाना।
ताहि भजन तजि भाव न आना।।

अपने विशुद्ध, हेतुरहित, वात्सल्यभरे स्वभाववश ही उन्होंने कृपा की है और अपने चरित्र और कृतित्वका लेखन, मनन एवं अनवरत चिन्तन कराके मेरा मानस कृतकृत्य किया है। इस कृतिके पाठक तो श्रीकृष्ण ही होने संभव हैं ! रूप भले ही वे कैसा ही रख लें ! इस पावनतम चरित्रकी ही यह परम सिद्ध रसमयता है कि पाठक बने प्रियतम श्रीकृष्ण निश्चय ही इससे पूर्ण कृतकृत्यता-लाभ करेंगे। उन्हें ऐसा रस प्राप्त होता है, एक श्रीकिशोरीरानीके गुण-चरित्रोंमें अवगाहनसे ही।

कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा, कहीं न पूरी मनकी आस।
एक तुझीको पाया मैंने जिसने किया पूर्ण अभिलाष।।

मैंने गत वर्ष मनोरथ किया था कि इस वर्ष मैं पू.गुरुदेवका समग्र कृतित्व, जो भी मेरे पास उपलब्ध है, पाठकवर्गके समक्ष रख दूँगा, परन्तु रोग एवं पीड़ाने काम करने ही नहीं दिया। पाठकवर्गके रूपमें सम्मुख मेरे प्रियतम श्यामसुन्दरसे ही क्षमा-याचना कर रहा हूँ। उनसे जो वादा किया था, उसे मैं पूरा नहीं कर पाया हूँ। श्रीकृष्ण तो अन्तर्यामी हैं, परिस्थितिके रूपमें वे ही तो पधारे थे। भाई मुकुन्दजीका अभूतपूर्व सहयोग रहा जिन्होंने इतना कार्य भी सिरपर चढ़कर करा लिया। मैं बार-बार थक जाता, शरीर श्रमसे जी चुराता। मन बदमाशी करके कहता– 'छोड़ लिखना, रात-दिन चुपचाप बैठा, बस, स्मरण ही करता रह। नेत्र बन्द किये, भावराज्यमें विचरण करता रह।' किन्तु फिर मुकुन्दजी कोड़ा लगाते–'भावनासे कर्त्तव्य ऊँचा है। जिस कार्यके लिये दो श्वासें मिली हैं, उन्हें उनके काममें ही खर्च करना है।' जिस-तिस प्रकार यह लगभग पाँच सौ पृष्ठोंकी सामग्री तैयार हो सकी है। जिनकी यह वस्तु है उनको ही इसे सौंप रहा हूँ। सोलह-सत्रह ग्राहकोंसे अग्रिम धनराशि २५०रु. प्रति व्यक्ति प्राप्त हुए हैं। उन्हें यह ग्रन्थ तो चला ही जायेगा। इस ग्रन्थकी न्यौछावर १५०रु. बाद करके जो शेष राशि उनकी जमा रहेगी, वह अगले ग्रन्थकी न्यौछावरसे समायोजित कर दी जायेगी। जो

सज्जन अपनी शेष राशि १००रु. मँगाना चाहेंगे, उन्हें उनकी सूचना प्राप्त होनेपर वह लौटायी भी जा सकती है।

पुनः सत्योक्ति कह रहा हूँ – मेरे अन्दर तो विपरीतरस – भोगरस, विरस, कुरस (कुत्सित रस) एवं अरस – रसहीनता ही कूट-कूटकर भरी थी। इस पावन रस-साहित्यमें सत्य-सत्य मेरा कहीं कुछ भी होना असंभव है। पू.गुरुदेवने मेरी नाम-वासना अवश्य पूर्ण की है। शक्ति तो शक्तिमान्में ही निहित होती है। वे अपना यंत्र बनाकर मेरे हाथों जो भी लिखा गये हैं, उसपर मेरा अभिमान कैसा ?

सुग्गा नहीं जानता कुछ भी अर्थ, बोलता 'राधेश्याम' ।
जिसने उसे सिखाया है उसका ही अर्थ जानना काम ।।

मेरे जिस मनने विशुद्ध रसका कभी संस्पर्श ही नहीं किया। मुझ सर्वथा अनभिज्ञ, नितान्त अज्ञ, मूर्ख द्वारा यदि कुछ भी लेखनकी गर्वोक्ति घटित हो गयी है, तो सर्वथा मेरी अनधिकृत चेष्टा समझकर सुधी रसिकगण क्षमा करें। जिनका दिव्यातिदिव्य रजकण ही मेरा आश्रय है, उन श्रीराधाबाबा एवं श्रीपोद्दार महाराजका वात्सल्य ही है जिसने मेरी कटु-बेसुरी तुतलाहटको अपने रससे सरस बना दी है। अपने महान् अनुग्रहदानसे मुझ पामरकी कृतिको उन्होंने अपनाकर कृतार्थ किया है। वे अपनी अचिन्त्य महिमामें स्थित युगल महापुरुष मुझे इस लेखनका यही पुरस्कार दें कि यावज्जीवन, और जीवनके उस पार भी, उनका गुणगान, यशगायन मेरी वाणी द्वारा अनवरत बनता रहे। वे उनके अपने ही आश्रय-सामर्थ्यसे करवाये जारहे मुझ वाद्ययन्त्रके वादनको सुनकर प्रसन्न होते रहें। वादक तो वे स्वयं ही हैं, इसमें किञ्चित् भी संशय नहीं है। वे नित्य, सत्य, एकमेव, मेरे सुख-विधाता मेरा इसी प्रकार अपरिमित सुखविधान करते रहें।

मेरे बाबा ! मेरे हृदयमें आपने अपना कैसा निर्मल आत्मपरिचय व्यक्त किया है ! अहा ! गुण, रूप एवं सौन्दर्य-समन्वित आपका कैसा चरित्र है ! श्रीपोद्दार महाराजके ही सुखविधानमें नित्य, सत्य, सदैव, अनवरत जुटे आप ऐसे त्यागमय हैं, ऐसे मधुर स्वभाव हैं, अचिन्त्यानन्त गुणगणोंकी खान हैं, परिपूर्ण प्रेम-प्रतिमा हैं, समस्त सौन्दर्यकी एकमात्र निधि हैं, पवित्रतम सहज सरलताकी मूर्त्ति हैं कि आपका स्मरण कर-करके ही मैं आपके चरणोंमें न्यौछावर हूँ। पद-पदपर, पल-पलमें मुझे आपके एवं श्रीपोद्दार महाप्रभुके मानस-दर्शन होते रहें, आप दोनों युगल मेरे हृदय-सिंहासनमें सदैव आसीन रहें, इसी याचनाके साथ –

साधु कृष्णप्रेम

महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा

पञ्चम खण्ड

महाक्रन्दन–निशा, 'श्रीभाईजी'से श्रीपोद्दार महाप्रभु – एक यात्रा, ब्रजप्रदेशका प्रादुर्भाव, दिव्य महोत्सव श्रीराधाष्टमी एवं श्रीराधाबाबाकी रसमयी कृतियाँ – लीला–नाटिकाएँ

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय :

(१) महाक्रन्दन-निशाका रास-रसमें पर्यवसान — १
(२) घनघोर विषाद-वर्षा — २
(३) विषकीट सर्पपर करुणार्णवकी उर्मियाँ — ६
(४) करुणासिन्धु आज शान्त कैसे ? — ९
(५) रास-रस-प्रवाह — ११
(६) बाबा ! हमें इस रास-रसको कैसे चखाओगे ? — १९

दूसरा अध्याय :

लोहेके पेड़ हरे होंगे — २०
(१) बाबा ! आप स्वामी चक्रधरजी शरीर हैं — २२
(२) मधुर–सुमधुर मधुर उससे भी — २६
(३) पू.गुरुदेवकी काष्ठमौनोत्तर विचित्र स्थिति — ३१

तीसरा अध्याय :

'श्रीभाईजी'से श्रीपोद्दारमहाप्रभु–एक यात्रा — ३३
(१) आरति श्रीपोद्दार प्रभूकी — ६१

चौथा अध्याय :

बृषभानुपुर एवं ब्रजप्रदेशका प्रादुर्भाव — ६२
(१) वेदगर्भ ब्रह्माजीपर कृपा — ६३
(२) कैलासपति श्रीमहादेवजीका कथन — ६७
(३) भगवान् विष्णुदेवका उपदेश — ७१

(४) गिरिराज गोवर्धनका प्राकट्य ७४
(५) पुरुषोत्तमतत्त्वका प्रकाश ७९
(६) गोलोकधामका वर्णन ८०
(७) गोपियोंके पूर्वजन्मका वृत्तान्त ८६
(८) बृहद्वन एवं बृषभानुपुरमें लीला-पात्रोंका अवतरण ९२
(९) सखी ललिताका जन्म-प्रसंग ९३
(१०) सखी विशाखाका जन्म-प्रसंग ९५
(११) सखी चित्राका जन्म-प्रसंग ९६
(१२) सखी इन्दुलेखाका जन्म-प्रसंग ९६
(१३) सखी चम्पकलताका जन्म-प्रसंग ९७
(१४) सखी रंगदेवी एवं सुदेवीका जन्म-प्रसंग ९७
(१५) सखी तुंगविद्याका जन्म-प्रसंग ९८
(१६) भगवती श्रीराधाका लीलाधाम — बृषभानुपुर ९९
(१७) श्रीकृष्णका जन्मस्थान — बृहद्वन १०८

पाँचवाँ अध्याय :

पू.गुरुदेवको अप्राकृत जगतके श्रीराधा-जन्म-महोत्सवका दिव्य अनुभव ११५

(१) पू.गुरुदेव द्वारा रचित अनुभूतिमयी दिव्य काव्यकृति — कृष्ण-परिरम्भित किशोरी – १२२

छठा अध्याय :

गीतावाटिका,गोरखपुरका राधाष्टमी-महोत्सव एवं उसकी परम्परा २७०

(१) ललिता-जन्मोत्सव २७०
(२) विशाखा-जन्मोत्सव २७२
(३) प्रभातफेरी २७३
(४) श्रीगिरिराज-परिक्रमा २७५
(५) श्रीपोद्दार महाराजका सत्संग २७९
(६) राधा-जन्ममहोत्सव २८१
(७) पूजनक्रम २८२
(८) संकीर्त्तन-महोत्सव २८६
(९) राधाष्टमी—महोत्सवकी सामग्री २९६
(१०) निशाजागरण एवं दधिकर्दमोत्सव २९८
(११) श्रीपोद्दार महाराजका रात्रिकालीन प्रवचन २९८

(१२) चीरहरण-रहस्य ३०५
(१३) रासलीला-रहस्य ३०७
(१४) रात्रिमें गायन, वादन एवं काव्यपाठ ३१५
(१५) शहनाई-वादन एवं प्रभातफेरी ३१६
(१६) श्रीपोद्दार महाराजका प्रभातकालीन सत्संग ३१७
(१७) गीतावाटिका राधावाटिका हो जाती थी ३२१

सातवाँ अध्याय :

राधाष्टमीकी ऐतिहासिक परम्परा ३२३

आठवाँ अध्याय :

षोडशगीतोंका प्रादुर्भाव ३४७

(१) षोडशगीतोंका प्रचार ३५२

नौवाँ अध्याय :

पू.गुरुदेवरचित अनुपम लीला–नाटिकाएँ ३५३

(१) तात्पर्य-प्रकाशिका भूमिका ३५३
(२) अनुराग-परीक्षा लीला ३९५
(३) कुन्दवल्ली-भावकीलीला, भूमिकासहित ४३०
(४) राधा-मनोरथकी लीलाएँ, भूमिकासहित ४५६

नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधारानीकी अष्ट सखियोंका परिचय

श्री "ललिता" लावण्य ललित सखि
गोरोचन-आभा युत अङ्ग ।
विद्युद्-वर्णि निकुञ्ज-निवासिनि,
बसन रुचिर शिखिपिच्छ सुरङ्ग ।।
इन्द्रजाल-निपुणा, नित करती
परम स्वादु ताम्बूल प्रदान ।
कुसुम-कला-कुशला, रचती कल
कुसुम-निकेतन कुसुम-वितान ।।

सखी "विशाखा" विद्युत्-वर्णा
रहती बादल-वर्णा कुञ्ज ।
तारा-प्रभा सुवसन सुशोभित,
मन नित मग्न श्याम-पद-कञ्ज ।।
कर्पूरादि सुगन्ध-द्रव्य युत
लेपन करती सुन्दर अङ्ग ।
बूटे-बेल बनाती, रचती
चित्र विविध रुचि अँग-प्रत्यङ्ग।।

"चित्रा" अङ्ग-कान्ति केसर-सी,
काँच-प्रभा-से वसन ललाम ।
कुञ्ज-रङ्ग किञ्जल्क कलित अति,
शोभामय सब अङ्ग सुठाम ।।
विविध विचित्र वसन-आभूषण-
से करती सुन्दर शृङ्गार ।
करती सांकेतिक अनेक
देशोंकी भाषाका व्यवहार।।

सखी "इन्दुलेखा" शुचि करती
शुभ्र-वर्ण शुभ कुञ्ज निवास ।
अङ्ग-कान्ति हरताल सदृश रँग
दाड़िम कुसुम बसन सुखरास ।।
करती नृत्य विचित्र भङ्गिमा
संयुत नित नूतन अभिराम ।
गायन-विद्या-निपुणा, ब्रजकी
ख्यात गोपसुन्दरी ललाम ।।

"चम्पकलता" कान्ति चम्पा-सी,
कुञ्ज तपे सोनेके रङ्ग ।
नीलकण्ठ-पक्षीके रँगके
रुचिर वसन धारे शुचि अङ्ग ।।
चावभरे चित चँवर डुलाती
अविरत निज कर-कमल उदार ।
द्यूत-पण्डिता, विविध कलाओं-
से करती सुन्दर शृङ्गार ।।

सखी "रङ्गदेवी" बसती अति
रुचिर निकुञ्ज, वर्ण जो श्याम।
कान्ति कमल-केसर-सी शोभित,
जवा कुसुम-रँग वसन ललाम।।
नित्य लगाती रुचि कर-चरणों-
में यावक अतिशय अभिराम।
आस्था अति त्यौहार-व्रतोंमें,
कला-कुशल शुचि शोभाधाम।।

सखी "तुङ्गविद्या" अति शोभित
कान्ति चन्द्र, कुंकुम-सी देह ।
वसन सुशोभित पीत वर्ण वर,
अरुण निकुञ्ज, भरी नव नेह ।।
गीत-वाद्यसे सेवा करतीं
अतिशय सरस सदा अविराम ।
नीत-नाट्य-गान्धर्व-शास्त्र-
निपुणा रस-आचार्या अभिराम ।।

सखी "सुदेवी" स्वर्णवर्ण-सी,
बसन सुशोभित मूँगा-रङ्ग।
कुञ्ज हरिद्रा-रङ्ग मनोहर
करती सकल वासना-भङ्ग।।
जल निर्मल पावन सुरभितसे
करती जो सेवा अभिराम।
ललित लाड़िलीकी जो करती
वेणी-रचना परम ललाम।।

(दोहा)

अष्ट सखी करतीं सदा सेवा परम अनन्य ।
राधा-माधव-युगलकी, कर निज जीवन धन्य ।।
इनके चरण सरोजमें बारंबार प्रणाम ।
करुणा कर दें श्रीयुगल-पद-रज-रति अभिराम ।।

चित्रसूची

		पृष्ठसंख्या
१.	महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा	(कवर मुखपृष्ठपर)
२.	पू.श्रीपोद्दार महाप्रभुकी चिरविश्रामस्थली	(इनरपेस्टर प्रारम्भमें)
३.	महाभाव–ज्योतिर्पुञ्ज श्रीपोद्दार महाराज	(समर्पणगीतके सामने)
४.	सखी श्रीललिताजी	९६
५.	सखी श्रीविशाखाजी	११२
६.	सखी श्रीचित्राजी	१२८
७.	सखी श्रीइन्दुलेखाजी	१४४
८.	सखी श्रीचम्पकलताजी	१६०
९.	सखी श्रीरंगदेवीजी	१७६
१०.	सखी श्रीतुङ्गविद्याजी	१९२
११.	सखी श्रीसुदेवीजी	२०८
१२.	महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा	२२४
१३.	पद्मयोनि विधाता श्रीब्रह्माजी द्वारा श्रीराधाकृष्णका विवाह	३७४
१४.	नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकी अनुजा श्रीमञ्जुश्यामाजी	४६४
१५.	गीतावाटिका, गोरखपुर स्थित श्रीराधाकृष्ण–साधना मन्दिर	(अन्तिम पेस्टर)
१६.	पू. श्रीराधाबाबाकी स्थापित गिरिराज श्रीगोवर्धनकी नित्य–परिक्रमा–स्थली	(")

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(पञ्चम खण्ड)

प्रथम अध्याय

महाक्रन्दन–निशाका रासरसमें पर्यवसान

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने वि.सं. २०१३की शरद्पूर्णिमा तदनुसार दिनांक १९-१०-१९५६ ई.को मध्यरात्रिमें ठीक बारह बजे काष्ठमौन लिया था। पूर्व चतुर्थ खण्डमें उसका विस्तारसहित वर्णन किया जा चुका है।

पू.गुरुदेवके मौन लेते ही प्रायः सम्पूर्ण गीतावाटिकामें ऐसी विषादभरी नीरवता व्याप्त हो गयी, जिसका वर्णन शब्दों द्वारा किया जाना असम्भव है। पू.गुरुदेवके संभावित वियोगसे उस निशामें जो क्रन्दन-प्रवाह बहा था, उसे जिन्होंने अनुभव किया, वे भले ही उसकी साक्ष्य दे दें; शब्द उसका चित्र खींच सकें – यह असंभव ही है। प्रतिवर्षकी तरह उस निशामें भी वाटिकावासियोंने शरदोत्सवकी पूजा की थी। प्रसाद रूपमें सभीको अति स्वादिष्ट पर्याप्त खीर-प्रसाद भी मिला था।

वर्षोंसे पू.गुरुदेवने मुझ-जैसे अनेकों साधकोंको यह नियम दिला दिया था कि प्रत्येक कृष्ण-जन्माष्टमी, राधा-जन्माष्टमी, शरदपूर्णिमा, दीपावली, महाशिवरात्रि एवं होली – इन छः महारात्रियोंमें पूर्ण जागरण किया जाये। आजकी शरदोत्सवकी निशा भी इनमेंसे ही एक थी, अतः मेरे-जैसे अनेक साधक पुरातन अभ्यासजन्य संस्कारोंवश अपने नेत्रोंमें रासबिहारी श्रीकृष्णको अवतरित करनेकी साधनामें जुटे थे। गीतावाटिकाका वनप्रदेश ही हम सभीका भाव-वृन्दावन था। कुछ साधक अपनी कल्पनामें सम्मुख ही मणिखचित स्वर्णिम रासमण्डपकी भाव-कल्पना मूर्त्त करनेमें लगे थे। कुछ-एक ऐसे भी थे, जिन्हें उस प्रांगणमें ही रासवेशमें नृत्य-निरत गोपी-जन-मनमोहन नटवर नीलसुन्दर ध्यानपथमें आ रहे हों। इन साधकोंके मनमें जैसे ही विश्वविमोहन नीलसुन्दरका नृत्योल्लास प्रारंभ होता, ठीक उसी समय किसी-न-किसी नारीकण्ठकी तीव्र क्रन्दनध्वनिसे वाटिकाका कण-कण प्रतिनादित हो उठता था।

"बाबा रे ! अब तुम कब बोलोगे ? बताओ न ! अब मैं तुमसे कब मिल

पाऊँगी ?''– कभी किसी एकका और कभी एक साथ अनेकों बहनों, माताओं एवं कन्याओंका यह चीत्कार इतने करुण एवं तीव्र वेगसे उठता था कि वह साधकोंकी रास-भावनाको छिन्न-भिन्न कर देता था।

अ.सौ.बहिन इन्दु सरावगी तो उस निशामें सर्वथा ही विक्षिप्त हो उठी थी। आँखें फाड़-फाड़कर कभी वह किसीकी ओर देखती और कभी किसीकी ओर। वह सभीसे यही याचना करती थी कि 'बाबाको तू समझा दे, वे तेरी बात मान लेंगे।' इस प्रकार वह हर किसीसे आग्रह करती। फिर सभीको अपने ही समान विषादित पाकर उसकी वेदना असह्य हो उठती। चिन्ताके भारसे विक्षिप्तवत् 'बाबा ! बाबा !' वह चीत्कार कर उठती थी। उसे स्त्री-पुरुषका भेद ही अनुभव नहीं हो रहा था। उसके 'बाबा'से अब उसका मिलन कभी नहीं होगा – इस कल्पनासे ही उसके प्राण छटपटा रहे थे। उसका बुद्धि-संतुलन ही गड़बड़ा गया था। उसकी चीत्कार और विक्षिप्तावेश तभी संवरित होता, जब वह अचेत हो जाती थी। अ.सौ.सावित्रीबाई (पू.पोद्दार महाराजकी पुत्री) उसे किसी प्रकार सँभाल रही थी। इससे मिलती-जुलती ही दशा अ.सौ. भाग्यवती ढंढारियाकी थी। भाई रामनिवास ढंढारिया आदि समझदार लोग भी शिशुओंके समान बिलख रहे थे; अनेकोंकी हिचकियाँ बँधी थीं।

घनघोर विषाद–वर्षा

इस निशामें गीतावाटिकामें जो विषाद-वर्षा हुई थी, वह शब्दातीत थी। मेरी दशा भी विक्षिप्त-सरीखी ही हो गयी थी। अन्यमनस्क बना मैं अपने निवासपर जाता तो वहाँ मेरे पूर्वाश्रमके पारिवारिक स्वजनोंको बिलखता देख पुनः वाटिका आ जाता। किसीको भी कोई क्या कहकर आश्वस्त करे – यह समझके परेकी बात थी। अन्य किसी भी कोनेसे कोई किसीको पू.गुरुदेव (उन सभीके 'बाबा')की आत्मीयता दे सके, दिला सके – यह तो असंभव ही बात थी। श्रीपोद्दार महाराज सबके संरक्षक थे; पितावत् उनकी छत्रछाया भी सभीके ऊपर थी; उनकी सहृदय परम आत्मीय व्यवस्था – संरक्षा सबके प्रति समान थी; परन्तु पू.गुरुदेव (बाबा) बाबा ही थे। वे अनुपम अतुलनीय ममत्व बिखेरे थे। श्रीपोद्दार महाराज पिता थे, तो वे माता थे। अब माताका असीम

वात्सल्य दूसरे किसी भी कोनेसे सबको दिलानेका आश्वासन कौन दे सकता था ? कोई पति हो सकता था, पिता हो सकता था, भाई हो सकता था, मित्र हो सकता था, परन्तु बाबा-स्थानीय तो किसीकी कल्पनामें भी कोई नहीं था। बाबा 'न भूतो न भविष्यति' रूपसे सभीके अपरिहार्य हृदय-आराध्य थे। वे डाँटते थे, कड़ा अनुशासन भी करते थे, परन्तु फिर भी न जाने क्यों उनका वात्सल्यभरा आकर्षण स्थावर-जंगम सभीको अभूतपूर्व तथा नित्य-नवीन लगता था।

मेरी वार्त्ताको पाठक अतिशयोक्ति समझ सकते हैं, क्योंकि उनके अनुभवमें वैसी सुदुर्लभ आत्मीयता कभी आयी ही नहीं होगी।

विक्षिप्त-सा मैं अपने पूर्वाश्रमके पारिवारिक स्वजनोंके पाससे होकर अपने पूर्वाश्रमके मामा – श्रीचिम्मनलालजीके घरकी ओर कदम बढाता हूँ, किन्तु वहाँ भी मामी, मौसी, यहाँ तक कि नानीतकको बिलखती पाकर परावर्त्तित हो जाता हूँ। मैं अपने मामा – स्वयं गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीको निहारता हूँ। वे मछहरीमें किरासनका लालटेन जलाये 'कल्याण-कल्पतरु' मासिकपत्रका कार्य करते होते हैं। गौरसे देखनेपर मुझे स्पष्ट दिखायी देता है, कि उनकी आँखोंसे आँसुओंकी लोर उनके लेखनके कागजोंपर टप-टप गिर रही है। मैं, उनका अति लघु वयसीय बालक उनसे संवेदनाकी बात क्या करूँ ? चुपचाप सबके विषादको अनदेखा किये, पुनः वाटिकाकी ओर परावर्त्तित हो जाता हूँ।

वाटिकाके मुख्य द्वारपर किसी तरह लड़खड़ाते पैरों पहूँचता हूँ, तो देखता हूँ कि अपने लघु बाल पैरोंसे दौड़ती हुई मेरी पूर्वाश्रमकी पुत्री ललिता(उन दिनों मैं गृहस्थ था) मेरे पास आती है और सुबुक-सुबुककर रोती हुई मुझसे कहने लगती है – 'चलो बाबूजी ! माँ बहुत रो रही है। अपने बाबाके पास चलते हैं। मैं उनका हाथ पकड़कर उनसे बोलनेके लिये हठ करूँगी। वे अवश्य मान जायेंगे।' मैं उस बालिकाको अपनी गोदमें उठाकर चुपचाप उसकी माँको सम्हला आता हूँ।

वाटिकामें प्रवेश करनेपर पू.पोद्दार महाराजकी गोशाला सामने ही पड़ती है। गोशालाका ग्वाला आँसू बहाता हुआ सामने आ जाता है। वह पूछने लगता है– 'क्यों भैया ! क्या बाबा अब जीवनभर इशारा (संकेत) भी नहीं करेंगे ?' जिज्ञासा करता हुआ वह फफक-फफककर रोने भी लगता है। मैं गायों और

गोवत्सोंकी ओर दृष्टि डालता हूँ तो पाता हूँ – उन मूक पशुओंके भी आनन अश्रु-लोरसे भीगे हैं। उनके पास वाणी नहीं है, जिसके द्वारा वे अपने 'बाबा'के प्रति अपनी ममता व्यक्त कर सकें, परन्तु वातावरणके औदास्यसे वे प्रभावित हुए बिना रहे हों, सो बात नहीं है। उनके पाससे गुजरनेपर समवेत आर्त्त स्वरमें जिस प्रकार वे रम्भा उठते हैं, वह आर्त्ति उनके प्राणोंकी व्यथाको मेरे सम्मुख पूर्णतया प्रकट कर देती है।

वृक्षोंपर प्रतिनिशा समूहयुद्ध करते वानरदल भी आज डालोंपर शान्त, निम्नमुख किये बैठे हैं। उनकी सारी उछलकूद, समग्र चंचलताको मानो विरामचिह्न ही लग गया है। यह निशा इतनी विषादपूर्ण हो गयी है कि उसका व्यतीत होना ही अत्यन्त कठिन अनुभव हो रहा है।

मैं विचारनिमग्न हूँ। 'मानव अपने स्वजन-सम्बन्धियोंके विरह-वियोगमें अकुलाता है, रोता-बिलखता है; परन्तु उस रुदनमें अपने सम्बन्धीसे प्रतिदान पानेकी स्वार्थमयी आशा, न्यूनाधिक रूपमें सभीमें वर्त्तमान रहती है। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा तो एक संन्यासी थे ! वे भले ही किसीको स्नेह दें, प्रेमभावके सिवा उनसे किसी अन्य स्वार्थ-सिद्धिकी आशा तो किसीको कभी होनेका प्रश्न ही नहीं था। वे तो सर्वथा अकिंचन, अर्थ-निस्पृह, भिक्षुक संन्यासी थे। भविष्यमें भी उनके द्वारा किसीके स्वार्थनिर्वाहकी तो संभावना बन ही नहीं सकती थी। फिर सचमुच ही यह एक आश्चर्यकी ही तो बात थी, कि उनके मात्र मौन लेनेकी क्रियासे अन्ध स्नेहमें भरे लोग इस प्रकार बिलख रहे थे, रो रहे थे, और उनके अवसाद मिटनेकी कहीं कोई सीमा ही नजर नहीं आ रही थी। जिस किसी स्त्रीकी ओर दृष्टि जाती, उसीके केशबन्धन उन्मुक्त, आवरक वस्त्र अस्तव्यस्त दृष्टिगोचर होते थे। जिस किसी कोनेमें देखो, कोई-न-कोई कण्ठ सिसकता, बिसूरता ही प्रतीत होता था। चाहे मूक किंवा मुखर, एक ही क्रन्दन-ध्वनि सर्व ओरसे श्रवणगोचर होती – 'बाबा रे ! अब तुम कब बोलोगे, कब मिलोगे ?' इस करुणा-विलापसे आज पूरी वाटिका निनादित हो रही थी।

मैं पू.गुरुदेवकी कुटियाकी ओर जाता हूँ। पू.गुरुदेव शयित हो चुके थे। चारों ओरका वातावरण पूर्णतया शान्त था। अवश्य ही झिल्लीकी झंकार चतुर्दिक् निनाद उत्पन्न कर रही थी। पू.गुरुदेवकी कुटीके बाह्य भागमें द्वाररक्षकके रूपमें श्रीरामसनेहीजी एवं 'भगतजी' आसीन थे। उनके मुखपर भी विषाद पूर्णतया व्याप्त था। मैं चुपचाप उनके पास कुछ काल बैठ जाता हूँ। मुझे अपने

पास बैठा देख भाई रामसनेही मेरे वक्षस्थलसे लगकर सिसक उठता है। परन्तु उसे भय है कि उसके रुदनसे पू.गुरुदेवके शान्त शयनमें कहीं कोई विघ्न उपस्थित नहीं हो जाय, अतः वह खुलकर सिसकी भी नहीं ले पाता है। उसकी नाक और नेत्रोंसे पानी बह रहा है, किन्तु वह मुखसे स्फुटित अपनी सिसकियोंको बलपूर्वक दबाये है।

भगतजी यद्यपि शरीरसे पूरे जीवित हैं, फिर भी मनसे तो पूरे मर ही चुके हैं। विषाद, दुःख-सुख तभीतक प्रकट होते हैं जबतक कोई प्राणी मनसे जीवित हो। जब कोई व्यक्ति मनसे पूरा मर ही जाता है, तो सुख-दुःखादि संवेदनाएँ व्यक्त करनेकी भी उसकी सामर्थ्य नहीं रहती। यही दशा श्रीभगतजीकी है। वे कोयलेकी सिगड़ी सुलगाये ताप रहे हैं, परन्तु उनकी दृष्टि संवेदनाशून्य मृत प्राणीकी तरह निरीह आकाशपर स्थिर है। वे उस प्राणीकी तरह हो चुके हैं जहाँ पीड़ा घनीभूत होकर पीड़ा नहीं रहजाती, शून्य हो जाती है।

वहाँसे उठकर मैं पुनः वाटिकामें स्थित श्रीपोद्दार महाराजके निवासके समीप आता हूँ। श्रीपोद्दार महाराजकी चारपाई आज निवासके बाहर सड़कपर ही बिछी है। अनुमान करता हूँ – श्रीपोद्दार महाराज भी मछहरी लगाकर शयन कर गये हैं। ऐसा उनका नियम ही है कि जब भी घरमें बाहरके अतिथि, अन्य परिवारोंकी बहू-बेटियाँ आ जाती हैं, वे निवासके बाहर सड़कपर ही अपनी पलंग बिछाकर शयन करते हैं। इसी नियमानुसार वे आज भी बाहर सड़कपर ही सो रहे हैं। उनसे कुछ दूरीपर गोलाकार चबूतरेपर श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल, और उनसे कुछ अन्तरपर श्रीकुञ्जबिहारी पालड़ीवाल अलमस्त, सोया हुआ है। मैं श्रीपोद्दार महाराजकी मछहरीके भीतर दृष्टिनिक्षेप करता हूँ। श्रीपोद्दार महाराजकी शयित छवि मेरे दृष्टिपथमें आ जाती है। वे ही एकमेव ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके श्रीमुखपर आज क्लान्ति-क्लेशकी कोई छाया नहीं दिखाई देती। कोई व्यथा नहीं, कोई विषाद नहीं, किसी प्रकारकी चिन्ताकी कोई छाया भी उनके आर्श्व-पार्श्वमें कहीं नहीं फटक रही थी। मुझे तो उनके अधरोंपर आज स्फुट हास्य-छटा थिरकती दिखाई देती है। कुछ कालतक उनका भावभरा सुन्दर मुख निहारता मैं वहीं ठिठक जाता हूँ। उनकी शान्त, आनन्दपूर्ण मुखाभा मुझे बहुत ही शान्ति देती है। मैं आश्वस्त होता हूँ कि अन्ततः एक व्यक्ति तो मिला ही जिसे कहीं कोई क्लेश, विषाद अथवा ग्लानि संस्पर्श ही नहीं कर पा रही है।

मैं चुपचाप उनकी शय्याके निकट बैठ जाता हूँ। संभवतः भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी सोये नहीं हैं। वे मुझे श्रीपोद्दार महाराजकी शय्याके पास आसीन देख, शंकालु होकर मेरे पास आ जाते हैं। मेरी उपस्थिति श्रीपोद्दार महाराजके निर्विघ्न शयनमें कहीं कोई विक्षेप नहीं करे, इस आशंकासे वे मुझे अपने पास बैठनेका संकेत करते हैं। मैं संकेतसे उन्हें आश्वस्तकर वहीं बैठा रहता हूँ।

मैं मन-ही-मन विचारोंमें बहने लगता हूँ। मेरे नेत्रोंमें आज न तो किञ्चित् भी तमोगुण है, न ही आलस्य अथवा निद्रा। विगत रात्रि भी मैं प्रायः जागता ही रहा था, दिनमें भी करवट लेनेका अवसर नहीं मिल सका था। मैं चुपचाप, शान्त पू.पोद्दार महाराजकी शयित छवि निहारनेमें निरत हूँ। पू. गुरुदेवके करुणापूर्ण स्वभावकी द्योतक विगत पाँच माह पूर्वकी एक घटना मेरी स्मृतिमें आ रही है।

विषकीट सर्पपर करुणार्णवकी उर्मियाँ

"पू.गुरुदेव तीर्थयात्रासे लौटकर आये ही हैं। (तीर्थयात्राके अधिकांश प्रसंग पूर्व वर्षमें प्रकाशित चतुर्थ खण्डमें उल्लिखित हैं।) एक दिवस प्रातः जैसे ही मैं उन्हें प्रणाम करने उनकी कुटीमें प्रविष्ट होता हूँ, उन्हें पूर्णतया विषादग्रस्त पाता हूँ। विषाद तो तमोगुणका प्रतीक है। पू.गुरुदेवमें औदास्य, विषाद क्यों ? मैं निस्संकोच उनसे जिज्ञासा कर बैठता हूँ। वे उत्तर देते हैं – 'भैया ! मेरी शय्याके सिरहानेकी ओर जो दक्षिण दिशाकी खिड़की है, उसकी सिटकनीके पास एक बिलमें एक घोर विषधर सर्प रहता था। वह विषधर सर्प इधर जबसे मैं तीर्थयात्रासे लौटा हूँ, दृष्टिगोचर नहीं हो रहा। मैंने कल सायं उसके निवासस्थानपर दृष्टिपात किया, किन्तु वह भी सीमेण्टसे बन्द किया हुआ मिला। वह विषधर सर्प मेरी कुटीमें सन् १९४५से १९५६ई. – मेरे तीर्थयात्रा जानेतक अनवरत द्वादश वर्षोंसे मेरा सहवासी रहा है। मुझे चिन्ता है, कहीं मेरी दीर्घकालीन अनुपस्थितिमें कुटीकी मरम्मत करनेवाले मजदूरोंने उसे मार नहीं डाला हो।'

"पू.गुरुदेवकी आशंका सत्य थी। सचमुच ही वह विषधर सर्प कुटियाकी

मरम्मत करनेवालों द्वारा मार डाला गया था। वर्षोंसे पू.गुरुदेवकी कुटियाकी मरम्मत नहीं की गयी थी। तीर्थयात्रामें महीनों पू.गुरुदेव गोरखपुरसे बाहर प्रवासमें रहे। अतः व्यवस्थापकोंको उसे पूर्ण पक्की निर्माण करा देनेका अवसर मिल गया। दीमकलगे द्वार और खिड़कियाँ सभी पुननिर्मित कर दिये गये। मजदूरोंको इसी मध्य पू.गुरुदेवका वह सहवासी विषपायी, घोर किरायत सर्प दृष्टिगोचर हुआ तो उन सबने उसकी इहलीला समाप्त कर देना ही श्रेयस्कर समझा। वह कीट इतना विषैला था कि उसके काट लेनेपर किसीके जीवन शेष रहनेकी संभावना ही नहीं रहती। मैं उस समय घटनास्थलपर ही उपस्थित था। मैंने मजदूरोंको मना भी किया था, किन्तु मजदूरोंने मेरी बातपर ध्यान न देकर उसे यमधाम पहुँचाना ही श्रेयस्कर समझा, तो मैं निरुपाय देखता ही रह गया था।"

"पू.गुरुदेवके चित्तमें उस सर्पके वियोगसे जो अपरिसीम सात्विक वेदना हो रही थी, वह तो संभावित थी ही। अब उसका निराकरण होना भी तो अशक्य था। मेरा मुख ग्लानिसे निम्न था। मैंने निम्नमुख किये ही अपने पैरोंसे भूमिको कुरेदते हुए यह स्वीकार कर लिया कि वह कालकूट सर्प दिवंगत हो चुका है। उन्होंने बार-बार मुझसे एक ही जिज्ञासा की – 'यह जानते हुए भी कि वह सर्प मेरा वर्षोंका सहवासी था और मेरे आसपास सदैव चलते-फिरते हुए उसने न तो मुझे, और न ही मेरी कुटियामें किसी आगन्तुकको, काटना तो रहा दूर, कभी फुफकारा तक नहीं, उसे तुमने मजदूरों द्वारा असहाय कैसे मारे जाने दिया ?"

"मैं निरुत्तर था। सचमुच मेरे घोर रजोगुणी कठोर मनमें पू. गुरुदेवकी करुणाधाराकी एक कणिकाका भी संस्पर्श नहीं ही हुआ था। मेरा मन धरणीमें गड़ जानेका हो रहा था। पू. गुरुदेवके नेत्र अश्रुवर्षा करते उनके गैरिक वस्त्रांचलको भिगो रहे थे। उस सर्पको अपना तपदान करनेके लिये आगामी बहत्तर घण्टोंतक पू.गुरुदेव उपवास करेंगे; ऐसी उनकी उद्घोषणा हो चुकी थी।"

" पू.गुरुदेवके उपवास करने और उनके परितापकी सूचना शनैः-शनैः जैसे ही लोगोंके कानोंमें पहुँचती गई, लोग उनकी कुटीपर एकत्रित होने लगे। पू.गुरुदेव इतने गंभीर थे कि एकत्रित लोगोंमेंसे किसीको कुछ भी बोलनेका साहस नहीं हो रहा था। श्रीपोद्दार महाराजकी अ.सौ.धर्मपत्नीको भी इस

उपवासकी सूचना मिल गयी थी। घरमें एक संन्यासी तीन दिवस अनवरत भूखा रहे और घरके सब लोग भोजन करें, धर्मभीरु श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नीके लिये यह बात असह्य थी। श्रीपोद्दार महाराज इन दिनों अति रुग्ण थे; मन्दज्वरसे वे जर्जर हो रहे थे। वैद्य-डाक्टरोंने उनको पूर्ण विश्राम करनेकी सलाह दे रक्खी थी। यदि अ.सौ. माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) स्वयं उपवास कर बैठेंगी तो फिर पोद्दार महाराज जो एकाध फुलका पथ्य रूपमें ग्रहण करते हैं, वे भी नहीं खावेंगे। परिवारमें एक विषम धर्मसंकट उपस्थित हो गया था। पू.गुरुदेव हठमें लोहेकी लाट थे। उनके मुखसे एक बार जो कोई बात निकल गयी, उससे उनके टलनेकी तो संभावना थी ही नहीं ।

श्रीपोद्दार महाराजके कानोंमें भी इस घटनाकी सूचना किसीने पहुँचा ही दी थी। श्रीपोद्दार महाराज इस परिस्थितिको भी अपनी दूरगामी बुद्धिसे हृदयंगम कर चुके थे कि यदि श्रीराधाबाबा सर्वथा निराहार रहेंगे तो उनकी धर्मपत्नी भोजन करनेसे रही। घरमें जब कोई चतुर्थाश्रमी संन्यासी विराजित है तो गृहस्थका यही कर्त्तव्य है कि उसे भिक्षा कराके ही भोजन करे। श्रीपोद्दार महाराज स्वयं चाहे इस मर्यादाका उल्लंघन कर भी जावें, उनकी गृहिणी तो इस मर्यादाका यथाशक्य पालन अवश्य करेगी।

पू.पोद्दार महाराज रुग्णावस्थामें भी पू.गुरुदेवके पास उन्हें इस तपसे निवृत्त करने चले आये । वे सबके सम्मुख ही हँसते हुए उनसे कहने लगे–"बाबा ! भगवद्विमुख-जन-मोहिनी मायाका आवरण इतना झीना नहीं है कि वह विषधर आपके तीन दिवस उपवास करने मात्रसे चिदानन्दघन अनन्तैश्वर्यनिकेतन प्रभुके प्रकाशको प्राप्त कर ले। बाबा ! हम सभी घोर विषय-विषसे भरे हैं। यदि सबकी अविद्या-निवृत्ति उपवासोंसे संभव होती तो मैं, आप, गोस्वामीजी, आदि सभी लोग उपवास ही कर-करके सबको भगवद्धामकी यात्रा करा देते। उपवासोंसे, तपसे, यह सब-कुछ नहीं होने वाला। बाबा ! आप मुझपर विश्वास करें, इस तपका हठ त्याग दें। आप उस सर्पकी सद्गति ही तो चाहते हैं ? उसका उत्तरदायित्व मुझे दे दें, आश्वस्त हो जावें। मेरे कथनकी अनुपालना करते हुए आजसे ही गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी प्रतिदिन प्रातः-सायं विष्णुसहस्रनामके दो पाठ उस सर्पको कालियनागकी गति मिले – इस संकल्पसे तबतक करेंगे, जबतक मैं स्वयं उन्हें इस अनुष्ठानसे निवृत्त होनेको नहीं कहूँगा। अति रुग्ण रहनेपर भी मैं अपना कुछ भजन-अंश उसे अवश्य

प्रदान करूँगा।" पू.पोद्दार महाराजकी इस कृपोक्तिसे तत्कालीन उपस्थित जनसमुदाय भी इतना उत्साहित हो उठा कि सभी सज्जनोंने अपना कुछ-न-कुछ भजन उस सर्पके निमित्त प्रदान करनेका संकल्प ले लिया। श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नीने भी एक वर्षके एकादशीव्रत उस विषकीटके निमित्त करनेका निश्चय किया।"

" पू. गुरुदेवको भी अपनी वचन-रक्षा तो करनी ही थी, अतः एकादशी एवं सोमवारके व्रतोंके रूपमें तीन पृथक्-पृथक् दिन वे निराहार उपवास कर लेंगे– ऐसा आश्वासन उन्होंने सभीको दे दिया।"

करुणासिन्धु आज शान्त कैसे ?

मेरे चित्तपटलपर पू.गुरुदेवकी अथाह करुणाराशिके प्रवाहित होनेकी यह घटना उस रुदन-निशामें भी बार-बार उत्थित हो रही थी। मैं बारम्बार यही विचार कर रहा था कि एक सहवासी विषकीटके लिये जिनकी करुणामें इतना उच्छलन हो आया था वही करुणासागर गुरुदेव आज स्वजनोंके इतने बिलख-बिलखकर रोनेकी उपेक्षाकर कैसे शान्त शयन कर रहे हैं ? और पोद्दार महाराजको भी क्या हो गया है ? इन सर्वविज्ञसे भी क्या कुछ गोपन है ? अपने शिष्य श्रीराधाबाबाकी समस्त साधनाओंके सूत्रधार तो ये स्वयं ही हैं। इन्होंने व्यवहारमें अन्य जनोंकी तो भले ही कभी उपेक्षा भी कर दी हो, परन्तु अपनी धर्मपत्नी, अपनी वत्सला पुत्री सावित्रीका म्लान मुख तो ये कभी देख भी नहीं पाते थे। ऐसा तो कभी नहीं देखा गया कि इनका तटस्थ, शान्त-स्थिर गंभीर रहनेका संकल्प परिवारजनोंके प्रति उमड़ती इनकी वात्सल्यधारासे क्षणोंमें ही नहीं बिखर गया हो। फिर आज इन सभीका विलाप सुनकर भी ये चुपचाप, शान्त बने, बाहर आकर कैसे सो गये हैं ? इनके मुखपर सुविराजित इस अखण्ड आनन्दधाराका आन्तरिक रहस्य अन्ततः है क्या ? इन महापुरुषकी गूढ अभिसंधिका कुछ तो मुझे भी ज्ञान हो !

मैं श्रीपोद्दार महाराजकी शय्याके पास बैठा अनवरत विचाररत था–"जिनका हृदय एक विषकीट सर्पकी आर्त्ति सहनेमें असमर्थ हो गया था– यह प्रश्न ही नहीं उठता था कि उस आर्त्तिमें हेतु क्या है ? बस, वह आर्त्ति अपने निज जनकी है, मात्र यह भावना जिन्हें परिव्याप्त कर लेती थी और इन दोनों

महापुरुषोंकी हेतुरहित करुणा उस सम्पूर्ण आर्त्तिको मूलसे ही मिटा देनेके उद्देश्यसे उन्हें संकल्पबद्ध कर देती थी, असंभवको संभव बनानेका जिनका संकल्प भगवत्कृपावश सिद्ध भी हो जाता था, वे सर्वसुहृद, परम नेहार्णव मेरे गुरुदेव और आर्त्तजन-प्रतिपालक ये पोद्दार महाप्रभु, आज इस वाटिकापर बरसी इस घनघोर विषादवर्षाकी उपेक्षाकर शान्त, मुसकाते कैसे शयन कर पा रहे हैं ? इस प्रवाहित करुणामें आज इनके नयन छलछला क्यों नहीं रहे ? किसी आश्रितके ज्वरतापके उग्र हो जानेपर भी मैंने इन्हें उस आर्त्तके समीप बैठे हुए पूरी रात गुजारते देखा है, फिर आज इन दोनोंने ही उपेक्षाकी यह चादर अपने तन-मनपर कैसे डाल ली है ? किसीके धैर्यकी भी कोई सीमा तो होती ही है! जहाँ गौएँ वेदनाभारसे डकार रही हों, छोटे-छोटे शिशु अपने बाबाको मुखर कराने कुटियाकी ओर प्रस्थान करनेको उद्यत हो उठे हों, छोटे-छोटे चंचल बालक जो प्रतिदिन ही सायं अपने बाबाके साथ दौड़ लगानेकी प्रतिस्पर्द्धा करते थे – सुबक रहे हों; माली-कहार आदि अनुचरगण भी जहाँ अश्रु प्रवाहित कर रहे हों, वाटिकामें निवास कर रही सरावगी माता, पानकी मैया, दिल्लीवाली डालमिया मैयादि सभी मातृस्थानीया महिलाएँ अपने चेहरे नीचे लटकाये, विषादभरी, मौन बैठी हों, बाई राधा, पुष्पा आदि कुमारिकाओंके अश्रु भी जहाँ थम नहीं रहे हों, कभी किसीका एवं कभी किसीका चीत्काररव जहाँ रह-रहकर वातावरणको दयार्द्र कर दे रहा हो– वहाँ सभीके प्राणप्रिय बाबा अपने काष्ठमौन-बन्धनमें निश्चेष्ट, शान्त शयित रहनेकी लीला कर सकेंगे ? क्या इन दोनों महापुरुष-युगलके दयाभरे कान यह करुण क्रन्दन नहीं सुन पा रहे ?

मैं यह सब विचार कर ही रहा था कि सन्तशिरोमणि श्रीपोद्दार महाप्रभुने सोये-सोये ही करवट ली। उन्होंने मुझे अपनी शय्याके पास बैठे देख लिया था। उन्होंने लेटे-लेटे ही अपनी वत्सल नेहदृष्टिसे मुझे निहारा। अपनी इस एक पैनी तीक्ष्ण दृष्टिसे ही मेरे चित्तमें उठ रहे सब विचारोंको वे एक क्षणमें ही पूरा-पूरा पढ गये। अति संक्षेपमें लेटे-लेटे ही वे मुझसे बोल उठे–" भैया ! तू सर्वथा चिन्ता मत कर। तेरे बाबा तो सर्वभूतके साक्षी हैं। उनसे किसी एक व्यक्तिका भी अन्तःकरण कहीं कुछ भी छिपा नहीं है। किस व्यक्तिमें मात्र थोथी भावुकता है, और किसमें सच्ची विरहानुभूति है – वे प्रतिपल सब-कुछ देख-जान रहे हैं। यह तो वाटिकावासियोंकी हृत्सरिताका मात्र थोड़ा-सा उफान

भर है; बहुत अल्प मात्रामें उनके भावसागरकी मन्थनलीला है। त्रितापसे नित्य जलते इन विषयी जनोंका थोड़ा-सा यह मन्थन ही महौषधि बनकर प्रपंचके तटपर बिखर सकता है, यदि यह सच्चे भावका कहीं संस्पर्श मात्र कर ले। भावामृत-सिन्धु उद्वेलित हो उठे – यही तो तेरे बाबाकी गुप्त अभिसन्धि है। यह मौनका खेल इसीलिये तो तेरे बाबाने किया है। पर अभी यह कहाँ संभव है ? मन्थनजात कुछ अमृतकणिकाएँ ही बिखर जावें तो बिखरने दे। तुझे पता नहीं, भविष्यमें कितना विषय-विष तुम सभी उगलोगे – इसकी अभी कल्पना ही किसीमें नहीं है। तुम सभीमें पनपती विषय-विषबेलि आगामी भविष्यमें, जब मेरे भी जीवनकी संध्या हो चलेगी, तब कैसा आसुरी ताण्डव करेगी – उस भविष्यसे तू अभी अबोध है। जिनके हृदयमें सच्चा विरह-ताप जागा है – उनके सौभाग्यकी तो बालेहारी है। चिन्ता मत कर, जा, सो जा। अन्तिम परिणति सभीके मंगलकी ही होगी।" यह कहते-कहते श्रीपोद्दार महाप्रभु शान्त, चुप सो गये।

रास–रस–प्रवाह

मैं उनकी शय्याकी बगलसे चुपचाप उठा और वहाँसे पुनः पू. गुरुदेवकी कुटियाकी ओर बढ़ गया। ब्राह्मबेला हो चुकी थी। रात्रिभर सिसकते-सुबकते लोगोंको शीतल प्रभाती वायुने शान्त शयित कर दिया था। निद्रादेवी सारे दुःखोंका अवसान कर ही देती है। मैं पू.गुरुदेवकी कुटियाके दक्षिणमें स्थित कुएकी पक्की जगतपर जाकर लेट गया। मच्छरोंका प्रकोप तो अतिशय था ही, अतः एक मोटी चादर मैंने सिरतक तान ली थी। संभव है, किंचित् तन्द्रा आ गयी हो। मेरी तन्द्रा तब टूटी जब मेरे पूर्वाश्रमके मामा श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी अपनी मधुरतम स्वरलहरीमें आलाप लेते हुए वातावरणको परम रसमय बना रहे थे। पू.गुरुदेवने उन्हें संकेत किया था कि उनके काष्ठमौन लेनेके पश्चात् प्रतिदिन ही वे ब्राह्ममुहूर्त्तमें उनकी कुटीके दक्षिण दिशाकी पगदण्डीपर टहलते हुए उन्हें ब्रजभावका कोई एक पद गायनकर अवश्य सुना दिया करें। जबतक उनकी तनिक भी बहिर्वृत्ति रहेगी, वे उनका पद-गायन अवश्य सुनेंगे। इसी आदेशकी अनुपालना करते हुए श्रीगोस्वामीजी आज प्रथम दिवस गा रहे थे–

रासमण्डल रच्यौ रसिक हरि राधिका
तरनिजा तीर बानीर कुंजे।
फूले जहँ नीप नव बकुल कुल मालती
माधुरी मृदुल अलि पुंज गुंजे।।
सुमनके गुच्छ अलि सुच्छ चल बात बलि
तरु मनो चहुँ दिशि चँवर करहीं।
करत रव सारि सुक पिक सु नाना विहँग,
नचत केकी अधिक मनहिं हरहीं।।
त्रिगुन जहँ पवनकौ गवन नित ही रहत
बहत स्यामल तटनि चल तरंगा।
विविध फूले कमल कोक कल हंस कुल,
करत कल कुणित रव जल बिहंगा।।
हेम मंडल रचित खचित नाना रतन
मनहुँ भू करनकुण्डल बिराजे।
बंस बीनादि मुहचंग मिरदंग बर,
सबन मिलि मधुर धुनि एक बाजे।।
नचत रस मगन बृषभानुजा गिरिधरन
बदन छबि हेरि सुधि जात रति मदनकी।
मुकुटकी धरहरनि पीत पट फरहरनि
तत्त थेइ थेइ करनि हरनि सब कदनकी।।

मैं अपने पूर्वाश्रमके मामाजी – श्रीचिम्मनलालजीकी सुमधुरतम स्वरलहरीमें बह उठा था। मेरे सामनेका वह दुखभरा दृश्य-संसार किसी विलक्षण कल्पना-स्वप्नमें तिरोहित हो गया था। श्रीगोस्वामीजीकी कण्ठध्वनि इतनी सुरीली थी, कि मुझे ऐसा स्पष्ट अनुभव हो रहा था मानो उनके द्वारा किये जाने वाले इस महारास-स्तवनसे अपने आपको कृतार्थ करने गिराधिदेवी सरस्वती अपनी सभी सखी रागिनियों एवं स्वर-श्रुतियों सहित उनके कण्ठमें सुविराजित हो उठी हैं। उन्होंने स्वयं ही मानो अपने आपको कृतकृत्य करने अपनी समग्र स्वर-माधुरीसे श्रीगोस्वामीजीका कण्ठ सजा दिया हो।

इसमें सचमुच ही कोई आश्चर्यकी बात भी नहीं थी। गिराधिदेवीके अस्तित्वका साफल्य भी तो इसीमें था कि वे प्रिया-प्रियतमके गुणानुवादके श्रवण-गायनमें पूर्णतया तिरोहित ही हो जावें। और यह सौभाग्य उस देवीको

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी जैसे रसिक सन्त ही तो दे पाते ! श्रीगोस्वामीजीके पदगायनकी माधुरीने मेरा तो संसार ही दूसरा कर दिया था। मेरी आँखोंमें कलिन्दनन्दिनी यमुनाका कल-कल प्रवाह नाच उठा था। यमुनाके पावन तटपर कैसा मनोरम वानीर(बैंत)का कुंज है। श्रीगोस्वामीजीकी विशुद्ध सत्वमयी स्वरलहरीके माध्यमसे लीला महाशक्तिने मेरी आँखोंमें चिन्मय रासभूमि ही अवतरित कर दी थी, और मैं उनके पदगायनकी भावार्थ-अवधारणामें पूरा डूबता ही चला गया था।

"रसिक-शिरोमणि प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधव स्वयं अपने हाथों अभिनव सुन्दर रासमण्डलकी रचना कर रहे हैं। यद्यपि अलक्षितरूपसे सभी कार्य लीलामहाशक्ति योगमाया ही सम्पादित कर रही हैं, परन्तु प्रकटमें तो ऐसा ही दृष्टिगोचर हो रहा है, मानो रसिकमुकुटमणि द्वारा स्वयं अपने हाथों ही यह कार्य-संरचना संघटित हो रही है।"

"कुञ्ज तो वानीर(वेत्र)का है, परन्तु उसमें कदम्ब, मौलश्री, मालती आदि लताओंने कुंजकी आधार इन बेंतोंको ऐसी सुघड़तासे आच्छादित किया है, मानो वानीरमेंसे ही कदम्ब, मौलश्री और मालतीके असंख्य पुष्प स्फुटित हो उठे हों। इन पुष्पोंकी सुमधुरतम गन्धसे आकृष्ट भ्रमरोंके असंख्य दल चतुर्दिक् मन्द-मन्द मृदु गुञ्जार कर रहे हैं। सुगुम्फित बेतोंकी संरचना इस प्रकार कलापूर्ण रीतिसे हुई है कि मध्य-मध्यमें प्रस्फुटित रंग-बिरंगे पुष्प-गुच्छ रत्नमय झाड़-फानूसोंकी शोभाको भी तिरस्कृत कर दे रहे हैं। इन असंख्य अतिशय सुमधुर सुगुम्फित पुष्प-गुच्छोंको संस्पर्शित करता हुआ निर्मल गन्धवाही पवन इतना सुगन्धित एवं सुशीतल है कि उसका संस्पर्श ही प्रिया-प्रियतमको रसमत्त कर दे रहा है। इस सुशीतल स्वच्छ पवनके झौंकोंसे हिलते हरे-भरे वृक्ष ऐसे लग रहे हैं मानो अपने असंख्य करोंसे वृन्दावनदेव अपनी गोदमें विराजित प्रिया-प्रियतमपर चँवर डुला रहा हो। इन वृक्षोंकी सुकोमल टहनियोंपर शुक, सारिकायें, पिक एवं कपोत आदि अनेकों सुन्दर पक्षी कलरव कर रहे हैं।"

"देखो ! इस मयूरकी बलिहारी है कि उसने अपना कलात्मक नृत्य दिखाकर प्रिया-प्रियतमको रासनृत्य प्रारंभ करनेको समुत्सुक कर दिया है। अहा ! प्रियाको तो इस मयूरके अणु-अणुमें अपने प्रियतम ही भरे दृष्टिगोचर होते हैं और वे इसपर कैसी रीझ रही हैं !"

" जो त्रिविध समीर यहाँ सदैव संचरित रहता है, उसकी गति भी

इतनी मनोरम है कि वह श्यामलवर्णा यमुनाकी तरंगोंको अपने संस्पर्शसे मतवाला बनाकर चंचल एवं उत्तुंग कर देता है। इस वायुके अणु-अणुमें भरे उनके प्रियतम प्राणसुन्दर नीलमणि ही इन तरंगोंमें प्रतिलक्षित होते हैं, अतः वे तरंगें मतवाली हुई यमुनाके प्रस्फुटित असंख्य पद्मों, उत्पलों एवं इन्दीवरोंको उत्पाटित कर देती हैं और तब इन्हें अपने मनोरम अंकमें धारणकर अत्यन्त वेगसे इन्हें रासस्थलीकी ओर प्रवाहित कर देती हैं। इतना ही नहीं, इन लहरोंके द्वारा रासस्थलीमें सुविराजित प्रिया-प्रियतमके चरणोंमें इन असंख्य पद्मोंका इस प्रकार भावभरा समर्पण होता है, कि न तो इन लहरोंके वेगसे रासमण्डलका तनिक भी सौन्दर्य क्षत होता है, न ही उसका पावित्र्य; और न ही रासनृत्यरत प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंके रसप्रवाहमें किंचित्-सा भी विक्षेप घटित हो पाता है। इन असंख्य पद्मोंसे सज्जित रासमण्डलकी शोभा अनन्त गुनी अभिवर्धित हो उठती है। इनकी सुमधुरतम गन्ध उमग-उमगकर प्रिया-प्रियतमके आनन्दघन-रसोद्दीपनको उच्छलित करती जाती है।''

''इस रासस्थलीको यमुना महारानीने चतुर्दिक् इस प्रकार अपनी भुजाओंमें भर रखा है कि उसके तटवर्त्ती चक्रवाक, कलहंसादि असंख्य जलपक्षीगण प्रिया-प्रियतमके महारासनृत्यका अवलोकन करते हुए ध्यानरत, भाव-समाधिस्थ हो उठते हैं। प्रिया-प्रियतम-दर्शन-जन्य भावसमाधिसे वे जब-जब किंचित्-से बहिर्मुख होते हैं, अपनी मनोहर अति सरस काकलीसे उनका इस प्रकार गुण-गायन करते हैं, जिससे समग्र रासमण्डल ही मुखर, संगीतमय हो उठता है।''

''रासमण्डलकी गोलाकार अवनी एवं वेदी नाना प्रकारके अनमोल रत्नोंसे विजड़ित है और उसकी ऐसी दमक है, मानो वृन्दावन महाराजका शिरोभूषण किंवा रत्नकुण्डल झलमलकर जगमगा रहा हो।''

''प्रियतम प्राणसुन्दर रसिकशेखर नीलमणि ब्रजेन्द्रकिशोरकी बाँसुरी एवं ललितादिक सखियोंके द्वारा वादन की गयी वीणा, मुहचंग और मृदंग– ये सभी वाद्य मिलकर ऐसी सुमधुर स्वररचना कर रहे हैं कि वातावरण रसमुग्ध है। रासरसमें उन्मत्त प्रिया-प्रियतम ऐसा मनोहर नृत्य कर रहे हैं कि रति एवं काम उनका मुख-सौन्दर्यपानकर बेसुध हो रहे हैं। नृत्यरत प्रियतम श्यामसुन्दरके मुकुटके मयूरपिच्छके थरथराकर लहरानेसे एवं उनके पीताम्बरके फरहरानेसे, साथ ही सखियोंके मुखसे ताता-थेइ-थेइके उच्चारणसे जो मनोहर दृश्य-झाँकी

उभर रही है, वह त्रितापजन्य क्लेशोंका समूल नाश कर रही है।"

मेरे विचारोंने अचानक ही दूसरी करवट ले ली। वृत्ति गोस्वामीजीके पदगायनके रससे दूसरी ओर हट गयी। मैं सोचने लगा – मेरे पू. गुरुदेवने इसीलिये तो काष्ठमौन लिया कि उनके तपसे, भजनसे हमारी चित्तशुद्धि हो जाय और हमारी वृत्तियाँ इस सुमनोहर रासरसमें आसक्त हो जावें। नरसीभगतने अपनी पुत्री नानीबाईका माहेरा छप्पन करोड़ रुपयेका दिया परन्तु क्या उससे अंजार ग्राम रोग-शोक आदि आधिभौतिक; महामारी, बाढ़, भूकम्प आदि आधिदैविक; और काम-क्रोधादि आध्यात्मिक तापोंसे मुक्त हो गया ? यदि पू. गुरुदेव सिद्ध होकर इस गीतावाटिकामें स्वर्णवर्षा भी कर देते, तब भी इस स्वर्णवर्षासे हमलोग त्रितापसे मुक्त तो कदापि नहीं हो सकते थे।भगवान् श्रीकृष्णके अन्नप्राशन महोत्सवका दर्शन करने कुबेर ब्रजमें आये थे। मनमें आया कि मैं अपने स्वामी ब्रजेन्द्रनन्दनको आज क्या भेंट चढाऊँ ? कुबेरके पास मात्र अकूत प्राकृत स्वर्णभण्डार था। कुबेरने तीन मुहूर्त्ततक स्वर्णवृष्टि करके गोकुलको परिपूर्ण स्वर्णमय कर दिया था:

त्रिमुहूर्त्तं कुबेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा।
चकार स्वर्णवृष्ट्या च परिपूर्णं च गोकुले।।

(ब्रह्मवै.कृ.ख.अध्याय १३)

ब्रजके गोप इस स्वर्णवृष्टिसे चकित अवश्य हुए पर यह स्वर्णवृष्टि उनके आदरकी वस्तु तो नहीं ही बन सकी। कैसे बनती ? स्वर्ण उनमें लोभवृत्ति, कलह, दुःख भले ही उत्पन्न कर देता; स्वर्णसे उन्हें आनन्दघनविग्रह श्रीकृष्ण-प्रेमसुख तो मिल ही नहीं सकता था। इन ब्रजवासियोंके घर-घरमें तो सच्चिदानन्दकन्द, श्रीकृष्णचन्द्र ही लोभनीय वस्तु थे, वे तो उन्हें अपने हृदयसे सटाये, अंगोंमें लगाये ही रखते थे। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिं – सदैव ही यह कृष्ण-प्रीति-धन उनकी उत्कण्ठाको अभिवर्धित किये रखता था, नन्दरानीकी गोदसे ले-लेकर नन्दतनयका मुखचुम्बन ही जिनकी एकमात्र कृतार्थताका हेतु था, उन ब्रज-गोप-गोपांगनाओंके लिये तुच्छातितुच्छ स्वर्णराशिका मूल्य ही क्या था ? ऐश्वर्य-ज्ञान-विहीन विशुद्ध प्रेमके आस्वादनमें ये ब्रजगोप एवं गोपसुन्दरियाँ तन्मय थीं। उनके लिये तो श्रीकृष्णचन्द्र तत्वतः क्या हैं, इसके अनुसन्धानकी भी आवश्यकता नहीं थी। वस्तुतः वस्तुस्थिति अनुसन्धानकी अपेक्षा कहाँ रखती है ? वह तो जो है, वह रहेगी ही। ब्रजेन्द्रनन्दन ही सर्वभूतकी आत्माके

आत्मा थे; प्रियोंके प्रियतम थे; इनके लिये ही सबको अपने देहादि भी प्रिय थे। इनसे प्रेम करनेमें ही जीवनकी समग्र सार्थकता थी। ऐसे उन स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दनको पाकर उनके प्रति अपना मन-प्राण न्यौछावर कर देनेवाले ब्रजपुरवासियोंके लिये कुबेरका वैभव अत्यन्त उपेक्षणीय ही तो था।

मैं सोच रहा था कि पू.गुरुदेवका काष्ठमौन हमें यही शिक्षा देनेके लिये उनका अप्रतिम साधन है। पू.गुरुदेवने मात्र मौखिक उपदेश न देकर अपने जीवनका आदर्श उदाहरण हम सबके सम्मुख रक्खा है। वे मात्र मुखसे न बोलकर अपने जीवनकी रहनीसे बोले हैं। आज उनका आदर्श आचरण कह रहा है – जिस प्रकार वे श्रीकृष्णको देखनेके सिवा कुछ नहीं देख रहे; श्रीकृष्णसे बोलनेके सिवा किसी अन्यसे नहीं बोल रहे; जैसे उनके श्वास-प्रश्वास, मन-प्राणका संकल्प मात्र श्रीकृष्ण हैं, जैसे उन्हें श्रीकृष्ण-स्मृतिकी प्रगाढ़तामें अपनी देहका भी कोई अनुसन्धान नहीं रहता, वैसे ही हमारा मन भी अपने राधाबाबाकी जीवन-रहनी देखकर कहीं कुछ तो विषयलोलुपताका त्याग करे ! त्रिताप-दग्ध, दुःखालय इस देहाध्यासको कुछ अंशमें तो त्याग करनेकी ओर हम भी कदम बढा सकें !

परन्तु हा हतभाग्य ! हमने न तो पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी प्रत्यक्ष भगवद्रस-निमज्जित जीवन-रहनीसे कुछ सीखा, न ही श्रीपोद्दार महाप्रभुके आदर्श सिद्ध जीवनसे ही कुछ सरोकार रक्खा। श्रीपोद्दार महाराज भी यावज्जीवन प्रियाप्रियतमके चिन्मय रसमें पूर्णतया निमज्जित रहकर, वर्षों अपनी भावसमाधिका प्रत्यक्ष दर्शन हमें कराते रहे, फिर भी हम तो "हाय विषय, हाय विषय" की ही आसुरी रट लगाये रहे। हमारे लिये विषयरस ही सर्वोपरि रहा। इन गुरु-शिष्य – दोनोंका जीवन नगाड़ेकी चोट कहता रहा–

'पता नहीं कुछ रात दिवसका पता नहीं कब संध्या-भोर।
जाग्रत्-स्वप्न दिखायी देता श्याम सदा मेरा चितचोर ।।"

परन्तु हमने तो श्वान-शूकरोंकी तरह 'विषय-वमन'का स्वाद ही सर्वोपरि जाना। उनकी आत्मीयताका दम्भ भरनेवाले उनके निज जन – हमें घोर धिक्कार ! हम आजतक आपाततः इसी कीचमें लिप्त हैं। एक पल भी अहंकार, अभिमान, धनलिप्सा, विषयसुख, शरीरभोग हमारा पिण्ड नहीं छोड़ते। हमारी आसुरी माँग आज भी यही है, जो हमें निरन्तर भगवद्रस-विमुखकर जग-जंजालमें भटका रही है। मैं इन्हीं विचारोंमें कुछ पल भटकता रहा।

सहसा अन्तर्यामी प्रभुकी कृपाने मुझे सचेत किया। "मूर्ख ! किस बहिर्मुखी चिन्तनधारामें बहक गया है; अमृतको किनारेकर विषप्रवाहमें डूब रहा है !" किसी कृपालुने भीतरसे सचेतन किया। अन्तरात्माकी यह ध्वनि मुझे बरबस उस भटकावसे श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी सरस 'महारास-अर्चना'में पुनः धकेल गयी। मैं अब सचेत हुआ सुन रहा था। श्रीगोस्वामीजी आलाप भर रहे थे–

दसनि दमकनि हँसनि लसनि अँग-अंगकर
अधर बर अरुन लखि उपमा को है !
दृग जलज चलनि ढिंग कुटिल अलकनि झुलनि
मनहुँ अलि कुलनकी पाँति सोहै ।।६।।

मेरा चित्त पू.गोस्वामीजीके रसभरे गायनकी भावार्थ-अवधारणा कर रहा था–

"ओह ! प्रिया-प्रियतम रासेश्वर-रासेश्वरीका सुमन्द हास्य, उस हास्यसे प्रकट उनकी शुभ्र कुन्द-दन्तछटा, उन दोनोंके सुघड़ अंगोंकी शोभा, अधरोंकी लालिमा, कपोलोंमें दमकती श्यामलताके मध्य छलकती अरुणायी कैसी निरुपम है ! इस सरस सौन्दर्यकी तुलना त्रिलोकीमें कहीं किसीसे भी नहीं की जा सकती। प्रिया-प्रियतमके कुञ्चित केशोंकी लटें उनके स्कन्धदेशमें ऐसी झूल रही हैं मानो भ्रमरोंकी पंक्तियाँ किन्हीं विशाल दो नील एवं रक्त पद्मकोशोंपर आसीन हों और साथ ही उनके खंजन पक्षी-से चंचल नेत्र पद्मदलोंकी लालिमाको भी तिरस्कृत कर रहे हैं।

लाग अरु डाट पुनि उरप उरमेइ तिरप
एक इक सखी गति लेत भारी।
करत मिलि गान अति तान बंधान सौं
परस्पर रीझि कहैं वार्यौं वारी ।।७।।

"प्रिया-प्रियतम दोनोंमें परस्पर नृत्य-स्पर्द्धा हो रही है; फिर इस परस्पर दोनोंकी स्पर्द्धामें सखियाँ भी रासेश्वर प्राणवल्लभको पराजित करनेका संकल्पकर प्रियाके पक्षमें नृत्य प्रस्तुत करनेको समुत्सुक हो उठती हैं। इनकी प्रतिस्पर्द्धा इतनी कलात्मक हो रही है कि उरप-तिरप-उरमेइ आदि एक-एक नृत्यगति अतिशय कुशलतासे ये दोनों एक दूसरेसे बढ़कर प्रस्तुत कर रहे हैं। इस

विलक्षण नृत्य-कौशलके साथ-साथ भिन्न-भिन्न बन्दिशोंमें बन्धान प्रस्तुत करतीं, सखियाँ भिन्न-भिन्न सप्तकोंमें ऐसी सुमधुर तान लेती हैं, कि सभीको बरबस एक-दूसरेपर "बलिहार, बलिहारी जाऊँ" इन शब्दोंका उच्चारण करना पड़ रहा है।

चारु उर हार वर रतन कुंडल ललित
हीर वर वीर स्रवननि सुहाई।
नील पट पीत तन गौर स्यामल मनौ
परस्पर घन दामिनि दुराई।।८।।

प्रिया बृषभानुजाके उभरे उरोजोंपर नीलमणि रत्नोंका मनोज्ञ हार शोभित है और उनके कानोंमें कर्णभूषण, जो श्रेष्ठ वज्रमणियोंसे निर्मित हैं, दमक रहे हैं। प्रियाके गौर वर्ण अंगोंपर सुनील परिधान एवं प्रियतम श्यामसुन्दरके सुमनोज्ञ कृष्ण वपुपर पीत परिधान इस प्रकार शोभासम्पन्न है, मानो नव-नील-घन वारिदने अपने अंकमें विद्युल्लताको और विद्युल्लताने अपने समालिंगनमें वारिदमालाको भर रखा हो।

सखी चहुँ दिसि बनी कनक चम्पकतनी
चन्दवदनी एक एकतें आगरी।
नचत मंडल किये चित्त दुहुँ तन दिये
भूलि गइ सकल अप अपनि सुधि नागरी।।९।।

"कनकसुन्दरी प्रिया बृषभानुनन्दिनी एवं नवघनसुन्दर प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनको चतुर्दिक् चम्पाके पुष्प-जैसी सुन्दर शोभावाली सखियाँ घेरे हुए हैं और मण्डलाकार नृत्य कर रही हैं। इन सबका चित्त युगल प्रिया-प्रियतमके प्रेममें इतना डूबा है कि वे अपने-अपने आपेकी भी सुधि भूल बैठी हैं।

रमत इहि भाँति नित रसिक सिरमौर दोउ
संग ललितादि लिये सुघरि सुन्दरि अली।
मनरि॒ बृन्दावन बसहुँ जीवनधना
ब्रजराजसूनु बृषभानुजूकी लली ।।१०।।

"रसिक-शिरोभूषण इन युगल प्रेमी-प्रेमास्पद राधामाधवका उपरोक्त प्रकारसे नित्य ही रासबिहार होता रहता है। इनके संग जो ललितादिक सखियाँ रहती हैं वे सब समग्र कलाओंमें सुघड़ और अपार सुन्दरियाँ हैं। श्रीबृन्दावनदेवजी महाराजकी यही आन्तरिक अभिलाषा है कि ब्रजराजतनय

श्रीकृष्ण एवं बृषभानुनन्दिनी श्रीराधा मेरे हृदयमें धन-वैभवकी भाँति बसी रहें।"

सन्तहृदय श्रीगोस्वामीजी महाराजकी सुमधुर विशुद्ध सत्त्वमयी स्वर-बन्दिशमें गायी इस रासगीतिका रूप प्रिया-प्रियतमके प्रेमिल स्तवनका ज्यों ही विराम हुआ, मुझे यही अनुभव हो रहा था मानो उनके कण्ठस्वरके अणु-अणुसे प्रसरित माधुर्यभरे रासरसके निराविल उमड़ते प्रवाहमें अवगाहनकर समग्र वाटिका क्षेत्र ही जैसे मंगलमय, परम आनन्दमय हो उठा है। मैं सोच रहा था– 'अहा कैसा अगाध है यह रासरस, तभी न मेरे गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी सभी इन्द्रियाँ इसमें अवगाहनकर, इसकी थाह पानेकी सर्वथा आशा छोड़, अतल तलमें ही डूबी, स्थिर शान्त हो गयी हैं। काष्ठमौनके रूपमें उन्होंने बहिर्मुखी प्रकृतितटको संस्पर्श नहीं करनेका मानो हठ ही कर लिया है।

बाबा ! हमें इस रास–रसको कैसे चखाओगे ?

अब भले ही हम चिल्लाते रहें–"बाबा ! हमारे गुरुदेव !! हम तो इस त्रिताप-तप्त विश्वमें भीषण विषय-विषकी ज्वालासे आपातत बाहर-भीतर सर्व ओरसे भस्म हो रहे हैं। अब बताओ तो सही, हमारे निस्तारका अन्ततः उपाय ही क्या है ? तुम हमें कैसे अमृत-जीवनरूप इस नित्यरासका रस चखाओगे ?"

मेरा प्रश्न गीतावाटिकाके अन्तरिक्षमें आज भी अनुत्तरित ज्यों-का-त्यों घुमड़ रहा है। परन्तु न जाने कौन अति भीतरसे विश्वासकी एक रश्मि जगाता हुआ अति मधुर स्वरमें कहता है। कहनेवाला अन्य हो ही कौन सकता है ? श्रीराधाबाबा – मेरे पू.गुरुदेव ही मेरी करुण पुकारका प्रत्युत्तर देते हैं – "देख बचुआ ! मैं राधाबाबा, तेरा माता-पिता-गुरु-सखा- सर्वस्व, तेरी आत्मा, परमात्मा, तेरा ब्रह्म, तेरा भगवान्, तेरे इस विषय-विष-ज्वरकी अमोघ औषधि करनेमें बड़ा ही निपुण वैद्य हूँ। सर्वथा चिन्ता मत कर । बस, मेरी आशाकी डोरसे बँधे रहकर मुझे पुकारते रहना। मेरे संग पोद्दार महाप्रभु-जैसे महासिद्ध सन्तका संबल है और गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी-जैसे समर्पित विश्वस्त अनुचरका सहयोग है। घबड़ा मत, निश्चिन्त रह। यदि तू और ये सभी तेरे-जैसे मेरे पीछे बँधे हुए जीव घोर कराल विषय-विषका पानकर निष्प्राण भी हो जावेंगे, तब भी मैं अपनी विशुद्ध प्रेमौषधिके घ्राणमात्रसे इन सबको और तुझको भी मधुपानका

सुख अनुभव करनेवाले व्यक्तियोंकी ही तरहका परम अमृत एवं विशुद्ध ब्रज-जीवनका दान कर दूँगा। निश्चिन्त रह, मंगल, महामंगल, पूर्ण मंगल, निश्चय ही मंगल-प्रभात उदय होगा ही। मेरे सम्मुख न कोई पापी है, न पाप ही है। मेरे सम्मुख यह त्रिताप भरा विश्व भी शशश्रृंगकी तरह न कभी था, न है, न ही होगा। मेरे सम्मुख तो परम सत्य, सत्यका सत्य या तो स्वयं मैं हूँ, या मेरे प्रियतम प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण हैं। उन श्रीकृष्ण – मेरे प्रियतम-दृश्यको, निरन्तर विशुद्ध प्रेमरसपान कराना ही मेरा जीवन है। जब मेरे सम्मुख तुम सभी कभी क्षणके छोटे-से भाग – लवमात्रके लिये भी श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं होते, श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण बने, मेरा रसपान करते रहते हो तो फिर तुम्हारा यह मिथ्या जीवपनेका अज्ञानाध्यास कबतक टिका रहेगा ? मेरा विशुद्ध प्रेम यद्यपि निरीह अवश्य है, उसमें कोई प्राकृत जड़बल नहीं है, जो तुम्हारे भीतर जोर-जबर्दस्तीकर प्रवेश पा सके; परन्तु एक दिवस अवश्य मेरे प्रियतम श्रीकृष्णका प्रेमाकर्षण तुम्हें हठात् अपनी ओर उन्मुख कर ही लेगा, और तुम सभी बिना किसी भेदभावके हेतुरहित कृपाकी धारामें निश्चय ही प्रवाहित हो उठोगे। "

लोहेके पेड़ हरे होंगे, तू गीत प्रीतिके गाता जा

दूसरा अध्याय

भक्तराज नरसीको उनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रिया-प्रियतम राधामाधवके चिन्मयधाम गोलोकमें महारास-दर्शनार्थ ले गये थे। भगवान् शंकर स्वयं तो वहाँ शंकरी सखि बनकर सखीभावसे प्रिया-प्रियतम राधामाधवकी नृत्य-गायन-सेवामें जुट गये एवं नरसी एक किंकरी बने रासमण्डलके सौन्दर्य-दर्शनमें ही मुग्ध हो गये। सहसा एक प्रकाश-व्यवस्था करनेवाली संयोजिकाकी उनपर दृष्टि पड़ गयी। उसने उन्हें कोई नवागन्तुका कृपापात्रा समझ प्रकाश-सेवा सौंप दी। अब तो नरसी भगत दासी रूपमें एक तेजोमय, स्वयंप्रकाश, दैदीप्यमान मशाल लिये निशापर्यन्त महारास-दर्शन करते रहे।

रास-दर्शन करते-करते भक्तराज नरसीको ऐसी प्रगाढ़ भाव-समाधि लगी कि उन्हें देह-सुधि ही नहीं रही। वे अपने हाथमें जो मशाल लिये थे, वह जलती-जलती उनके समूचे हाथको ही जला गयी। हाथ जलता रहा किन्तु

नरसी भगत महारास-दर्शनमें इतने तन्मय थे कि उन्हें न अपने हाथके जलनेकी सुधि थी, न अपने अस्तित्वकी ही। अन्ततः उनकी प्रेम-दशापर प्रिया-प्रियतम तो रीझे ही। रास-नृत्य स्थगित हो गया। प्रिया-प्रियतम एवं सखियाँ भक्तराज नरसीको घेरकर खड़े थे। फिर भी नरसीके भाव-दृश्यरूपमें तो प्रिया-प्रियतम उसकी आँखोंके सम्मुख वैसे ही अति मनोहर नृत्य कर रहे थे। अन्ततः प्रिया श्रीराधाकिशोरीने नरसीको प्रकृतिस्थ करनेकी ठानी। प्रिया इतनी प्रेम-द्रवित हो उठी थीं कि उन्होंने श्रीनरसीको अपना पावन संस्पर्श-दानकर जल जानेकी उसकी समस्त पीडा हर ली। श्रीनरसीभगत सदा-सदाके लिये अपने साँवरे सेठ एवं सेठानी श्रीराधारानीका दर्शन एवं प्रेम प्राप्तकर कृतकृत्य हो गये। कहते हैं— लौकिक जगतमें पूरे सात दिन-रातके पश्चात् भक्त नरसीको बाह्यावेश हुआ था।

ऐसी ही दशा मेरे पू.गुरुदेवकी काष्ठमौन लेनेके ठीक दूसरे ही दिवस हो गयी थी। दूसरे दिवस प्रातः कार्त्तिक कृष्ण प्रतिपदाके ब्राह्म मुहूर्तमें गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी द्वारा गायी गयी श्रीचाचा बृन्दावनदासजी-रचित पदकी चिन्मय महारास-भावकी अनुभूतिपूर्ण शब्दावलीने जैसे ही पू. गुरुदेवके श्रवणरन्ध्रोंमें प्रवेश किया, मध्य-रात्रिमें रासदर्शनमें डूबकर मौनी होनेकी उनकी प्रक्रियामें एक महान् उद्दीपन संघटित हो गया। यह उद्दीपन इतना सरस भावोच्छलन करनेवाला था कि अनवरत छः घण्टेतक उन्हें कोई बाह्य होश नहीं हो पाया।

नियमतः पू.गुरुदेवको प्रातः छः बजे शौचके लिये अपनी शय्या छोड़ देनी चाहिये थी; किन्तु उनके सेवक श्रीराधेश्याम 'भगतजी'के कथनानुसार पू. गुरुदेव निशापर्यन्त कोई एकाध घण्टे ही लेटे थे, शेष सभी समय सिद्धासनमें समाधिस्थ बैठे-बैठे ही उनकी रात्रि व्यतीत हुई थी। जब दूसरे दिवस प्रातः दस बजेतक भी उनमें कहीं कोई हलन-चलनकी चेष्टा दृष्टिगोचर नहीं हुई, तो श्रीभगतजी पू.पोद्दार महाप्रभुको सूचित करने गये। पू.पोद्दार महाप्रभुको तो विगत मध्यरात्रिसे ही पू.गुरुदेवकी इस संभावित स्थितिका अनुमान था। उन्होंने विगत रात्रि ही श्रीभगतजीको आदेश दे दिया था कि गुरुदेव यदि भाव-समाधिमें देह-ज्ञानरहित हों तो उन्हें न तो कोई (श्रीपोद्दार महाराजके अतिरिक्त) व्यक्ति संस्पर्श करे, न ही उन्हें जगानेकी चेष्टा की जाय। उनकी कुटीके पच्चीस गजकी परिधिमें कोई व्यक्ति तनिक भी उच्च स्वरसे न तो बोले, न परस्पर ही किसीको पुकारकर आवाज दे। यदि इस प्रकारका कोई भी विक्षेप हो, तो उन्हें

तत्क्षण ही सूचित किया जाय।

बाबा ! आप स्वामी चक्रधरजी शरीर हैं

दूसरे दिवस जब दस बजेकी परिधि बीत गयी, मध्याह्न काल होनेको आया और पू.गुरुदेव शौच क्रियाके लिये भी नहीं उठे तो श्रीभगतजी द्वारा श्रीपोद्दार महाराजको सूचित किया गया। श्रीपोद्दार महाराज स्वयं मन्दज्वरसे पीड़ित होते हुए भी आये, और पू.गुरुदेवके कर्णविवरोंमें जोर-जोरसे निम्न शब्द उच्चारित करने लगे–"बाबा ! आप स्वामी चक्रधरजी संन्यासी शरीर हैं; आपको शौच-स्नानकी क्रिया करने उठना है।" इस शब्दावलीको बार-बार उच्चारण करनेपर कुछ काल पश्चात् पू.गुरुदेवकी श्वासक्रिया जो अतिशय मन्द संचरित हो रही थी, सामान्य दीर्घ होने लगी। उनमें चेतना और जाग्रतिके चिह्न शनैः-शनैः प्रकट होते देख पू.पोद्दार महाराज आश्वस्त हुए-से उनकी कुटियाके बाहर आ गये। श्रीपोद्दार महाराजके साथ-साथ श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल भी आये थे, वे पू.गुरुदेवकी कुटीके बाहर ही श्रीपोद्दार महाराजकी हाथकी बेतकी छड़ी लेकर खड़े थे। मैं भी उनके पास ही था। मैं विचार कर रहा था – पू.गुरुदेवकी मनोभूमि और हमारी विषयमत्त बुद्धिमें कितना अन्तर है ? हमें बार-बार संकल्प करानेपर कि हम यह मलिन शरीर नहीं हैं, एक क्षण भी शरीराध्यास पिण्ड नहीं छोड़ता और कहाँ पू. गुरुदेव, कि श्रीपोद्दार महाराजको अवश उनके शरीर-रक्षार्थ उन्हें देहाध्यास करानेकी चेष्टा करनी पड़ रही है।

श्रीपोद्दार महाराजके शरीरके अंग-अंगमें उनके ज्वरग्रस्त रहनेकी पूर्ण थकावट परिलक्षित हो रही थी। वे श्रीकृष्णचन्द्रजीको सम्बोधित करते कह रहे थे–" भैया ! भगवान् श्रीकृष्ण इतने ऐश्वर्यसम्पन्न हैं कि उनके एक लोमकूपमें, जो उनके समग्र विग्रहका एक लघुतम अंश है, असंख्य ब्रह्माण्ड धूलिकणोंकी भाँति प्रकट और विलय होते रहते हैं। जहाँ उनका ऐश्वर्य इतना अपरिसीम है, वहाँ उनके सौन्दर्यकी भी कल्पना करो, कितना अनन्त होगा ? उन अनन्तका तो सब-कुछ अनन्त ही है। वे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जब किसी महाभाग्यवान्के अन्तःकरणको अपनी रासलीलाका धाम बना लें, फिर भला वह कैसे सचेत एवं संवरित रह सकता है ? और जब राधाबाबा-जैसे किसी अचिन्त्य महाभाग्यवान्के

हृदयमें अशेष सौन्दर्य-माधुर्य-सीमा श्रीकृष्णके साथ-ही-साथ श्रीराधारानी एवं गोपांगनाओंका भी प्रादुर्भाव हो उठे, उनके प्राकृत शरीरका तो तत्क्षण ही पात हो जानेकी संभावना हो उठती है।"

"यह तो श्रीराधाबाबाके शरीरसे विश्वप्रकृतिमें भगवान् श्रीराधामाधवको अपने वैदग्ध्य, अनुराग, वात्सल्य, कृपा, लावण्य, सौन्दर्य और माधुर्य (केलिरस)की उर्मियाँ प्रवाहित करनी हैं, विश्वब्रह्माण्डमें इन विशुद्ध रसोंका इस समय एक प्रकारसे सर्वथा अभाव ही हो गया है और इन विशुद्ध निर्मल भावोंके स्थानपर पतनकारी विरस (विपरीत भावों), कुरस (कुत्सित भावों) एवं अरस (भावहीनता)का सर्वत्र बाहुल्य हो उठा है। इसी विशुद्ध चिन्मय भागवती प्रयोजनको लेकर भगवान् श्रीराधामाधव श्रीराधाबाबाके पाञ्चभौतिक कलेवरको अपनी विशेष कृपाशक्तिसे संजीवित किये हैं, अन्यथा समस्त कृष्णकान्ताओंकी शिरोमणि भगवती ह्लादिनीशक्ति स्वयं श्रीराधारानी जो अपने चित्र-विचित्र भाव-तरंगरूप अनन्त सुख-समुद्रमें स्वयं श्रीकृष्णको बेसुध करनेमें समर्थ हैं – जिस किसी भी भाग्यवान्के प्राकृत दृश्यमें आ जावें उनकी अविद्यामयी प्राकृत देहका बने रहना पूर्णतया असंभव ही मानना चाहिये।"

"भैया ! यह भगवान्के असमोर्ध्व कृपाप्रवाहकी एक चमत्कारिक घटना ही समझनी चाहिये कि श्रीराधाबाबा प्राकृत देहको पकड़ लेते हैं, अन्यथा यदि कोई भगवान् श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीकी एक क्षीण-सी झलक स्वप्नमें भी प्राप्त कर ले, तो या तो उसका निश्चय ही मस्तिष्क विकृत हो जायगा या उसका देहपात हो जायगा। राधाबाबाकी तो इतनी उच्च स्थिति हैं, कि भगवान् क्षणभर भी इनके हृदयसे नहीं हटते। श्रीराधाबाबा द्वारा भगवान्को अपने विशुद्ध माधुर्य-रसकी उर्मियाँ प्रवाहित करनी हैं, अतः अपने भक्तोंको बहुत संवरित, गोपनीय रखनेमें समर्थ होनेपर भी इस वस्तुस्थितिका कुछ परिणाम तो उनके प्राकृत शरीरमें परिलक्षित होगा ही । उनकी विचित्र भावदशा अब पद-पदपर देखनेमें आवेगी ही। अतः वे बहिर्मुखी नासमझ लोगोंके उपहासपात्र न बन जावें, अतः उनकी कुटियाके चारों ओर ऊँची घेराबन्दी करके बाड़ा बना ही देना चाहिये। यह ध्यानमें रहे कि दीवालसे उनकी कुटियामें वायुप्रवाह अवरुद्ध नहीं हो।"

श्रीपोद्दार महाराज भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीको यह सब निर्देश देते पू. गुरुदेवकी कुटियाके पश्चिम दिशाके मार्गकी ओरसे अपने निवासकी ओर जा रहे थे। मैं इन दोनोंके पीछे-पीछेसे ही उनकी बातें सुनता हुआ चल रहा था।

श्रीपोद्दार महाराजको उनके कमरेतक पहुँचाकर मैं पुनः पू.गुरुदेवकी कुटीकी ओर आ गया।

जैसे ही मैं पू.गुरुदेवकी कुटीकी ओर पहुँचा, मैंने देखा पू. गुरुदेव कुटीसे दक्षिण दिशामें स्थित शौचालयोंकी ओर बढ़ रहे हैं। पू.गुरुदेवकी चाल अत्यन्त झूमती, डगमगी थी। उनके नेत्र नीचे भूमिमें झुके थे। उनकी देह-दशा स्पष्ट उद्घोष कर रही थी कि वे श्रीराधा-माधवके माधुर्य (केलि-विलास-विन्यास)की उद्दाम उर्मियोंमें आलोड़ित पूर्णतया रसमत्त प्राणीकी तरह हो रहे हैं। वे चलते-चलते ठिठक जा रहे थे। श्रीभगतजी उनके साथ-साथ उनका अनुगमन करते पीछे चल रहे थे। जैसे ही वे अचानक ठिठककर खड़े होते, उनके रोम-रोममें एक विलक्षण प्रकम्प उदित होता था। क्योंकि उनके समग्र अंग वस्त्रावृत थे, अतः वह प्रकम्प ध्यानसे देखनेपर ही परिलक्षित हो पाता था। प्रेमावेशके चिन्‍रूपमें प्रस्वेदकण उनके भालपर, कपोलोंपर, चिबुकपर झलमला रहे थे। उनका बाह्य-ज्ञान लुप्त-प्राय था, परन्तु अन्तश्चेतनामें निहित संस्कारवश ही कि उन्हें शौचस्नान करना है, वे डगमग अपने चरणोंको शौचालयकी ओर पुरःसर कर रहे थे। इस प्रकार पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी काष्ठमौनी छविका दर्शन करता हुआ, मैं अपनेको निहाल अनुभव कर रहा था।

पू.गुरुदेव जब शौचालयमें प्रविष्ट हो गये, मैं बाहर ही कुछ दूरीपर बैठकर विचारोंमें डूबता गया –

विगत अनेक वर्षोंसे मध्यरात्रिमें तीन बजेसे प्रातः छः बजेतक मैं पू. गुरुदेवको ब्रजरसके पद-गायन सुनाया करता था। यह मेरा पू.गुरुदेवको पद सुनानेका क्रम उनके काष्ठमौन लेनेके एक माह पूर्वतक अनवरत चलता रहा था। हाँ, पू.गुरुदेव जब तीर्थयात्रामें प्रवासमें चले गये थे, तब यह क्रम अवश्य स्थगित हो गया था। पू.गुरुदेव मेरा पद-गायन प्रातः छःबजेतक अपनी कुटीमेंसे ही सुनते रहते थे और मैं तानपूरेमें स्वर देकर पद-गायन सुनाता रहता था। प्रातः छः बजे वे शयनकुटीसे बाहर आकर मेरा झंकृत तानपूरा उसके तारोंपर अपनी अँगुलियाँ रखकर बन्द कर देते थे। उनकी इस क्रियासे ही मेरा संगीत रुकता था। उसके पश्चात् वे शौचके निमित्त चले जाते थे और मैं भी प्रातःकृत्य सम्पन्न करने अपने घर चला जाता था।

पू. गुरुदेव शौच जाकर कुछ काल अपनी कुटीके पश्चिम पथपर दृष्टि जमाये खड़े रहते थे। श्रीपोद्दार महाराज इसी समय अपने निवाससे आकर

इसी पथसे शौचालय जाते थे। अतः पू.गुरुदेवको अपनी कुटियासे ही उनके प्रतिदिन प्रातः ही दर्शन हो जाया करते थे। पू.गुरुदेवकी यह अमोघ निष्ठा थी कि श्रीपोद्दार महाराजका शरीर प्रत्यक्ष भगवत्सान्निध्य प्राप्त करते-करते चिन्मय, सचल बृन्दावन ही हो गया है। अतः वे आठ प्रहर (चौबीस घण्टों)में एक बार उनका दर्शन अवश्य कर लेते थे। इस प्रकार उनकी बृन्दावन छोड़कर अन्यत्र कहीं भी निवास नहीं करनेकी निष्ठा पूरी हो जाती थी।

एक दिनकी घटना है – उस दिवस मुझे पद-गायनमें इतना रस आया कि पू.गुरुदेव शौच जाकर लौट आये, श्रीपोद्दार महाराजके भी दर्शन उन्होंने कर लिये, परन्तु मैंने उन्हें अपना पद-गायन सुनाना स्थगित नहीं किया। मुझे पदगायनमें झूमता, निमीलित-नेत्र देखकर उन्होंने भी प्रतिदिनकी तरह मेरा तानपूरा (वाद्यतारोंपर) हाथ रखकर बन्द नहीं किया और चुपचाप शौच चले गये। उन्होंने श्रीपोद्दार महाराजके भी दर्शन कर लिये और इसके पश्चात् भी लगभग आधे घण्टे खड़े-खड़े वे मेरा संकीर्तन सुनते रहे।

मेरे नेत्र जब खुले, तो उन्हें अति सरस मुद्रामें खड़े-खड़े मेरा संकीर्त्तन श्रवण करते देखकर मैं भाव-विह्वल हो उठा। मैंने अपना तानपूरा एक किनारे रक्खा और उनके पावन चरणोंसे लिपट गया। मेरा दुःख यही था कि मेरे जीवनमें विषय-वैराग्य क्यों नहीं उत्पन्न होता ? उन-जैसे परम रसमय सिद्ध सन्तका इतना स्नेह पाकर भी मन सूकर-कूकरकी तरह विषय-वमनमें ही क्यों लोलुप हो रहा है ? बकरेकी तरह अहंकार-प्रमत्त व्यक्ति ब्रजरसके पद क्या गावेगा ? मेरी इस अधम दशामें कब विरामचिह्न लगेगा ? कब मुझमें सच्ची साधु-रहनी अपनानेकी संकल्प-प्रवृत्ति जगेगी ?

मैं रोये जारहा था और पू.गुरुदेव अपनी अतिशय स्नेहपूरित दृष्टि मुझपर डाले मेरा चरणावनत सिर सहला रहे थे। मैंने देखा वे मौन होनेके कारण निकट ही रक्खी स्लेटपट्टीपर मेरे लिये कुछ सन्देश लिख रहे हैं। उनकी दृष्टि उस समय इतनी स्नेह-सनी थी कि आज चालीस वर्ष पश्चात् भी मैं उसकी पैनी सरसता भुला नहीं पाया हूँ। उन्होंने पट्टीपर मात्र दो पंक्तियाँ लिखी थीं–

लोहेके पेड़ हरे होंगे, तू गीत प्रीतिके गाता जा

मैंने ये पंक्ति पढ़ीं और विह्वल होकर पू.गुरुदेवके ममतासने अंकमें ढ़ूलक गया ।"

मेरे विचारोंमें वह घटना जीवन्तवत् तैर रही थी। अब तो पू.गुरुदेवका काष्ठमौन हो गया है। अब तो वे परिपूर्ण चिन्मय, प्रीति-छन्द ही बन गये हैं। उनके रोम-रोमसे मात्र प्रीति, विशुद्ध छलछलाती प्रीति ही प्रवाहित हो रही है। अब तो हम सभीका लोहे-जैसा कठोर, घन काला, सर्वथा जड़, विषयाभिभूत मन विशुद्ध सरस प्रीतिभावोंका संग्राहक हो सकेगा ? हमारे कठोर लौह-सदृश मनमें अब तो राधा-माधवकी सच्चिन्मय प्रीतिकी हरीतिमा लहलहा उठेगी ?

मैं इन विचारोंमें बह रहा था, सहसा मेरा ध्यान पू.गुरुदेवके शौचालयसे निर्गमनके कारण टूट गया। पू.गुरुदेव शौचालयसे बाहर आकर सीधे कूएपर जाकर हाथ मटियाने लगे। पर्याप्त मट्टीसे हाथ माँजकर उन्होंने स्नान किया और वैसी ही अत्यन्त गंभीर मुद्रामें वे पुनः अपनी कुटीमें ध्यानस्थ हुए बैठ गये।

मैं भी जाकर पू.गुरुदेवकी कुटीसे कुछ ही दूरीपर स्थित एक वृक्षके नीचे आसन लगाकर बैठ गया। श्रीभगतजी पू.गुरुदेवके वस्त्र धोनेमें लगे हैं।

मैं पुनः पू.गुरुदेवकी ही पुरानी कही वार्त्ताओंकी चिन्तनधारामें खोगया।

एक दिवस पू.गुरुदेव मुझसे कह रहे थे–'भैया ! ब्रजके अनुभूति-रसिक सन्तोंकी वाणियाँ जो तुम गायन करते हो, इन्हें साधारण तुकबन्दी कभी मत मानना। चाहे इनके छन्द अस्त-व्यस्त हों, इनमें शब्द भी तोड़-मरोड़कर प्रयोग किये गये हों, परन्तु इन्हें सत्य मानना। इनके शब्द-शब्दमें भावोदय करानेकी अद्भुत सामर्थ्य निहित है। ये सभी वाणियाँ मंत्रोंके समान शक्तिशाली हैं और किसीके भी ध्यानपथमें भगवच्छवि और भगवल्लीलाको अवतरित कर देनेकी इनमें विलक्षण शक्ति है। ब्रजभावके सर्वोच्च स्तरतक ले जानेके लिये इन्हें तुम ब्रजरसिकोंका विश्वको दिया हुआ वरदान ही मानना। इन वाणियोंका सहारा लिये बिना विशुद्ध ब्रजभावका किसीमें स्फोट हो जाय, यह असंभव ही है।'

मधुर, सुमधुर, मधुर उससे भी,
परम मधुर उससे भी और

इसी प्रसंगका पू.गुरुदेवने मुझे एक प्रत्यक्ष उदाहरण भी सुनाया। वे कह रहे थे कि बहुत वर्ष पूर्व जब श्रीपोद्दार महाराज रतनगढ़(चूरू, राजस्थान) ग्राममें रह रहे थे, वे सायंकालमें उनके साथ रेतके टीबोंमें घूमने और शौचक्रियाके निमित्त जाया करते थे। श्रीपोद्दार महाराज इस एकान्त निर्जन स्थानमें उन्हें अपने भगवद्दर्शनोंके बहुत ही गोपनीय और सरस प्रसंग सुनाया

करते थे।

एक दिवस वे दाना शौचक्रियासे निवृत्त हो सायं एक रेतके धोरेपर बैठे थे कि श्रीपोद्दार महाराज उनसे कोई ब्रजरस सम्बन्धी पद-गायन करनेका आग्रह करने लगे। पू.गुरुदेवने उन्हें निम्न पद गाकर सुनाना प्रारंभ कर दिया।

तुव मुख कमल नयन अलि मेरे।
पलक न लगत पलक बिनु देखे, अरबरात अति फिरत न फेरे।।
पान करत मकरन्द रूप रस, भूलि नहीं फिर इत-उत हेरे।
भगवत रसिक भये मतवारे, घूमत रहत छके मद तेरे।।

पद-गायनकी प्रथम पंक्ति सुनने मात्रसे ही श्रीपोद्दार महाराजमें भावोद्दीपन होने लगा। उनकी दशा विचित्र होने लगी। वे बहुत प्रयास करनेपर भी अपनेको संवरित नहीं रख सके। कुछ काल तो उनके देहमें एक विचित्र प्रकारका कम्पन होता रहा, इसके पश्चात् उनके नेत्रोंसे झर-झर अश्रु प्रवाहित होने लगे। कुछ ही कालमें वे भाव-समाधिमें स्थित होकर बाह्य होश सर्वथा ही खो बैठे। पू. गुरुदेवको चिन्ता होने लगी कि यदि यह भावसमाधि दीर्घकालिक हो गयी तो निशामें इन्हें हवेलीमें कैसे पहुँचाया जायगा। परन्तु भगवद्विधानवश श्रीपोद्दार महाराज लगभग एक-सवा घण्टे ही समाधिस्थ रहे एवं सन्ध्याके पूर्व ही बाह्य चेतनामें लौट आये।

श्रीपोद्दार महाराज पू.गुरुदेवको अपनी भाव-समाधिके कालका अनुभव सुनाते हुए कहने लगे कि 'बाबा ! आपकी मधुर स्वरलहरीमें श्रीभगवतरसिकजीके पदकी प्रथम पंक्तिके सुनने मात्रसे ही मैं किसी अभूतपूर्व विलक्षण लोकमें पहुँच गया और एक अति सुन्दर रमणी (गोपी) देहको प्राप्त हो गया। मुझ भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे अभूतपूर्व दर्शन हुए कि मैं वाणीसे उनके सौन्दर्यका कुछ भी वर्णन नहीं कर सकता।

यमुनाका किनारा था। बहुत ही सुन्दर कदम्ब वृक्ष था और उसके नीचे रत्नमय आलवालपर स्थित श्रीकृष्ण हाथमें बाँसुरी लिये मयूरासनमें विराजित थे। आसनमें खचित मयूरोंकी कलाकृतियाँ इतनी सजीव थीं कि उन्हें देखकर कोई कह ही नहीं सकता था कि वे मात्र रत्नमय जड़ मयूर हैं। मुझे तो मयूरासनमें विराजित श्रीकृष्ण ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो एक अभूतपूर्व शोभा-सम्पन्न पूर्ण विकसित आठ कमलोंका नील पद्म-गुच्छ ही मयूरासनासीन हो। बस, तत्क्षण ही मुझ गोपीके नेत्र अति मतवाले भ्रमर बने, इस अरविन्द-गुच्छकी रूप-मकरन्द-सुधाका पान करने हेतु उड़कर उसपर मँडराने लगे। इस नील

पद्मगुच्छ (श्रीकृष्ण)का मुख भी पंकजरूप ही था और इस पंकजरूप मुखमें पंकजरूप दो नेत्र विजड़ित थे। इसके सभी अंग मुझे एक-से-एक बढ़कर, सुन्दर सरोरुहोंके समान अभूतपूर्व मकरन्द-सुधास्रावी अनुभूत हो रहे थे। अब मेरे नेत्र भ्रमर बने इसके मुख-पंकजपर लुब्ध हो गये। इसका मुख-पंकज अथाह सुधारसका कलश था कि मैं उसके स्वादमें डूब जाता। वह मुझे पूर्णतया संतृप्त भी करता, परन्तु ज्यों-ज्यों मैं इसके मधुपानमें छकता, मेरी उत्कण्ठा सहस्र गुनी और बढ़ जाती। यह नील पद्म-आनन अनन्त रसकी खान था। मैं कभी अधरामृत-रसकुण्डमें डूबता, कभी कपोलोंकी शोभापर न्यौछावर होता, कभी इसके नेत्रोंकी मादक कटीली लवणता मुझे समाकृष्ट कर लेती, कभी इसकी भौहोंकी तीखी कटाक्ष-मारसे मैं घायल हुआ छटपटाने लगता। उत्कण्ठावश मेरी तृप्ति असीम अतृप्तिमें पर्यवसित हो जाती तथा मुझे चैन ही नहीं मिलता।

जब मेरे नेत्र-मधुपोंकी उत्कण्ठा इस आनन-कमलपर मँडराती-मँडराती असीम हो उठी तो वे मधुप उड़कर इस श्रीकृष्णरूपी नीलपद्मगुच्छके हस्तकमलोंकी शोभाकी ओर अग्रसर हो गये। ये नील युगल हस्तपद्म मेरे नेत्र-मधुपोंको प्रथम बार तो ऐसे शोभासम्पन्न लगे, मानो ये उन्हें पूर्णतया तृप्त ही कर देंगे। ये दोनों विकासोन्मुख अम्बुज-कोरक वस्तुतः इतने विलक्षण सुन्दर, इतने सुकोमल एवं पवित्र थे कि मेरे नेत्र-भ्रमर इन्हें स्पर्श करनेसे ही सकुचाने लगे। वे मात्र उनके ऊपर-ही-ऊपर मँडराते रहे; उन्हें स्पर्श करने, उनपर आसीन होने अथवा उनका मकरन्द-पान करनेका तो उनमें साहस ही नहीं हो रहा था। इनके ऊपर-ही-ऊपर मँडराते जब वे थक गये और इनकी उत्कण्ठा एवं पिपासा प्रबलतम हो उठी तो ये उडकर प्रियतम श्रीकृष्णकी परम सुन्दर नाभि-कमलपर जा बैठे। प्रियतम प्राणवल्लभकी नाभि इन्हें सौन्दर्य-सुधा-सिन्धु ही अनुभव हुई।

बाबा ! ये मेरे नेत्र-अलि नाभि-कमलके सुधारसमें पूरे भीग गये। इनके पंख जैसे मधुमें चिपक गये हों, अतः इनमें अब और उड़नेकी सामर्थ्य ही नहीं रही। मेरे नेत्र-मधुपोंको प्रियतम प्राणवल्लभ श्रीकृष्णकी नाभि बहिर्देशसे तो अविकसित अरुणाम्भोज-कोश-सी प्रतीत हुई, परन्तु इसपर आसीन होते ही उन्हें ऐसा लगा कि इस नाभिमें तो त्रिलोकीका समग्र सौन्दर्य-सिन्धु ही समाहित है, इसकी रस-सुधाकी गंभीरताकी संतुलना तो हो ही नहीं सकती। बाबा ! मेरे नेत्रोंकी उत्कण्ठा इस नाभि-सौन्दर्यने और भी बढ़ा दी। मेरे नेत्र वहाँसे भी पिपासातुर होकर ही बाहर आये। अब तो मेरे नेत्र-भ्रमरोंके पास बचे थे –

प्रियतम श्रीकृष्णके मात्र दो पद-पारिजात। सम्पूर्ण श्री, शोभा, सौन्दर्य एवं रसैश्वर्यके मूल उद्गम इन चरणोंने आजतक सभीको पूर्ण तृप्त ही किया है। इनका आश्रय लेनेवाला कहीं, कोई, कभी भी अतृप्त, असंतुष्ट लौटा हो, ऐसा इतिहास-पुराणोंमें तो कहीं उल्लेख नहीं ही मिलता। परन्तु महदाश्चर्य! बाबा! मेरे नेत्रोंका प्रीतिभाव ही ऐसा है कि वह मेरे नेत्रोंको सदा नित नव-नवायमान अभिवर्द्धनशील उत्कण्ठाग्रस्त ही रखता है। पूर्ण-परिपूर्ण रसैश्वर्य भी इन मेरे नेत्रोंके प्रीतिभावके सम्मुख निष्किञ्चन हो उठता है। मेरे नेत्र-भ्रमरोंका कहीं कोई दोष नहीं। उनकी प्रीति ही ऐसी असीम पिपासु है कि प्रियतमका सौन्दर्य-वैभव, रस-वैभव, माधुर्य-वैभव सब-कुछ उसके सम्मुख आते ही अल्प, तुच्छ हो उठता है।''

कालान्तरमें श्रीपोद्दार महाराजने इन्हीं भावोंको लेकर एक पद-रचना की थी; पाठकगण इसमें भी अवगाहन करें –

मधुर-सुमधुर,मधुर उससे भी, परम मधुर, उससे भी और –
मधुर-मधुरतम, नित्य-निरन्तर वर्द्धनशील मधुर सब ठौर।।
अङ्ग -अङ्ग माधुर्य-सुपूरित, मधुर अमृतमय पारावार।
अखिल विश्व-सौन्दर्य, मधुर माधुर्य सकलका मूलाधार।।
कनक-कमल-कमनीय कलेवर, सहज सौरभित मधुर अपार।
नेत्रद्वय, मुख, नाभि, पदद्वय, हस्तद्वय द्युति-सुषमागार।।
विविध वर्ण सौरभ विचित्र युत अष्ट कमल ये अति अभिराम।
यों विकसित नव-कमल मिलितसे, अनुपम शोभा हुई ललाम।।

(पद-रत्नाकर पद सं.१६९)

श्रीपोद्दार महाराज पू.गुरुदेवको कह रहे थे कि 'ब्रजरसिकोंने श्रीकृष्णकी अप्राकृत लीला, आप्राकृत सौन्दर्य, अप्राकृत माधूर्यको, जो सर्वथा सर्वांशमें वचनातीत है, अपने मन्त्रमय पदोंमें ऐसा बाँध दिया है कि कोई भी इस मंत्र-काव्यपर श्रद्धाकर इनका आश्रय ले-ले तो चाहे कितना ही पाप-परायण, घोर नास्तिक, सर्वथा विषयलोलुप, अनधिकारी ही हो इस पद-गायन रूप अमृतौषधिसे वह निश्चय ही, अपने ही आप, परमपूत, सर्वथा प्रीति-कृपाभाजन हो उठेगा। इन पदोंकी भावाभिव्यक्ति उसके मानसमें अपने ही आप अवश्यमेव अवतरित हो जायगी।'

मैं जैसे कोई स्वप्न देखकर जगा होऊँ – पू.गुरुदेव द्वारा अपने काष्ठमौनके पूर्व सुनाये ये प्रसंग मुझमें आज भी नवीन उत्साहका संचार कर

बैठते हैं।

मेरे चिन्तनमें पुनः व्यवधान आता है। पू.गुरुदेवको पानी पिलाने अ.सौ. बाई सावित्रीके साथ मैया आयी हैं। अ.सौ. बाई सावित्री मुझे उपालम्भ देती है कि मैं तीन दिवसोंसे गीतावाटिकामें ही क्यों रह-सो रहा हूँ, घर क्यों नहीं जाता हूँ। (उन दिनों मैं गृहस्थ था।) वह कहती है कि अब भी मैं घर नहीं गया, तो वह श्रीपोद्दार महाराजसे मेरी शिकायत करेगी। मैं चुपचाप निरीह नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगता हूँ।

आज भी इन प्रसंगोंको लिखते हुए मेरे नेत्र अश्रुसिक्त हो जाते हैं। चालीस वर्षोंकी पुरानी स्मृतियाँ अब भी ज्यों-की-त्यों जीवन्त हो रही हैं। आज तो मेरे अनेक घर छूट गये हैं। पहले गृहस्थका घर छूटा; पूर्वाश्रमके माता-पिता, नाना-नानी, फिर श्रीपोद्दार महाराज भी छोड़कर चले गये; श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी-जैसे समर्पणमूर्त्ति भगवक्त मामा छूटे, और देवोपमा मैया (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) भी चली ही गयीं। और अब तो पू.गुरुदेव भी लीलाप्राप्त हो गये हैं। किन्तु मैं तो लोहेका सूखा नीरस वृक्ष-सा वैसे ही खड़ा हूँ। शरीर बूढ़ा हो गया है, वासनायें ज्यों-की-त्यों असीम दावानलकी तरह जल रही हैं, जला रही हैं। पू.गुरुदेवकी वाणी कानोंमें आश्वासन देती है–

'लोहेके पेड़ हरे होंगे तू गीत प्रीतिके गाता जा।'

पता नहीं कब वह सुप्रभात होगा ? अभी तो पू.गुरुदेवका पावन ब्रजधाम गीतावाटिका भी उजाड़ है। वहाँ भी मणिकर्णिकाघाटका भूत-श्मशान ही जल रहा है। रसमय बृन्दावन तो कहीं दृष्टिगोचर ही नहीं होता। कब यह विषय-भोगासक्तिभरा देहेन्द्रिय-लोलुप भूत-श्मशान बुझेगा, इसका ताप मिटेगा ? शीतल बयार चलेगी, उजाड़ प्रदेशमें तब न हरियाली होगी ! कब रस-बयार आवेगी ? श्रीकृष्ण ही जानें। इतना अमोघ विश्वास है कि लोहेके पेड़ हरे होंगे अवश्य। मृत्युके अन्तिम क्षणमें ही भले श्रीकृष्ण कृपा करें। कृपा होगी तो अवश्य ही। उन्हें कृपा करनी तो अवश्य पड़ेगी। पू.गुरुदेवकी परम सत्य अमोघ वाणी जो है ! विश्वकी कोई भी शक्ति उन परम सत्य-के-सत्यको कैसे असत्य कर पावेगी ? किसमें सामर्थ्य है कि उनके अमोघ सत्य- संकल्पको डिगा सके। प्रह्लादके संकल्पसे जड़ खंभेमें से जब भगवान् नृसिंहको प्रकट होना ही पड़ा तो हमारे चेतन अन्तःकरणोंमेंसे रसाधिराज श्रीकृष्ण नहीं प्रकटेंगे, कैसे कहा जा सकता है ? उन्हें चाहे आज या कल, प्रकट तो होना ही है। और फिर, मैं

किसकी प्रीतिके गीत गाऊँ ? मैंने तो एक ही स्रोतसे प्रीति पायी है। मात्र एक ही अमृतधाराका स्वाद मेरी जिह्वा ग्रहण कर सकी है। अतः उन मेरे पू.गुरुदेव – प्रीतिके अपार सिन्धुके चरित्रके प्रेमगीत गाता जा रहा हूँ। प्रभु कृपा करें, मेरी लेखनीमें विराजित हो जावें और मैं अपनी प्राणप्रिया श्रीराधाबाबाका यशगान करता रहूँ। इत्यलम्

पू. गुरुदेवकी काष्ठमौनोत्तर विचित्र स्थिति

पू.गुरुदेवकी कुटीके चतुर्दिक् सात फुट ऊँची दीवार बना दी गयी है। पू.गुरुदेव अब अन्दर ही विस्तृत आँगनमें धूपसेवन भी कर सकेंगे। उनके स्नान एवं लघुशंकाके लिये भीतर ही व्यवस्था भी कर दी गयी है। अब पू.गुरुदेवके दर्शन भी मात्र उस समय ही संभव हैं, जब वे शौचके लिये बाहर आवेंगे। पू. श्रीगोस्वामीजी चिम्मनलालजी प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें उन्हें उसी दक्षिण पथकी पगडंडीपर विचरण करते हुए एक पद गाकर अवश्य सुना देते हैं। मैं भी ब्राह्ममुहूर्त्तमें उनके साथ आता हूँ और उनका प्रतिदिनका गाया गीत अपनी डायरीमें लिख लेता हूँ। प्रातः पू. गुरुदेव जब भी शौचके लिये अपनी कुटीसे बाहर निर्गत होते हैं, मैं उनके दर्शन कर लेता हूँ।

पू.गुरुदेवकी आन्तरिक स्थिति एवं बाह्य स्वास्थ्य – दोनोंका कुछ भी संकेत नहीं मिल पा रहा है।

पू.पोद्दार महाराज भी रुग्ण हैं; अतः अति एकान्तमें ही रहते हैं। उनके सिवा तो अन्य कोई है नहीं, जो पू.गुरुदेवकी अन्तर्यात्राका परिचय दे सके। बाहरसे इतनी ही सूचना मिल पाती है कि वे अनवरत घण्टों ध्यानस्थ ही रहते हैं; भिक्षा भी समयपर नहीं हो पाती। प्रातःकाल भी उन्हें जाकर जगाया जाता है, तब उठते हैं। घण्टों बिना शौच- स्नानके बैठे रहते हैं। भिक्षा परोस देनेपर भी पत्तलकी वस्तुओंको उनकी वृत्ति ग्रहण नहीं कर पाती। पू. मैयाको भिक्षा कराते समय अनेकों बार उन्हें स्मृति करानी पड़ती है कि यह रोटी है, यह शाक है, यह भात है। जब उन्हें बताया जाता है कि यह शाक है, तो शाक ही शाक खाने लगते हैं। कभी चावल ही चावल खा लेते हैं। वास्तविकता तो यह है कि वे शाक, चावल, दही, फलोंका रस – इस सब पहचानसे भी परे चले गये हैं।

पूर्वतः पू.गुरुदेवके पेटमें होनेवाले आँवजन्य मरोड़ोंके कारण मिर्च उनकी भिक्षामें सर्वथा ही प्रयुक्त नहीं होती थी। उनकी भिक्षामें नमक भी बहुत ही अल्प मात्रामें प्रयुक्त होता था; अब उनको स्वादवृत्तिका ज्ञान ही नहीं रहता। अब प्रमादवश सब्जीमें अतिशय मिर्च पड़ गयी हो, अत्यधिक नमक डाल दिया गया हो, लौकी-तरुई कड़ुवी प्रयुक्त हो गयी हों; उनकी भावनिमग्नताकी स्थिति इतनी प्रगाढ़ है कि स्वादजन्य नमकका खारापना, मिर्चकी तिक्तता और कड़ुई तरुई-लौकीकी विषैली कड़ुआहट उन्हें अनुभव ही नहीं होती। उनका मानस अपने भावोच्छलनमें इतना निमग्न रहता है कि प्राकृत देह, उसके इन्द्रिय-समूहकी क्रियाशीलता उनमें होती ही नहीं। भयंकर शीतमें भी यदि किसीने उनके तनपर पर्याप्त कम्बल नहीं उढ़ाये तो पासमें रक्खे कम्बलोंकी उन्हें स्मृति ही नहीं होती, न ही वे शीतका अनुभव कर पाते हैं।

वास्तविकता यही है कि भावराज्यमें सतत प्रवाहित उनका मन दुःख-सुखकी तो बात ही नहीं, कष्ट-पीड़ा आदिके धरातलसे भी अतीत हो गया है। उनकी शरीर एवं जगत्से सम्बद्धता ही मानो नहीं रही है, और रही भी हो तो वह इतनी मात्र अल्पतम संबद्धता ही समझनी चाहिये जिससे उनका शरीर जीवन-धारण किये है।

पू. गुरुदेव काष्ठमौनके पश्चात् इतने भावनिमग्न रहते हैं कि उन्होंने एक कौर यदि मुखमें ले लिया तो उस कौरको चबाने और निगलनेतकको वे विस्मृत कर जाते हैं। उन्हें थोड़ी-थोड़ी देर पश्चात् भोजनग्रासको उठाने, चबाने, अथवा निगलनेके लिये स्मृति करानी पड़ती है। यह स्मृति भी बहुत ही जोरसे बोलकर, उनका ध्यान खींचकर नीचे लानेपर ही उन्हें होती है। उन्हें प्रायः देह-भान नहीं रहता। वे एक स्थानपर खड़े हैं तो घण्टों खड़े ही रह जाते हैं। वे किस भावधारामें बह रहे हैं, यह तो वे ही जानें, परन्तु बाहरसे देखनेवालेके लिय तो वे एक पाषाणस्तम्भके समान हो जाते हैं।

श्रीपोद्दार महाराजका शरीर भी अस्वस्थ चल रहा है। तीन धामकी तीर्थयात्रासे लौटते ही वे रोगाक्रान्त हो गये हैं। उनको देखनेसे स्पष्ट अनुभव होता है कि उनमें अत्यधिक शिथिलता एवं शक्तिहीनता आ गयी है। चिकित्सासे कुछ काल लाभ दिखता है, फिर वह लाभ लुप्त हो जाता है। किसीका भी निरन्तर अनेक दिवसोंतक ज्वरग्रस्त रहना अच्छा लक्षण तो नहीं है। डाक्टरों, वैद्योंका यही परामर्श है कि उन्हें पूर्ण विश्राम करना चाहिये। इस परामर्शके

पालनस्वरूप उनके पास किसीके भी अनावश्यक जानेकी मनाही है । परिवारके सभी लोगोंका मत है कि उन्हें गोरखपुरसे रतनगढ़ ले जाना चाहिये। यह विचार जोर पकड़ रहा है। यह प्रायः निश्चय ही है कि दस-पन्द्रह दिनोंमें श्रीपोद्दार महाराज अपने परिवार, पू.गुरुदेव एवं निकटस्थ सेवकोंको लेकर रतनगढ़ चले जावेंगे।

श्री 'भाईजी' से श्रीपोद्दार महाप्रभु–एक यात्रा

तीसरा अध्याय

वि.सं.१९८७ तदनुसार सन् १९३०की एक पावन निशाकी वार्त्ता कह रहा हूँ। अग्रवाल वैश्यकुलमें उत्पन्न 'भाईजी' उपनामवाले श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार नामक एक असीम सौभाग्यशाली व्यक्तिके जीवनमें चरम कृतार्थताका अवसर उपस्थित होने जा रहा है।

भक्तिसाधनाका वृक्ष तो उनके अनन्त सुभग अन्तःकरणमें पूर्वजन्मसे ही लहलहा उठा था। इस जीवनमें उस वृक्षमें मौरें आयीं और वह फलोन्मुखी भी हो उठा। वि.सं. १९७९ तदनुसार सन् १९२३ई.में बम्बईमें उन्हें भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए और इन्हीं दिनों उनका मन निर्गुण निराकार ब्रह्मसाक्षात्कारमें भी विलीन रहने लगा। आश्विन कृष्णा ६ वि.सं १९८४को पाँच वर्षतक ब्रह्मभावकी उच्चतम साधना करनेके पश्चात् उन्हें जसीडीहमें सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके रूपमें अधोक्षज नारायण (विष्णु भगवान)के दर्शन हुए। इसके पश्चात् तो विष्णु भगवान्की उनके अन्तःकरणमें ऐसी कृपावर्षा हुई कि वे जब इच्छा हो, उन्हें आवाहनकर प्रकट कर लेनेकी क्षमताको प्राप्त हो गये। श्रीविष्णु भगवान्की कृपासे भक्तराज पोद्दार उत्तमोत्तम, परम निष्काम, तत्सुखी भक्तिके आदर्श हो गये। श्रीमद्भगवद्गीता उनके स्वभावमें मूर्त्तिमती हो उठी और *'वासुदेवः सर्वमिति'* –इस भावभूमिके सर्वोच्च शिखरपर उनकी प्रतिष्ठा हो गयी।

और आजके इस पावनतम, महाकल्याणप्रद, सुभग क्षणकी तो विश्वमें कहीं संतुलना ही नहीं हो सकती, जब कि उनके अन्तःकरणमें भगवान्

श्रीब्रजेन्द्रनन्दन और उनकी प्रिया श्रीराधारानीके अवतरणकी पात्रता उत्पन्न हो गयी है। इस सौभाग्यकी तो जगत्का कोई प्राणी कल्पना ही नहीं कर सकता।

भक्त श्रीपोद्दार महाराज गोरखनाथ मन्दिरके समीपस्थ बगीचेमें, जहाँ गीताप्रेस द्वारा उनके पारिवारिक निवासकी व्यवस्था है, साथ ही जहाँ 'कल्याण' सम्पादन-विभागके और लोग भी रहते हैं, एक कक्षमें नेत्र-निमीलित शान्त निस्पन्द ध्यानरत आसीन हैं। मध्य रात्रिका काल है। उनके पावन कक्षके द्वार बन्द हैं। समस्त पारिवारिक जन और सम्पादन-विभागके सहयोगी निद्राभिभूत हैं। जिसमें उनके सहयोगी लीन हैं, ऐसी अज्ञानजन्य तमोमयी निद्रा तो भक्तराज पोद्दार महाराजको अनेक वर्षोंसे कभी आयी ही नहीं। भगवान्के ध्यानजन्य जागरणमें ही वे संसारदृष्टिसे सोये प्रतीत होते हैं। सामान्य जन-साधारणकी तरह तो वे न बोलते हैं, न चलते हैं और न जीवित ही हैं। वे तो सदैव अपने आराध्य भगवान्के अबाध एवं अगाध सच्चिदानन्द रसावगाहनमें ही आपाततः निमग्न रहते हैं। जैसे चिन्मय रससिन्धु ही गड़गड़ाहट रूप सच्चिन्मय नाद कर रहा हो, उसी भाँति अभिमानसे रहित प्राकृत शब्दराशि उनके कलेवरके मुखसे फूट पड़ती है। अहंकारशून्य गति ही उनकी चाल है और अहंताके किसी स्पन्दनसे सर्वथा शून्य, पूर्णतया विशुद्ध मंगलमयी कर्मराशि, स्वभावतः ही बिना किसी आरंभ एवं संकल्पके उनसे सम्पादित होती रहती है। न वे कर्त्ता ही हैं, न ही भोक्ता हैं। उनकी स्थिति उनकी ही भाषामें कोई समझ सके, तो भले ही समझ ले–

मेरे तुम स्वरूप बन जाते, मैं बन जाती तुम साकार।
बन जाते स्वरूप दोनोंके दोनों तज निज-निज आकार।।
कौन कहे कैसा रस अनुभव, कैसा अनिर्वाच्य आनन्द।
प्रेम बना आनन्द नाचता, बना प्रेम आनँद स्वच्छन्द।।

श्रीमद्भागवतमें ऐसे भक्तके सम्बन्धमें कहा गया है: ***"विक्रीड़ितोऽमृताम्भोधौ"***। अर्थात् इस कोटिका हरिभक्त अमृतके सागरमें क्रीड़ा करता है। ऐसे भक्तान्तःकरणमें ही रसनदी कालिन्दी कल-कल निनाद करती प्रवाहित होती है। प्रिया-प्रियतम महाभाव एवं रसराज राधा-माधवके लिये ऐसे सिद्ध भक्तका अन्तःकरण ही महारास-स्थल, चिन्मय वृन्दाविपिन होता है। वे भला उसे छोड़कर अन्यत्र कहाँ विलसित हों ? अतः वे चुपचाप वहाँ अपनी रसक्रीड़ा करने आ धमकते हैं। उनके प्रवेशका भला, स्वयं भक्तराजके सिवा दूसरा कौन साक्षी होगा ?

अन्तरमें होरहा खेल अति मधुर विलक्षण।
बाहर कैसे दीखे वह निश्शब्द अलक्षण।।

महाभावमयी श्रीराधारानी एवं रसराज रसिकशेखर श्रीकृष्णके अन्तःकरणमें प्रवेश होते ही भक्तराज पोद्दार महाराज जो अबतक गीतोक्त निष्काम भक्तिका एक आदर्श सिद्ध जीवन जी रहे थे, इस क्रान्तिकारी क्षणसे महाप्रभु हो गये। उनका रोम-रोम श्रीराधा-माधवकी चिन्मय प्रीतिरससे सम्प्लावित हो उठा। उनकी जीवनधाराका अणु-अणु प्रिया-प्रियतमकी सरसतम क्रीड़ाकेलिका रंगमञ्च बना लीला-रस-सिन्धुमें आपाततः डूब गया।

रसमय हुई नित्य रस पाकर रसिक रसार्णवका सब ओर।
बही रस-सुधा-सरिता-धारा प्लावित कर सब रहा न छोर।।

यह ऐसा पावन क्षण था जिस क्षण श्रीपोद्दार महाप्रभुका रोम-रोम विलक्षण प्रेम-परिस्नात रस-सज्जा-सज्जित हुआ नृत्य कर उठा। कदाचित् कोई सौभाग्यवान् पुरुष महाप्रभु पोद्दार महाराजके उस रसानन्दोच्छलित महोन्मादी नृत्यकी शोभा देख पाता। परन्तु उन दिनों तो रंगमञ्चमें श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एवं स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज (पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा)-जैसे अधिकारी शिष्योंका पदार्पण ही नहीं हुआ था। दूसरा ऐसा कोई अधिकारी था ही नहीं, जो इस पावन क्षणका साक्षी होता। श्रीपोद्दार महाराजपर उस कृपा-समुद्रके उच्छलनकी साक्षी स्वयं साक्षात् गिराधिदेवी भी यदि देती और उसे शब्द दे पाती तो वे शब्द कदाचित् ये होते—"ओह ! किसी महा-महाकृपापात्र जीवके अन्तःकरणरूपी चिदानन्द-रस-सिन्धुमें नील एवं पीत दो राका-शशियोंका उदय हुआ है, और इस उदयकालमें अपूर्व अद्भुत महाभावज्वार उमड़ा है। यह महाभावज्वार इतना उच्चतम एवं सर्वप्लावी है कि ऐसे विशाल एवं उत्तुंग ज्वारका श्रुति-स्मृति-इतिहासमें आजतक तो कहीं उल्लेख नहीं मिलता।"

अप्रतिम अनिन्द्यसुन्दर श्रीराधाकृष्ण-युगल-स्वरूपका जो सौन्दर्य, माधुर्य एवं रसैश्वर्य श्रीपोद्दार महाप्रभुने आजके पावन क्षणमें अनुभव किया, वैसा पूर्वके किन्हीं भक्तोंमें प्रकट हुआ हो, कहा नहीं जा सकता।

आगे जाकर जब श्रीपोद्दार महाप्रभुके लीलामञ्चमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने पदार्पण किया तो वे विस्फारित-नेत्र इस रसविभुकी प्रशस्तिमें निम्न शब्दोंमें अपनी श्रद्धाञ्जलि दे बैठेः "धर्मग्लानि और उसके ह्रासको दूर करनेके लिये धर्मप्रचारका जो कार्य आदिशंकराचार्य, रामानुजाचार्य जैसे

आचार्यों द्वारा हुआ; जन-जनके आचार-विचार-व्यवहारको नियन्त्रित-सुसंस्कृत करनेके लिये समाज-जीवन सम्बन्धी प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेका जो कार्य मनु-याज्ञवल्क्य-जैसे स्मृतिकारों द्वारा हुआ; हृदयकी सुकोमल भक्तिभावनाओंके तरंगित हो उठनेपर भक्तिकाव्यकी रचनाका जो कार्य तुलसीदास-सूरदास-जैसे भक्त कवियों द्वारा हुआ; और श्रीराधामाधवके लीला-रस-सिन्धुमें नित्य-निरन्तर निमग्न रहनेके आदर्शकी प्रतिष्ठाका जो कार्य मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु-जैसे रसिक जनों द्वारा हुआ, इन चारों कार्य-धाराओंके अद्भुत संगमका प्लावन श्रीपोद्दार महाप्रभुके विशाल व्यक्तित्वमें प्राप्त होता है।"

श्रीराधेश्यामजी बंकाने श्रीपोद्दार महाप्रभुके जीवनको चार सोपानोंमें बाँधा है।

(१) देशभक्ति एवं समाजसेवा-प्रधान – प्रथम भाग – सन् १८८२से सन् १९१६तक

(२) शिमलापालमें नजरबन्दीसे साधन-परायणता और भगवद्दर्शनजन्य सफलता-प्राप्ति – द्वितीय भाग – सन् १९२७ ई.तक। (भगवान् रामके सगुण-साकार दर्शन १९२३ ई.में हुए; तत्पश्चात् निर्गुण निराकार परब्रह्मकी साधनामें चरमोत्कर्ष प्राप्त किया एवं १९२७ ई.में जसीडीहमें भगवान् विष्णुके दर्शन हुए।)

(३) 'कल्याण'के माध्यमसे सत्साहित्यका प्रकाशन एवं भक्तिप्रचार – तृतीय भाग – सन् १९२७से १९५६तक एवं

(४) महाभावावस्थामें निमज्जन, भाव-वितरण-प्रधान – चतुर्थ भाग – सन् १९५६ ई.से १९७१तक।

{ देखें वाटिकाके पत्र-पुष्प भाग तीन पृष्ठ सं.१११ }

श्रीबंकाजीसे मेरा इस विषयमें मत-वैभिन्न्य है। मैं श्रीपोद्दारजीके जीवनको दो ही भागोंमें विभाजित देखता हूँ। जहाँतक महाभाव-निमज्जनका प्रश्न है , इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि उनमें पूर्ण महाभावकी प्रतिष्ठा सन् १९३० ई.में ही हो गयी थी। श्रीपोद्दार महाराजको इसी कालमें भगवान् श्रीकृष्णके, ब्रजलीलाओंके दर्शन होते थे। अतः मेरी मान्यतानुसार उनके जीवनका प्रथम सोपान भक्तराज 'भाईजी' श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका था। श्रीभाईजी अपने साधनाकालमें तथा धर्म-प्रचार एवं जगत्कल्याणकार्यके निमित्त श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाको पूर्णतया समर्पित थे। उस जीवन-सोपानमें

वे उनके अनुगत थे। किन्तु अपने जीवनके दूसरे सोपानमें वे सर्वतंत्र-स्वतंत्र थे। महाभाव-रसराज श्रीराधाकृष्णकेलीला-रसमें निमग्न उनका यह दूसरा सोपान बृन्दावनकी महारासलीलाओंका प्रत्यक्षदर्शी जीवन रहा है। इस कालमें वे अपने संकल्पमात्रसे किसीको भी ब्रजेन्द्रतनय रसिकशेखर श्रीकृष्णका दर्शन कराने, उनकी रसमयी नितान्त मधुर प्रेमाभक्तिका दान करनेमें भी समर्थ आचार्य गुरु थे। यद्यपि उनके द्वारा कोई सम्प्रदाय-प्रवर्त्तन नहीं हुआ परन्तु उनकी योग्यता इस कालमें किसी कारक पुरुषसे किसी भी प्रकार कम नहीं थी। उन्होंने अपनी इस महाकल्याणकारी शक्तिको सदैव ही संगुप्त रक्खा, किन्तु इस कालमें उनमें वस्तुगुणके रूपमें सदैव सर्वोच्च मोहन-मादन भाव ही संप्रवाहित रहा। मैं उनके १९३० ई.के पश्चात् अनवरत चालीस वर्षके जीवनको महाप्रभु पोद्दार महाराजका जीवन कहता हूँ। इसी कालमें उन्हें समर्पित हुए समर्पणमूर्त्ति श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजी, जो विद्वत्तामें सिद्ध-रसिक रूप-सनातन एवं जीव गोस्वामीसे किसी भी अंशमें न्यून नहीं कहे जा सकते। यह सत्य है कि रूप-सनातन एवं जीव गोस्वामीके समतुल्य इन्होंने अपना स्वतंत्र साहित्य विश्वके सम्मुख नहीं रक्खा किन्तु इनका श्रीमद्भागवत ग्रन्थका आंग्ल भाषामें अद्वितीय अनुवाद इसका प्रमाण है कि ये संस्कृत एवं आंग्ल दोनों भाषाओंमें मूर्धन्य योग्यता रखते थे। तैलंगकुलभूषण इस विद्यावारिधिने आंग्ल भाषामें श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीबाल्मीकिरामायण, श्रीतुलसीकृत रामायण आदि अनेक ग्रन्थोंको अनूदित किया।

इसी काल-सोपानमें इन्हें समर्पित हुए – अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी चतुर्थ भूमिकामें प्रतिष्ठित, युवक संन्यासी श्रीचक्रधरजी महाराज जिन्हें सन् १९३६ई. में ही गीतावाटिकामें श्रीमहाप्रभु पोद्दार महाराज द्वारा उनका चरणस्पर्श करके श्रीकृष्ण-भक्तिभावकी सर्व-वैभवमयी रसदीक्षा दी गयी। गीतावाटिकामें उनके मात्र पाँच-छः दिवसोंके निवासकी अवधिमें श्रीपोद्दार महाप्रभु द्वारा डाले गये रस-छींटोंसे इनका निर्गुण- निराकारका तथा ब्रह्मसाक्षात्कारका कट्टर मायावादी आग्रह अथाह श्रीकृष्ण-रस-सिन्धुमें ऐसा निमग्न हुआ कि परात्पर परब्रह्मसे ये श्रीराधा हो गये। राधा-महाभावमें ये इस अभूतपूर्व रीतिसे निमज्जित हुए कि इनका नाम श्रीराधाबाबा ही सर्वत्र प्रख्यात हो गया।

उन दिनों गोरखपुरमें महाप्रभु पोद्दार महाराज गोरखनाथ मन्दिरके पासवाले बगीचेमें निवास करते थे। वहाँ नित्य नियमित सत्संग होता था।

उसकी वार्त्ताको संदर्भ रूपमें कह रहा हूँ। सन् १९३६ई.के मंगलवार ५ सितम्बरसे प्रारंभ हुए मासभरके सत्संगमें संयोगवश मैं स्वयं अपने शिशुकालमें आंशिक रूपसे सम्मिलित हुआ था। इसकी मासभरकी तिथिवार विज्ञप्ति मुझ श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी डायरीमें मिली है। इस डायरीका विवरण इस बातका पर्याप्त प्रमाण है कि महाप्रभु श्रीपोद्दार महाराजकी आश्विन कृष्ण प्रतिपदा, मंगलवार वि.सं. १९९० तदनुसार १९३३ ई.में ही ऐसी दशा थी कि वे सहज ही बोलते-बोलते महाभाव-समाधिमें निमग्न हो जाते थे एवं उनका बाह्य ज्ञान सर्वथा सर्वांशमें ही लुप्त हो जाता था। इस सम्पूर्ण डायरीका तिथिवार विवरण तो विस्तारभयसे नहीं दिया जा रहा है, किन्तु इसके मुख्य तीने-चार प्रसंगोंका विवरण पाठक अवश्य अनुशीलन करें।

श्रीहरि

स्थान–गोरखनाथमन्दिरके पासवाला बगीचा

तिथिः आश्विन कृष्ण १, १९९०वि. मंगलवार ता.५ सितम्बर १९३३ई.

गोरखपुरमें सत्संगी स्नेही बन्धुओंका साधक-मण्डल है। ये साधक भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)के प्रति विशेष झुकाव रखते हैं। इनमें गीताप्रेसके कतिपय कर्मचारी, गोरखपुरके साहबगञ्ज मोहल्लेके कतिपय व्यापारी एवं सम्पादन-विभागके भी कुछ-एक साधक हैं। इन सभी बन्धुओंकी समवेत इच्छा और आग्रहसे श्रीभाईजीने विशुद्ध भगवत्प्रेम प्राप्त्यर्थ एक मासका साधन-सत्र रक्खा है। मैं, मेरी पत्नी एवं बाई मंगला – हम सभी इसमें सम्मिलित होनेकी इच्छा रखते हैं, तदनुसार श्रीभाईजीसे अनुमति मिल गयी है। आज रात्रि साढ़े आठ बजेसे यह अनुष्ठान प्रारंभ हुआ है।

अनुष्ठानका यह कठोर नियम है, कि कोई भी सम्मिलित स्त्री-पुरुष जबतक कार्यक्रम पूर्ण न हो, न तो बाहर जावे, न परस्पर वार्त्तालाप करे, न ही परस्पर कोई संकेत भी करे। जो साधक आनेमें विलम्ब करें, अथवा किसी कारणसे मध्यमें उठना चाहें, उन्हें मुख्य सत्संगकक्षसे बाहर बरामदेमें बैठना चाहिये – ऐसा नियम है।

इस एकमासीय अनुष्ठानके प्रथम दिवस आज श्रीभाईजीने अपने संक्षिप्त प्रवचनमें कहा – "यह अनुष्ठान विशुद्ध निष्काम श्रीकृष्ण-प्रीतिके उद्देश्यसे प्रारंभ हुआ है। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रीति प्राप्त्यर्थ यदि हम सभीको

आर्त्त प्रार्थना होगी और वे हमारे अन्तःकरणकी सच्ची चाह, उत्कट उत्कण्ठा एवं सतत संलग्नता देखेंगे; साथ ही हम अपने आचरणोंमें पर्याप्त संयम बरतेंगे तो भगवान्‌के चरणाश्रयसे निश्चय ही सफलता मिलेगी। आवश्यकता है, श्रद्धा, तत्परता एवं संयमकी। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा गया है–"श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः"

कृपया निम्न नियमोंका पालन करें –

(१) हमें सभीको अभी इसी समय अपने समग्र पापपुण्य भगवान् श्रीकृष्णको समर्पित कर देना चाहिये।

(२) प्रतिदिवस एक मासतक अष्टादशाक्षर गोपालमंत्रकी पचास मालाका अवश्य जप करें।

(३) इस बातका मनमें दृढ़ विश्वास रक्खें कि हमें श्रीकृष्णानुरागकी प्राप्ति अवश्य होगी।

(४) सभीके मनमें इस बातका सुदृढ़ विश्वास रहे कि हमें अपनी साधनासे नहीं, अपितु श्रीकृष्णानुग्रहसे उनकी प्रीति अवश्यमेव प्राप्त होगी। सहज सुहृद् कृपामूर्त्ति भगवान्‌ने इसी क्षणसे हमें अपना लिया है। जड़-चेतन सर्वत्र अपने परमाराध्य मोरमुकुट-वंशी-पीताम्बरधारी भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्णको ठसाठस-भरा अनुभव करें; उनके अतिरिक्त जो कुछ भी दिख रहा है, वह हमारा अज्ञान एवं माया-प्रवाह भर है, यह बारंबार अनुवृत्ति होती रहे।"

इस संक्षिप्त उद्‌बोधनसे एकमासीय अनुष्ठानका प्रारंभ हुआ।

सर्वप्रथम मुझसे (श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीसे) श्रीभाईजीने 'भजे व्रजैकमण्डनं' श्रीकृष्णाष्टक सुना। इस प्रथम श्रीकृष्णस्तुतिके सुनते ही श्रीभाईजीका ध्यान लग गया। कुछ काल ध्यानावस्थामें वे सर्वथा मौन रहे। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। बहुत देरतक वे ध्यानस्थ रहे। फिर कहने लगे – "जिस-जिस दृश्यको मैं देख रहा हूँ उसीका वर्णन करता हूँ। इसे सत्य मानिये। मेरा शरीर ही यहाँ गोरखपुरमें है। मैं तो सच्चिन्मय बृन्दावनधाममें जाकर वहाँकी दिव्य लीलाओंमें निश्चय ही सम्मिलित हूँ।"

"अब आप सभी मेरे साथ भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना करिये।" यह कहकर श्रीभाईजी दो-तीन श्लोक बोलकर भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णका स्तवन करने लगे। जब श्रीभाईजी श्रीकृष्णसे प्रार्थना कर रहे थे,

तब भी उनकी आँखें अश्रु बहा रही थीं। श्रीभाईजीकी वाणी इतनी श्रद्धापरिपूर्ण एवं कातर थी, जिससे स्पष्ट अनुभव होता था कि वे नन्दनन्दन श्रीकृष्णको प्रत्यक्ष अपने सम्मुख मुसकाता खड़ा देख रहे हैं।

श्रीभाईजीकी प्रार्थना संक्षेपमें इसी भावनासे भरी थी। "हे प्रभो ! यद्यपि हम सभी आपके दर्शनोंके सर्वथा अनधिकारी हैं, हमारे भीतर अनन्त जागतिक अभिलाषायें भरी हैं, फिर भी आप कृपा करके मात्र आपको ही प्राप्त करनेकी अभिलाषाको छोड़कर, बाकी सभी अभिलाषाएँ समूल विनष्ट कर दें। ऐसी कृपा तत्क्षण ही करें कि आपके दर्शनोंकी अदम्य एवं तीव्र आकांक्षा हमारे हृदयमें जग जाय। आपके दर्शनोंके बिना हमें अपना जीवन भारस्वरूप लगने लगे। हमारा जीवन तो अनन्त दोषोंका भण्डार है। आप हमारे अपराधों एवं न्यूनताओंकी ओर न देखें, अपने सहज स्वभावसे हम सभीपर अपनी कृपावर्षा करें। हम लोगोंमेंसे जिन्हें भी आपके दर्शनोंकी प्रबल चाह हो, आप उन्हें अपना दर्शन देकर कृतार्थ करें और जिनके हृदयमें ऐसी चाहका अभाव है, उनके हृदयमें तत्क्षण ही ऐसी प्रबल चाह जागृत कर दें।"

प्रार्थना करते-करते श्रीभाईजीकी वृत्तिने शारीरिक धरातल छोड़ दिया और वे पुनः समाधिस्थ हो गये। कुछ काल पश्चात् वे पुनः संवरित होकर कहने लगे – "महान् प्रकाशका पुञ्ज सामनेसे आरहा है। वह प्रकाश सर्व ओर फैलता जा रहा है। दसों दिशाओंमें प्रकाश-ही-प्रकाश छा गया है। उस प्रकाशमेंसे प्रेमीजन-जीवन श्रीकृष्ण आज अनोखा वेष धारण किये पधार रहे हैं। मोरमुकुटके स्थानपर पीताम्बरको साफेकी तरह लपेट रखा है। इस साफेके नीचेसे घुँघराले केशोंकी काली तेजोमय चमक स्पष्ट दिख रही है। विश्व-मन-मोहन श्रीकृष्ण बड़े ही जादूगर हैं। उनके जादूका प्रभाव शंकर, ब्रह्मा, नारद, व्यास, शुकदेव आदि सभीपर व्याप्त है। सभी उनपर मुग्ध वशीभूत हो रहे हैं। उनके मुखकमलमें जादू, उनके नेत्रयुगलमें जादू, उनकी केशराशिमें जादू, उनके पीताम्बरमें जादू, उनके मुरलीनादमें जादू, उनकी नूपुर-ध्वनिमें जादू, उनकी प्रत्येक क्रिया एवं वस्तुमें जादू-ही-जादू है। उनकी चितवन-अवलोकनिमें ऐसा विलक्षण जादू है कि दर्शनमात्रसे विमोहित कर लेता है।"

ध्यान कराते-कराते श्रीभाईजीने सहसा *'जय हरि गोविन्द राधे-गोविन्द'* की नामध्वनिका संकीर्त्तन कराना प्रारंभ कर दिया। आगे-आगे श्रीभाईजी बोलते एवं पीछे हम सभी सत्संगी बन्धु। नाम-संकीर्त्तन बहुत कालतक होता रहा। जब

श्रीभाईजीने संकीर्त्तनको विराम दिया तो स्वतः ही ध्यानमें अपनी स्थितिपर प्रकाश डालते हुए कहने लगे – 'जब नटनागर श्रीकृष्ण नृत्य करने लगे तो उनके नृत्यकी तालपर मैंने भी नाम-संकीर्त्तन प्रारंभ कर दिया। थोड़ी देर पश्चात् वे खड़े होकर मेरा संकीर्त्तन सुनकर मुस्कुराने लगे, मैं तो संकीर्त्तन करता रहा। उनको सुननेमें सुख मिले इससे बढ़कर अपने पास करनेको है ही क्या ?''

इसी समय मैंने (श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीने) जिज्ञासा की – ''आपने अभी कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण बड़े जादूगर हैं, तो वे अपने जादूका प्रयोग हम सभीपर क्यों नहीं करते ?''

श्रीभाईजीने प्रत्युत्तर दिया –'' जबतक वे अपना जादू नहीं करते, तभीतक खैर है ! उन्होंने जादू कर दिया तो 'रही न काहू कामकी' वाली स्थिति हो जायगी । इसे केवल साहित्य मत मानियेगा; श्रीनारायणस्वामी रचित इस पदमें लिखी एक-एक बात अक्षरशः सत्य घटित हो उठेगी।''

''हाँ ! एक बात और है। जो ऐसा चाहते हैं कि मुझपर उनका जादू चल जाय, उनपर उनका जादू आज नहीं तो कल अवश्य ही क्रियाशील होकर रहेगा। इसीमें तो जीवनकी सुन्दरता और सार्थकता है। वस्तुतः जिनपर उनका जादू चला है, उनका ही जीवन धन्य है। वे अपनी रूपश्रीसे आकृष्ट करते हैं, इसीलिये उनका नाम श्रीकृष्ण है।''

अनुष्ठानकी समाप्तिका समय निकट जानकर मैंने लावणीका निम्नलिखित पद गाया जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी द्वारा रचित है।

प्रिय प्राननाथ मनमोहन सुन्दर प्यारे।
छिनहू मति मोरे होहु दृगनि तैं न्यारे।।

घनश्याम गोप-गोपी-पति गोकुलराई।
निज प्रेमीजनहित नित-नित नवसुखदाई।।
बृन्दावन-रच्छक ब्रज-सरबस बलभाई।
प्रानहुँ ते प्यारे प्रियतम मीत कन्हाई।।
श्रीराधानायक जसुदानन्द दुलारे।
छिनहू मति मोरे होहु दृगनि तैं न्यारे।।१।।

तुअ दरसन बिनु तन रोम-रोम दुख पागे।
तुव सुमिरन बिनु यह जीवन बिषसम लागे।।
तुमरे सँयोग बिनु तन बियोग दुख दागे।
अकुलात प्रान जब कठिन मदन मन जागे।।
मम दुख-जीवनके तुम ही एक रखवारे।
छिनहू मति मोरे होहु दृगनि तैं न्यारे।।२।।

तुम ही मम जीवनके अवलम्ब कन्हाई
तुम बिनु सब सुखके साज परम दुखदाई।।
तुम देखे ही सुख होत न और उपाई।
तुमरे बिनु सब जग सूनो परत लखाई।
हे जीवनधन मेरे नयनोंके तारे।।
छिनहू मति मोरे होहु दृगनि तैं न्यारे।।३।।

तुमरे बिनु इक छन कोटि कलप सम भारी।
तुमरे बिनु स्वरगहु महानरक दुखकारी।।
तुमरे सँग बनहू घरसौं बढ़ि बनवारी।
हमरे तो सबकछु तुम ही हो गिरिधारी।।
हरिचन्द हमारो राखो मान दुलारे।
छिनहू मति मोरे होहु दृगनि तैं न्यारे।।४।।

इस पद-गायनके पश्चात् पुनः कुछ काल संकीर्त्तन होकर आजके पावन सत्संगको विराम दे दिया गया।

....

।।श्रीहरि।।

स्थान – गोरखनाथ मन्दिरके समीपका बंगालीबाबूका बगीचा

आश्विन कृष्ण द्वितीया वि.सं.१९९० बुधवार, ६ सितम्बर, १९३३ ई.

आज अनुष्ठानमें बीस व्यक्ति सम्मिलित हैं। कलके अनुष्ठानकी बातें सत्संगियोंमें सर्वत्र प्रचारित होनेसे आज विगत कलसे दुगुने लोग बैठे हैं। श्रीभाईजीकी आज्ञानुसार घड़ीमें ठीक साढ़े-आठ बजते ही कार्यक्रम प्रारंभ कर दिया गया है। आज मैंने श्रीकृष्णाष्टककें पश्चात् श्रीभाईजीके आदेशानुसार श्रीहरिश्चन्द्रजीकी लावणी गायी।

श्रीभाईजीने आज अपने अनुभवकी एक नवीन श्रीकृष्णलीला सुनाना प्रारंभ किया। इसमें अपने सखाओं एवं गोपांगनाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी अन्तरंग लीलाकथाका विस्तारसहित वर्णन था। श्रीभाईजीका लीलावर्णन प्रत्यक्ष दर्शनयुक्त होनेके कारण अति सजीव था।

आज उन्हें कलकी तुलनामें अधिक भावावेश था। वर्णन करते-करते बीचमें ही उनका बाह्य ज्ञान लुप्त हो जाता था। उस समय मौनावस्थामें भी वे बहुत ही भावपूर्ण लगते थे। उनके भावभरे नेत्रोंमें उनकी छवि मुझे अलौकिक प्रभावोत्पादक अनुभव हो रही थी। वे बोलनेकी चेष्टा करते किन्तु बोल नहीं पाते थे। सभी सत्संगी शान्त बैठे श्रीभाईजीकी ओर एकटक देख रहे थे; कुछ नेत्र-मूँदे ध्यानस्थ थे। मुझे तो आन्तरिक ध्यानचेष्टाकी अपेक्षा उन्हें देखते रहनेमें ही अधिक आनन्द मिल रहा था। जब उन्हें स्वयं अपना एवं बाहरी जगत्का होश ही नहीं है, तो वे स्वयं हैं ही कहाँ ? अब तो उनमेंसे जो भी बोल रहा है, उनसे जो भी छलक रहा है, सब श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं। बाह्य ज्ञान-लुप्त अवस्थामें उनका "ओह ! ओह !!" कह उठना एक विशेष आनन्दोच्छलन ही माना जाना चाहिये। श्रीभाईजीका रोम-रोम अनबोले ही, बिना भाषाके मुखर प्रकाशित कर रहा है कि वे श्रीकृष्णकी लावण्यराशि एवं रूपसौन्दर्यपर कितने अधिक विमुग्ध हैं !

आज अधिकांशतया वे मौन ही रहे। वे चेष्टा करके कुछ शब्द उच्चारण करनेका प्रयास भी करते तो स्वरकी अस्पष्टताके कारण कुछ भी अर्थ समझमें नहीं आता था। वे क्या कहना चाह रहे हैं इसकी संगति भी नहीं लग पा रही थी। बहुत समयतक उनके मुखसे असंगत शब्दराशि ही निकल रही थी।

समय तो पूरा होता ही है। संकीर्त्तन कराके नजीर साहबकी नज्म गायी गयी।

आज भाईजी उठनेकी स्थितिमें भी नहीं थे। वे इतने भावाविष्ट थे कि मुझे तो उन्हें छूनेमें भी संकोच हो रहा था। मेरी ही (श्रीचिम्मनलालजीकी) तरह उन्हें स्पर्शकर उठानेकी किसी दूसरेने भी चेष्टा नहीं की। इसके पश्चात् अ.सौ. भाभीजी आयीं और वे उन्हें मछहरीमें सुलानेको ले गयीं। सभी सत्संगियोंको बिदा दे दी गयी किन्तु मैं (चिम्मनलालजी गोस्वामी) एवं कुछ अन्य सत्संगी भाई रात्रिको बारह बजेके बाद ही वहाँसे हटे। मध्य रात्रितक

श्रीभाईजी रसस्वरूप श्रीकृष्णकी सरस लीलाओंका वर्णन बाह्य होश-विरहित दशामें मात्र 'कुछ कहना है' –इस पूर्वकृत संकल्पको पकड़े, कहते रहे। उनके बोलने एवं कहनेका ढंग आज सदासे भिन्न प्रकारका था। वे बहुत ही मन्द स्वरमें शनैः-शनैः यह सब वर्णन कर रहे थे।

"श्रीगोवर्धन गिरिके एक शिलाखण्डपर अपनी सर्वाकर्षक शोभाको सर्वत्र प्रसारित करते श्रीकृष्ण आसीन हैं। सघन लता जाल पुष्पाच्छादित हैं। रंग-बिरंगे पुष्प हैं। ओह ! कैसी निर्मल सुगन्ध चतुर्दिक् फैल रही है। मेरी नासिका श्रीकृष्णकी अंगगन्धसे तो भरी है, बीच-बीचमें वायु इन पुष्पोंकी गन्ध भी लाकर उसे श्रीकृष्ण अंगगन्धमें मिला जाती है। इसी मिससे इन लता-वल्लरियोंका अपने प्राणपतिसे मिलन जो हो रहा है। वायु दूतीका कार्य कर रही है। ओह, भ्रमर कैसा सुन्दर झंकार कर रहे हैं। इनकी झंकार विलक्षण संगीतमयी है। सारी राग- रागिनियोंकी मूल उत्पत्ति मानो इन भ्रमरोंसे ही हुई हो। ...."

बहुत शनैः-शनैः इतना बोलकर श्रीभाईजी रुक गये हैं। उनसे आगे बोला नहीं जा रहा है। आज उनकी दशा कुछ निराली है। उनके नेत्रोंसे अश्रु धारावत् टपकते हैं, परन्तु इससे उनकी मुख-मुद्रामें कोई विकृति नहीं आती। इसी प्रकार कभी-कभी उनके मुखसे 'ओह ! ओह !'कर रुदन फूट पड़ता है, परन्तु चेहरा उसी प्रकार शोभाभरा लगता है।

मेरा गोरखपुर आगमन धन्य हो गया। मेरी पत्नी यदि मुझे स्थायीरूपसे गोरखपुर आनेकी अनुमति नहीं देती तो हमें यह विलक्षण अनुभव प्राप्त करनेका सौभाग्य ही नहीं मिलता। मुझे बहिन मंगलाके भाग्यपर गर्व होता है कि उसे यह सत्संग मिला । बहिन सुलोचना एवं मेरे पू. पिताजी इस संत-सहवाससे वंचित हैं।

....

।।श्रीहरि।।

स्थानः बंगालीबाबूका बगीचा आश्विन कृ.तृतीया वि.सं.१९९०
गोरखनाथ मन्दिरके पास, गोरखपुर गुरुवार ७ सितम्बर, १९३३ ई.

जिस प्रकार पिछले दो दिवस सत्संग हुआ, उसी प्रकार आज भी घड़ीके साढ़े-आठ बजाते ही कार्यक्रम प्रारंभ होगया है। श्रीभाईजीके आदेशानुसार मेरे द्वारा प्रारंभमें 'भजे ब्रजैकमण्डनं' श्रीकृष्णष्टकका गायन होनेके पश्चात् 'हरि बोल, हरि बोल' का संकीर्त्तन श्रीभाईजीने स्वयं कराना प्रारंभ कर दिया। अहा ! अलौकिक आनन्दकी वर्षा हो रही थी। श्रीभाईजी दोनों हाथोंमें करताल लेकर खड़े होकर झूम-झूमकर संकीर्तन करा रहे थे। मन करता था– उस समयकी उनकी छवि मेरे चित्तमें ऐसी बस जाय कि कभी भी नहीं हटे। श्रीभाईजीकी भावमयी स्थितिको देखकर मुझे ऐसा ही अनुभव हो रहा है मानों मैं आधुनिक युगके अभिनव महाप्रभु चैतन्यदेवके सान्निध्यमें आ गया हूँ। श्रीचैतन्य-महाप्रभुकी भाव-तल्लीनताकी बातें तो मात्र उनके अनुयायी लोगोंके ग्रन्थोंके पढ़नेसे ही ज्ञात होती हैं, किन्तु श्रीभाईजीकी महाभावदशा तो हम सभी प्रत्यक्ष देख रहे हैं। श्रीभाईजीकी यह विलक्षणता ही है कि वे गृहस्थमें रहकर जनसंसर्गमें पूर्णतया लिप्त होकर, समाजसेवा, आत्मीय जनोंके विवाह, मरण, रोग-शोकमें सम्मिलित होकर भी पंक-कमलवत् सर्वथा निर्लिप्त हैं, और दिवसभर रजोगुणी कार्योंका संचालन करते हुए भी सन्ध्यामें इस प्रकार भावाविष्ट हो जाते हैं। ये अपने भाव-प्रवाहको संगुप्त और प्रकट करनेमें कितने सिद्धहस्त हैं ? मैं तो ऐसा अग्रज धर्मभ्राता पाकर अपनेको कृतकृत्य अनुभव करता हूँ।

ऐसा लगता है कि श्रीभाईजी जगत्के तटपर रहकर भी नहीं रहते। सदैव लोकातीत रहते हुए श्रीराधाकृष्ण युगलके रूप-लीला-सम्बन्ध, रसविलास, आलाप-संलाप, समर्पण एवं प्रेममें ही इनका क्षण-क्षण व्यतीत होता है।

प्रभातकालके सत्संगमें भी इनकी ऐसी ही दशा देखनेको मिलती है एवं सायंकालमें भी ये इसी प्रकार भावोन्मत्त अवस्थामें ही शयन करते हैं।

....

।।श्रीहरि।।

स्थानः बंगालीबाबूका बगीचा
गोरखनाथ मन्दिरके पास, गोरखपुर

आश्विन कृ.चतुर्थी वि.सं. १९९०
शुक्रवार ८ सितम्बर, १९३३ ई.
(प्रातःकाल)

आज प्रातः ७ बजेके सत्संगमें मैं श्रीकृष्णाष्टक गाकर जैसे ही निवृत्त हुआ, श्रीभाईजीके आदेशसे मेरे बहनोई श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीने श्रीनन्ददासजी-विरचित 'श्रीकृष्णनाम जब तैं श्रवणन सुन्यौ री आली' पद गाकर सुनाया।

पद-गायन सुनते-सुनते ही श्रीभाईजी भावाविष्ट हो गये। श्रीभाईजीका भावावेश इतना गहन था कि वे प्रातः-सत्संग प्रारंभ ही नहीं कर सके। ऐसे भावाविष्ट हुए कि उन्हें कमरा बन्द कर एकान्तमें बैठाना पड़ा।

श्रीभाईजीका सत्संग लाभ करने इन दिनों एक विलक्षण महात्मा उत्तराखण्डसे आये हैं। इन्होंने अपना आसन आँवले वृक्षके नीचे बने चबूतरेपर लगाया है। शरद् ऋतु है; इनके आवासका उचित स्थान चयन करके देनेका सेवाभार श्रीभाईजीने मुझे सौंपा था, किन्तु ये कहते हैं कि अपने नियमानुसार छतके नीचे ये रहते ही नहीं। आँवलेका वृक्ष सघन है। इनके पास पहननेको मात्र दो टाटके टुकड़े हैं, उन्हींसे ये अपने बिछौने और वस्त्र – दोनोंका कार्य सम्पन्न कर लेते हैं। ये कोपीन भी टाटकी ही पहनते हैं। कोपीन अवश्य इनके पास दो हैं। नहानेके पश्चात् इनमेंसे एकके सूख जानेपर ये उसे अपनी कमरमें बाँध लेते हैं। बहुत ही तितिक्षु हैं। चार आलू उबालकर मात्र तनिकसा नमक लगाकर इनकी भिक्षा हो जाती है। भिक्षार्थ ये किसीके घर नहीं जाते, अपनी हँडियामें ही आलू उबाल लेते हैं। इसी हँडियासे ये पानी भी पी लेते हैं। शौचके समय इसी हँडियाको जलपात्रके रूपमें प्रयोग कर लेते हैं। कण्डेकी धूनी अवश्य रखते हैं।

ये एक रबरकी नली रखते हैं। इस नलीको अपने किसी भी अंगसे सटाकर ये इसके दूसरे कोनेको आगन्तुक व्यक्तिके कानमें लगा देते हैं। उस नलीमेंसे विलक्षण सुरीली 'नारायण-नारायण' नामध्वनि सुनाई देती है। यह प्रयोग ये इनके पास आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके सम्मुख करते हैं। यह

'नारायण-नारायण' नामध्वनि इनके हृदयकी स्वाभाविक रक्तचापकी धक्-धक् आवाज नहीं है, जिसमें 'नारायण' नाम आरोपित कर दिया गया हो। यह तो स्पष्टतः शब्दोच्चारण है। ये महात्मा जिस काल किसीको यह नामध्वनि अपने रोम-रोमसे निस्सृतकर सुनाते हैं, उस समय इनके नेत्र ऐसी शान्त मुद्रामें निमीलित हो उठते हैं, मानो अन्तरमें उच्चारित अन्तर्ध्वनिके रूपमें होनेवाले अपने इष्टदेवके नाम-संकीर्तनको ये स्वयं भी पूर्ण रसमत्त हुए सुन रहे हों। यह मधुर नामस्वर न तो किसी नारीका होता है, न ही पुरुषका। यह तो जैसे कोई स्वयंमूर्त्त ध्वनि होती है। यह इतनी आकर्षक होती है कि श्रवणकर्त्ता यदि जरा भी साधन-सम्पन्न अन्तःकरणका हो तो इसके श्रवण मात्रसे ही वह भीतर गहिराकाशमें डूबता चला जाता है। ऐसा लगता है मानो यह कोई आन्तरिक योगध्वनि है। इस ध्वनिका विश्लेषण तो मैं नहीं कर सका। इस श्रवणसे मुझे एक विलक्षण आनन्द, एक अभूतपूर्व तन्मयता प्राप्त हुई, वह मेरे मन-मानसमें सारे दिवस छायी रही। महात्माजी किसी भी श्रवणकर्त्ताको यह नामध्वनि सुनाते समय उस नलीका अपने पासवाला छोर अपने एक अंगसे हटाकर दूसरेपर, फिर तीसरेपर, कभी पीठपर, कभी जंघापर, कभी हाथोंकी अँगुलियोंपर संस्पृष्ट कर देते हैं और परिणाम एक ही संघटित होता है – वही नाम-ध्वनि। एक-सी ही सुमधुर स्पष्ट योगध्वनि उनके रोम-रोमसे उच्चरित होती रहती है।

मैं चकित हूँ – कैसे-कैसे महापुरुष श्रीभाईजीके पास आते हैं और उनके सत्संगके लिये लालायित रहते हैं।

मैंने जब इन टाटबाबा महात्माजीसे अपनी इस सिद्धिका साधन पूछा तो उन्होंने कहा कि सब भगवान् नारायणकी कृपाका ही फल है। उनका कथन था कि उनकी सन्निधिमें उनके संकल्पसे किसी भी जड़-चेतन पदार्थसे यह पावन नामध्वनि निस्सरित हो सकती है।

इसके पश्चात् इन्होंने अपना टाटवस्त्र मेरे कानमें लगानेको कहा। मैं आश्चर्यचकित हो उठा। उनके टाटवस्त्रसे भी उसी दिव्य मधुरतासे भरी वह ध्वनि श्रवणगोचर हो रही थी। मैं आश्चर्याभिभूत था। महात्मा नारायणस्वामी (टाटबाबा) यही उनका नाम था। ये वर्षों बद्रिकाश्रममें तपस्यारत रहे हैं। इन्हें भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हो चुके हैं। इन्होंने भगवान् नारायणसे इसी सिद्धिकी याचना की थी कि वे जहाँ चाहें वहींसे, साथ ही जबतक उनका शरीर रहे उनके रोमरोमसे भी, उन्हें कल्याण शक्तियोंसे समन्वित प्रभुका पावन, चिन्मय

नाम दिव्य मधुर ध्वनिके रूपमें सदैव निनादित श्रवणगोचर होता रहे। तबसे उनके शरीरका एक रोम भी नामध्वनिसे वंचित नहीं है। भगवान्‌के वरदानसे वे इतने शक्तिसम्पन्न हैं कि अन्य किसीको भी यह नामध्वनि श्रवणगोचर करा सकते हैं। साथ ही, उनका जो, जहाँ, जैसा भी दृश्य होता है, उनके संकल्प करते ही उसमें से भी वैसी ही पावनतम 'नारायण' नामध्वनि प्रकट हो जाती है। बस, इसी वरदानका परिणाम उनकी यह सिद्धि है। यदि उनका बुरे-से-बुरे स्थानपर भी प्रारब्धवश गमनागमन हो जाय, तो यह नाम-संकीर्तन-प्रवाह उनके चतुर्दिक् ऐसा नाम-वर्तुल सृजन कर देता है कि ये सर्वत्र नाममें ही डूबे बने रहते हैं। इनकी नामसिद्धि इनके विचारोंको भी सदैव एकाग्र भगवद्रसमें समाहित रखती है, इससे इनकी वृत्तियाँ इन्द्रिय-विषयानुगामी नहीं हो पातीं।

बहुत ही बड़ा, विलक्षण नारायण-नाम-कवच भगवान्‌ने इन्हें प्रदान किया हुआ है।

श्रीनारायणस्वामी (टाटबाबा) भगवान् नारायणके आदेशसे ही श्रीभाईजीसे मिलने आये हैं। इन्हें भगवान् नारायणने जगत्-कल्याणके लिये जो भी नियमावली बतायी है, उसे ये गीताप्रेससे प्रकाशित करवानेके लिये श्रीभाईजीको समर्पित करने ही गोरखपुर आये हैं।

मैंने अपने परिवारके सभी स्त्री-पुरुष-बच्चोंको इन महात्माजीकी यह सिद्धि दिखाई है। ये हम सभीपर अतिशय कृपालु हैं। मेरी अ.सौ. माताको इन्होंने नामजप करनेका विशेष निर्देश दिया है।

....

(श्रीहरि)

स्थानः बंगाली बाबूका बगीचा
गोरखनाथ मन्दिरके पास,
गोरखपुर।

तिथि आश्विन कृ. चतुर्थी वि.सं. १९९०
शुक्रवार ता. ८ सितम्बर, १९३३ ई.

आज सायंकालके सत्संगमें श्रीभाईजीने श्रीकृष्णाष्टकके पश्चात् श्रीनारायण स्वामीका 'जाहि लगन लगी घनश्यामकी' पद-गायनका आदेश दिया। (गोरखपुरमें पधारे हुए उपर्युक्त पूर्व वर्णित नारायणस्वामी पदरचनाकर्त्ता नारायणस्वामीसे भिन्न हैं।) पदगायनके पश्चात् श्रीभाईजी आधे तो भावावेशमें

थे एवं आधे विनोदरत थे। वे कह रहे थे – जैसी हेतुरहित अगाध प्रीतिका दिग्दर्शन इस पदमें हुआ है, वैसा जीवनमें उतरना दुर्लभ है। आज तो ऐसे निश्छल प्रीतिसम्पन्न महात्मा ही नहीं दिखते जो इस प्रकारके पदोंके भावोंमें निरन्तर डूबे रहते हों। गोपीके अतिरिक्त और कौन है, जिसमें ऐसी प्रीति प्रकट हो। यह पद प्रीतिजगत्की एक पवित्र निधि है। इसके पश्चात् आन्तरिक विह्वलतावश भाईजी कुछ कालके लिये मौन हो जाते हैं। किञ्चित् संवरित होनेपर इस पदका भाव कहने लगते हैं। वे कहते हैं कि 'गोपीका तन तो उसके घरमें रहता है, परन्तु मन तो सदैव पूरा-का-पूरा श्रीकृष्णके निकट ही अवस्थित रहता है।'

'अहा ! कैसी शोभा होती है उसके प्राणवल्लभ श्रीकृष्णकी ! मानो वे श्यामलताके अनिर्वचनीय फल हों, जो मधुर सुस्वादु रससे पूरित हुए उस गोपीकी लोभनीय वस्तु बन गये हैं। कैशोरभाव उनके अंग-प्रत्यंगोंमें समस्त मधुरिमा और उच्छलित आनन्द उडेल रहा होता है। घुँघराली अलकें उनके कपोलों एवं ललाटपर झूलती रहती हैं। वे गोपीका पूरे-का-पूरा चित्त अपनेमें संलग्न कर लेती हैं। इसीलिये गोपी पैर कहीं रखती है और उसके पैर पड़ते हैं किसी और स्थानपर। उसे अपने निवासस्थानकी भी सुधि कैसे रहे ? उसका पूरा चित्त तो देख रहा है अपने प्राणवल्लभके गोखुरोंसे उड़ी धूलिसे भरे आननको। ओह ! कुन्तलमण्डित मस्तकपर मयूरपिच्छका मुकुट कितना शोभामय है ! केशोंमें सुरभित वन्य प्रसून ग्रथित हैं। उसके प्राणपतिके नेत्रोंकी मनोहर चितवन और अधरोंपर व्यक्त मृदु स्मितकी शोभा देखलेनेके पश्चात् भी क्या उसे संसारमें कुछ सार समझमें आ सकता है ? यह तो स्वाभाविक ही है कि अब तो जिधर श्यामसुन्दर उसे दिखें, उधर ही वह दौड़ पड़ेगी। भला, वेणुके छिद्रोंमें स्वर भरता वह नवकिशोर नटवर जिसे दिख जावे, फिर उसे छाया-घामकी क्या परवाह ? वह तो अपने नवकिशोर प्रियतमके चरणोंमें न्यौछावर हो गयी। जिसे वह श्यामसुन्दर कदम्ब वृक्षके नीचे वेणु बजाता, भौहें मटकाता दिख जावे, उसके प्राण तो निश्चय ही उसी क्षण देह छोड़कर अपने प्राणवल्लभसे मिलने उड़ चलते हैं। जब देहमें प्राण रहें ही नहीं तो फिर निन्दा-स्तुतिकी किसे परवाह ? अब तो वह या तो सर्वथा विक्षिप्त-चित्त घूमती रहेगी, या श्यामसुन्दर उसकी देहमें अपने प्राण समाहितकर उससे भले ही जो इच्छा हो, सो करवावें। वह अब संसारके प्रयोजनकी वस्तु न रहकर मात्र

भगवान्‌के प्रयोजनकी ही हो जाती है।'

इस प्रकार पूरे पदकी व्याख्या करते-करते ही भाईजी भगवान्‌के आशिख ध्यानमें निमग्न हो गये। आसनपर उनका हलचल-रहित शरीर सर्वथा स्थिर था। श्वास-प्रश्वासके अतिरिक्त न कोई कम्पन, न ही कोई स्पन्दन; वार्त्ता करते-करते ही मनकी सम्पूर्ण चञ्चलताओंसे अतीत हो जाना – वस्तुतः परम विस्मयकारी था। सारे दिवस अत्यधिक सक्रियता, सबकी चिन्ता-व्यवस्था करना, कल्याण-गीताप्रेस – सबकी सुचारु व्यवस्थामें निरत रहना और एक क्षणमें ही पूर्ण शान्ति। इसके लिये न कोई आयास, न ही इस चरमान्तर्मुखताकी लोकोत्तर स्थितिपर आरूढ़ होनेमें कोई विलम्ब। तुरन्त चरम निवृत्तिकी विलक्षण स्थिति – वस्तुतः इससे बड़ा सहज योगी कौन हो सकता है ?

मैं विचार कर रहा था कि श्रीभाईजीके शरीरमें हलका-सा कम्पन हुआ। वे धीरे-धीरे बोल उठे – "देखो, देखो ! शोभासमुद्र गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण गौओंके पीछे-पीछे असीम रस बरसाते आ रहे हैं। उनकी चाल इतनी सुन्दर है, कि लगता है मानो वे नृत्य करते चल रहे हैं। इनके संकल्पसे इनकी अञ्जलिमें स्वतः ही बृन्दावनके सुरभित पुष्प भर जाते हैं और ये इन्हें इनकी ओर सतृष्ण नेत्रोंसे निहारती हुई, अटारियोंपर चढ़ी गोपियोंपर ऐसे रसमय ढंगसे उछालते हैं कि पुष्प सीधे उनके मस्तकपर गिरकर सारे शरीरपर बरस जाते हैं। ये गोपियाँ भी इसके प्रत्युत्तरमें इनपर सुन्दर-सुन्दर वनमालायें फैंकती हैं और श्रीकृष्ण इन वनमालाओंसे आकण्ठ भर जाते हैं। चारों ओरसे गोपियों द्वारा इतने पुष्प बरसाये जा रहे हैं कि नन्दग्रामका सारा राजपथ ही रंग-बिरंगा पुष्पमय हो रहा है।

वर्णन करते-करते श्रीभाईजी 'राधारमण जय कुंज बिहारी, मुरली-धर गोवर्धनधारी' का संकीर्तन कराने लगे। वे ताली बजा-बजाकर संकीर्तन कर रहे थे। यह कीर्त्तन बहुत कालतक होता रहा। समय हो जानेसे इसी कीर्त्तनके पश्चात् सत्संगका समापन भी हो गया।

++ ++ ++

उपर्युक्त विवरण मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी डायरीसे नकल किये हुए पत्रोंसे उद्धृत है। यद्यपि विवरण तो पूरे माहके अनुष्ठानका है, किन्तु विस्तारभयसे यहाँ मात्र तीन-चार प्रारंभिक दिवसोंका ही विवरण दिया गया है। इस विवरणसे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि श्रीपोद्दार

महाप्रभुकी दशा १९३०ई.से, जबसे उन्हें श्रीराधाकृष्णके दर्शन हुए तभीसे ऐसी ही पूरी भगवन्मय थी। यदि इनकी स्थिति प्रगाढ़ भगवद्रसमें परिपूर्ण निमग्न नहीं होती तो ये इस अनुष्ठानकालके ठीक तीन वर्ष पश्चात् पू.गुरुदेव श्रीचक्रधरजी महाराज (भविष्यमें श्रीराधाबाबा)को मात्र चरणस्पर्श करके भगवद्दर्शनदान नहीं दे पाते। किसी पामर विषयीको अपनी हेतुरहित कृपावर्षासे भगवान्‌की भक्तिमें संलग्न कर देना सरल है, क्योंकि विषयोंमें सुख-शान्ति-आनन्दका आभास मात्र ही होता है, वस्तुतः आनन्द होता नहीं; विषय तो आपाततः दुखयोनि हैं; परन्तु किसी ब्रह्मज्ञानीको उसके आत्मस्वरूपगत घन-आनन्द, मात्र-आनन्द, केवल-आनन्दानुभूतिसे श्रीकृष्ण-भक्ति-भावित कर देना, अपार सच्चिदानन्द-समुद्रमें डूबे किसी चतुर्थ भूमिकामें प्रतिष्ठित ब्रह्मज्ञाननिष्ठ सन्तको श्रीकृष्ण-चरण-किंकरी-पद दे देना, वस्तुतः कारक पुरुष कोटिके महाप्रभुओंकी ही सामर्थ्यका प्रकाश है। इस भाँति हेतुहीन रूपसे असंभवको संभव कर देना नारदादि कोटिके कारक पुरुषोंसे ही संभव है। भक्तिगरिमाके इस असमोर्ध्व कार्यको अति सहजतापूर्वक करके महाप्रभु हनुमानप्रसादने सिद्ध कर दिया था कि वे अपने प्रियतम श्रीराधा-माधवसे पूरे आत्मसात् हो चुके हैं।

ऊपर तो मैंने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी डायरीका ही उद्धरण दिया है; किन्तु अब मैं स्वयं श्रीपोद्दार महाप्रभुकी अपनी ही उक्तिको उद्धृतकर यह सिद्ध करता हूँ कि श्रीपोद्दार महाराज १९३० ई.से ही महाप्रभु कोटिके भगवद्भक्तोंकी श्रेणीमें आ चुके थे।

श्रीपोद्दार महाप्रभुका स्वानुभूति-प्रकाशक एवं स्वरचित पद ही इसका प्रमाण है। पदरचना निम्नलिखित है:

नयन मन जबतैं आइ बसे।
तब तैं आठों याम दिवस निसि, निमिषौ नाहिं खसे।।
सबके नयन प्रपंचहि निरखत, सबके मन संसार।
इहाँ जगत आवन नहिं पावत, निरतत नन्दकुमार।।
ललित तृभंग पीत पट शोभित, गल गुंजनकी माल।
मुकुट मयूर पिच्छ कुंचित कच, मृगमद तिलक सुभाल।।
कर मुरली कटि किंकिणि राजत, पग नूपुर झनकार।
नील स्याम बदनारविन्दपर काम कोटि सत वार।।
अधर मधुर मुसकान मनोहर, तिरछी चितवन जाल।
मुनि मन विहग अगम्य निरखि छवि आइ फँसत तत्काल।।

नित्य प्रकासित स्याम-सूर्य तहँ जग-तम जात डराय।
दुस्साहस कर जाय कबहुँ जो, बिनु मारें मरि जाय।।

यह पदरचना किस नियत तिथिमें श्रीपोद्दार महाराज द्वारा हुई, इसका विशेष महत्व नहीं है। संभव है, यह १९५६ ई.के पश्चात् ही हुई हो; परन्तु इस रचनाकी प्रथम पंक्तिमें ही श्रीपोद्दार महाराजने स्पष्ट संकेत कर दिया है कि जब उनके नयन एवं मनमें भगवान् श्रीकृष्णका प्रथम पदार्पण हुआ उसी पावनतम क्षणसे एक पलके लिये भी भगवान् श्रीकृष्ण उनके चित्तसे हटे नहीं हैं।

यहाँ एक बात समझनी है – तात्विक रूपसे तो भगवान् श्रीकृष्ण सर्वत्र हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वसुहृद् हैं, अतः चित्तके प्रकाशक होनेके नाते किसी भी प्राणीके चित्तसे उनकी सत्ताका लोप हो जाना, हट जाना तो संभव ही नहीं है। किन्तु यहाँ तत्वकी, द्रष्टाकी बात है ही नहीं, यहाँ तो नैन-मनके दृश्यकी बात हो रही है। द्रष्टा-साक्षीके रूपमें तो भगवान् कहीं आते-जाते नहीं हैं। वे अपनी महिमामें नित्य स्थित हैं। वे किसीके नयन और मनमें परिच्छिन्न कदापि नहीं हो सकते। नयन एवं मन तो गुणोंका कार्य हैं, अतः मनमें जब तमोगुणका प्रवाह बहता है तो मन अज्ञानमें, निद्रामें डूब जाता है। नयनोंमें न जाने कौन-कौनसा, कहाँ-कहाँका, अच्छा-बुरा प्रमाद-दृश्य निरन्तर प्रवाहित रहता है। स्वप्नमें भी नयन एवं मन संसार देखना स्थगित नहीं करते।

किन्तु श्रीपोद्दारजीकी विलक्षण भावदशा है, उनके आनन्दका तो कहना ही क्या है ? उनके नयनोंमें अविराम आठों याम, रात्रि-दिवस, उनके प्राणवल्लभ नीलसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र भरे ही रहते हैं। पलक झपकनेके एक निमेषकालके लिये भी वे उनके हृदय-पटलसे नहीं ओझल होते। पूर्व संस्कारोंवश उन्हें अवश्य स्मृति आती है कि सबके मनमें संसार-प्रपंच भरा रहता है। कोई हटाना चाहे तो भी वह बरबस हटता नहीं। उनकी शक्तिसे तो यह इन्द्रियजन्य विषय-मूल संसार उनके हृदयसे भी हटा नहीं है। किन्तु उनपर तो उनके आराध्य प्राणपतिकी विलक्षण कृपा हुई है, और उनके चित्तसे जगत्की सत्ता ही, प्रपंचका अस्तित्व ही श्रीकृष्णने विलीन कर दिया है। जगत् अन्ततः है क्या? वह उनके प्रियतम श्रीकृष्णका प्रतिबिम्ब मात्र ही तो है। आज उनकी श्रीकृष्ण-कृपा-पूरित दृष्टिमेंसे उस प्रतिबिम्बका अस्तित्व ही विलीन हो गया है। अब प्रतिबिम्ब रहा ही नहीं, बिम्ब-ही-बिम्ब बचा है। उन्हें यह आश्चर्य अवश्य है कि बिम्ब अनेक कैसे हैं ? उनके प्राणाधार जीवनसर्वस्व तो एक हैं, फिर

जिधर देखें उधर ही जो अनन्त श्रीकृष्ण दीख रहे हैं – यह क्या खेल है ? एक क्षण तो वे नेत्र मूँदकर अपने हृदयस्थ आराध्यबिम्बको देखते हैं, फिर नेत्र खोलकर सम्मुख दृश्यरूपमें अवस्थित असंख्य प्रतिबिम्बोंके रूपमें श्रीकृष्णोंकी ओर देखने लगते हैं। उन्हें इसी बातका आश्चर्य है कि उनकी हृदयस्थ इष्टमूर्ति और दृश्यरूपमें खुली आँखों बाहर दिखनेवाली असंख्य श्रीकृष्ण-मूर्तियोंमें किञ्चिन्मात्र भी कहीं कोई अन्तर नहीं। एक-सी छवि, एक-सा सौन्दर्य-माधुर्य, वैसी ही एक-सी मुसकान। श्रीपोद्दारजी प्रेमभ्रान्त हो उठते हैं। उन्हें संभ्रम हो उठता है कि क्या उनके आराध्य श्रीकृष्ण अनन्त हैं ? रसस्रोतमें डूबता-उतराता उनका चित्त गा उठता है:

सबके नयन प्रपंचहि निरखत सबके मन संसार।
इहाँ जगत आवन नहिं पावत निरतत नन्दकुमार।।

शनैः-शनैः श्रीपोद्दार महाप्रभुकी बुद्धि भी इन श्रीकृष्ण रूपी सिन्धुकी लहरोंमें आप्यायित हुई ढक जाती है। वे गान कर उठते हैं–

ललित तृभंग पीत पट सोभित गज गुंजनकी माल।
मुकुट मयूर पिच्छ कुंचित कच, मृगमद तिलक सुभाल।
कर मुरली कटि किंकिणि राजत, पग नूपुर झनकार।
नील स्याम वदनारविन्दपर काम कोटि सत वार।।

विलक्षण श्याम-सूर्य श्रीपोद्दार महाप्रभुके हृदय-पटलपर जगमगा रहा है। वे अतर्कित, असम्भावित और अप्रत्याशित आनन्दसे परिपूर्ण हैं। उनके नेत्रोंसे प्रेमानन्दके सुखविन्दु झरने लगते हैं, रोम-रोम श्रीकृष्णके अपरोक्ष दर्शनानन्दमें आप्यायित है। श्रीपोद्दार महाराजका मन श्रीकृष्णमें इतना एकात्म हो गया है कि उन्हें अनुसंधान ही नहीं रहता कि उनके हृदयमें श्रीकृष्ण हैं या मन है।

इन दिनोंके ही सत्संगमें एक दिवस श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीसे अपनी अनुभूतिका वर्णन करते-करते श्रीपोद्दार महाप्रभु कह बैठते हैं – जो गुणातीत और मायातीत स्वरूप श्रीकृष्णने मेरे हृदयमें ही नहीं, रोम-रोममें, मेरे चर्म-नेत्रों और प्राकृत मनमें अपनी हेतुरहित कृपासे भर दिया है, उसके रूप-सौन्दर्यका वर्णन करनेकी शक्ति चौदह भुवनोंमें किसीकी नहीं है।

शास्त्रोंमें जो वर्णन है, वह तो मात्र ध्यानकी सुकरताके लिये ही है। महात्मा ध्रुव, अर्जुन, भीष्म, विदुर, कुन्ती, कर्दम आदिने जो भगवान्‌का रूप-दर्शन किया, वह ऐश्वर्य-भूमिका रूप है। श्रीपोद्दार महाराजके हृदयमें तो उनका

निज-जन-मन-मोहन ही नहीं, स्वमन-मोहन रूप प्रकट हुआ है। वह नित्यकिशोर नटवर विग्रह है। वह पीताम्बरधारी है, गलेमें गुञ्जोंकी माला धारण किये है, गोपवेश है। उसके सिरपर मुकुटकी तरह मयूरपिच्छ शोभायमान है। उसके केश घुँघराले हैं, उसके भालपर मृगमदका तिलक है। उसके हाथोंमें मुरली है, कमरमें किंकणी नामक आभूषण रुनझुन कर रहा है, और पैरोंमें नूपुरोंकी ध्वनि झंकार कर रही है। अहा ! वदनपर नित्य मधुर मोहन स्मित हास्य है। इस श्याममेघके सदृश नीलाभ श्यामवर्ण सुन्दर किशोरपर श्रीपोद्दार महाप्रभुका चित्त ऐसा मुग्ध है कि वे उसपर करोड़ों ही नहीं, अरबों कामदेव न्यौछावर कर दे रहे हैं। उन अविनाशी परब्रह्म परमात्माके भी आधारस्वरूप श्रीपोद्दार महाप्रभुके आराध्य श्रीकृष्णके अधरोंपर ऐसी निरतिशय मधुर मुसकान निरन्तर विराजित रहती है। साथ ही वे अपनी तिरछी चितवनका ऐसा मनोरम जाल फैंकते हैं, कि शुक, नारद, भीष्म, ब्रह्मा एवं रुद्रादिका मन-पंछी भी उसमें तत्काल ही फँस जाता है। यह श्याम-सूर्य श्रीपोद्दार महाप्रभुके चित्त-पटलपर यावज्जीवन, जीवनके शेष चालीस वर्षोंतक निरन्तर इस प्रकार अपने प्रखर तेजसे जगमगाता रहा कि एक क्षण भी उसके अस्त होनेका प्रश्न ही नहीं रहा। अब सांसारिक मायाकी तमोमयी निशाके वहाँ आगमनका तो प्रश्न ही कहाँ रहता ? यदि कभी वह दुस्साहस करके उनकी ओर झाँक भी लेती तो बिना मारे ही मर जाती। ऐसी प्रखर प्रेम-तेजोमयी उनके आराध्य श्रीकृष्णकी छवि उनके हृदयमें अक्षुण्ण विराजित रहती थी।

अपने प्रियतम नीलसुन्दर प्राणपतिके दिव्य रूप-सौन्दर्यको देख कर श्रीपोद्दार महाप्रभुकी कैसी विचित्र दशा हुई है, इसका द्योतक उनका निम्नलिखित पद साधकवर्ग अनुशीलन करें – श्रीपोद्दार महाप्रभु लिखते हैं–

पता नहीं कुछ रात दिवसका, पता नहीं कब संध्या भोर।
जाग्रत स्वप्न दिखाई देता श्याम सदा मेरा चितचोर।।
भूल गयी, मैं नाम-धाम सब, भूल गयी सुधि हूँ मैं कौन।
नयन नचाकर, प्राण हरणकर, खड़ा हँसरहा धरकर मौन।।
कैसी मधुर मूर्ति वह कैसा था विचित्र मनहारी रूप।
आँखें झूर रहीं, झरतीं नित, करतीं स्मृति सौन्दर्य अनूप।।
मर्म बेधकर धर्म मिटाया किया चूर सारा अभिमान।
लोक लाज कुल कान मिटी सब, रहा न कुछ निज-परका भान।।

हा ! कैसा विधुवदन सुधामय विचर रहा कालिन्दी-कूल।
हर सर्वस्व बाँध सब तोड़े, मिटे सभी मर्यादा-कूल।।
मनसा मिल रहते मेरे सब अंग नित्य प्रियतमके संग।
नहीं छूटता, कभी सभी विधि, रहता सदा श्यामका संग।।
रसमय हुई, नित्य रस पाकर, रसिक रसार्णवका सब ओर।
बही रस-सुधा-सरिता-धारा, प्लावितकर सब, रहा न छोर।।
श्याम रहे, या रही मैं कहीं, कुछ भी नहीं रहा सन्धान।
श्याम बने मैं, श्याम बनी मैं, एकमेक हो रहे महान।।

(पद रत्नाकर पद सं. ४८८)

अपने प्रियतमके अश्रुतपूर्व सौन्दर्यके दर्शनसे श्रीपोद्दार महाराजको यह पता ही नहीं रहता कि कब रात होती है, और कब दिवस व्यतीत हो जाता है। कालकी सत्ता तो देहज्ञान रहनेतक ही है। जब यही ध्यान नहीं रहा कि मैं हूँ, मेरा कोई नाम-रूप-देह-धाम है, तब कालकी प्रतीति होगी भी तो किसे ? जिसके रूप-दर्शनमें अपना स्वरूपानुसंधान ही मिट गया, जिसका नाम-स्मरण करते-करते, स्वयं अपना नाम ही विस्मृत हो गया, अब तो बस, वह एक ही छवि शेष रह गयी –"जिसके चञ्चल मनोहर नेत्र अत्यन्त विशाल हैं, और जो उन्हें नचा-नचाकर, हँस-हँसकर, प्राण-हरणकर रहा है। कैसा विचित्र मनोहर रूप है, कैसी मौन मधुर मूर्त्ति है ?" उसके अनुपम सौन्दर्यकी स्मृति करते-करते, आँखें निरन्तर झरती-झरती, अश्रु बहाती थक जाती हैं; उसने उनके हृदयको भीतरी मर्मतक, अपनी कटीली चितवनकी कटारीसे बेध दिया है। अब धर्म भला कैसे बचे, वह तो मिटना ही था और अभिमान तो प्रारंभमें ही चूर-चूर हो गया। जब स्वयंका और परायेका भी बोध नहीं रहा तो लोककी लज्जा एवं कुलके गौरवकी रक्षाका तो प्रश्न ही कहाँ रहा ?

अब तो श्रीपोद्दार महाप्रभुका जगत्का भान ही जाता रहता है। बस, एक ही परम विलक्षण दृश्यमें वे डूबे हैं। "अहा ! पावनतम कलिन्दकन्याका तट है। रविनन्दिनीकी नील लोल लहरियाँ उछल- उछलकर अठखेलियाँ कर रही हैं, और इस निरतिशय अनुपम शोभाको निरखता श्रीपोद्दार महाराजका प्राणवल्लभ नीलसुन्दर, जिसका आनन सुधास्रावी चन्द्रमाके समान है, चतुर्दिक् विचरण कर रहा है। उसने अपने दर्शन मात्रसे इनका सर्वस्व हर लिया है, और अब तो मर्यादाके तट-किनारे ही नहीं रहे। सभी लज्जा-संकोचके बाँध भी टूटगये हैं। वे चाहे गोरखपुरमें कुछ भी कर रहे हों, मनसे तो उनके सभी अंग अपने प्रियतम

प्राणवल्लभके अंगोंसे जा मिले हैं। यह मिलन ऐसा प्रगाढ़ है, कि अब तो सभी प्रकारसे श्यामसुन्दरका संग कभी छूटनेका प्रश्न ही नहीं। सर्व ओरसे रसिक रस-सागर प्रियतमने उन्हें इतना घुला-मिला लिया है कि वे प्राकृत देह न रहकर पूर्ण अप्राकृत रसमय रसस्वरूप ही हो गये हैं। उनको पूर्णतया अपनेमें लीन करती उनके प्रियतमकी प्रीति-रसामृत-सरिता-धारा ऐसी उमड़ी है कि उसका कोई छोर-किनारा दिखता ही नहीं। उन्हें अब तो यह भी सन्धान नहीं है, सत्तारूपमें उनके प्रियतम श्याम हैं, कि वे स्वयं हैं। प्रियतम श्याम उनका स्वरूप बन जाते हैं और वे अपने प्रियतमका रूप हो जाते हैं। दोनों एकमेक हो गये हैं।"

श्रीपोद्दार महाप्रभु द्वारा रचित इन उपरोक्त पदोंकी साक्षीसे मैंने उनके आन्तरिक चालीस वर्षकी रहनीपर एक प्रामाणिक दृष्टि डाली है।

अब पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी अनुभूति पू.पोद्दार महाप्रभुके स्वरूपमें क्या होती थी, इसका उल्लेख साधकवर्गके सम्मुख कर दे रहा हूँ। वस्तुतः सच्चा शिष्य वही है, जिसे अपने पारमार्थिक सद्गुरुके रूपमें अपने इष्ट परमात्माकी ही अखण्ड स्फूर्ति हो। यदि किसी भी साधकको सद्गुरुके रूपमें प्राकृत मनुष्य दृष्टिगोचर होता है, तो वह अपने गुरुसे उसका प्राकृत गुण-दोषमय स्वभाव ही ग्रहण करेगा। उसे इष्टका अनुभव तो होगा ही नहीं। इसीलिये अधिकांश शिष्योंके अन्तरिक जीवनकी उपलब्धियोंपर जब मैं दृष्टिपात करता हूँ, तो मुझे उनपर उनके गुरुकी मात्र सात्विक रहनीका ही असर दिखता है; इष्टोपलब्धिसे वे वंचित ही रहते दिखायी पड़ते हैं। वस्तुतः इष्टोपलब्धि उन्हें ही होती है जिनकी श्रद्धा अपने गुरुको इष्टके साक्षात् स्वरूपमें निरन्तर देहाध्यासमुक्त देख पाती है। वे विलक्षण श्रद्धापूर्ण शिष्य ही अपने गुरुदेवके माध्यमसे गुणातीत परमात्माके स्वरूपको उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः इष्ट एवं गुरुमें द्वैत हो गया, तो गुरु गुरुपदपर आरूढ हुआ ही नहीं।

हाँ, तो यह प्रसंग सन् १९४८ ई.के जनवरी मासका है। मैं सूर्योदयके पूर्व ही पू. गुरुदेवके दर्शन करने उनकी कुटियामें पहुँच जाया करता था। उस दिवस मैं पू.गुरुदेवके शय्या त्यागनेके पूर्व ही उनकी कुटीपर चला गया था। मैंने देखा कि श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालने आकर पू.गुरुदेवको पुकारकर जगाया। पू.गुरुदेव शीघ्रतामें उठे और उठकर सीधे अपनी कुटीके दक्षिण पथकी ओर पगडंडीपर दृष्टि स्थिर करके खड़े हो गये। मैं भी पू.गुरुदेवके समीप ही खड़ा हो गया। कुछ ही कालमें मैंने देखा श्रीपोद्दार महाराज अपने निवाससे उतरकर

पूर्व दिशाकी ओर बने शौचालयोंकी ओर प्रातःक्रिया करने जा रहे हैं। पू. गुरुदेवने जाते हुए उनकी बस, एक झलक देखी और तब वे अपनी कुटीकी ओर मुड़ गये। मैं जिज्ञासु हो उठा। क्या गुरुदेव प्रातः उठते ही श्रीपोद्दार महाराजका प्रतिदिन दर्शन करते हैं ? अपनी जिज्ञासाका समाधान करनेके लिये मैंने पू.गुरुदेवसे निस्संकोच पूछ लिया–"बाबा ! यद्यपि भाईजी सन्त हैं, परन्तु आप भी क्या किसी प्राकृत देहके प्रातः उठते ही दर्शन करनेमें विश्वास करते हैं ? आप तो संन्यासी हैं !" अधिकांशतया गुरुलोग अपने शिष्योंकी ऐसी अश्रद्धामयी कुतार्किक जिज्ञासाओंका उत्तर झिड़की देकर, तिरस्कृत करके ही देते हैं, किन्तु मेरे गुरुदेव इतने सात्विक स्नेहसने थे कि वे मेरे सभी अश्रद्धासम्पन्न प्रश्नोंको अतिशय प्यारसे समझाकर समाधान कर देते थे।

उन्होंने मुझे कहा:–"भैया ! क्या तू मेरी आँख रखता है ? मनुष्यकी पृथक्-पृथक् आँखें हैं। सभीके पृथक् विचार और पृथक् ही मन-बुद्धि-अन्तःकरण हैं। इन्हीं पृथक् विचारों और अन्तःकरणके अनुरूप ही मनुष्य किसी भी महान् या क्षुद्र वस्तुको देखता है। भगवान् श्रीकृष्णको जहाँ नन्द-यशोदादि गोप-गोपियाँ अपना पुत्र देखती थीं, वहीं शिव-सनकादि और गर्गाचार्य आदि ऋषि उन्हें साक्षात् भगवान् देखते थे। नित्यवन्दनीय आचार्योंने श्रीकृष्णको साक्षात् भगवान् माना, और उनकी पवित्र रसमयी लीलाओंका आध्यात्मिक स्तरपर रसास्वादन किया, वहीं विषय-विलास-मोहरत काम-कलुषित-चित्त कवियोंने श्रीकृष्णको चोर-जार माना। अब भी पापमति लोग उनके नामपर पापाचार करते हैं।"

"भैया ! श्रीपोद्दार महाराजके प्रति तुम्हारी ऐसी ही देह-दृष्टि है। तुम श्रीपोद्दारजीको अपना धर्मका मामा, जड़-भौतिक शरीर देखते हो, अतः तुम्हें इनके जड़-भौतिक शरीरसे जो प्यार अथवा उपेक्षा मिलनी है, मिलेगी। जैसी दृष्टि होती है, वैसी ही सृष्टि होती है।"

"मैंने तो सन् १९३९ ई.से, जबसे इनका संग ग्रहण किया है, कभी एक क्षणके लिये भी इन्हें जड़-भौतिक शरीर नहीं देखा। मुझे पहले तो इनके शरीरके अणु-अणुमें मेरे आराध्य श्रीकृष्ण भरे दिखते थे, किन्तु इसके एक-दो वर्ष पश्चात्से ही इनके स्थानपर साक्षात् श्रीराधारानी – मेरी इष्टदेवी ही दिखती हैं।'

'मेरे सत्यपर तुझे विश्वास हो तो मान ले, अभी-अभी मुझे जो शोभा श्रीपोद्दार महाराजकी सत्तामें परिलक्षित हुई है, उसका सौन्दर्य, सुकुमारता, सौशील्य शब्दोंसे वर्णन किया ही नहीं जा सकता। यदि शब्द कुछ संकेत दे

सकते हैं तो इतना ही कि जिस पथसे अभी कोई विलक्षण रमणी मेरी दृष्टिके सम्मुखसे पद-निक्षेप करती गयी है, उसका वर्ण श्वेत चम्पाके सदृश था। मुख शारदीय राका-शशिका गर्व हरण कर रहा था। उसके सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग ही नहीं रोम-रोमकी छटा कोटि-कोटि शशधरोंकी कान्तिके सदृश झलमल कर रही थी। नेत्र शरद् ऋतुके विकसित पद्मदलोंके सदृश थे। अरुण अधरोंकी लालिमा वैसे तो अप्रतिम थी, किन्तु कुछ-कुछ बिम्बफलोंसे उसकी समानता की जा सकती है। उस बालाका क्षीण कटिप्रदेश दिव्य करधनीसे समलंकृत था। कुन्द कुसुमके समान उसकी स्वच्छ दन्तपंक्तिकी छटा थी। दिव्य नील पट्टवस्त्र उसने धारण कर रक्खे थे। उसके प्रसन्न मुखारविन्दपर मृदु मुसकानकी छटा छायी थी। उन्नत उरोज थे। दिव्य रत्नमय विचित्र आभूषणोंसे सज्जित वह बाला अल्प किशोर वयकी थी। उसकी केशराशि कुञ्चित, घुँघराली थी और उसपर मल्लिका एवं मालतीकी मालायें ग्रथित थीं। उसके अंग-प्रत्यंग सुकुमार थे और ऐसा प्रतीत होता था मानो, श्रीका अनन्त लहराता समुद्र ही सामनेसे गुजर गया हो।"

"ओह ! क्या ही त्रिभुवनमोहिनी उसकी मुसकान थी। पिंगल वर्ण उसके श्रीअंग शोभाके निर्झर थे। नवनीरद वर्ण लहँगा और रक्तवर्ण कंचुकी वह धारण किये थी। शुद्ध जरीसे खचित एवं अनमोल मुक्तामणियों एवं विविध वर्णके रत्नोंसे जटित हरिताभ वर्णकी ओढनी सर्वत्र विलक्षण शोभा प्रसरित कर रही थी। उसके भालपर सजी मृगमद बिन्दुओंकी मरवट और वेणीमें निबद्ध कुञ्चित केशराशि पीठपर लहरा रही थी। मणिमय चन्द्रिका मस्तकपर शोभित थी एवं रत्नहारोंसे वक्षस्थल भरा था। इन सबसे सर्वोपरि, सुन्दर सुमनोंकी वनमाला सुशोभित थी। कोटि-कोटि मन्मथ इसके एक रोमपर न्यौछावर हो रहे थे। इसके कर्णस्पर्शी विशाल नयनोंकी बंकिम चितवन ऐसा जाल बिछाये थी जिसमें मुनि-मन-मोहन, सर्वविमोहन, चर-अचर-मोहन श्रीकृष्ण फँसकर निकल ही नहीं पाते।"

मैं विस्फारित-नेत्र चकित बना पू.गुरुदेवकी अनुभूतिका वाणीगत वर्णन सुन रहा था। वह वाणीगत वर्णन ही जब इतना चमत्कारी था, तो पू.गुरुदेवका प्रभाती स्वगुरु-दर्शन कैसा मनोरम होगा, मेरे आश्चर्यकी कोई सीमा नहीं थी।

मैं अपनी जिज्ञासाको रोक नहीं सका, बोल उठा– "बाबा ! वस्तुतः श्रीपोद्दार महाराज ऐसे ही हैं अथवा आपकी श्रद्धामयी आँख उनमें आपको ऐसा

विलक्षण दर्शन करा रही है ?"

पू.गुरुदेव मेरी अश्रद्धापूर्ण शंका सुनकर किंचित् क्षुब्ध हो उठे थे। वे बोल उठे–"मूर्ख ! सन्त क्या हाड़-मांस-मल-मूत्रका पिण्ड, माता-पिताके मैथुनसे निर्गत रज-वीर्यका कलल होता है ? क्या तू उसे ही गुरु वरण करेगा ? यदि सन्त चिन्मय-वपु, रसानन्दसन्दोह, भावदेहमें परिनिष्ठित नहीं होगा तो क्या मल-मूत्रमय प्राकृत देहधारी होगा ? जब स्वयं ही वह अधोप्रकृतिके तमप्रधान कलेवरमें निहित होगा तो उसके द्वारा शिष्यके तमोगुणका निवारण कैसे होगा ? रे जड़मति ! यदि सन्त-जन-वन्दनीय पोद्दार महाराज महाभावसिन्धु साक्षात् जगज्जननी भगवती श्रीराधाका स्वरूप नहीं होते तो क्या मुझे मात्र प्रणिपात एवं चरणस्पर्शकरके सच्चिदानन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रीति दान देनेमें समर्थ होते ? यदि तुझमें काम-क्रोध, लोभ-मोह भरा है, तो क्या तू किसीकी भी सच्चिदानन्दमयताकी कल्पना भी कर सकता है ? प्राकृत मन-बुद्धिमें क्या अप्राकृत वस्तुकी कल्पना भी हो सकती है ? फिर प्राकृत देहधारी जीव अप्राकृतवपू श्रीकृष्णका किसीको दान कैसे करेगा, रे ?"

मैं चुपचाप उठा और पू. गुरुदेवके चरणोंमें गिर गया। मुझे अपना अपराधबोध हो चुका था। क्षमायाचना ही मेरे संतापराधको मार्जन करनेका एकमात्र अवलम्ब था।

उस दिन मैंने समझा कि सन्तदर्शन किसी भी पुरुषार्थ द्वारा साध्य नहीं। किसीको सन्तदर्शन भगवत्कृपासे ही संभव है। सन्त एवं परमात्मा दो नहीं। सन्त एवं इष्ट एक ही सिक्केके मात्र दो पहलू हैं। सन्त देह नहीं, उसकी आन्तरिक सच्चिदानन्दात्मक अनुभूति ही होती है।

मैं सोच रहा था–"श्रीपोद्दार महाराजको कोई नहीं जानता। कोई इन्हें पिता, कोई नाना, कोई 'भाईजी', कोई गीताप्रेसका सहृदय उदारचेता अधिकारी, कोई समाजसेवक, कोई गीतोपासक, भक्त-साधक, कोई धनी-मानी, कोई सफल विद्वान् पत्रकार, कोई धर्मात्मा, हिन्दूजन-सेवक, कोई धर्मनेता, कोई उपदेशक, व्याख्याता, धर्ममर्मज्ञ, कोई आर्त्त-सेवारत दयालु, कोई गोभक्त, कोई सनातन-धर्मका प्रतिनिधि नेता, कोई अप्रतिम उदार दानी, कोई कृष्णभक्त आदि-आदि मान एवं जान रहे हैं।"

किन्तु किसीको भी ज्ञान नहीं है कि इस वैश्य जातिके साधारणसे ठिगने मानवका कैसा विलक्षण अतुलनीय प्रभाव है। इसके भीतर जो सुलगती

प्रेमाग्नि है, विलक्षण दिव्य अनुराग है, इसका परिचय कहाँ किसे है ? श्रीपोद्दार महाप्रभुमें दुर्लभ प्रेमी-रसिक जनोंका आदर्श प्रवहमान है – यह किसे पता है ? इसीलिये शिव, ब्रह्मादि देवगण, शुक-सनक-व्यासादि महापुरुष, नर-नारायण आदि अवतारी तपस्वी, नारद-अंगिरा, हनुमान आदि भक्तिके आचार्य, दत्तात्रेय-गोरखनाथ जैसे योगीगण भी इस विचित्र वैश्यसे निरन्तर आते-जाते, मिलते रहते हैं एवं आन्तरिक अनुराग रखना चाहते हैं। इसका चरित्र सभी भारतीय सत्वप्रधान भक्ति-सम्पन्न धर्मात्माओंके लिये आनन्ददायी है। अचिन्त्य प्रभावशाली इस मानवमें स्नेह-समर्पण रखनेवाले भाग्यशाली जनोंको निश्चय ही कभी भव-बाधा नहीं होगी। मुझे तो निश्चय ही लोक-परलोककी सब चिन्ता छोडकर अनन्यभावसे इस दिव्य पुरुषसे ही हेतुरहित प्रेम करना चाहिये।

पू.गुरुदेवने अभी-अभी श्रीपोद्दार महाप्रभुके स्वरूपका वर्णन करते हुए जिस अलौकिक सौन्दर्यमयी रमणीका स्वयं दर्शन किया और जिसका वर्णन मुझे सुनाया – उसके तत्वको जानने-समझनेकी शक्ति तो मुझ पामर शूकरवत् शरीराध्यासीमें सर्वथा नहीं है। किन्तु यदि पोद्दार महाप्रभु सर्वशोभा-तिरस्कारी हरिवल्लभा जगज्जननी श्रीराधा ही हैं तो इनकी चरणधूलिके सेवनसे ही मुझे श्रीकृष्ण-चरणोंमें प्रेमकी प्राप्ति संभव है।"

"पू.गुरुदेवकी सत्य अनुभूतिपर तो कोई विकल्प-सन्देह करना महापाप है। निश्चय ही श्रीपोद्दार महाराजका हृदय – जिन्हें मैं अपना 'बड़े मामाजी' कहता-मानता हूँ, महान् आनन्दसे परिपूर्ण, तृप्त है। वे विशुद्ध सत्वमय, विद्यास्वरूप, परमानन्द-सन्दोह, वैष्णवधाम ही हैं। उनका वैभव आश्चर्यमय है। वे योगीश्वरोंके ध्यानपथसे भी परे महिमासम्पन्न हैं। अवश्य वे ही वृन्दावनमें राधा बने भगवान् श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ारत हैं। निश्चय-निश्चय ही किसी अचिन्त्य सौभाग्यवश मुझे निरे बालकपनसे उनकी आत्मीयता और वात्सल्य प्राप्त हुआ है। निश्चय ही कभी-न-कभी मुझ शरणागतका अवश्यमेव सौभाग्य होगा। ये पोद्दार महाप्रभु अपने प्रणत भक्त मुझपर दयातुर होंगे और अपने हेतुरहित कृपावलोकनसे मेरे मलिन अन्तःकरणको क्रमशः शुद्ध बनाकर अपने स्वरूपका प्रकाश करेंगे।"

मन-ही-मन इस प्रकार सोचता मैं तदर्पित चित्तसे उन महानन्दमय श्रीपोद्दार महाप्रभुके चरणोंमें वन्दना करने लगा।

* आरति श्रीपोद्दार महाप्रभुकी *

आरति श्रीपोद्दार प्रभूकी ।
महाभाव-रसराज विभूकी ।।

कृष्णकथामृत-मधु सुपिबन्तम्। पुलकाञ्चित-वपुषा विलसन्तम्।
प्रेमरुद्धगलमश्रु वहन्तम्। भावसमाधि सदा विहरन्तम्।
प्रीतिदान औढर शम्भूकी। आरति श्रीपोद्दार प्रभूकी।।

सर्व प्रिया-प्रियतम पश्यन्तम्। कदाचिदानन्देन हसन्तम्।।
क्वचिद् भाव-आविष्ट रुदन्तम्। झर-झर अविरल अश्रु पतन्तम्।।
कृष्ण-प्राणधन गोपवधूकी। आरति श्रीपोद्दार प्रभूकी।

सकल सुकर्म-प्रसविता सविता। त्रिभुवन माया-निशा-विहर्त्ता।।
सदा सुशीतल चन्दन-सरिता। तत्सुखभाव-उदधि उच्छलिता।।
भव-मलहारी रस-सिन्धूकी। आरति श्रीपोद्दार प्रभूकी।

हियमें राधाकृष्ण विराजित। मुख राधा-गुणगान सदा रत।
रोम-रोम पुलकित रस-प्लावित। नयन नेह-रस भर-भर आवत।
उमड़ी सरिता प्रेम-मधूकी। आरति श्रीपोद्दार प्रभूकी।

जयति मंगलागार दयामय। हेतुरहित दाता-कृष्णाश्रय।
ज्ञान-विराग-भक्ति-रस-सम्पद। मात-पिता-गुरु-भ्राता शरणद।
सुगम तरणि जन भवसिन्धूकी। आरति श्रीपोद्दार प्रभूकी।

शुद्ध सनातन धर्म-प्रचारक। पाप-दंभ भव-शोक-निवारक।
कृष्ण-भक्ति जन-जन विस्तारक। जय 'कल्याण'-आदिसम्पादक।
अभयद छाया कृष्ण-तरूकी। आरति श्रीपोद्दार प्रभूकी।

गो-ब्राह्मण-आरत-उद्धर्त्ता। बाढ-अकाल-व्याधि जन-भर्त्ता।।
रोग-शोक-दुख-दारिद-हर्त्ता। भगवन्नामामृत आश्रयिता।।
औषधि अमिट व्यथा हा-हूकी। आरति श्रीपोद्दार प्रभूकी।

बृषभानुपुर एवं ब्रजप्रदेशका प्रादुर्भाव

चौथा अध्याय

वे बालपनेके दिन तो अब मेरा स्वप्न ही हो गये हैं। प्रभु ही जानें, किस हेतुसे, मेरे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी मुझ जड़मति, पामरपर इतनी कृपा थी कि वे अपनी आन्तरिक अनुभूतियोंका निस्संकोच प्रकाश, प्रायः जब भी अवकाश होता, मुझे श्रवणगोचर कराया करते थे। एक दिवस ऐसे ही बैठे-बैठे मैंने जिज्ञासा कर ली थी कि "बाबा ! आपके स्वरूपगत ब्रजधामकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश डालिये। उसकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनाइये।" हमने पू. गुरुदेवके मुखसे ही सुन रखा था कि भगवान्‌के नाम, रूप, लीला एवं धाम चारों ही समान महत्वशाली होते हैं। पू.गुरुदेवने उन दिनों मुझे नियमितरूपसे कम-से-कम पचास हजार एवं अधिक-से-अधिक एक लाखतक क्रमानुसार नाम-जप करनेका नियम दिया ही हुआ था। शेष समय ब्रजभक्तोंके द्वारा रचित भगवान्‌के रूप-वर्णनके पद भी प्रायःगुनगुनाया ही करता था। उन दिनों गुरुकृपा ऐसी थी कि मुखसे जहाँ *'हरे राम'* महामन्त्रकी चौसठ मालाओंका जाप होता था, वहीं *'सुन्दर श्याम कमलदललोचन ललितत्रिभंग प्राणपति प्यारे'* इस पदका जाप महामंत्रके साथ-ही-साथ चलता रहता था। जिह्वा तो जोर-जोरसे *'हरे राम हरे राम'* नाम जपती रहती, वहीं मन उसके साथ-ही-साथ *'सुन्दर श्याम कमलदललोचन'* जाप करता रहता था। इस प्रकार रूपका चिन्तन भी बना रहता था। पू.गुरुदेव अपने चिन्मय अनुभवकी लीलायें सुनाते रहते ही थे, अतः लीला-चिन्तन हो ही जाता था। 'धाम'के सम्बन्धमें प्रबल जिज्ञासा यदा-कदा उठती थी, और वही जिज्ञासा इस प्रश्नके रूपमें पू. गुरुदेवके सम्मुख व्यक्त हो उठी थी। पू.गुरुदेवने ब्रजभूमिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मेरे सम्मुख पूर्ण शास्त्रीय आधार लिये हुए जो भी विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया था, वह ज्यों-का-त्यों यहाँ नीचे उल्लेख किया जा रहा है। पू.गुरुदेवने यह सभी वर्णन मौनव्रती होनेके कारण अपनी स्लेट पट्टीपर लिख-लिखकर कहा था, और मैंने उसे उनकी अनुमति लेकर उतार लिया था। इस वर्णनमें प्रयुक्त भाषा भी पू. गुरुदेवकी ही है। अतः यह परम चिन्मय धाम-वर्णन मंत्रवत् है। पाठक

इसे पढेंगे तो निश्चय ही उनपर भगवान् प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवकी कृपावर्षा होगी।

वेदगर्भ ब्रह्माजीपर कृपा

पू.गुरुदेवने कहा था–"भैया ! वाराह कल्पके कृतयुगके अंतकी कथा है। ब्रह्मलोकमें ब्राह्ममुहूर्त होने ही जा रहा है। यहाँ समझनेकी बात है कि ब्रह्मलोकका एक दिन मृत्युलोक पृथ्वीकी सैकड़ों चतुर्युगियोंके बराबर होता है।

सत्यलोकमें पितामह ब्रह्माजीने निशापर्यन्त शयनकर अब नेत्र खोले ही हैं। वे गायत्रीनाथ प्रतिदिवस अपने नित्य नियमानुसार जागरण करते ही भगवान् गोलोकविहारी श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानमें संलग्न हो जाते हैं। ब्रह्मलोकमें यह सभीको ख्यात है कि ब्रह्माजीसे इस ढ़ाई प्रहरकालमें कहीं कोई भी सृष्टिकार्यके प्रपञ्चकी वार्त्ता नहीं करे।

आज ब्रह्माजीका परम निराविल मन विशेषरूपसे शान्त एवं एकाग्र है। उनके नेत्रोंके सम्मुख उनके आराध्यदेव श्रीकृष्णकी सच्चिन्मयी ध्यानमूर्त्ति आज कुछ विशेषरूपसे ही जीवन्त, प्रत्यक्ष हो रही है। मन्द, सुमन्द मुसकानकी छटा बिखेरते, उनके परमाराध्य ब्रजेन्द्रनन्दनके नवमेघकान्ति अंगोंपर धृत, फहराता पीताम्बर पीताभ मेघोंकी शोभाको पूर्णतया हतप्रभ करता हुआ मेघोंको सम्बोधित कर मानो यों निवेदन कर रहा था–"भाई ! मुझसे स्पर्द्धा करनेकी अनवरत असफल चेष्टाएँ क्यों कर रहे हो ? तुम लोग भले ही अनन्त कल्पोंतक प्रतिस्पर्द्धा करते रहो, तुम्हें असफलता ही मिलेगी। अरे भाई ! भूल तो तुमसे मूलमें ही हो रही है। उधर तुम जड़ नभका आश्रय लिये हो, एवं इधर देवाधिदेव महादेवके भी परमाराध्य मेरे परमाश्रय नीलसुन्दर नन्दतनयं हैं। जो उन साक्षात् मन्मथ-मन्मथ नीलमणिके सच्चिन्मय कलेवरसे संलग्न हो गया है, उसके सम्मुख तुम प्राकृत नभचारी तुच्छातितुच्छ देवराजके वाहनोंकी बिसात ही क्या है ? यदि वैकुण्ठाधिपति सर्वावतारावतारी भगवान् आदिपुरुष नारायणकी नित्य नायिका कनकरुचा भगवती पद्मा भी मुझसे स्पर्द्धा कर बैठे तो उसे अतिशय लज्जासे ही अपना मुख नीचा करना पड़ेगा। भाई ! इसमें मेरा अपना कुछ भी श्रेय मत समझना । मेरी शोभामें इसीलिये विलक्षणता है, क्योंकि उसमें मेरे प्राणोंके प्राण ब्रजेन्द्रतनूजके अतुलनीय अंगोंकी आभा दमक रही है।"

यही दशा स्वर्गके नगराज रत्नमाला पर्वतके हृद्देशपर फैली रत्नराशिकी हो रही है। प्रियतम प्राणवल्लभ नन्दतनयके हृद्देशपर झूलती एक सामान्य-सी गुंजामालाके सम्मुख वह रत्नराशि निर्मञ्छनकर कूड़ेदानीमें फेंक देनेके तुल्य भी नहीं प्रतीत होती। अब लज्जाके घोर गर्त्तमें गड़ जानेके सिवा वह करे भी तो क्या ?

इधर औषधिनाथ चन्द्रदेव भी अपनी प्रिया औषधियोंकी लज्जा-निवारणमें रत हैं। नन्दतनूजके हृद्देशमें नित्य विराजिता इस तुलसीमालाकी शोभा तो सब औषधियोंके एक साथ मिलकर स्पर्द्धा करनेपर भी उनसे निर्विवाद अनन्तगुनी श्रेष्ठ है। यह सर्वसम्मत सिद्ध हो चुका है। अस्तु,

सर्वत्र अपने अनुपम सौन्दर्य, माधुर्य एवं रसैश्वर्यसे सभीको चकित एवं मुग्ध कर देनेवाला नन्दतनयका परम मनोहारी श्रीविग्रह आज पितामह वेदगर्भके मन-मानसमें उफनते शोभा-निर्झरकी तरह सच्चिन्मयी आनन्द-धाराका स्फोट कर रहा है। नित्यकी तुलनामें पितामह आज कुछ विशेष ही आविष्ट हैं। उनके परमाराध्य ब्रजेन्द्रतनयके अमृतस्यन्दी अधरोंपर वैसे तो नित्य ही संविन्मयी लीला-मुस्कान खेलती रहती है, किन्तु आज तो उनके अधरोंमें वह मुसकान जैसे समा ही नहीं पा रही है। अधरोंका सीमोल्लंघन करती यह मुसकान आज तो प्रियतम प्राणवल्लभके चिबुक एवं कपोलोंतकको उल्लासमें डुबो रही है। पितामहके रोम-रोम उत्फुल्ल हैं।

पितामह विचारमग्न हो उठते हैं–"ऐसा कौनसा कारण संभव है, जिससे मेरे प्रभु आज इतने आनन्दित हैं। देखो न, इन ललित त्रिभंगवपुके दृग भी आज तो विचित्र स्पन्दनकी रेखाओंसे उद्भासित हैं। यह विशिष्ट दृगोंका स्पन्दन, यह भृकुटिविलास, यह सर्वमायाहारी मन्द मुसकान मेरे लिये किसी अभूतपूर्व मंगल-स्रजनकी पूर्वभूमिकाका निर्माण तो नहीं कर रही है ? लीलानायकका कोई नवीन लीला-उपक्रम तो घटित नहीं होने जा रहा ? यद्यपि इसका पूर्वतया स्पष्ट अनुसंधान तो आजतक कोई भी अनुमानित नहीं कर पाया है, फिर भी मैं अपने भावदर्पणमें पड़ती इन कटीली वंकिम दृगोंकी छायामें अपने जीवनसर्वस्वके प्रयोजनका कुछ तो अनुमान लगाऊँ !"

पितामह और गहरे ध्यानमें उतरते चले जाते हैं। इस गहरी भावसमाधिमें पद्मयोनिको अनुभव होता है कि आज उनके आराध्यदेव श्रीकृष्णचन्द्रके चारु चञ्चल नेत्र कुछ नवीन संकेत दे रहे हैं। वे मानो कह रहे हों–"ब्रह्मदेव ! मेरे

भक्त तो तुम निश्चय ही हो। अतः मेरी कृपा-संपत्तिका अधिकारी भी तुम्हें होना ही है। परन्तु तुमने अरे ! मात्र सखाओंके साथ होनेवाली मेरी वनभोजन-लीलाके दर्शन किये, और उसमें ही तुम मोह-भ्रमित हो उठे ? क्या तुम मेरी माधुर्यरसमें सनी लीलाएँ–जो सच्चिन्मयी प्रीतिरससे छलछलाती मेरी प्रिया राधा एवं गोपांगनाओंके साथ सम्पन्न होती हैं, उन्हें देख सकोगे ? देखो, सावधान, कहीं पुनः कोई भूल मत कर बैठना।" अब तो वेदगर्भ व्याकुल हो उठे। अपना अनधिकार, कल्पोंसे प्रगाढ़ हुआ सृष्टिमें सभीके दादा-परदादा ब्रह्माका पुरुषाभिमान, प्रभुके प्रति किये अपने अपराधोंकी स्मृतिसे हुई ग्लानि – अनेक भावोंका प्रवाह उनके अन्तःकरणमें प्रवाहित हो चला। बस, चतुर्मुख अपने आठों नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहाने लगे।

लो ! ब्रजेन्द्रनन्दनकी वह विलक्षण कृपा-भंगिमा और उनकी मधुरातिमधुर सुमन्द स्मिति चतुर्मुखके सौभाग्यको उनके हृदयमें ध्वनित, प्रकट कर देती है–

ततो ब्रह्मन् ब्रजं गत्वा बृषभानुपुरं गतः।
पर्वतो भवसि त्वं हि मम क्रीड़ा च पश्यसि।।

(पद्मपुराण)

'हे ब्रह्मन् ! ब्रजमें बृषभानुपुर चले जाओ। वहाँ पर्वतके रूपमें विराजित रहो। यथाकाल जब मेरी ह्लादिनी महाशक्ति श्रीराधा और उनकी कायव्यूहरूपा ब्रजाङ्गनाओंका वहाँ अवतार हो, तो तुम पर्वतके रूपमें स्थित हुए मेरी सभी माधुर्य रसमयी लीलाओंका दर्शन कर पाओगे।'

चतुर्मुख ब्रह्माजी तो कृतकृत्य होकर कह उठे–

ममोपरि सदा त्वं हि रासक्रीड़ा करिष्यसि।
सर्वाभिर्व्रजगोपीभिः प्रावृट् काले कृतार्थकृत्।।

(पद्मपुराण)

'मैं भगवान्‌की लीलास्थली बनूँगा और मेरे प्रभु अपनी प्रिया रासेश्वरी श्रीराधा एवं उनकी सभी ब्रजगोपी सखियोंके साथ मुझपर सच्चिन्मयी रासक्रीड़ा करेंगे, अहा ! अब तो मैं कृतकृत्य ही हो गया।'

लीलामयकी इच्छा ! ब्रजेन्द्रकुमारका अयाचित कृपादान !! बस, जैसे ही स्रष्टाके ध्यानस्थ निमीलित नेत्र खुलते हैं, वे अपनेको ब्रह्मगिरि बने भगवान्‌की लीलाभूमि ब्रजप्रदेशके एक सुभग भागके रूपमें अनुभव करने लगते हैं।

चतुर्मुख ब्रजप्रदेशका एक पर्वत बने अपने चारों ओरकी शोभा निरखने लगते हैं–अहा ! मेरे प्राणाराध्यकी लीलाभूमि कैसी अनुपम विलक्षण शोभामयी है ! विशुद्ध सत्वरूप उज्ज्वल आनन्द यहाँ अणु-अणु कण-कणमें परिपूर्ण लबालब भरा है। ओह ! यहाँकी भूमि तो मानो पूर्णानन्दु-रसमयी चिन्तामणियोंसे ही निर्मित है। जल अमृत-रसस्वरूप है। सदैव सर्व ओर सुमन्द शीतल समीर प्रवाहित होती रहती है। सम्पूर्ण वन विशाल सच्चिन्मय वृक्षोंसे भरे हैं। सभी वृक्षोंको सुमनोंसे लदी लतायें समावृत किये रहती हैं। इन सुमनोंका सच्चिन्मय सौन्दर्य, इनकी सुगन्धि स्वर्गके कल्पप्रसूनोंको भी हतप्रभ किये है। स्थान-स्थानमें अभिनव सुन्दर सरोवर हैं, जिन्हें मणिजटित स्वर्णशिलाओंसे निर्मित घाट घेरे हैं। सरोवरोंमें प्रस्फुटित रक्त, नील, पीत पद्म अपनी मादक सुगन्ध सर्वत्र प्रसरित कर रहे हैं। वृक्षोंपर असंख्य पक्षियोंका निवास है। वे सभी अपनी केलि-काकलीसे वनको मुखरित किये रहते हैं।

आज पितामहका अपने रचना-कौशलका गर्व सर्वथा ही चूर-चूर हो गया। जिस दूर्भग दिवस उन्होंने श्रीकृष्णके सखाओं एवं उनकी प्यारी गायोंको मोहित करनेका दुस्साहस किया था एवं एक साधारण गोवत्स बने श्रीकृष्णको चुनौती दी थी, उस दिवस तो मात्र पलभरके लिये ही उन्होंने उनकी सृजन-चातुरी देखी थी। चतुराननको पलक झपकते ही तो अपनी भूल समझमें आ गयी थी। वे तत्क्षण ही ब्रह्मलोकसे लौट आये थे। उनके इस निमेष भरके कालमानमें यहाँ मृत्युलोक पृथ्वीमें तो उनके आराध्यकी पूरे एक वर्षकी लीला सम्पन्न हो चुकी थी। किन्तु आज तो वे अपने जीवनाधारकी अपूर्व एवं शाश्वत सृजन-सामर्थ्यका प्रदर्शन देख रहे थे। उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं था। 'कैसी विलक्षण सृष्टि है यह ! जो भी शोभा एक क्षण पूर्व दिखती है, वह दूसरे ही क्षण पहलेसे अनन्त गुनी सुन्दर हो उठती है, और तीसरे क्षण आश्चर्य है– वही शोभा पुनः और सुन्दर, मधुर एवं और ही अधिक सुरूप हो उठती है। यह क्रम कभी अन्त ही नहीं होता। प्रतिपल नव-नवायमान, नित नूतन सौन्दर्य। वैकुण्ठादि लोक भी सुन्दर हैं, श्रीसम्पन्न हैं, किन्तु सभीका सौन्दर्य इदमित्थम् है। धन्य है यह ब्रजेन्द्रनन्दनका बृन्दावन ! यहाँ तो प्रतिपल नित्य नूतन अभिवर्द्धनशील सौन्दर्य, माधुर्य एवं आनन्द नव-नव वेगसे उच्छलित हो रहा है। यहाँ जड़-चेतन सभी आनन्दमें सराबोर हैं। यहाँका लघुतम कीट-फतिंगा भी शाश्वत प्रेममें सना है। यहाँके रजका कण भी अनन्त

सच्चिन्मय सौन्दर्यका आगार है। अहा ! इस अप्राकृत त्रिगुणातीत सृजनकी बलिहारी है।

वेदगर्भके नेत्र इस लोकोत्तर धामका दर्शनकर प्रेमानन्दमें निमीलित होते जा रहे थे, उनकी बुद्धि चकित थी।

कैलासपति श्रीमहादेवजीका कथन

सहसा मानो किसीने उनके कानोंमें परम दिव्य वीणाके तार झंकृत कर दिये हों– अतिशय मीठी मन्द ध्वनि उनके कानों एवं हृदयको गुञ्जित कर उठी।

"ब्रह्मदेव ! तुम अकेले ही यहाँ हो, सो बात नहीं। लीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्रके परम मङ्गलमय विधानकी जय हो ! मैं भी तुम्हारा पार्श्ववर्त्ती पर्वत बना, तुम्हारे अति सन्निकट ही स्थित हूँ। तुम ब्रह्मपर्वत हो और मैं रुद्रपर्वत बना हूँ।"

"क्या देवाधिदेव महादेवजी भी मेरे ही समान पर्वत बन गये हैं? "– ब्रह्माजीके आश्चर्यका ठिकाना नहीं था।

"देखो ! तनिक ध्यानपूर्वक इस चिन्मयी कार्ष्णि सृष्टिकी ओर दृष्टिपात करो तो ! यहाँ त्रिगुणात्मक सृजन, पालन एवं संहार है ही नहीं। सृजनके विधाता तुम, विनाशका अधिदेव मैं रुद्र और तुम्हें कुछ ही कालमें यह भी ज्ञात हो जायगा कि पालनकर्त्ता विष्णु और अवतारी भगवान् नारायणदेव –सभी यहाँ सर्वथा निष्क्रिय पर्वत बने मूक दर्शक हो रहे हैं। यहाँ तो परात्पर नन्दतनय ही, जो मायालेशसे भी शून्य, पूर्ण निर्विशेष हैं, इस अनन्त सच्चिन्मयी सृष्टिके उपादान और कारण – दोनों ही बन रहे हैं।"

"ब्रह्माजी ! तनिक इन लीलाविहारीकी कैशोर छविपर एक दृष्टि तो डालो। अहा ! सलोने सिरपर मयूरपिच्छ कैसा फब रहा है ! सुचिक्कण छोटी-छोटी घुँघराली अलकोंसे सज्जित हुआ सुन्दर भाल चतुर्दिक् मनोहारी छटा दिखा रहा है। और उसपर कस्तूरीके तिलकने तो इस शोभाको अनन्त गुना कर दिया है। सदैव असंख्य पद्मोंको लज्जाके आवर्त्तमें डुबो देनेवाले इनके तीखे बड़े-बड़े नेत्रोंको तो देखो ! कटारीकी तरह इन चंचल नेत्रोंकी चितवन सीधी हृदयको बेधती हुई ऐसा मर्माहत करती है कि घायल हुआ कोई चीत्कार भी नहीं कर पाता। सुन्दर मनोहर मुखारविन्द, इन यशोदानन्दनके

अंग-प्रत्यंगोंसे निस्सृत दिव्य सौरभ – ब्रह्माजी ! क्या यह सभी सृजन किसी त्रिगुणाभिमानी स्रष्टाके द्वारा होना संभव है ?"

"अहा ! सुकोमलतम पद्म-पंखुड़ियों-सरीखे इनके कान कितने आकर्षक प्रतीत होते हैं, और उनपर कुण्डलोंकी शोभा कितनी आकर्षक है ? ये मणिकुण्डल इनके कपोलोंको जब अपनी रत्नज्योत्स्नासे दमकाते हैं तो इनकी शोभा देखते ही बनती है। कभी तो यह दमक इनके कपोलोंपर स्पष्ट दिखती है, एवं कभी लुप्त हो जाती है। उस समय यही समझमें आता है, मानो इनके परम मनोहारी कपोल कभी तो कुण्डलोंकी दमकको अपनी शोभासे एकात्म कर लेते हैं, और कभी उसे बाहर प्रकट होने देते हैं। इनके नासापुटोंमें श्वास-प्रश्वासके कारण स्पन्दन स्पष्ट परिलक्षित होता है; मानो समीर अपनेको कृतकृत्य करनेके लिये इनके नासापुटोंको विकसित-संपुटित कर रहा हो। इनकी दंतपंक्ति कैसा सुमन्द निराविल प्रकाश फैला रही है। सुन्दर लाल-लाल अधर शोभाकी खान हैं और मन्द मृदु हास मानो आनन्द-सिन्धुकी चंचल उर्मियाँ हों।"

"हे वेदगर्भ ! इनके इतर अंगोंका मैं भला क्या वर्णन करूँ, मेरा चित्त तो सदैव समस्त दुःख-द्वन्द्वहरणशील इनके चरणोंमें ही चिपटा रहना चाहता है। आओ, हम दोनों इन चरणोंके मनोहर चिह्नों – ध्वज, वज्र, गदा एवं यवकी जय-जयकार करें। जय हो ! सदा ही जय हो इन नन्दतनूजके सर्वशिव, शंतम चरणारविन्दोंकी ! हे चतुरानन ! तुम मेरी वाणी सुनकर अवश्य ही मेरे दर्शनोंके लिये उत्सुक हो उठे होओगे, परन्तु हम दोनोंका परम मंगल इसीमें है कि हम दोनों शान्त निष्क्रिय पर्वत बने इन हेतुरहित दयालुके विधानमें सहयोगी हों, तनिक भी अपनी स्वतंत्र रुचिकी टाँग इनके विधानमें नहीं अड़ावें। बस, इतना ही समझ लो कि जैसे तुमपर उन परम दयालुकी कृपा-वर्षा हुई है, उसी प्रकार मुझपर भी वे ही परम दयालु ढरे हैं। "

"हे ब्रह्माजी ! मैं तो निर्जन हिमालयके कैलास शिखरपर सघन वनमें प्रायः समाधिस्थ रहता था। वटवृक्षके नीचे स्थित मैं अवश्य श्रीहरिका ध्यान करता रहता था। अकस्मात् ही एक दिवस श्रीहरि भगवती लक्ष्मीजी सहित गरुड़पर सवार होकर मेरे धाममें चले आये। मैं तो गहन समाधिमें इतना डूबा था कि मुझे उनके आगमनका कुछ पता ही नहीं चला। वे न जाने कितनी देर मेरी समाधि टूटनेकी प्रतीक्षा करते रहे, मुझे तो इसकी सूचना ही नहीं थी।

स्वभावतः ही जब मेरे नेत्र उन्मीलित हुए तो अपने सम्मुख साक्षात् भगवान्को उपस्थित देखकर मेरे हर्षका पारावार नहीं रहा। भगवान्के अणु-अणुसे आनन्द झर रहा था। मैं उन्हें बारम्बार साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगा। फिर जब मेरा आवेश कुछ संवरित हुआ तो भगवान्ने मुझसे वर माँगनेको कहा। मैं पहले तो माँगनेमें संकोच कर रहा था, फिर जब भगवान् बार-बार आग्रह करने लगे तो मैंने उनसे अति विनयपूर्वक अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया।''

''कृपासिन्धो ! मैं तो आपके अनन्त अवतारोंके आश्रयस्वरूप उस परात्परका प्रत्यक्ष करना चाहता हूँ, जिसे तत्त्वज्ञ लोग पूर्ण परब्रह्म, सर्वोपरि एवं परम सत्य कहते हैं; जो सर्व महाप्रलयोंका अकेला द्रष्टा रहता है, एवं अविनाशी है। वेद उसे 'नेति,नेति' कहकर दृष्टिका विषय ही होनेका निषेध करते हैं। और सत्य ही है कि जो सर्व प्रकाशक द्रष्टा है, वह किसी व्यक्तिकी दृष्टिकी सीमाओंमें भला कैसे परिच्छिन्न होना संभव है, और जो सर्वावरक है वह किसी आकाशके आवरणमें कैसे व्यक्त होना संभव है। परन्तु प्रभो ! आपकी कृपा तो असम्भवको सम्भव करनेवाली है। जब आप स्वयं साक्षात् प्रकट होकर मुझे वरदान देने पधार गये, तो जो किसी हेतुसे संभव है, वह वर मैं आपसे क्यों माँगूँ ? जो कभी किसी कालमें, किसी कारणसे संभव नहीं है, हे प्रभो ! कृपया मुझे तो आप वही वर दीजिये।''

''ब्रह्माजी ! मेरी बात सुनकर भगवान् कमलापति मुस्कुराये एवं मुझ शरणागतसे बोले–' महादेव ! मेरे जिस परात्पर परतत्त्व स्वरूपको नयनगोचर करनेकी तुम्हारी इच्छा है, वह मेरी कृपासे अवश्य पूरी होगी। तुम ब्रजप्रदेशमें यमुनाका पश्चिम तट पकड़कर चले जाओ। वहाँ मेरा लीलाधाम वृन्दावन है। वहीं तुम्हें कदम्ब वृक्षके नीचे मेरे परात्पर सर्वोच्च स्वरूपके दर्शन अवश्य होंगे।'

''हे ब्रह्माजी ! इस प्रकार मुझपर कृपाकर मेरी यथोपलब्ध पूजा-अर्चना स्वीकारकर भगवान् श्रीहरि अपनी प्रिया लक्ष्मी सहित अन्तर्धान हो गये। मैं भी भगवान्की आज्ञानुसार यमुनाका पश्चिम तट पकड़कर वृन्दावन पहुँच गया। वहाँ मुझे सम्पूर्ण ईश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए। वे नित्य कमनीय किशोर वेष धारण किये अपनी प्रिया श्रीराधाजीके कंधेपर हाथ रखे खड़े थे। उनकी वह झाँकी ऐसी मनोहर थी कि मैं तो अपने आपको ही भूल गया। उन्हें चारों ओरसे असंख्य गोपियोंका समुदाय घेरे था। श्रीकृष्ण एवं

उनकी प्रिया श्रीराधा मुझे वृन्दावनमें पाकर मुसकाने लगे। उनकी वाणीमें अमृत भरा था। श्रीकृष्ण मुझसे कहने लगे–

"हे महादेवजी ! आपका मनोरथ जानकर ही मैंने आपको यहाँ दर्शन दिये हैं। इस समय आप मेरे जिस अलौकिक रूपके दर्शन कर रहे हो, वह परम निर्मल प्रेमका पुञ्ज है। मेरे इस परम निर्मल स्वरूपमें मात्र सच्चिदानन्द तत्त्व ही मूर्त्तिमान है। उपनिषदोंने मेरे इसी स्वरूपको परब्रह्म कहा है। महादेवजी ! मेरे अप्राकृत दिव्य गुणोंका कोई भी अन्त नहीं पा सकता, इसलिये वेदान्तशास्त्र मुझे निर्गुण बतलाता है। मेरा रूप प्राकृत चक्षुओंसे नहीं देखा जा सकता, इसलिये शास्त्र उसे निराकार कहते हैं। में अपने चैतन्यांशसे सर्वव्यापक हूँ, इससे विद्वान् मुझे ब्रह्म कहते हैं। मैं प्रपंचका कर्त्ता नहीं हूँ, अतः मुझे निष्क्रिय कहा जाता है। शिव ! मेरे अंश तुम त्रिदेव ही अपने-अपने आधीन मायामय गुणोंके द्वारा इस विराट् विश्वका सृजन, पालन एवं संहार करते रहते हो; मुझे तो प्रपंचकी स्मृति ही नहीं होती। महादेव ! मैं तो अपनी प्रिया इन श्रीराधा एवं इन गोपियोंके प्रेममें विह्वल हुआ न तो कोई दूसरी क्रिया जानता ही हूँ, एवं न ही मुझे अपने आपका ही भान रहता है। ये मेरी प्रिया श्रीराधा हैं, तुम इन्हें ही परदेवता मानो। मैं तो इनके प्रेमके वशीभूत रहकर इन्हींके संग यहाँ वन-वनमें डोलता-खेलता रहता हूँ। इनके पार्श्वमें जो असंख्य गोपियाँ हैं, ये सभी मेरे समतुल्य सच्चिन्मयी हैं। मेरे सखा, गोप, गौएँ, मेरे माता-पिता, यह बृन्दावन, किसीको भूलकर भी तुम प्राकृत मत मान लेना। इन सभीका स्वरूप मेरी ही तरह नित्य सच्चिदानन्द रसमय है। मेरे इस ब्रजजगत्को भी तुम आनन्दकन्द ही समझना। इसमें प्रवेश करने मात्रसे मनुष्यको पुनः संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता। मैं इस ब्रजप्रदेशको छोड़कर पलभर भी कहीं नहीं जाता। अपनी प्रियाके साथ मैं सदा यहीं निवास करता हूँ। महादेवजी ! आपके मनमें जिन-जिन बातोंकी जिज्ञासा थी, वे सभी बातें मैं आपके समाधानके लिये प्रकट कर चुका हूँ।"

"ब्रह्मदेव ! भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर मैं परितृप्त हो गया। अब मेरे हृदयमें बस यही जिज्ञासा शेष थी कि भगवान्‌के इस स्वरूपको मैं अपने हृदयमें नित्य कैसे धारण किये रहूँ ? भगवान् तो मुझपर अतिशय कृपालु थे ही। वे कहने लगे– "रुद्रदेव ! जो अन्य सभी उपायोंका भरोसा, आश्रय त्यागकर एक बार भी हमारी शरण आ जाता है, अथवा अकेली मेरी प्रिया

श्रीराधाकी ही अनन्यभावसे शरण ग्रहणकर यह कह देता है कि 'मैं आपका हूँ' वह निस्साधन मेरा भरोसा रखनेके कारण निश्चय ही मुझे प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं। इसलिये हे रुद्र ! मेरी प्रियाका आश्रय लेकर तुम भी मुझे अपने वशमें कर सकते हो। तुम अब मेरी प्रियाका आश्रय लो, और युगलमंत्रका जप करते हुए मेरे इस ब्रजमण्डलमें रुद्रपर्वत बनकर निवास करो। मैं शीघ्र ही तुम्हारी तलहटीमें बसे नन्दग्राममें जन्म लूँगा, तब तुम भक्तिसहित मेरी लीलाओंके दर्शन करते हुए मुझमें ही परा प्रीतिकी प्राप्ति करोगे।"

"हे ब्रह्माजी ! यह कहकर परम दयालु प्रभुने मेरे कानोंमें अपने युगल मंत्र ***'श्रीगोपीजनवल्लभ चरणान् शरणं प्रपद्ये'*** की दीक्षा दी और अपनी प्रियासहित अन्तर्धान हो गये। परात्पर भगवान्‌की यह बात सुनकर मैं तभीसे उनके धाम– इस ब्रजमण्डलमें रुद्रपर्वत बनकर रहता हूँ। मैं निरन्तर प्रभु द्वारा निर्दिष्ट युगल मंत्रका जप करता हूँ और मेरी तलहटीमें बसे नन्दग्राममें उन हेतुरहित दयालु प्रभुके अवतारकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"हे ब्रह्माजी ! प्रभुकी हेतुरहित कृपा ऐसी विलक्षण है कि श्रीनन्दरायजी, यशोदाजी अपने पुत्र श्रीकृष्ण-बलराम सहित मेरी पीठपर विराजेंगे और अपने चरणस्पर्श-सुखसे मुझे अंगीकार करेंगे।

नन्दीश्वराय देवायाभीरोत्पत्ति हिताय च।
यशोदा सुखदायैव महादेवाय ते नमः।।

(स्कन्दपुराण)

'हे नन्दीश्वर ! हे देव ! हे आभीरगणोंको सुख प्रदान करनेवाले तथा उन्हींके लिये प्रकट महादेव ! हे यशोदा माताको सुख प्रदान करनेवाले ! हे देवाधिदेव महादेव ! आपको नमस्कार है।'

भगवान् विष्णुदेवका उपदेश

भगवान् श्रीमहादेवजी ब्रह्माजीसे यह कथा कह ही रहे थे कि इसी समय इन दोनोंके कानोंमें सुधा-शंतम रसायन-सी परम चिन्मयी वाणी ध्वनित हो उठी।

"हे चतुरानन और प्यारे महादेवजी ! मैं विष्णुदेव भी पर्वत बना तुम्हारे समीप ही स्थित हूँ। ब्रह्माजी ! आपके ठीक सामने जो पवित्र पर्वत आप देख रहे हैं, वह मैं विष्णु ही हूँ। प्रभुकी कृपासे हम एक -दूसरेके आमने-सामने स्थित हैं। दक्षिण पार्श्वमें आप हैं और वाम पार्श्वमें मैं हूँ। जहाँ आपके ऊपर श्रीबृषभानु गोपराजका निवास, महल होगा और नीचे तलहटीमें दानघाटी होगी, वहीं हम दोनों पर्वतोंके मध्य 'साँकरी खोर' नामक दिव्य लीलास्थली होगी। अपनी प्रिया श्रीराधासे मिलने श्रीकृष्ण प्रतिदिवस आकर मेरे ऊपर स्थित निकुञ्जमें निवास करेंगे। मेरे आगे उनका लीला-नृत्य-मण्डप होगा, उसके पास ही युगल प्रिया-प्रियतमका विलास-कुञ्ज होगा। गह्वरवनमें तो नीचे उनका रासमण्डल होगा, पासमें ही श्रीराधा-सरोवर एवं दोहनीकुण्ड होगा। इस दोहनी कुण्डस्थलपर स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन अपनी प्रिया राधाकी गायें दुहने प्रतिदिन साँझ समय आवेंगे।"

"हे वेदगर्भ ! प्रभुकी लीलामहाशक्ति सर्वविजयिनी है। परिपूर्णतम परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण सबके अनादि आत्मा हैं। उनका तेज सर्वान्तर्मुखी है। वे निरन्तर रमणशील हैं। हे महादेवजी ! इस पृथ्वीमें जो यह आपको परम विलक्षण गोलोककी-सी सृष्टि दिख रही है, इसे आप दोनों कभी भूलकर भी प्राकृत मत मान बैठना। भगवान् श्रीकृष्ण ही साक्षात् हमारे सम्मुख कृपामूर्त्ति बने इस सृजनके रूपमें व्यक्त हो रहे हैं। मेरी इस बातको आप लोग परम सार-की-सार एवं अकाट्य ही मानना। यह परम मंगलमय सृजन वैसे तो नित्य सच्चिन्मय अचिन्त्य गोलोकधामकी मात्र छाया-की-छायाका लेश भर ही है। क्योंकि यह मायाजगत् है एवं स्वरूपतः ही यह प्रभुके नित्यधामका प्रतिबिम्ब (छाया) ही है। मायाजगत्पर भगवान् श्रीकृष्णकी यह हेतुरहित कृपा ही है जिससे उन्होंने अपनी अचिन्त्य महिमाका अंशतः यहाँ प्रकाश किया है। प्रभुने त्रिपथगा गंगाको अपने चरणधोवनसे प्रकट की, जो महादेवजीके जटाजूटको समलंकृत कर रही है। उन्होंने सरिताओंमें श्रेष्ठ श्रीयमुनाजीको अपने वाम स्कन्धसे प्रकट की जो यहाँसे किञ्चित् दूरीपर ही श्रृंगार-कुसुमोंसे सजी प्रवाहित हो रही है। भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनने अपने टखनोंसे चिन्मय हेमरत्नोंसे भरा, परम दिव्य रास-मण्डलका निर्माण किया, जो मधुर एवं रसोद्दीपक सभी श्रृंगार-सामग्रियोंसे सज्जित है। हे ब्रह्माजी एवं महादेवजी ! भगवान्‌की पिण्डलियोंसे ही इन समग्र कुञ्ज-निकुञ्जोंका निर्माण हुआ है, जिसमें एक-से-बढ़कर-एक

सुन्दर सभाभवन हैं, विशाल प्रांगण हैं, सुन्दर पथ हैं, विलक्षणरूपसे सजे मण्डप हैं। इनमें वसन्तादि ऋतुएँ सदैव सेवारत रहती हैं; केलि-कलरव करते कोकिलादि असंख्य पक्षी अपनी कल काकलीसे इन्हें गुञ्जायमान रखती हैं। इन कुञ्जोंमें अनेकों सुन्दरतम सरोवर हैं, जिनमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण अपनी अनन्त सखियों सहित जलकेलि करते हैं। भगवान्‌की ये अत्यन्त रसमयी लीलाएँ परम सौभाग्यवान् हंस, कारण्डव एवं चक्रवाकादि जलपक्षी सतृष्ण नेत्रोंसे निहारते रहते हैं। इन सरोवरोंके तटोंपर मयूर नृत्य करते रहते हैं। इन मयूरोंको सदैव यही भ्रम रहता है कि उनका प्रियतम नवनीरद ही पृथ्वीपर नीलतनूज नन्दनन्दनके वेशमें उनके सम्मुख विहाररत है। ये मयूर प्रिया श्रीराधा एवं उनकी असंख्य सखियों, गोपांगनाओंको भी विद्युन्माला ही मानते हैं एवं इसीलिये भावोन्मादमें भरे अपनी पुच्छ ऊर्ध्व किये, रोमांचित हुए नृत्य करते रहते हैं, एवं भावोन्मादमें भर-भरकर अपने केकारवसे वनको मुखरित करते रहते हैं।"

"हे महादेवजी ! आप तो भक्तिके परमाचार्य हैं; आपसे वृन्दावन-माहात्म्य तो गोपनीय है ही नहीं। यह भक्तिमुकुट वृन्दावन भगवान्‌ने अपने घुटनोंसे आविर्भूत किया है। इस वृन्दावनका यह विलक्षण प्रभाव सर्वविदित है कि यहाँ घोर कलिकालमें भी 'राधे-राधे' नामध्वनि सतत होती ही रहेगी। इस नामध्वनिकी यहाँ कभी न्यूनता नहीं होगी।"

"हे ब्रह्माजी ! यह जो आपको अति विस्तृत प्रभामयी स्वर्णभूमि दिख रही है, जो दिव्य रत्नोंसे जटित है, इस सभी भूमिका प्राकट्य इन परमात्मा श्रीकृष्णके कटिप्रदेशसे हुआ है। श्रीराधानायक माधवके उदरमें जो रोमावलियाँ हैं, वे ही यहाँ विस्तृत माधवी लताएँ हैं। भगवान्‌के नाभिकमलसे ही ये एक-से-एक बढ़कर सुन्दर और सौरभपूर्ण कमल प्रकट हुए हैं, जो इस हरिलोककी शोभा दिग्दिगन्तमें फैला रहे हैं। इन परात्पर भगवान् श्रीकृष्णके नासापुटोंसे मन्दगामी सुशीतल समीरका प्राकट्य हुआ है, जो यहाँ सदा-सर्वदा त्रिविध प्रवाहमें बहता रहता है। भगवान् श्रीकृष्णके वामस्कन्धसे एक परम कान्तिमान् गौरतेज प्रकट हुआ, जो लीला, श्री, भू, विरजा तथा अन्यान्य हरिप्रियाओंके रूपमें प्रकट हुआ है। हे महादेवजी ! भगवान्‌की परम प्रिया श्रीराधा हैं, जिनकी अन्यान्य शास्त्रोंमें लीलावतीके नामसे भी ख्याति है। ये इन ह्लादात्मा भगवान्‌का मूर्त्तिमान् आनन्द हैं। श्रीराधाकी दोनों भुजाओंसे ललिता

एवं विशाखा सखियोंका प्राकट्य मानना चाहिये। श्रीराधाकी जो असंख्य सखियाँ, मंजरियाँ एवं सहचरियाँ हैं, वे सभी इनकी असंख्य रोमावलियोंसे प्रकट हैं।"

"इस तरह हे ब्रह्माजी एवं महादेवजी ! भगवान् श्रीकृष्ण ही अपनी योगमायाशक्तिके प्रभावसे आप दोनों एवं मुझे इस सम्पूर्ण विचित्र लोकके रूपमें दृष्टिगोचर हो रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रिया श्रीराधाजीकी हमपर असीम कृपा है, जो वे हमारे दृश्य बनकर अपनी प्रियाके साथ यहाँ अपना शुचितम लीला-विहार सम्पादित करेंगे।"

अचानक भगवान् शंकरजी श्रीविष्णुभगवान्से प्रश्न कर बैठे–"कृपालु प्रभो ! आपने अपनी सहज एवं अतिशय कृपाकी वर्षा कर हम सबके सम्मुख प्रकट इस सच्चिन्मयी सृष्टिका सारा तत्त्व-रहस्य सुनाया। प्रभो ! मायावी सृजनके त्रिगुणाभिमानी देवता हम ब्रह्मा, महादेव एवं आप विष्णुदेवके साथ ही क्या क्षीरोदकशायी, सर्वावतारोंके अवतारी, वैकुण्ठाधिपति, भगवान् नारायण भी यहाँ कहीं किसी रूपमें अवस्थित हैं ? प्रभो ! यदि उनकी भी उपस्थिति हम लोगोंके समान ही यहाँ कहीं हो, और इसका आपको ज्ञान हो, तो कृपया हमें सूचित अवश्य करें।"

भगवान् विष्णु कहने लगे– "हे महादेवजी ! कृपया धैर्य रखें। भगवान् नारायण भी हमसे किंचित् दूरीपर ही पर्वतराज बने यहाँ स्थित हैं। वैसे तो भगवान् गोलोकाधिपति श्रीकृष्ण एवं भगवान् वैकुण्ठाधिपति श्रीहरि दोनों एक ही हैं। भगवान् श्रीहरि भगवान् श्रीकृष्णके ही ऐश्वर्यप्रधान विग्रह हैं और भगवान् श्रीकृष्ण भगवान् श्रीहरिके ही रसराजविग्रह हैं। किन्तु बलिहारी है, भगवान् लीलाविहारीकी कि उन्होंने इन्हें भी अपनी रसलीलामें सम्मिलित कर ही लिया। अब मैं आप दोनोंको यहाँ ब्रजधाममें इन सर्वावतारावतारी आदिपुरुष भगवान् नारायणकी नारायणगिरिके रूपमें जो अवस्थिति है, उसकी कथा सुनाता हूँ।

गिरिराज गोवर्धनका प्राकट्य

भगवान् विष्णु कहने लगे–'हे महादेवजी ! मैं यह पूर्वतया उल्लेख कर

चुका हूँ कि यहाँ हमें जो यह ब्रजमण्डल मूर्त्त दिखाई पड़ रहा है, यह तो भगवान् श्रीगोलोकविहारीकी गोलोकसृष्टिका मात्र प्रतिबिम्ब, आभास किंवा छाया-की-छाया भर है। वस्तुतः मूल लीला-धामका सृजन तो भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अपने गोलोकधामके रूपमें ही हुआ है। हे वेदगर्भ ! जब पूर्वोक्त प्रकारसे इस सम्पूर्ण लीलालोककी अपने ही अंग-प्रत्यंगोमें परिकल्पना करके भगवान् निवृत्त हुए तो वे अपने ही द्वारा संकल्पित लोकमें अपनी ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाके संग रास-विलास करने लगे। हे महादेवजी ! इसे एक प्रकारसे उनका आत्मरमण ही मानना चाहिये। भगवती श्रीराधा ही परिपूर्णतम, परमात्मा, परात्पर, सच्चिदानन्दघन, निखिल ऐश्वर्य, सौन्दर्य एवं माधुर्यकी सागर हैं, उनमें एवं श्रीकृष्णमें कहीं कोई भेद संभव ही नहीं है। नामरूपोंमें पृथक्ता दिखनेपर भी वस्तुतः श्रीराधा, गोपीजन एवं श्रीकृष्ण – इन तीनोंमें कहीं कोई भेद नहीं है। भगवान् पुरुषोत्तम जो परब्रह्म परमात्माकी प्रतिष्ठा हैं एवं जिनके चैतन्यांशको ही वेदोंने सर्वव्यापी परब्रह्म कहा है, वे अपने निजानन्दको परिस्फुट करनेके लिये अथवा उसका नव-नवायमान रसोंमें आस्वादन करनेके लिये स्वयं अपने आनन्दको प्रेम-विग्रहोंमें प्रकट करते हैं और स्वयं ही उनसे आनन्दका आस्वादन करते हैं। उनके इस आनन्दकी प्रतिमूर्त्ति ही प्रेमविग्रहरूपा श्रीराधारानी हैं और यह श्रीराधा-प्रेमविग्रह सम्पूर्ण प्रेमका एकीभूत समूह है। इसीलिये रसिकजन श्रीराधाजीको प्रेममयी एवं श्रीकृष्णको आनन्द-रसमय मानते हैं। जहाँ आनन्द है, वहीं प्रेम है; और जहाँ प्रेम है, वहाँ आनन्द है। श्रीराधारानी ही श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधाके जीवनस्वरूप हैं। इन ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाकी लाखों अनुगामिनी शक्तियाँ मूर्त्तिमती होकर प्रतिक्षण सखी, मञ्जरी, सहचरी और दूती आदिके रूपमें इन श्रीराधाकृष्णयुगलकी सेवा करती हैं।"

"गोलोकधाममें सर्वातिशय सुन्दर रासमण्डलमें भगवान् श्रीराधा-माधव विराजित थे। वहाँ वातावरण गोपियोंके बजते घुँघरुओंके अति मधुर स्वरसे अत्यंत रम्य हो रहा था। उस रास-निकुञ्जके आँगनमें सुन्दर चन्द्रातप तना था। उस चन्द्रातपमें लटकती मुक्ताफलकी लड़ियोंसे अमृतकी वर्षा हो रही थी। अमृतरसकी बड़ी-बड़ी बूँदोंके टपकनेसे समग्र वातावरण सरस था। मालती सर्वत्र विकसित थी और उसके झरते मकरन्दको लिये वायु अति भीनी सुवाससे भरी थी। मृदंग, ताल-ध्वनि, वशीनाद सब ओर गूँज रहा था। म-धुरातिमधुर कण्ठसे गोपियोंके द्वारा गाये गये गीतोंसे तथा स्वयं भगवान्

श्रीकृष्णके द्वारा उनके संग-संग आलाप किये जानेसे सम्पूर्ण वातावरण ही रासरससे परम मनोरम हो रहा था। ठीक, इसी समय रासमण्डपमें अपने प्रियतम श्रीकृष्णके वामांगमें लिपटी भगवती श्रीराधाने कोटि-कोटि मनोजमोहन अपने हृदयवल्लभसे कटाक्षपात् करके गंभीर वाणीमें कहा – "हे प्राणप्यारे आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपके सम्मुख अपने मनकी एक कामना व्यक्त करना चाहती हूँ।" असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति भगवान्‌के लिये अपनी प्राणप्यारी राधाके लिये अदेय क्या था ? भगवान् बोले–"प्रिये वामारु ! तुम्हारे मनकी इच्छा अपूर्ण रहे, यह कैसे संभव है ? मेरे पास जो कुछ भी शक्ति-ऐश्वर्य है, सब तुम्हारा ही है।"

प्रिया राधाने कहा –"प्राणवल्लभ ! वृन्दावनमें यमुनाके तटपर इस दिव्य निकुञ्जभूमिके पार्श्वभागमें आप रास-रसके योग्य एक अति एकान्त मनोज्ञ पर्वत प्रकट कीजिये। देवदेव ! यह पर्वत इतना सुरम्य हो कि उसकी अतिशय मनोरम एकान्त घाटियोंमें मैं आपके साथ निश्चिन्त रमण कर सकूँ।"

"हे महादेवजी ! भगवान् नारायण भगवान् श्रीकृष्णके चित्त ही तो हैं, अतः वे श्रीराधामाधवके इस संलापके साक्षी हुए सब-कुछ सुन रहे थे। वे मन-ही-मन अपने अन्तरात्मा रूप श्रीकृष्णकी परम मनोहर छविका ध्यान करते हुए संकल्प करने लगे कि 'अहा ! यह सौभाग्य मुझे मिल जाय।"

"भगवान् नारायणका संकल्प श्रीराधा-माधवमें उसी क्षण प्रतिध्वनित हो उठा और उनकी ओरसे 'तथाऽस्तु' तो होना ही था।"

श्रीविष्णुदेव पुनः कहने लगे–"हे ब्रह्माजी एवं श्रीमहादेवजी ! भगवान् श्रीकृष्णके समान परमोदार तो कोई दूसरा होना संभव ही नहीं है। जीव मात्रका उनके समान सच्चा स्नेही और आत्मीय अन्य कौन संभव है ? किसीके भी मनकी रखना तो उनका सहज स्वभाव ही है।"

"भगवान्‌ने एकान्तलीलाके योग्य स्थानका चिन्तन करते हुए अपने नेत्र-कमलों द्वारा अपने ही हृदयकी ओर दृष्टि डाली। उसी समय भगवती श्रीराधा एवं असंख्य गोपियोंके देखते-ही-देखते उन परात्पर श्रीकृष्णके हृदयमें स्थित भगवान् नारायण उनके अनुरागके मूर्त्तिमान् अंकुरकी तरह वहाँ एक सघन तेजके रूपमें प्रकट हो गये। भगवान् नारायण तो अनन्त तेजोद्गम हैं ही। वे तत्क्षण ही उस रासभूमिके मध्य पर्वतके आकारमें परिणत हो गये। उस समय वह भगवान् नारायणका स्वरूपभूत पर्वत असंख्य दिव्य रत्नोंका धाम

था। सुन्दर कन्दराओं, झरनों और गिरिश्रृंगोंसे उस पर्वतकी शोभा अवर्णनीय थी। कदम्ब, अशोक, बकुल, आम्रादि वृक्षों, साथ ही अनेक सुगन्धित पुष्पवती लताओंसे समाच्छादित उस नारायण पर्वतकी मनोरमता देखते ही प्रिया श्रीराधारानी प्रफुल्लित हो उठीं। मन्दार और कुन्द वृक्षोंसे सम्पन्न पर्वतपर भाँति-भाँतिके पक्षी कलरव कर रहे थे। इन प्रिया-प्रियतमको सुखी देखनेका भाव उन आदिपुरुष भगवान् नारायणमें उस समय इतना प्रबलतम वेगसे लहरा रहा था कि एक क्षणमें ही उन्होंने अपनेको अनन्त रस-सामग्रियोंसे भरपूर प्रिया-प्रियतमके 'विलासमहल'के रूपमें ही परिणत कर लिया।"

"गोपियाँ और प्रिया श्रीराधारानी उस शतश्रृंग नारायण पर्वतको देखकर इतनी प्रसन्न हो रही थीं कि वे ताली बजा-बजाकर, अपने घुँघरुओंकी झंकार करती नृत्य करने लगीं। उन सभीके हर्षका पारावार ही नहीं था। उस समय हे ब्रह्माजी एवं महादेवजी ! इन श्रीकृष्ण-प्रेयसियों के सुख और आनन्दमें आयी इस उछालको देख-देखकर भगवान् नारायण भी अपने सौभाग्यपर कृतकृत्य हो रहे थे। इन श्रीकृष्ण-प्रेयसियोंको प्रसन्न करनेकी लालसाके अतिशय तीव्र हो जानेसे उस नारायण पर्वतका आकार भी नवीन-नवीन सुरम्यताका प्रकाश करता हुआ अधिक-से-अधिक अभिवृद्धिको प्राप्त होने लगा। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण उठे। अपनी प्रिया एवं गोपांगनाओंके सहित उन्होंने उस पर्वतका पूजन किया। तत्पश्चात् उस पर्वतपर उन्होंने अपना वरद हस्त रख दिया। हे महादेवजी एवं ब्रह्माजी ! उस नारायण पर्वतका जो असीम गतिसे विकास हो रहा था , वह उसी समय रुक गया। अब तो उस पर्वतमें ऐसी शक्ति आ गयी कि प्रिया-प्रियतमके संकल्पानुसार, वह जब जितना विकास अपेक्षित होता है, कर लेता है। उनकी समुचित सेवा सम्पन्न करके वह पुनः लघु रूप धारण कर लेता है।"

"हे महादेवजी ! भगवान् नारायणके वर्णतुल्य ही इस पर्वतकी भी शोभा लताकुञ्जोंसे निरन्तर आच्छादित रहनेके कारण सदैव श्यामवर्णकी ही रहती है, जिससे इस पर्वत रूपमें भगवान् नारायणको देख-देखकर कृष्णप्रिया श्रीराधा-रानी एवं गोपियाँ अतिशय प्रसन्न होती रहती हैं।"

"हे ब्रह्माजी ! इस प्रकार भगवान् परात्पर श्रीकृष्णके हेतुरहित अनुग्रहसे हम त्रिदेवों और हमारे अवतारी क्षीरोदकशायी शेषशायी भगवान् नारायण, जो अबतक क्षणभंगुर नाशमान् इस प्राकृत सृष्टिके ही प्रभु थे, अब भगवान्

श्रीकृष्णके शाश्वत लीलाधाममें उनके लीला-पात्र हो गये। अब तो जब-जब भगवान् श्रीकृष्ण जिस-जिस ब्रह्माण्डमें जन्म ग्रहण करेंगे, हम सभीको उस-उस ब्रह्माण्डमें अवतरित होकर उनकी लीलाका रंगमंच बनना ही होगा।"

"हे ब्रह्माजी एवं महादेवजी ! इस ब्रह्माण्डके भी अब तो अनन्त भाग्योदय होनेवाले हैं। शीघ्र ही ये कृतयुग और त्रेता बीत जायेंगे, इसके पश्चात् द्वापरका पदार्पण होगा, और द्वापरके अन्तमें प्रभु अपने सभी लीला-परिकरों सहित यहाँ अवतीर्ण होंगे। उसीकी पूर्वभूमिकाके रूपमें हमें अभीसे इस ब्रजधाममें पर्वतके रूपमें अवतरित होनेका सौभाग्य मिला है। अहा ! ब्रह्मगिरि बने आपकी गोदमें ही बृषभानुगोपकी राजधानी बृषभानुपुरकी स्थापना होगी और इसी पावन भूमिमें कृष्णप्रिया राधारानीका पावन अवतरण होगा। इसीलिये शनैः-शनैः सर्वतीर्थोंका भी यहाँ पदार्पण होगा। ओह ! अब तो ऐसी कृपा ढरेगी कि हम सभी इस रसमयी लीलाके भावोंमें पूरे निमग्न रहेंगे। प्रभुकी लीला-महाशक्तिकी हेतुरहित कृपा-वर्षाकी बलिहारी है।"

भगवान् विष्णुके मुखसे यह कथा सुनकर ब्रह्माजी एवं महादेवजी दोनों ही आनन्दके महासमुद्रमें डूब गये। बहुत कालतक तो भावोदयसे उनका कण्ठ ही गद्गद रहा। उनके मुखकी वाणी ही रुद्ध थी। कुछ काल पश्चात् जब उनका भाव कुछ संवरित हुआ, तो ब्रह्माजी बोले– "प्रभो ! आपने अपना एवं भगवान् श्रीहरिका भी, जो यहाँसे कुछ ही दूरीपर नारायण-पर्वत (श्रीगिरिराज गोवर्द्धन) के रूपमें स्थित हैं, परिचय देकर हमें पूर्ण कृतकृत्य कर दिया। प्रभो ! अब तो हम दोनोंको यह सुसंवाद श्रवणगोचर कराइये, कि इस विलक्षण सुरम्य प्रदेशमें परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रिया अपने पूर्ण परिकरवर्ग सहित कब एवं किस वंशमें जन्म ग्रहण करेंगी ?"

"महामते ! यद्यपि मैं भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा और उनकी विलक्षण सामर्थ्यका प्रत्यक्षदर्शी रह चुका हूँ, फिर भी भगवान्‌की विचित्र माया है कि अभीतक मेरे मनका यह सन्देह नहीं मिटा कि जो सबकी आत्मा हैं, सर्वान्तर्यामी हैं, वे परात्पर परतत्त्व सर्वव्यापक परब्रह्म परमात्मा, रूप-परिच्छिन्न होकर एक शरीरधारीकी तरह किसी भी नारीके गर्भमें कैसे प्रवेश करेंगे और कैसे उनका किसी विशिष्ट कुल एवं जातिमें जन्म होगा। जो अजन्मा हैं, वे जन्म लें, यह एक महदाश्चर्य ही है।"

ब्रह्माजीका प्रश्न सुनकर भगवान् विष्णु बोले– 'हे ब्रह्मन् ! इस विषयमें

आपकी शंकाका समाधान मैं नहीं कर पाऊँगा। मैं तो स्वयं आपकी ही तरह त्रिगुणात्मिका माया-नियन्त्रित देव हूँ। इस विषयमें समाधान हेतु, आओ, हम सभीके अन्तर्यामी भगवान् श्रीहरि, जो निकट ही नारायण पर्वतके रूपमें विराजित हैं, उनका आह्वान करें। वे ही प्रकट होकर हमारा उचित निदर्शन करेंगे।'

पुरुषोत्तमतत्त्वका प्रकाश

यह कहकर तीनों त्रिदेव भगवान् श्रीहरिका ध्यान करने लगे। किंचित् ही कालमें उनके नेत्रोंके सम्मुख चतुर्भुज भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये। "अहा ! उनके अंगों-प्रत्यंगोंसे कान्तिकी किरणें फूट रही थीं। वे किरणें मरकतमणिकी आभाको हेय बना दे रही थीं। भगवान् श्रीहरि सौन्दर्य एवं लावण्यके अपरिसीम सागर थे। उनके श्रीअंगोंमें पीताम्बर झलमला रहा था। वक्षस्थलपर रंग-बिरंगी बनमाला झूल रही थी। अंग-अंगपर रत्नजटित आभूषण शोभा पा रहे थे। उनकी लम्बी घुँघराली अलकें थीं, जिससे विलक्षण सुवास प्रसरित हो रहा था। मणिश्रेष्ठ कौस्तुभ और स्वर्णरेखासे वक्षस्थल आलोकित था। गोल सुदीर्घ चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा एवं पद्म – सभी आयुध शोभा पा रहे थे। भगवान्के मुखारविन्दमें मन्द मुसकान नाच रही थी। उनके चतुर्दिक् फैला नील तेज सबको विशुद्ध सत्वमें परिस्नात कर रहा था।"

जैसे नील मेघ वर्षाके पूर्व गड़गड़ाहट करता हो, इसी प्रकार गंभीर मधुर ध्वनिमें भगवान् श्रीहरिकी वाणीने पर्वत बने त्रिदेवोंको आनन्दमें डुबो दिया।

भगवान् श्रीहरिने कहा–'हे त्रिदेवों ! अभी तो श्वेतवाराह कल्पका कृतयुग ही चल रहा है। अगणित ब्रह्माण्डोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामहाशक्ति अचिन्त्य और अनिर्वचनीय है। देखो ! मैं एवं तुम तीनों यहाँ ब्रजभूमिमें पर्वत बने स्थित हैं, परन्तु हम सभीके लोकोंमें भगवान्की लीलामहाशक्तिने एक क्षणका भी प्रमाद नहीं करते हुए, ठीक हमारी ही आकृति, रूप एवं हूबहू स्वभावके दूसरे त्रिदेव और दूसरे ही नारायण प्रतिस्थापित कर दिये हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो उनकी लोक व्यवस्था कभीकी बिगड़ जाती। परन्तु उनके लीलाविधान में त्रुटिभरकी भी भूल कदापि संभव है ही नहीं। हे ब्रह्माजी ! आप तो अपनी

वेदगर्भपनेकी सब बुद्धि, उसका कुतर्क एवं अभिमान त्यागकर चुपचाप शान्त बने, भगवान्‌की जो आपने बालछवि दर्शन की है उसे ही निहारते रहिये।"

"हे चतुरानन ! अपनी अचिन्त्य कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम् सामर्थ्यसे ही भगवान् सर्वव्यापक होते हुए भी देह-परिच्छिन्न होते हैं। भगवान्‌में विरुद्धगुण-धर्माश्रयत्वकी विलक्षण शक्ति है। वे सर्व होकर भी अणु हो सकते हैं। भगवान्‌का सब-कुछ अप्राकृत है। अतः उन्हें प्राकृत नियमों और प्रकृतिधर्मसे बाँधा नहीं जा सकता। यदि हम उन्हें अप्राकृत एवं सच्चिन्मय, साथ ही सर्वभवनसमर्थ मान लें तो हमारे ऐसे सन्देह निर्मूल हो जावें। हमारी बुद्धि उन्हें प्राकृत मानकर ही ऐसे सन्देहोंको जन्म देती है। हे ब्रह्माजी ! भगवान्‌की सभी वस्तुएँ तर्कसे अतीत हैं। प्रपंच-निर्माणमें एक-से-एक विस्मयजनक वस्तुएँ सृष्ट हो सकती हैं, किन्तु अनादिकालसे अबतक ऐसी कोई वस्तु निर्मित नहीं हुई, जिसका अवलम्बनकर कोई भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अचिन्त्य स्वरूप, ऐश्वर्य एवं माधुर्यके सम्बन्धमें तर्क करते हुए अनुमान लगा ले। प्राकृत विश्व और उसके अन्दरके पदार्थ ही तर्कगोचर होते हैं, हो सकते हैं। परन्तु जिन भगवान्‌के सम्बन्धमें आपको संशय है, वे तो प्रकृतिसे परेकी वस्तु हैं। वे स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप हैं। कृपा-परवश हुए वे अपनी स्वप्रकाशिका शक्तिसे ही किसीकी मन-बुद्धिमें अवतरित भले ही हों। अतः आपका मोहित होना अति स्वाभाविक है। श्रुतियाँ भगवान्‌का निर्देश ही नहीं कर पातीं, वे संकेत भले ही कर लें। अतः आप तर्कको सर्वथा त्यागकर जो आपको भगवान्‌का दर्शन हो चुका है, उसके ध्यान एवं चिन्तनमें ही रमे रहें। कृपामय प्रभु स्वयं ही आपके सभी तर्कोंका यथावसर समाधान कर देंगे।

गोलोकधामका वर्णन

हे वेदगर्भ ! द्वापरयुगके अंतमें इस पृथ्वीमें दानव, दैत्य, आसुरी स्वभावके मनुष्य और महाबली दुष्ट राजाओंका बोलबाला होने वाला है। इनके असह्य बोझसे भाराकान्त हुई पृथ्वी अनाथकी भाँति रोती-बिलखती आपके धाममें पहुँचेगी। वह आपके स्थानपर विराजित नवीन ब्रह्माजीको अपना सभी दुःख निवेदन करेगी। उस समय उसका शरीर व्यथासे काँप रहा होगा। उसकी

कथा सुनकर आपके लोकमें आसीन ब्रह्माजी उसे कैलास पर्वतपर ले जावेंगे। और तब वे वहाँ स्थित नवीन कैलासपति महादेवजीको आगे करके सभी देवगणोंके सहित वैकुण्ठपतिके पास पहुँचेंगे। वे वैकुण्ठनाथ भी नवीन ही होंगे। वे वैकुण्ठनाथ उन्हें लेकर भगवान् श्रीकृष्णके पास उनके परमधाम गोलोक पहुँचेंगे।"

" हे ब्रह्माजी ! यह गोलोकधाम विरजानदीके तटपर स्थित है। यह निरुपम प्रदेश सर्वथा मायातीत अप्राकृत लोक है। यहाँ प्राकृत देवजगत्का भी सहज प्रवेश नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णकी जब किसीपर, चाहे वह ऋषि हो, देव हो, दानव अथवा मानव ही क्यों न हो, असीम कृपा होती है, तब उसके हृदयमें इस पूर्ण सच्चिन्मय धामका प्रकाश संभव हो पाता है । यह कृपालोक सर्वप्रथम इन देवगणोंके सम्मुख अनंत कोटि भास्करज्योतिके रूपमें अतिशय प्रकाशमान होकर प्रकट होगा। सभी देवगण उस तेजसे पराभूत हो, जहाँ-के-तहाँ खड़े रह जावेंगे। तत्पश्चात् वे देवगण भगवान् नारायणके आदेशानुसार उस तेजको साष्टांग प्रणामकर, भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगेंगे।"

"हे वेदगर्भ ! उस महान् ज्योतिके अंतरालमें देवगणोंको एक परम अद्भुत कमलनालके समान धवलवर्णके हजार मुखोंवाले शेषनागके दर्शन होंगे। सभी देवता उन भगवान् शेषकी गोदमें ही उस महान् आलोकमान सर्वलोकवन्दित गोलोकका दर्शन करेंगे। विलक्षण धाम है यह गोलोक । इसमें सर्वक्षयकारी कालका कहीं किञ्चित् लेशमात्र भी प्रवेश नहीं है। यहाँ भगवान्की सर्वजयकारी माया भी पूर्ण निरस्त है। फिर त्रिगुणोंके तो प्रवेश होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ शत-शत कामदेवोंको विजय करनेवाला सौंदर्य तो वृक्षोंके पत्र-पत्रमेंसे झर रहा है। फिर अनंत रूप-लावण्यशालिनी उन गोपियोंकी, जिनकी चरण-धूलिकी वन्दना अनन्त लक्ष्मियाँ करती हैं, सुन्दरताका वर्णन तो भला कौन कर सकता है। इस परम चिन्मय गोलोकधामके द्वारदेशपर जब सभी देवगण पहुँचेंगे, तो इन्हें पहले तो वहाँ नियुक्त द्वाररक्षिकाओंके ही द्वारा रोक दिया जायगा एवं उनसे पूछा जायेगा कि वे किस ब्रह्माण्डसे आये हैं ? इन द्वाररक्षिकाओंके प्रश्नका उत्तर भगवान् नारायण यह कहकर देंगे कि हम सभी उस ब्रह्माण्डसे आये हैं, जहाँ इस कल्पमें भगवान् प्रश्निगर्भका अवतार हो चुका है, और भगवान् त्रिविक्रमके नखसे जिस ब्रह्माण्डमें विवर बन गया है। उन देवताओंसे यह उत्तर पाकर वह श्रीकृष्णपार्षदा गोपी मंद-सुमंद मुसकाने

लगेगी। उसकी अनुमति पाकर सभी देवगण तब उस परम दिव्य गोलाकधाममें प्रवेश पा सकेंगे। वहाँ सर्वप्रथम उन्हें मुझ गोवर्धनके दर्शन होंगे, जिसके अंशको श्रीकृष्णावतारमें भगवान् छत्रकी तरह धारणकर ब्रजमें देवराज इन्द्रका मानहरण करेंगे। हे महादेवजी ! उस चिन्मय गोलोकमें जब देवगणोंका प्रवेश होगा उस समय वहाँ वसंतोत्सव चल रहा होगा। उस सच्चिन्मय धामकी उस समय ऐसी विलक्षण शोभा हो रही होगी कि जिसे देखकर देवगणोंके नयन विस्फारित रह जावेंगे। विलक्षण कल्पवृक्षों, और कल्पप्रसूनोंसे समलंकृत वहाँ उत्तमोत्तम यमुनानदी बह रही होगी । उस श्यामवर्णवाली यमुनाको देखकर सभी देवगण उसे अति विनयपूर्वक प्रणाम करेंगे। यमुनाके तटपर बने करोड़ों प्रासाद यमुना महारानीकी शोभा बढा रहे होंगे। यमुना नदीमें स्नानके लिये उतरनेके लिये वैदूर्यमणिकी शिलाओंकी सीढियाँ देखकर देवगणोंके आश्चर्यका ठिकाना ही नहीं रहेगा। ब्रह्माजी ! यहाँ इस पृथ्वीमें जो यमुना, पर्वतरूप आपसे किञ्चित् दूरीपर बह रही है, यह तो उस यमुनाकी छायाकी छायाका अंशभर भी नहीं है। इसी प्रकार वहाँके वृन्दावनसे यहाँके वृन्दावनकी तुलना समझ लेनी चाहिये। वहाँके वृन्दावनके मध्यभागमें बत्तीस वनोंसे युक्त एक 'निज-निकुञ्ज' है। इस निज-निकुंजकी विलक्षण ही शोभा है। वहाँ स्थान-स्थानपर करोड़ों चन्द्रमाओंके मण्डलोंकी छवि धारण करनेवाले असंख्य चँदोवे तने हैं। उनपर फहराती हुई दिव्य पताकाएँ उस स्थानकी शोभाको सहस्रगुनी कर दे रही हैं। सर्वत्र विकसित भाँति-भाँतिके पुष्प और उनपर मँडराते भ्रमरोंका सुमधुर गुंजार ऐसा मनोरम लगता है, मानो अगणित गंधर्व अति सुरीले स्वरोंमें गायन कर रहे हों। वहाँ मत्त मयूरों और कोकिलाओंका कलरव सदा ही श्रवणगोचर होता रहता है। कान्तिमान अरुण, पीत, मनोरम कुण्डल धारण करनेवाली अगणित ललनाएँ इधर-उधर घूमती रहती हैं, जिनमें अनेकों तो नवघन-श्यामवर्णकलेवरा हैं और अनेकों कंचनवर्णी शोभाका विस्तार कर रही हैं। शत-शत चंद्रमाओंकी शोभाको लज्जित करनेवाली ये गोपियाँ, इस निज-निकुंजके सुरम्य रत्न-प्रांगणोंमें इतस्ततः सर्वत्र घूमती रहती हैं।

इस गोलोकधामके प्रत्येक प्रासादमें गोशालाएँ अवश्य संलग्न हैं, और इनके विशाल द्वारोंके आगे सुन्दर-सुन्दर दिव्य आभूषणोंसे सज्जित, श्वेत पर्वतोंके समान शोभाशालिनी, समुद्रके समान दूध देनेवाली सैकड़ों गायें खड़ी रहती हैं। ये सभी अति सद्गुणवती, सुरुचा, एवं परम सुशीला हैं। इन सभीके

घण्टों और मंजीरोंसे अति मधुर स्वरलहरी निनादित होती रहती है। इनके अंगोंसे विलक्षण सुगन्ध निस्सृत होती रहती है, और सभीके कलेवर रम्य छटासे सदा उ ासित होते रहते हैं। कोई उजली, कोई काली, कोई लाल, पीली, हरी, ताम्रवर्णी, चितकबरी, धूम्रवर्णी, इस प्रकार अनेकों रंगोंवाली इन गायोंसे सम्पूर्ण गोलोकधाम भरा है। अनेकों कोयलेके समान काली श्यामवर्णी भी हैं, परंतु ये सभी गायें अमृतोपम दूध देनेवाली हैं, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण अत्यंत रुचिसे पान करते हैं । हरिणशावकोंके समान इन सभी गायोंके बछड़े सर्वत्र छलाँगें भरते रहते हैं, जिससे इस गोलोक-धामकी शोभा द्विगुणित होती रहती है। गायोंके झुण्डोंमें बृहदाकार, दीर्घ सींगोंवाले, साक्षात् धर्मके स्वरूप वृषभ घूमते रहते हैं, जिन्हें हाथमें लकुट लिये सैकडों गोपाल नियंत्रित रखते हैं। ये सभी गोपाल बाँसुरी बजानेमें अति निपुण हैं। गौरवर्ण एवं श्यामवर्णके गोपवेशमें सजे इन गोपालों द्वारा श्रीराधामाधवकी लीलाओंका सुमधुर स्वरोंमें गायन सुनकर समग्र देवगण मोहित हो उठते हैं।

हे मेरे प्यारे महादेवजी और श्रीब्रह्माजी ! गोलोकके इस निजनिकुञ्ज नामक भागको देखकर तो देवतागण अपनी सभी सुध-बुध ही खो बैठते हैं। धीरे-धीरे अति भावाविष्ट हुए किसी प्रकार वे आगे बढ पाते हैं और एक विशाल सहस्र दलोंवाला कमल देखते हैं। इस सहस्रदल कमलके ऊपर अति विकसित सोलह दलका और तब आठ दलवाला एक अति सुन्दर पद्म देखते हैं। उसपर स्थित अति उच्च एक तीन सीढ़ियोंवाले सिंहासनपर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधाजी सहित विराजित रहते हैं। ये युगलरूप भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मोहिनी आदि परम दिव्य आठ सखियों एवं श्रीदामादिक आठ गोपालोंसे सुसेवित हैं। इन युगल भगवान्पर गोप-गोपियाँ हीरोंसे बने मूठवाले परम सुंदर चँवर डुलाती रहती हैं। भगवान् श्रीकृष्णके वामभागमें श्रीराधाजीकी शोभा ऐसी विलक्षण सुंदर होती है, मानो अनंत कोटि स्वर्ग-लक्ष्मियाँ उनपर तत्क्षण ही न्यौछावर कर दी जावें। भगवान् उस समय अपना दाहिना चरण स्वेच्छापूर्वक टेढा किये होते हैं, एवं अपने सुन्दरतम कमलके समान एक हाथमें बाँसुरी धारण किये होते हैं। भगवान्के ऐसे सुन्दर दर्शन पाकर वैकुण्ठपति भगवान् नारायण एवं पार्वतीपति श्रीमहादेवजी दोनोंको तो समाधि ही लग जाती है। अधिकांश देवगण ऐसे दिव्य दर्शन पाकर हर्षविकारसे अभिभूत बने, कोई तो नृत्य करने लगते हैं, और कोई अपने नेत्रोंसे अश्रु बहाने लगते हैं। उन्हें होश

ही नहीं रहता कि वे कहाँ, किसके सम्मुख, क्या कर रहे हैं। कोई-कोई तो भगवान्‌को अनवरत दण्डवत् प्रणाम करते ही जाते हैं ।

ब्रह्माजी ! उस समय एक विलक्षण चमत्कार संघटित होता है। सभी देवताओंके देखते-देखते ही भगवान् चतुर्भुज श्रीरमानाथ नारायणदेव उन भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो जाते हैं। इसके पश्चात् सहस्रों भुजाओंवाले, कोटि-कोटि सूर्यों‌के समान तेजस्वी प्रचण्ड पराक्रमी भगवान् नृसिंहजी भी भगवान् श्रीकृष्णके तेजमें समाहित हो जाते हैं। इसके पश्चात् सहस्र भुजाओंसे सुशोभित श्वेतद्वीपके स्वामी भगवान् विराट्पुरुष, जिनके रथमें लाखों घोड़े जुते हैं, एवं जिनके साथ साक्षात् महालक्ष्मीजी भी होती हैं, वे भी भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें प्रविष्ट हो जाते हैं। फिर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कमललोचन श्रीरामजी भी श्रीसीताजी एवं लक्ष्मण-भरतादि सहित भगवान्‌के श्रीविग्रहमें समाविष्ट हो जाते हैं। इसके पश्चात् साक्षात् श्रीयज्ञनारायण भगवान् हरि वहाँ अपनी पत्नी भगवती श्रीमती दक्षिणादेवीके साथ पधारते हैं और नवघनवर्ण परमातिपरम सुन्दर भगवान् श्रीकृष्णमें समाहित हो जाते हैं। तत्पश्चात् भगवान् नर-नारायण वहाँ पधारते हैं। वे दीर्घकाय, मेघवर्ण तथा चतुर्भुज होते हैं, उनके विशाल नेत्र और मुनियोंका वेश होता है। अपने साथ आये मुनीन्द्र-मण्डल सहित वे भी भगवान् श्रीकृष्णके परम सुन्दर श्रीविग्रहमें समाहित हो जाते हैं। इस प्रकार विलक्षण दिव्य दर्शन पाकर समग्र देवगण परमाश्चर्यमें समा जाते हैं। उन सभीको पूर्ण विश्वास हो जाता है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परात्पर परब्रह्म पूर्ण भगवान् हैं और उनके संकट-निवारणमें वही एकमात्र समर्थ हैं।

देवगण तब भगवान्‌के सम्मुख अपनी सम्पूर्ण व्यथा निवेदन कर देते हैं, और भगवान् श्रीकृष्ण भी उन्हें पूर्णतया आश्वस्तकर गोलोकधामसे अपने-अपने लोकोंको बिदा कर देते हैं।

इन देवताओंके बिदा होनेके पश्चात् श्रीराधाजी भगवान्‌को सम्बोधित कर कहती हैं – "प्राणवल्लभ ! आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये उनके ब्रह्माण्डमें अवतार लेना चाहते हैं, सो मैं आपकी रुचिका कदापि विरोध नहीं करती। किन्तु ऐसा करनेके पूर्व यह निश्चय ही जान लीजियेगा कि मैं आपके वियोगमें क्षणभर भी जीवित नहीं रह पाऊँगी। प्राणप्यारे ! आपके इस निर्णयको सुनने मात्रसे ही मेरे प्राण तो अधरोंतक पहुँच गये हैं। वे इस शरीरसे आपके गमनके साथ ही इस प्रकार उड़ जावेंगे, जैसे कपूरके कण उड़ जाते हैं।

अपनी प्रियाके उक्त वचन सुनकर भगवान् उसे ढाढस दिलाते हुए बोलते हैं– "प्राणवल्लभे ! तुम कदापि विषाद मत करो । मैं कदापि भूमण्डलपर एकाकी अवतार नही लूँगा। मेरे साथ ही वहाँ तुम भी निश्चय ही अवतरित होओगी।" इसपर श्रीमती श्रीराधा बोलीं– "हे मेरे जीवनसर्वस्व! जहाँ वृन्दावन नहीं है, यमुना नहीं है, एवं गिरिराज गोवर्धन पर्वत भी नहीं है, भला मैं उस ब्रह्माण्डमें कैसे रह पाऊँगी ? "

अपनी प्रियाकी अति भोली बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कुराये। उन्होंने तत्क्षण ही अपने गोलोकधामसे चौरासी कोसकी व्रजभूमि, गोवर्धनपर्वत और यमुनानदीको भी भूतलपर भेजनेका निश्चय कर लिया। तुरंत ही भगवान्ने उस ब्रह्माण्डके अधिष्ठाता नारायणदेवको आदेश दिया –"हे वैकुण्ठपति ! मैं मथुरामें श्रीवसुदेवजी एवं देवकीके गर्भसे जन्म-ग्रहण करने वाला हूँ। मेरे कलास्वरूप भगवान् शेष, जिनकी गोदमें यह गोलोकधाम स्थित है, मेरे संग ही श्रीवसुदेवजीकी दूसरी पत्नी रोहिणीके गर्भसे अवतरित होंगे। साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी राजा भीष्मकके घर पुत्रीरूपमें जन्म लेंगी। इनका नाम रुक्मिणी होगा। श्रीपार्वतीजी जाम्बवतीके नामसे पृथ्वीपर जन्म धारण करेंगी। यज्ञपुरुषकी पत्नी श्रीमती दक्षिणादेवी वहाँ लक्ष्मणा नामसे अवतार लेंगी। यहाँ जो विरजा नामकी नदी है, वे वहाँ कालिन्दीके नामसे जानी जावेंगी। भगवती लज्जाका नाम भद्रा होगा। समस्त पापोंका प्रशमन करनेवाली श्रीगंगादेवी मित्रविन्दाके नामसे अवतार लेंगी। जो इस समय मेरी सेवामें कामदेव हैं, वे ही महालक्ष्मी रुक्मिणीजीके गर्भसे शम्बरारि प्रद्युम्न होंगे। श्रीब्रह्माजी अपने अंशसे प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध होंगे। ये वसु, जो द्रोणके नामसे विख्यात हैं, व्रजमें नन्दगोप होंगे, इनकी प्राणप्रिया धर्मपत्नी धरादेवी यशोदा होंगी। नृगपुत्र सुचंद्र वृषभानु होंगे, और इनकी सहधर्मिणी कलावती कीर्त्तिदाके रूपमें विख्यात होंगी, जिनके गर्भसे मेरी प्राणप्रिया श्रीराधाका जन्म होगा। मैं इन मेरी प्राणप्रिया श्रीराधा एवं गोपांगनाओंके साथ उसी प्रकार रासविहार करूँगा जैसे यहाँ करता हूँ। हे चतुर्भुज ! सुबल और श्रीदामा, मेरे सखा उपनंद और सन्नन्दके पुत्र होंगे। मेरे तोक, अर्जुन एवं अंशुमान् आदि सखा नौ नंदोंके यहाँ जन्म ग्रहण करेंगे। इसी प्रकार छह वृषभानुओंके घर मेरे विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ, और वरूथप अवतीर्ण होंगे। हे चतुर्भुज ! जिनके यहाँ नौ लाख गायें रहती हैं वे नन्द कहलाते हैं। इसी प्रकार दस लाख गायोंको रखनेवाला वृषभानु कहलाता है।

वृषभानुपुरके राजा जो गोपराज वृषभानुवर होंगे, उनके आधीन एक करोड़ गायें होंगी। श्रीनन्दराय जो नन्दोंके राजा होंगे, उनके पास पचास लाख गोधन होगा। यह सभी संख्या दुग्ध दान देनेवाली गायोंकी है। हे वैकुण्ठनाथ ! दस कोटिकी संख्याको अर्बुद कहते हैं, और जहाँ दस अर्बुद संख्या होती है, उसे यूथ कहा जाता है। व्रजमें मेरी प्रियाकी सेवा करनेके लिये गोपियोंके सौ यूथ और उनकी यूथेश्वरियाँ जन्म लेंगी। इनमें कुछ तो गोलोकवासिनी नित्य गोपियाँ हैं, जो मेरी प्रियाकी अति अंतरंगा हैं, अनेकों कुंज, निकुंजोंमें द्वाररक्षिका होंगी, अनेकों श्रृंगार-सामग्रियोंकी देख-रेख करनेवाली होंगी। अनेकों शय्या सहेजनेवाली होंगी। अनेकों गोवर्धन गिरिकन्दराओंमें मेरी परम गोपनीय लीलाओंकी व्यवस्था देखनेवाली होंगी। इसी प्रकार वृन्दा, रमा, मधुमाधवी, विरजा, ललिता, विशाखा, एवं मायादिके असंख्य यूथ ब्रजमें मेरी मधुर लीलाओंमें सहयोगी होंगे। अनेक अति अंतरंग यूथ कम संख्याके भी होंगे।"

गोपियोंके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

"हे पुरुषोत्तम ! पूर्व कालमें श्रुतियोंने श्वेतद्वीप जाकर वहाँ मेरे स्वरूपभूत भूमा पुरुषका मधुर वाणीसे स्तवन किया था। जब सहस्रपाद विराटपुरुष उनसे प्रसन्न होगये तो उन्होंने उनसे यही वर माँगा कि हमें विशुद्ध आनन्दस्वरूप ब्रह्मके दर्शन हों। श्रुतियोंकी इस प्रार्थनापर भगवान् भूमाने उन्हें गोलोकधाममें मेरे दर्शन कराये। मुझ विशुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप, अविनाशी, सर्वथा निर्विकार परमात्माके दर्शन करते ही श्रुतियाँ कृतकृत्य होगयीं। तत्वरहस्यका अनुसंधान करती हुई इन श्रुतियोंमें मेरे परम मनोहर रूपको देखकर मेरे प्रति कामिनी भाव जाग्रत हो उठा। वे सभी मेरे विरहतापसे संतप्त हो उठीं। अब तो वे यहाँ रहनेवाली अन्य गोपियोंकी तरह ही मेरे प्रति उत्कट मिलनेच्छा रखने लगीं। वे मेरे चरणोंका क्षणभरका वियोग भी सहनेमें असमर्थ थीं। उनकी ऐसी भावभरी दशा देखकर मैं उनसे कहूँगा – "हे श्रुतियों ! तुम सभी मेरे प्रति जिस परम निर्मल प्रेमभावको रखकर मेरा परम सुदुर्लभ नित्य संग चाहती हो, उसका मैं भलीभाँति अनुमोदन करता हूँ। सारस्वत कल्पमें जब ब्रह्माजी जगत्‌की रचनामें संलग्न होंगे, और उस कल्पकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीका द्वापर युग होगा, तभी

तुम सभी श्रुतियोंका जन्म ब्रजमें गोपियोंके रूपमें होगा। उस समय भूमण्डलमें भारतवर्षमें माथुरमण्डलके अन्तर्गत वृन्दावनमें रासमण्डलमें मैं तुम्हारा प्रियतम बनूँगा। तुम्हारा उस समय मेरे प्रति ऐसा सुदृढ़ प्रेम होगा, जो मुझे अपने वशमें करनेवाला होगा। तब तुम सभी श्रुतियाँ मुझे पाकर सफल मनोरथ होओगी। हे वैकुण्ठनाथ ! पूर्व कल्पमें मैंने जो श्रुतियोंको वर दिया था, उसीके प्रभावसे वे ब्रजमें गोपियाँ बनेंगी। अब अन्य गोपियोंके लक्षण सुनो।"

"त्रेतायुगमें देवताओंकी रक्षा और राक्षसोंका संहार करनेके लिये मेरे स्वरूपभूत महापराक्रमी श्रीराम अवतार लेंगे। वे श्रीविश्वामित्र मुनिके साथ राजा जनककी पुत्री सीताके स्वयंबरमें जनकपुरी जावेंगे, और वहाँ स्वयंवरमें धनुष भंजनकर श्रीसीताजीके साथ विवाह करेंगे। उस अवसरपर जनकपुरीकी असंख्य स्त्रियाँ श्रीरामचंद्रजीको देखकर प्रेमविह्वल हो उठेंगी। वे इतनी प्रेमातुर होंगी कि एकान्तमें उन महाभागसे अपना अभिप्राय भी प्रकट कर देंगी – "हे राघव ! आप इस राजकुमारीके साथ-साथ हमारे भी प्राण-प्रियतम बन जावें। हे राम ! कुलवती नारियाँ अतिशय शीलवश लज्जाके कारण अपना काम-मनोरथ प्रायः प्रकट नहीं कर पातीं। किन्तु आपके प्रति अत्यधिक बढ़े हुए प्रेमके कारण हम निर्लज्जताको भी वरणकर आपके सम्मुख अपनी कामना प्रकट कर दे रही हैं। हे प्राणवल्लभ ! हमें किसी भी प्रकार अंगीकार करनेमें अब विलंब मत करो। हमारी प्रेम-विरहदशा अब ऐसी हो रही है कि हम आपका वियोग पलभर भी सहनेमें असमर्थ हो रही हैं।"उस समय जनकपुरीकी उन कामिनियोंकी दशा देखकर श्रीराम रूपमें मैं उनसे कहूँगा – "सुन्दरियों ! तुम शोक मत करो। द्वापरके अंतमें मैं तुम सबकी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा। तुम परम श्रद्धा एवं भक्तिके सहित तीर्थ, दान, तप, शौच एवं सदाचारका पालन करती हुई मेरा मन-ही-मन पतिरूपमें ही पूजन करती रहो। मैं तो सभीका एकमात्र उपादान एवं कारण होनेके कारण पति हूँ ही। तुम्हारे पतियोंके रूपमें अभी भी मैं ही तुम्हारे पास हूँ। तुम सभीको ब्रजमें गोपी होनेका निश्चय ही सुअवसर प्राप्त होगा। हे वैकुण्ठनाथ ! श्रीरामके रूपसे पाये मेरे वरदानके कारण ये अवधपुरीकी कामिनियाँ भी ब्रजमंडलमें अवतार लेंगी।

इसके पश्चात् स्वयंवरमें श्रीमहादेवजीके पिनाक धनुषका भंजन कर देनेके कारण श्रीरामपर भृगुनन्दन श्रीपरशुरामजी अतिशय कुपित हो उठेंगे। किन्तु भगवान् रामके शील एवं शौर्य दोनोंके सम्मुख अपनेको अति तुच्छ

अनुभवकर वे उनसे परास्त हो जायेंगे। श्रीरामका पाणिग्रहण श्रीसीताजीके साथ निर्विघ्न सम्पन्न हो जायगा। वे जब श्रीसीता सहित अयोध्यावासियोंकी बारातमें जनकपुरके राजपथसे गुजरेंगे, तो अपने-अपने महलोंके छज्जोंपर खड़ी होकर बारातकी शोभा देखतीं जनकपुरीकी अनगिनत स्त्रियाँ श्रीरामकी कमनीय कान्ति देखकर मोहित हो उठेंगी। वे सभी स्त्रियाँ मन-ही-मन श्रीरामको पतिरूपमें वरण कर लेंगी। उस समय भी श्रीरामके रूपमें सर्वान्तर्यामी मैं उन स्त्रियोंको वर दे दूँगा –"तुम सभीका मनोरथ पूर्ण हो। तुम सभी ब्रजमें गोपीरूपमें जन्म ग्रहण करो। उस समय मैं तुम सबकी इच्छा पूर्ण करूँगा।"

"हे वैकुण्ठनाथ ! इसके पश्चात् श्रीराम अयोध्या पहुँचेंगे । सारी अयोध्या ही उन्हें उस समय देखनको उमड़ उठेगी। श्रीरामका अतिशय मन्मथ-मन्मथ रूप देखकर अयोध्याकी कामिनियोंकी भी वही दशा होगी, जो दशा जनकपुरीकी स्त्रियोंकी हुई थी। श्रीरामको देखकर वे सभी प्रेमसे विह्वल हो मूर्च्छितप्राय हो जावेंगी। वे सभी श्रीरामके परायण होकर व्रत करेंगी और सरयूमें स्नानकर घोर तप करने लगेंगी। तब उनके लिये भी मैं आकाशवाणी करूँगा कि "हे अयोध्याकी रमणियों ! तुम सब सफल मनोरथ होओ। द्वापरके अंतमें यमुनाके किनारे वृन्दावनमें तुम सबके मनोरथ पूर्ण होंगे। इसमें सर्वथा संदेह मत मानना।"

"आगे श्रीराम पिताकी आज्ञासे दण्डकवनकी यात्रा करेंगे। उस समय उनके साथ श्रीसीताजी एवं लक्ष्मण भी होंगे। वहाँ उन्हें बहुतसे मुनि मिलेंगे। ये मुनिलोग गोपाल वेशधारी भगवान् श्रीकृष्णके उपासक होंगे। ये सभी मुनिलोग जब भगवान् श्रीरामको धनुषबाणधारी और तापसवेषमें जटाजूट धारण किये देखेंगे तो इन सभीका ध्यान उनके रूपपर आसक्त होकर लग जायगा। वे मन-ही-मन कह उठेंगे – 'अहो, आज तो हमारे गोपालजी वंशी और बिना लकुटके ही पधारे हैं। इस प्रकार मन-ही-मन वे सभी श्रीरामको प्रणाम करेंगे। उनकी भक्ति-भावना देखकर श्रीरामजी उनसे प्रसन्न हो जावेंगे। जब अति प्रसन्न हुए श्रीरामजी उनसे वर माँगनेको कहेंगे तो वे सभी एक स्वरमें उनसे यही वर माँगेंगे कि 'आप इन सीताजीको जितने प्रिय लगते हो, उतने ही प्रिय हमें भी लगो। हम सभी श्रीसीताजीके समान ही आपको प्रेम करना चाहते हैं।'

"उनके मनका मनोरथ समझकर श्रीराम उन्हें यह उत्तर देंगे – "हे मुनिजनों ! यदि आप सभी मुझसे मेरे भाई लक्ष्मणका-सा प्रेम माँगते तो मैं

आपको अभी सफल-मनोरथ कर देता। परन्तु आप सभीने तो मुझसे श्रीसीताजीका प्रेम चाहा है, अतः यह वर कठिन और दुर्लभ है। इस समय मैंने एकपत्नीव्रत धारण किया हुआ है, मैं मर्यादा पुरुषोत्तम भी कहलाता हूँ। अतः तुम सभीको द्वापरके अंतमें जन्म धारण करना होगा। वहाँ मैं तुम्हारे इस उत्तम मनोरथको अवश्य पूर्ण करूँगा।''

''इस प्रकार वर देकर श्रीराम पंचवटी पधारेंगे । अपने शेष वनवासकी अवधि वे वहीं पूरी करेंगे। उस समय भीलोंकी अनेकों स्त्रियाँ उन्हें देखेंगी । श्रीरामकी अपूर्व सुन्दरता देखकर वे सब भी उनपर मोहित हो उठेंगी। उनसे मिलनेकी अति उत्कट इच्छासे वे प्रेमसे विह्वल हो उठेंगी। वे श्रीरामके चरणोंकी धूलि लेकर प्राणत्याग करनेको तत्पर हो जावेंगी। उस समय श्रीराम ब्रह्मचारीके वेषमें उनके पास आवेंगे, और उन्हें आश्वासन देते हुए उन्हें प्राणत्यागके अति गर्हित कार्यसे रोकेंगे। वे उनसे कहेंगे –''रमणियों ! तुम व्यर्थ ही प्राणत्यागका संकल्प कर रही हो। ऐसा कदापि मत करना। द्वापरके अंत आनेपर मैं वृन्दावनमें तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करूँगा। यह आदेश देकर श्रीरामका वह ब्रह्मचारी रूप अन्तर्धान हो जायेगा।''

''हे हरि ! वैकुण्ठमें विराजनेवाली श्रीरमादेवीकी सहचरियाँ, श्वेतद्वीपमें रहनेवाली उनकी सखियाँ, भगवान् अजितके आश्रयमें ऊर्ध्व-वैकुण्ठमें निवास करने वाली देवियाँ तथा लोकालोक पर्वतपर रहनेवाली समुद्रसे प्रकट हुई उनकी सखियाँ – ये सभी भगवान् कमलापतिके वरदानसे व्रजमें गोपियाँ होंगी। पूर्वकृत विविध पुण्योंके प्रभावसे कोई दिव्य, कोई अदिव्य और कोई सत्व, रज, तम – तीनों गुणोंसे युक्त देवियाँ ब्रजमण्डलमें गोपीरूप धारण करेंगी।''

''हे हरि ! रुचिके यहाँ अवतीर्ण द्युलोकपति रुचिरविग्रह भगवान् यज्ञको देखकर देवांगनाएँ प्रेम-रसमें जब निमग्न होजावेंगी तो वे सभी देवलजीके उपदेशसे हिमालय पर्वतपर जाकर परम भक्तिभावसे तपस्या करने लगेंगी। वे सभी भी मेरे इस अवतारकालमें ब्रजमें गोपी रूप धारण करेंगी।

भगवान् ! जब इस भूतलपर अन्तर्धान हुए थे, उस समय असंख्य ओषधियाँ अत्यंत दुःखसे डूब गयीं। उन सभीने अपनेको निष्फल जीवन मानकर सुन्दर स्त्रीवेश धारणकर तपस्या करनेका निश्चय किया। वे अनवरत चार युगोंतक तपस्या करती रहीं। उनपर जब मैं पूर्ण प्रसन्न हुआ और उनसे मैंने

वर माँगनेको कहा तो वे मेरा मनोहर रूप देखकर ही मोहित हो गयीं। उनकी तो मुझसे यही माँग थी कि हमारे पतिरूपमें ही हमें आप मिलें। तब प्रसन्न होकर मैंने उन्हें यही वर दिया कि तुम सभी लतास्वरूपमें मेरे वृन्दावन धाममें रहोगी। वहाँ रासके समय मैं तुम सभीका मनोरथ पूर्ण करूँगा। हे हरि! ये सभी ओषधिस्वरूपा वरांगनाएँ वृन्दावनमें लतागोपी होंगी।''

''इसी प्रकार जालंधर नगरकी स्त्रियाँ जब मुझ वृन्दापतिका दर्शन करेंगी तो मन-ही-मन संकल्प करेंगी कि ये श्रीकृष्ण ही हम सभीके स्वामी हों। उस समय उन सभीके लिये मैं आकाशवाणी करूँगा – ''तुम मेरी आराधना करो, फिर मेरी प्रिया वृन्दाकी तरह तुम सब भी वृन्दावनमें मेरी प्रिया गोपी होओगी।''

''इसी प्रकार मत्स्यावतारके समय मुझको देखकर सभी मत्स्यकन्याएँ मुझपर मुग्ध हो जावेंगी। मुझ भगवान् मत्स्यके वरदानसे वे सब भी ब्रजमें गोपियाँ होंगी।''

''हे हरि ! मेरे अंशस्वरूप राजा पृथु बड़े प्रतापी थे। उस समय बर्हिष्मती नगरीमें रहनेवाली बहुत सी स्त्रियाँ उन्हें देखकर मोहित होगयीं थीं। अतिशय प्रेमसे विह्वल हुई वे महर्षि अत्रिके पास गयीं। उन सभीने महर्षिसे महाराज पृथुको पतिरूपमें पानेका उपाय पूछा। महर्षिने उन सभीसे कहा कि ये धरणीदेवी सब वरदान देनेमें समर्थ हैं। ये अपार धारणामयी हैं। तुम्हारे सभी मनोरथोंको – चाहे वे समुद्रके समान अगाध, अपार, दुर्गम, एवं असाध्य ही क्यों न हों, ये भगवती हरिप्रिया अवश्य पूर्ण कर देंगी। हे हरि ! तब उन स्त्रियोंने अपने-अपने मनोंको ही दोहनपात्र बनाया, और अपने मनोरथोंका दोहन किया। इसी कारण वे सभी स्त्रियाँ वृन्दावनमें गोपियाँ बनेंगी।''

''हे वैकुण्ठनाथ ! बहुतसी श्रेष्ठ अप्सराएँ जिनका रूप अत्यंत मनोहर था, और जो कामदेवकी सेनाएँ थीं, भगवान् नारायण ऋषिको मोहित करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर गयीं थीं। परन्तु उनका अलौकिक तेज और सौन्दर्य देखकर वे स्वयं मोहित हो उठीं। उन सभीके मनोंमें भगवान् नारायणको ही अपना पति बनानेका भाव प्रबल हो उठा । तब उन महासिद्ध तपस्वी नारायण मुनिने उन सभीसे कहा – ''तुम सभी ब्रजमें गोपी रूपमें जन्म लोगी, तब तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण होगा।''

'' इसी प्रकार सुतल देशकी स्त्रियाँ जब भगवान् वामनको देखकर उन्हें

पानेके लिये अति उत्कटरूपसे लालायित हो उठती हैं, तो वे सभी घोर तपस्यामें रत हो जाती हैं। उस समय उनपर प्रसन्न हुआ मैं उन्हें यही वरदान देता हूँ कि उन सभीका मनोरथ द्वापरके अंतमें उनके गोपी रूपमें जन्म लेनेके पश्चात् ही पूर्ण होगा।''

द्वापरान्ते करिष्यामि भवतीनां मनोरथम्।
श्रद्धया परया भक्त्या ब्रजे गोप्यो भविष्यथ।।

''हे वैकुण्ठनाथ ! इस प्रकार जो-जो मेरे विभिन्न अवतारोंके समय मुझसे प्रत्यक्ष या मूक माधुर्यभावकी लालसा रख चुके हैं उन सभीको मैंने 'एवमस्तु' का वरदान दिया है। उन सभीको ब्रजमें आप गोपीरूपमें जन्मग्रहण करानेकी व्यवस्था करें।''

'' जिन प्रपञ्चगत जीवोंने, साथ ही ऋषियों एवं मुनियोंने, अपने सहस्रों जन्मोंकी कठोर तपश्चर्या एवं सतत साधनाके उपरान्त मुझ जगदीश्वरकी कृपा प्राप्त की थी, एवं मुझसे अपनी माधुर्योपासनाकी सिद्धिकी याचना की थी और 'तथास्तु'का वरदान भी प्राप्त कर लिया था, उन सभीकी गणना मेरी अचिन्त्य लीलामहाशक्ति योगमायाके पास सुरक्षित है। हे नारायण ! उन सभीको आप मेरे प्राकट्यके समय ब्रजमण्डलमें गोपीरूपमें अवतरित करें।''

इस प्रकार भगवान् गोलोकेश्वर श्रीकृष्णका आदेश पाकर भगवान्‌की आज्ञानुसार सब विधान करने तत्कालीन वैकुण्ठपति अपने लोकमें चले आये।

अब गिरिराज गोवर्धन पर्वत बने भगवान् नारायण ब्रजमें पर्वत बने त्रिदेवोंको पुनः भविष्यमें ब्रजभूमिमें होनेवाली भगवान् गोलोकेश्वरकी अवतरणलीलाका सविस्तार वर्णन सुनाने लगे।

बृहद्वन एवं बृषभानुपुरमें लीलापात्रोंका अवतरण

गिरिराज पर्वत बने भगवान् नारायण कहते हैं –" हे त्रिदेवों ! यथाकालचक्रानुसार भगवती लीलामहाशक्ति कलिन्दनन्दिनी यमुनाके सुरम्य पुलिनपर साक्षात् गोलोकधामकी छाया (प्रतिबिम्ब)के रूपमें अति रमणीय परम पावन बृहद्वनका निर्माण कर देंगी। तत्कालीन माथुरमण्डलके महाराजा शूरसेन गोपराज पर्जन्यको इस बृहद्वनका करद अधिपति नियुक्त कर देंगे। प्रचलित प्रथानुसार उन दिनों 'नन्द' उपाधि उसीको मिलेगी, जिसके पास नौ लाख या उससे अधिक गौएँ होंगी।

इसी प्रकार दस लाखसे ऊपर दुधारू गौएँ रखनेवाले गोप 'बृषभानु' उपाधिसे सुभूषित होंगे। जिस प्रकार ब्रहद्वनमें महानन्द पर्जन्यजीको नन्दोंका अधिपति चयन किया जायेगा उसी प्रकार इस ब्रह्मगिरि, विष्णुगिरि एवं रुद्रगिरि पर्वतक्षेत्रके अधिपति महीभानु गोपराज होंगे। बृहद्वनमें बसनेके पूर्व पर्जन्य गोप भी रुद्रगिरि पर्वतके प्रदेशमें नन्दग्राम नगर बसाकर रहेंगे। ये महाराजा महीभानुके अधीनस्थ करद गोप होंगे। पुरातन सम्बन्धोंका निर्वाह करते हुए सभी नन्द अपनेको बृहद्वनमें बसनेके पश्चात् भी महाराजा महीभानुके आधीन ही समझेंगे, एवं महाराजा महीभानुको ही सम्पूर्ण ब्रजमण्डलके गोपोंके राजाका सम्मान प्राप्त होगा। ये महाराजा महीभानु बृषभानुओंके राजा होंगे एवं इनके स्वयंके पास भी दस करोड़ दुधारू गायें होंगी। इनके आधीन आसपास बसे सभी बृषभानुओंमें प्रत्येकके पास दसों लाख गायें होंगी।

ये महाराजा महीभानु बड़े ही तेजस्वी, धर्मात्मा एवं समृद्ध राजा होंगे। पराभट्टारिका आदि-महाशक्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरी इनकी कुलदेवी होंगी और इनका सम्पूर्ण जीवन इन महादेवीकी उपासना एवं तपश्चर्यामें ही व्यतीत होगा। ये महातपस्वी, योगनिष्ठ महापुरुष, योगमाया भगवती त्रिपुराके असीम कृपापात्र निज-जन होंगे और इन्हें ये आद्याशक्ति प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपनी कृपावर्षाकी छायामें ही सदा रखेंगी। महारानी सुखदा इन पूर्ण तपस्वी महाराजाकी

सहधर्मचारिणी पत्नी होंगी और इनपर भी भगवती त्रिपुराकी सहज कृपा होगी। ये दोनों पति-पत्नी प्रायः अपना समग्र जीवन उपासनामें ही व्यतीत करेंगे एवं राजकाजका समस्त भार विश्वासपात्र मंत्रीगण ही वहन करेंगे।

भगवती त्रिपुरसुन्दरीका संकेत पाकर ही ये गृहस्थधर्मका पालन करेंगे और इनके चार अति तेजस्वी धर्मात्मा पुत्र होंगे। ये चारों पुत्र इनके स्वयंके समान ही धर्मात्मा, सदाचारी, प्रजावत्सल एवं गोसेवक होंगे। इनके अतिरिक्त महाराजा महीभानुके एक पुत्री भी होगी। इन चारों पुत्रोंके नाम (१) बृषभानुवर (२) भानुवर (३) रत्नभानुवर एवं (४) स्वर्भानुवर होंगे एवं इनकी पुत्रीका नाम भानुमुद्रा होगा। भानुमुद्राके पतिका नाम काश्यभानु गोप होगा।

हे चतुरानन ! ब्रह्मगिरि नामक जिस पहाड़ीका स्वरूप धारण किये हुए जिस स्थलपर आप स्थित हैं, उस गिरिकी रम्य तलहटीपर ही गिरिस्रोतके किनारे महाराजा महीभानुकी राजधानी स्थापित होगी। पराभट्टारिका भगवती त्रिपुरसुन्दरी कामेश्वरांकनिलया योगमाया स्वयं अपने हाथों इस नगरीकी रचना करेंगी। इस नगरीका वैभव, सौन्दर्य, पावित्र्य एवं तेजस्विता भगवतीके स्वयंके धाम श्रीपुरके समानान्तर ही होगा। क्योंकि भगवतीके धामसे बढ़कर सुन्दर तो कुछ है ही नहीं, और भगवती स्वयं इसकी रचना कुछ न्यून करेंगी भी नहीं । इस परम मंगलमय महाधामकी तेजस्विता इतनी अधिक होगी कि भगवान् सूर्यदेव भी जब इसके ऊपरसे अपना रथ हाँकेंगे तो वे भी इसके सौन्दर्य एवं तेजसे अभिभूत हो उठेंगे।

इस बृषभानुपुरके आसपास अनेक गोप अपने अपार गोधन सहित निवास करेंगे और करोड़ों गायोंके स्वामी होनेके कारण ये सभी बृषभानु ही होंगे।

सखी ललिताका जन्म-प्रसंग

इनमेंसे कुछ-एक महाभाग्यशाली गोपोंके नाम भी उल्लेख कर देता हूँ। हे त्रिदेवों ! बृषभानुपुरके पार्श्वमें ही एक पहाड़ीपर सत्यभानु गोपका निवास होगा। ये महोदार बृषभानु होंगे एवं उनके घरसे कोई याचक कभी निराश नहीं

लौटेगा। विशोक गोप भी इनका उपनाम होगा। ये किसीको भी शोकग्रस्त देखकर स्वभावतः ही उसका शोक दूर करनेको उद्यत हो उठेंगे। इनका विवाह कीर्त्तिदाकी मौसेरी बहिन सत्यकलाके साथ होगा। इन सत्यकलाका एक नाम शारदा भी होगा। ये गोपराज बृषभानुपुरके पार्श्वमें ही स्थित एक पहाड़ीकी तलहटीमें स्थित उच्चग्राम (ऊँचेगाँव)में निवास करेंगे। प्रिया श्रीराधाकी प्रधान सखी ललिताका जन्म इन्हींकी पतिपरायणा धर्मपत्नी माता सत्यकलाकी कोखसे होगा। इनकी जन्म-सम्बन्धी घटना भी अति विचित्र होगी।

एक बार भगवती पराभट्टारिका आदिशक्ति योगमायाके आदेशानुसार कीर्त्तिदा अपनी छोटी बहिन कीर्त्तिमतीको लेकर अपनी मौसेरी बहिन शारदासे मिलने उच्चग्राम आवेंगी। कीर्त्तिदाके साथ उनका पुत्र श्रीदाम उनकी गोदमें होगा और कीर्त्तिमतीकी गोदमें उनकी स्वयंकी पुत्री कुन्दलता सुशोभित होगी। राजकुमार श्रीदाम उस दिन एक वर्ष एक मास एवं सत्रह दिनका होगा। दोनों भाई-बहिन – कीर्त्तिमतीकी पुत्री एवं श्रीदाम परस्पर एक दूसरेका हाथ थामे वहाँ घरमें आकर क्रीड़ा करने लगेंगे। तीनों बहनें – कीर्त्तिदा, कीर्त्तिमती एवं शारदा (सत्यकला) इन दोनों बच्चोंकी बालक्रीड़ा निरख रही होंगी। अचानक ही उन सबके समक्ष एक विलक्षण घटना घटित होगी। शारदा(सत्यकला)की कोखसे मानों सहस्रों दिवाकरोंका प्रकाश उदय हो उठा हो, इस भाँति एक विलक्षण तेजपुंज प्रकट होगा। वह तेजपुंज कुछ काल तो अन्तरिक्षमें स्थित रहेगा, तत्पश्चात् वह एक बालिकाके रूपमें परिणत हो, माता शारदाकी क्रोड़में खेलने लगेगा। वह बालिका कुछ ही कालमें उठकर शारदा (सत्यकला)की क्रोड़से खड़ी होकर उन क्रीड़ा करते दोनों भाई-बहिनोंसे मिल जायगी। सीमाहीन आश्चर्यमें डूबी तीनों बहिनोंके लिये यह निर्णय करना ही असंभव हो जायगा कि यह घटना सत्य घटित हो रही है अथवा वे कोई स्वप्न देखने जारही हैं। उस समय तीनों बहिनें इतनी भावप्रवण हो उठेंगी कि उनके अंग-प्रत्यंगमें जड़िमाभाव उदय हो जायगा। उधर वे तीनों शिशु यंत्रित-से क्रीड़ा करते रहेंगे। अचानक ही वह सद्योजात बालिका ललिता अतिशय मृदुल मुसकानमें भरकर बोल उठेगी – "अहो ! यह मेरी मैया है !" इतनेमें ही दूसरा बालक श्रीदाम भी अपनी मैयाके कण्ठसे झूलकर कहेगा–'यह मेरी मैया है !' तीसरी बालिका भी इसी प्रकार अपनी मैया कीर्त्तिमतीके कण्ठसे लगकर यही आवृत्ति दुहरावेगी। किन्तु अन्तमें माताओंके इस कथनपर कि हम तीनों तुम

तीनोंकी माताएँ हैं, वे बालक प्रसन्न हो उठेंगे और इसे उत्फुल्ल चित्तसे स्वीकृति दे देंगे।

माताओंके सम्मुखसे यह दृश्य इसी समय एक काल्पनिक आभास-सा हो जायेगा और उन्हें अपनी बहिन शारदाके प्रसव होने और सद्यःप्रसूत बालिकाके रुदनकी लोकवत् प्रतीति हो उठेगी। बालिकाके जन्मोत्सवके मंगलकृत्य सम्पादित होने लगेंगे। दाई माँ धात्रीको बुलावा भेजा जायगा और लोकमें जिस प्रकार जन्मके कृत्य, संस्कार सम्पादित किये जाते हैं, सभी नालछेदन एवं जातकर्मसंस्कारादि प्रारंभ हो उठेंगे। इस परम सुन्दरी बालिकाका नामकरण 'ललिता' होगा। किन्तु उस समय उन बालिकाओंकी शिशुक्रीड़ाका जो विलक्षण दृश्य तीनों माताओंके सम्मुख प्रस्तुत हुआ था, उसे स्मरणकर तीनों माताएँ रह-रहकर विस्मित हो उठेंगी।

सखी विशाखाका जन्म-प्रसंग

हे देवाधिदेवों ! इसी प्रकार इस बृषभानुपुर मंडलमें ही कामनावन(कामेई ग्राम) नामक स्थान स्थित है। यहाँ पावन (गुणभानु)गोपराजका निवास होगा। ये अत्यन्त उच्च कोटिके विद्वान् होंगे और अधिकांश शास्त्र इन्हें कण्ठस्थ होंगे। इन गुणभानु गोपकी पत्नीका नाम गुणकला(सुदक्षिणा) होगा। ये गुणकला भी कीर्त्तिदाकी दूरके रिश्तेकी बहिन होंगी। इन दोनोंमें इतना अधिक प्रेम होगा कि सगी बहिनोंमें भी ऐसा प्रेम देखनेको नहीं मिलेगा। इस प्रेमका ही यह अद्वितीय उदाहरण होगा कि जिस दिवस, जिस क्षण प्रिया श्रीराधाका भूमण्डलमें रावलग्राममें प्राकट्य होगा, ठीक, उसी क्षण इनके भी विशाखा नाम्नी कन्या आविर्भूत होगी। पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदायके वैष्णवगण राधाजन्माष्टमीसे पूर्व सप्तमी तिथिको प्रातःकाल इनका जन्मोसव मनाते हैं।

सखी चित्राका जन्म-प्रसंग

हे त्रिदेवों ! बृषभानुपुरके दोनों पर्वत – विष्णुपर्वत एवं ब्रह्मपर्वतके मध्य तलहटीमें एक अत्यन्त लघु गली (खोर) है। यह गली (खोर) ही इन दोनों पर्वतोंकी सीमा कहनी चाहिये। इस गलीके एक ओर विष्णुपर्वतकी श्यामवर्णकी शिलायें खड़ी हैं और दूसरी ओर ब्रह्मपर्वतकी गौरवर्णकी शिलायें हैं। इस साँकरी खोरके समीप ही चित्रास्थली (चिकसौली) नामक स्थानपर रुचिभानु (चतुर) गोपराज निवास करेंगे। इनकी पतिव्रता धर्मपरायणा पत्नीका नाम रुचिकला(चर्चिका) होगा।

ये रुचिभानुजी ज्योतिष शास्त्रके उद्भट विद्वान् होंगे। ये सर्पमंत्रोंके भी विशेषज्ञ माने जायेंगे और यदि मनों गोदुग्धमें कोई थोड़ा-सा भी महिषीके दुग्धका मेल करदे, तो ये मात्र उसके दर्शनसे ही इसके मेलका रहस्य और मेलकी मात्रा भी बता सकेंगे। रसीले भोज्य वस्तुके निर्माणमें भी ये सिद्धहस्त होंगे। श्रीबृषभानुवर महाराजके यहाँ किसी भी उत्सवमें रसोई-निर्माणका कार्य ये ही अपनी देखरेखमें सम्पादित करावेंगे। मधुके भी ये पारखी होंगे। मधुको देखते ही ये पहचान लेंगे कि किस कीटने किस वृक्षके लता-पुष्पोंके मकरन्दसे इस मधुका निर्माण किया है।

इन महाभाग्यवान् रुचिभानु गोपके घर ही प्रिया श्रीराधारानीकी चित्रा सखीका जन्म होगा। ये रुचिभानु गोप बृषभानुवर गोपराजके अति विश्वस्त मंत्री होंगे।

सखी इन्दुलेखाका जन्म-प्रसंग

हे त्रिदेवों ! ऊँचेगाँव(उच्च ग्राम)के पार्श्वमें सखीगिरि नामक स्थान है। यहाँ वरभानु गोपकी विलक्षण गौशाला होगी। अपनी कोटि-कोटि गौओंके सहित वरभानु नृपति यहाँ निवास करेंगे। इनकी कोकिलकण्ठी पत्नीका नाम वरकला होगा। वरभानुका नाम लोकमें सागर गोपके नामसे भी विख्यात होगा। इसी प्रकार वरकलाका भी वेला नाम प्रसिद्ध होगा। ये सागर (वरभानु) गोप संगीतकलामें निष्णात होंगे। इनका कण्ठ अत्यन्त गंभीर एवं सुरीला होनेसे भी

सखी श्रीललिताजी

इनका नाम 'सागर'गोप पड़ेगा।

इन महाभाग्य गोपराजके घर प्रिया श्रीराधारानीकी इन्दुलेखा सखीका जन्म होगा।

सखी चम्पकलताका जन्म-प्रसंग

हे त्रिदेवों ! इसी प्रकार रुद्रगिरि पर्वत क्षेत्रमें एक विलक्षण चम्पावन होगा। इस अति सुरम्य स्थलपर चन्द्रभानु गोपका निवास होगा। ये चन्द्रभानु विविध कलाओंके ज्ञाता होंगे। वे द्यूतशास्त्रके बहुत बड़े विद्वान् होंगे। मिष्ठान्न बनानेमें भी ये पारंगत होंगे। इन चन्द्रभानु गोपराजको लोग आराम गोप भी कहेंगे। मिट्टीसे बहुत ही सुन्दर बर्त्तन, फूल, छोटे वृक्ष आदि संरचना करनेमें भी ये कुशल होंगे।

चन्द्रभानु गोपराजकी धर्मपत्नी चन्द्रकला देवी होंगी। गोपियाँ इनको वाटिका उपनामसे भी पुकारेंगी। इनकी अंगकान्ति चम्पाके पुष्पकी तरह होगी।

इन महासुन्दरी चन्द्रकला (वाटिका) गोपीकी कोखसे प्रिया राधारानीकी परम प्रेष्ठ सखी चम्पकलताजीका जन्म होगा।

यहाँ ध्यान रहे श्रीचन्द्रावली सखीके माता-पिताके नाम भी चन्द्रभानु एवं चन्द्रकला ही हैं। परन्तु वे इनसे भिन्न हैं। श्रीचन्द्रावलीजीका जन्म रीठौरा ग्राममें हुआ है। इसे चन्द्रावलीवन भी कहते हैं।

सखी रंगदेवी एवं सुदेवीका जन्म-प्रसंग

हे देवाधिदेवों ! ब्रह्मगिरिके पास ही बहुत विलक्षण सुन्दर स्वर्णमय प्रस्तर खण्डोंका एक स्वर्णप्रस्थ पर्वत है। यहाँ अति सुन्दर कदम्ब वृक्षोंके कुञ्ज हैं। चतुर्दिक् जलाशय हैं और घने मनोहर कदम्ब वृक्षोंका आश्रय लेकर यहाँ स्वतः प्रकृतिने भिन्न-भिन्न रंगबिरंगी पुष्पलताओं द्वारा परस्पर गूँथकर विलक्षण रंगबिरंगे झूलोंका निर्माण कर दिया है। इस स्वर्णप्रस्थ पर्वतकी शोभाके सम्मुख कैलास पर्वतकी शोभा भी तुच्छ है। यहाँ सुरम्य वृक्षोंसे घिरी रासस्थलियाँ हैं, जहाँ निरन्तर मत्त हुए मयूर नृत्य करते रहते हैं। चतुर्दिक् कोकिलाएँ, पिक, शुक,

सारिकाएँ कपोत कूजन करते रहते हैं। एकान्तिक रासविलासकी स्थलियाँ कदम्ब पुष्पोंकी सौरभसे महकती रहती हैं। इस पर्वतपर सदैव वसन्त एवं शरद ऋतु ही वर्तमान रहती हैं। ग्रीष्मका प्रभाव कदम्ब पुष्पोंकी सौरभमें अस्तित्वहीन हो जाता है। वर्षा ऋतुमें तो इस स्थानकी शोभा नन्दनकाननको भी पराजित कर देती है। वर्षाकी फुहारोंसे जब कदम्ब वृक्ष नहा जाते हैं, मृत्तिकाकी सौंधी सुगन्ध जब कदम्ब पुष्पोंकी सौरभमें मिलकर मन-भ्रमरको उन्मत्त कर देती है, उस समय मन माधुर्याम्बुधिकी लहरोंमें डूब ही जाता है। यहाँ स्थान-स्थानपर मनोहर कलाकृतियोंका प्रदर्शन करते भिन्न-भिन्न रत्नोंके कुण्ड हैं।

इसी स्वर्गोपम स्थलपर हे त्रिदेवों ! महाराजा बृषभानुवर गोपराजके अतिशय विश्वासपात्र परम धर्मात्मा धर्मभानु गोपका निवास होगा। इन्हें रंगसार नामसे भी लोग पुकारेंगे। इनकी परम धर्मात्मा पत्नीका नाम धर्मकला होगा। ये वस्तुतः धर्मकी कला ही होंगी। इन दोनों पति-पत्नीमें धर्मपालनकी अद्वितीय निष्ठा होगी। मैया कीर्तिदाकी स्त्रियोचित ब्रत-त्यौहार आदि मनानेकी सभी व्यवस्था ये धर्मकला देवी ही करेंगी। इन धर्मकलाको गोपियाँ करुणाके उपनामसे भी पुकारेंगी, क्योंकि ये साक्षात् करुणाकी प्रतिमूर्त्ति ही होंगी।

इन परम धर्मात्मा गोपराजके धरमें ही प्रिया श्रीराधारानीकी अन्यतम परमप्रेष्ठ सखी रंगदेवी एवं सुदेवीका प्राकट्य होगा। श्रीरंगदेवी एवं सुदेवी परस्पर यमज बहिनें होंगी। इन दोनोंकी आकृतियाँ परस्पर इतना मेल खाती होंगी कि रंगदेवीको देखकर सुदेवीका भ्रम हो जायगा एवं सुदेवीको देखकर रंगदेवीका भ्रम हो जायगा।

सखी तुंगविद्याजीका जन्म–प्रसंग

हे त्रिदेवों ! इसी प्रकार ब्रह्मगिरिसे कुछ ही दूरीपर एक और परम रमणीय विचित्र स्थल डभरार है। इसका नाम भविष्यमें 'डभारो' हो जायगा। इस डभरार स्थलीकी एक विशेषता है कि प्रिय-वियोगके तीव्र कष्टमें भी यहाँ प्रकृति एक ऐसी सरसताकी लहर उत्पन्न कर देती है कि मन पूर्णतया विरह-उद्वेलित नहीं हो पाता।

इस परम रम्य प्राकृत स्थलीमें सुभानु गोपराजका निवास होगा। इनकी

धर्मपत्नीका नाम सुष्ठुकला होगा। इन गोपराज एवं उनकी पत्नीको लोग पौष्कर एवं मेधाके नामसे भी पुकारेंगे। ये पति-पत्नी इतने स्वभाव-मधुर होंगे कि ये सभीको परमात्मीय, अपने-से-अपने एवं स्वाभाविक ही प्रिय लगेंगे। सुभानु गोपराज सर्व विद्याओंमें पारंगत होंगे। रसशास्त्र, नीतिशास्त्र, नाट्यशास्त्र, गन्धर्वविद्या – इन सब विद्याओंमें इन दोनों पति-पत्नीकी कोई तुलना नहीं होगी। सुष्ठुकला गोपीका कुंकुमके समान अंगवर्ण इतना सुन्दर होगा कि दूरसे देखनेपर लोग इन्हें मानो साक्षात् भगवती पार्वती ही कैलास पर्वतसे आ रही हों, यही मानने लगेंगे।

इन सुभानु गोपराजके घरमें प्रिया श्रीराधारानीकी परमप्रेष्ठ सखी तुंगविद्याजीका जन्म होगा।

इन आठों सखियोंके जन्मके ही पश्चात् इस सम्पूर्ण क्षेत्रपर मनुष्यभक्षी राक्षसोंका भीषण सैन्यदल आक्रमण करेगा। इन राक्षसोंसे अपनी रक्षाका कोई उपाय नहीं देखकर ये सभी गोप अपनी रक्षाके लिये शरण लेने अपने समग्र गोधनको लेकर महाराज बृषभानुवर गोपकी राजनगरीकी ओर प्रस्थान करेंगे। इन सभी गोपोंको पूर्ण विश्वास होगा कि गोपराज बृषभानुकी पुरी जगन्माता योगमाया द्वारा पूर्ण सुरक्षित है एवं वहाँ प्रवेश हो जानेपर इनमेंसे किसीका बाल भी बाँका नहीं होगा। इन सभी गोपोंको, जब वे बृषभानुपुर पहुँचेंगे, महाराज बृषभानुवर स्वागत करते मिलेंगे और वे सभी अपने योग्य आवास पाकर गोधन सहित बृषभानुपुरीमें ही बस जावेंगे।

भगवती श्रीराधाका लीलाधाम–बृषभानुपुर

हे त्रिदेवों ! मैं यह पहले ही कह चुका हूँ कि परम धर्मात्मा राजा महीभानु गोपके द्वारा ही ब्रह्मगिरि पर्वतकी गोदमें बृषभानुपुरके नामसे इन सब बृषभानुओंकी राजधानीका निर्माण होगा। इस परम पूत नगरीका निर्माण एवं इसकी नींव रखनेका कार्य आद्याशक्ति पराभट्टारिका भगवती त्रिपुराके संकेतसे स्वयं देवशिल्पी विश्वकर्मा करेंगे। विधाताका कौशल यहाँ कोई अर्थ ही नहीं रखेगा, क्योंकि विश्वकर्मा एवं उनके शिल्पी तो मात्र यंत्र ही होंगे, इसकी रचना तो स्वतः ही प्रकट होगी। यहाँ इस नगरीमें सब-कुछ संविन्मय और

संधिनी शक्तिकी स्वतः स्वप्रकाश परिणति ही होगी।

यह श्रीराधाधाम सर्वथा अप्राकृत अनिर्वचनीय सृष्टि होगी। यह अघटन-घटना-पटीयसी योगमायाका पूर्ण स्वतंत्र आत्मविलास होगा। यह अपनी विशुद्ध चिज्ज्योतिसे सतत उद्भासित, समग्र तम एवं दुःखका मूलोच्छेदन करनेमें समर्थ अप्राकृत लोक होगा। चतुर्दश भुवनोंमें जितने भी अनमोल रत्न हैं वे सभी यहाँ उपलब्ध होंगे। वृक्षोंसे चिन्मय कल्पलताएँ लिपटी होंगी। भिन्न-भिन्न सुन्दर-सुन्दर रंगोंवाले, और असीम मनोरम सौगन्ध्य प्रसरित करनेवाले पुष्पोंके चतुर्दिक् अम्बार लगे होंगे। दिव्य रत्नोंसे बनी चतुःशालायें, अत्यन्त मूल्यवान चन्दनादि काष्ठोंपर जटित स्वर्ण और रजतके कपाट, रत्नोंकी विविध चित्रकारीसे समलंकृत होंगे। ऐसे कपाट सभी भवनोंमें लगे होंगे। सभी भवनोंको आधार देनेवाले मूलस्तम्भ ऐसे होंगे, मानो मणिपर्वतोंको ही काट-काटकर उनकी कलापूर्ण रचना की गई हो।

स्वर्णके झलमलाते कलश, दिव्य वेदियाँ, मुक्ता एवं प्रवालचूर्णसे निर्मित अत्यन्त चिकने प्रांगण, कहीं स्वर्ण एवं कहीं स्फटिकसे बनी दीवारें – बृषभानुपुरी अपने दैदीप्यमान तेजसे इन्द्रपुरीकी तरह जगमग करेगी।

ब्रह्मगिरिके सर्वोच्च शिखरकी छत्रछायामें यह पुरी पर्वतके पश्चिम भागको पूरी समाच्छादित किये रहेगी। इसकी पूर्व दिशामें ब्रह्मगिरि शिखर इसके ऊपर छत्रकी तरह सुशोभित होगा। इस स्वर्णमय शिखरसे एक गिरिस्रोत इस सम्पूर्ण नगरीके दक्षिणमें प्रवाहित होता हुआ, सुदूर काननके आगे पश्चिम दिशामें यमुना नदीसे संगमित हो जायेगा। इस परम वैभवमयी नगरीके उत्तर दिशामें राजपथ होगा, जो परम सुरम्य पुष्पोंसे लदी लताओंसे समालिंगित होकर, वृक्षोंकी छायामें सुदूर नारायण पर्वत (गिरिराज)तक चला जायगा। इस पुरीको दूर-दूरतक चतुर्दिक् सुरम्य वन घेरे होगा जिसमें छोटी-छोटी पगडंडियाँ हरे-हरे तृणोंसे, गुल्मोंसे भरे वनोंमें लुप्त हो जावेंगी। नगरकी प्राची दिशामें अति विस्तृत सुदूर वनोंतक विशाल गौशालायें निर्मित होंगी, जिनकी संरचना रत्नमय पर्वतखण्डोंसे ही की गयी होगी। इन विशाल गौशालाओंमें महीभानु नृपतिकी असंख्य गौएँ, गोशावक, बछड़ियाँ, बलशाली वृषभ और उनके रक्षक असंख्य गोप-गोपी निवसित एवं कार्यरत होंगे। इनमें हस्तिशावकोंके समान विशाल गौएँ – कोई कृष्णा, कोई पीली, कोई लाल, कोई भूरी, कोई चितकबरी, अनेक वर्णोंकी अपने सद्यजात बछड़ों-बछड़ियों सहित बँधी होंगी।

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(पञ्चम खण्ड)

पृष्ठ संख्या
101-200
तक

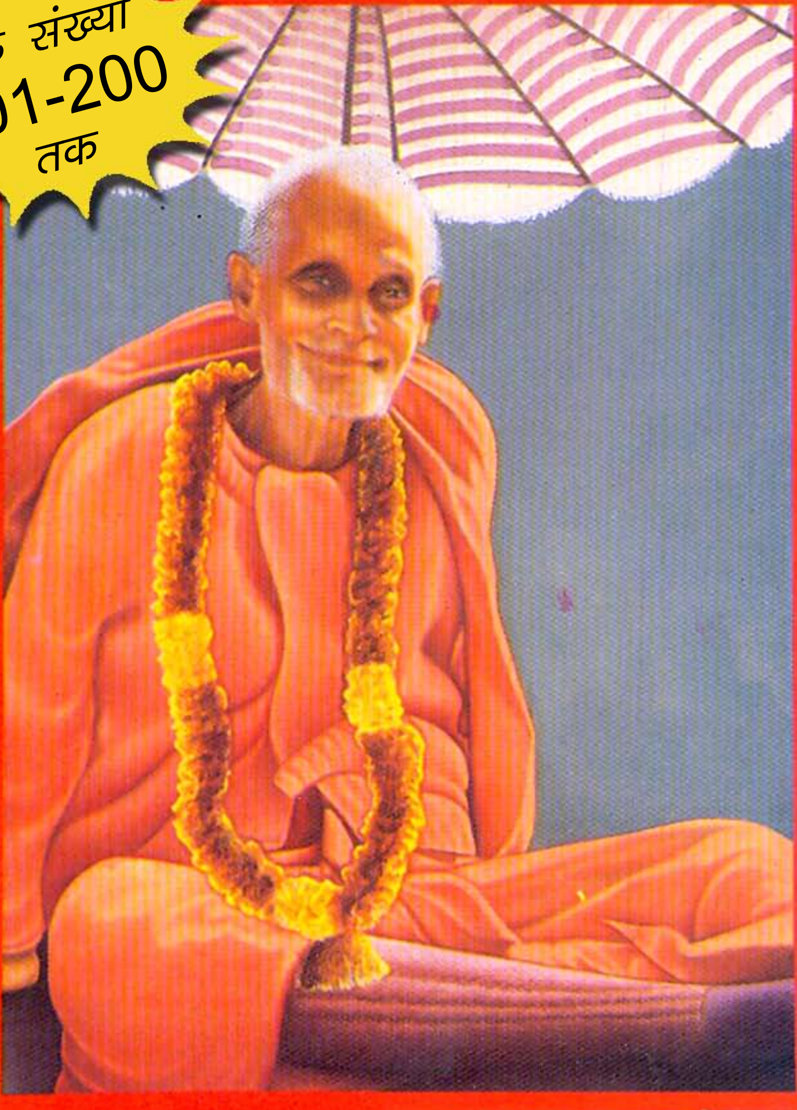

साधु कृष्णप्रेम

इन सभी गायोंके पृथुल स्तन भूमिसे कुछ ही ऊँचे रहेंगे और ये दूध देनेमें कामधेनुके समान होंगी। निरे ब्राह्म मुहूर्त्तसे ही गोपाल इनकी सेवामें निरत हो जावेंगे और जब इनका दुग्ध-दोहन कार्य ये ग्वाल-गोपाल करेंगे तो इस गोदोहन-ध्वनिसे सम्पूर्ण बृषभानुपुर निनादित हो उठेगा। गोदोहन करके युवक ग्वाल तो इन गौओंको चराने वनकी ओर ले चलेंगे एवं ग्वालिनियाँ स्वर्ण-चरियोंमें दूध भर-भरकर बृषभानुभवनके भण्डारोंमें देनेके लिये भवनकी ओर जब अनेक पंक्तियोंमें चलेंगी तो उनकी शोभा साक्षात् लक्ष्मीको भी लजानेवाली होगी।

इस बृषभानुभवनको चारों ओरसे सन्तान, कल्पवृक्ष, हरिचन्दन कदम्ब, मन्दार, पारिजातादि असंख्य वृक्ष घेरे होंगे। यहाँ जितने भी महीभानु-परिवारके आवास-प्रासाद होंगे, वे भी सभी अतिशय सुन्दर वाटिकाओंसे घिरे होंगे। इन वाटिकाओंमें उन्नत ग्रीवा किये गगनचुम्बी गृहावलियाँ होंगी, जिन्हें मालती, मल्लिका, कुन्द, केतकी, दूधी, माधवी आदि दिव्य सौरभ प्रसार करती लताएँ समालिंगित किये होंगी। इनके पुष्पोंकी सुवाससे समग्र बृषभानुपुर किसी गन्धर्वलोककी तरह महक रहा होगा।

सम्पूर्ण बृषभानुभवनको एक उन्नत पुष्पराग रत्नकी दीवार घेरे होगी। इस समुन्नत दीवारसे आरक्षित बृषभानुपुरकी चारों दिशाओंमें विशाल द्वार होंगे। हे देवाधिदेवों ! इस परम पावन पुरीका ध्यान करो—" अहा ! दिव्यातिदिव्य सच्चिदानन्द मणिमन्दिरोंकी, कुञ्जकुटीरोंकी कैसी अतुल छवि है । यह प्रथम द्वार हरिद्राभ, मणिमय, हीरक-खचित कपाटोंसे विभूषित है। इस द्वारके भीतर एक मणिमन्दिरमें रत्न-भूषणभूषित, पीत परिधान-परिशोभित, रत्नमुकुट धारण किये वरभानु गोप विराजित हैं। ये वरभानु श्रीमहाराजाधिराज महीभानुके मुख्य सचिव एवं इस नगरीके प्रधान रक्षक हैं। इस द्वारके भीतर तो समग्र बृषभानुपुर नगरी ही सुरक्षित है। धर्मप्राण प्रजाके सुन्दर निवास, फिर चतुष्पथ और मुख्य राजमार्गोंमें यहाँके अति समृद्ध बाजार, जिसमें व्यवहारमें आने वाली वस्तुएँ क्रय-विक्रय हो रही हैं। ओह ! सम्पूर्ण दृश्य कैसा मनोरम है। प्रजाकी सब गोशालाएँ भी इस चारदिवारीके भीतर ही हैं। अहा ! कितने सुहावने परम सुन्दर हृष्ट-पुष्ट गोप-बालक बालक्रीड़ा कर रहे हैं। सभी पीताम्बरधारी, सभीके कण्ठोंमें रत्न सुभूषित हैं। कोई बालक नर एवं नारी स्वर्णालंकार-विहीन नहीं। सबके मुख आनन्दसे प्रफुल्लित हैं, सभी हृष्ट-पुष्ट, समृद्ध हैं। ध्यान रहे ये वरभानु ही प्रिया राधारानीकी सखी इन्दुलेखाजीके पिता हैं। ये परम

प्रजावत्सल ही बृषभानुपुरकी सम्पूर्ण प्रजाकी सँभाल एवं रक्षा करते हैं। इस भवनका प्रत्येक परकोटा चारों दिशाओंमें आवागमनके लिये अनेक विशाल रत्नमय द्वारोंसे युक्त है, जिनसे यहाँकी प्रजा चारों दिशाओंमें स्वच्छन्द आवागमन करती है।

यह द्वितीय द्वार है। अरे ! यह तो पुनः दूसरा परकोटा है। इसके भीतरका भाग इन्द्रनील मणिकी चारदिवारीसे आवेष्टित है। अहा ! इस द्वारके रजतके कपाट रत्नखचित हैं। इनके भीतर जानेपर एक सुन्दर मणिमय आवास दृष्टिगोचर होता है। इस आवासमें समग्र श्रृंगार-सुसज्जित, श्यामवर्ण, किशोरवयस्क चन्द्रभानु गोप विराजित हैं। ये चम्पकलता सखीके पिता हैं।

इस द्वितीय द्वारके भीतर तो सम्पूर्ण ब्राह्मणवर्गकी ही प्रजा निवास करती है। अहा ! इन सब प्रजाजनोंके आवास तीर्थोंकी तरह पवित्र और ऋषितुल्य हैं। अरे ! इन सभी ऋषियोंके घरोंके आगे विचरणशील कामधेनु विराजित हैं। एक-दो नहीं सैकड़ों ! और कल्पतरुओंकी पंक्तियोंकी छाया तले इनके सभी गृह कैसे सात्विक, सुशीतल प्रतीत हो रहे हैं ! आओ, इन यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण वटुकोंको प्रणाम करें। इन सभीके ब्रह्मचर्यके ओजसे दिपदिपाते, अति तेजस्वी चेहरे, गोखुरके समान शिखा-विभूषित मस्तक, देवभाषामें ही परस्पर वाद-पटुता, साथ ही सभीके गलेमें मणिमुक्ताओंकी अमूल्य मालाएँ – प्रतीत होता है, बृषभानुपुरके दानशील महाराजाके यहाँ धर्मप्राण ऋषियोंको पूर्णतया संतुष्ट एवं संतृप्त ही रखा जाता है।

लो, यह तृतीय परकोटा मरकतमणिरचित है। यह विशाल द्वार भी मुक्तामाणिक्यखचित, स्वर्णधातुसे निर्मित प्रतीत हो रहा है। इसके भीतर तो पारिजात वनश्रेणी है। इसके भीतर श्रीमहीभानु गोपराजका बहुत मूल्यवान रथखाना है। देखो, रथखानोंके आगे विशाल गजराजोंके समान बलशाली बलीवर्द खड़े हैं। अरे, रथ भी एक नहीं, सहस्रों ही हैं। सभी रथ कोई कृष्णवर्णके, कोई श्वेत, कोई हरित, एवं कोई रक्तवर्णके हैं। प्रत्येक रथ स्वर्णमण्डित मणिसमूहोंसे निर्मित परमोन्नत ध्वजाओंसे समलंकृत हैं। मणिमालाओंके तो यहाँ स्तूप लगे हैं। इस तृतीय परकोटेके भीतर एक विशाल मणिमन्दिरमें मुरलीधर श्यामसुन्दर किशोरमूर्त्ति सूर्यभानु गोप सिंहासनासीन हैं। चतुर्दिक् इनके सेवकगण इनके आदेशसे इस समृद्ध रथखानेकी सब भाँतिसे सुव्यवस्था करते हैं।

हे देवाधिदेवों ! ध्यान करो, देखो, अब आया इस दिव्य बृषभानुपुरका चतुर्थ परकोटा। यह परकोटा स्यमन्तकमणि-रचित है। इसका द्वार भी माणिक्यमणि-खचित, स्वर्णजटित है। इसमें महाराज महीभानुकी अश्वशाला है। इसमें हृष्ट-पुष्ट अश्वारोही सैन्यदल भी अपने परिवारों सहित निवास करता है। इसकी व्यवस्था वसुभानु गोप करते हैं। वसुभानु गोपराजके पक्व बिम्बफल-सदृश अधर-ओष्ठ हैं, सहास्य,प्रसन्न आनन कमलके समान सदैव खिला रहता है। ये इतने सुन्दर हैं कि देवांगनाएँ मोहित हो उठें। ये गोपराज श्रीमहीभानुकी सेनाके मुख्य सेनापति हैं। इसी प्रकोष्ठमें रथारोहियोंकी धनुर्धारी सेनाका प्रायः आधा भाग रहता है, एवं आधा भाग तृतीय परकोटेमें रहता है। सैनिकोंके परिवार भी सुन्दर मणिमय आवासोंमें यहाँ रहते हैं। लो, अब पंचम द्वार एवं पंचम परकोटा आया। यह परकोटा रुचक मणियोंसे निर्मित है। इसका मुख्य द्वार कौस्तुभमणि-खचित है। यहाँ महाराजा महीभानूकी गजशाला है। यहाँ आभूषणोंसे सुसज्जित विशाल गजराज झूम रहे हैं। इनके महावत इन गजराजोंकी सेवामें जुटे हैं। यहाँ एक महलमें रत्न-सिंहासनपर देवभानु विराजित हैं। अगुरु, चन्दन एवं कस्तूरी, कुंकुमद्रवसे देवभानुके अंग सुचर्चित हैं। वे ही इस गजशालाके व्यवस्थापक हैं। महाराजाकी गजसेनाके ये ही मुख्य नियंत्रक हैं।

लो, यह विलक्षण षष्ठ द्वार आया। मणिरत्नोंसे निर्मित यहाँकी चारदीवारीकी ऐसी विलक्षण संरचना है कि प्रतीत होता है, मानो यह कर्णिकार पुष्पोंसे निर्मित है। यहाँका द्वार भी ऐसा प्रतीत होगा, मानो पल्लवोंसे ही सुसज्जित हो। यहाँका भीतरी भाग तो नव पल्लवोंसे परिशोभित, चन्दन, मन्दार, चम्पक आदि पुष्पोंके परागसे सुवासित, सुमधुर भ्रमरोंके रवसे गुञ्जित रहेगा। यहाँ युवराज बृषभानुवर गोप एवं कीर्त्तिदा मैया स्वयं रहेंगी। इसी चारदिवारीके भीतरी भागमें महाराजा महीभानुकी कुलदेवी भगवती त्रिपुरसुन्दरी विराजित होंगी। भगवती आद्याशक्ति, पराभट्टारिकाका उत्तुंग शिखरयुक्त मन्दिर पोस्त्रराग मणियोंसे निर्मित होगा। यहाँ सर्वत्र एक विलक्षण तेज जगमगाता रहेगा। यहां प्रवेश करते ही विलक्षण पराशान्तिसे मन अभिभूत हो उठेगा। ऐसा अनुभव होगा मानो यहाँका एक-एक रजकण चिन्मय हो और भगवतीके पूर्ण तत्वका प्रज्ञाता हो। भगवतीके दुर्वासादि सर्वमहासिद्ध भक्तोंका यहाँ स्वतंत्र आवागमन होता रहेगा। यहाँका पत्ता-पत्ता भगवतीकी जीवन्त सन्निधि प्रदान करानेमें समर्थ होगा । मालती, मल्लिका, कुन्द, केतकी, दूधी, माधवी, बेला,

चम्पा आदि सभी प्रकारके सौरभपूर्ण पुष्पोंसे लदा, यह प्रखण्ड चारों दिशाओंमें महकता रहेगा।

हे देवाधिदेवों ! यह सदैव ध्यान रखें कि इस श्रीराधा-परमधाममें वस्तुका कोई इत्थंभूत रूप नहीं है। इतना है, ऐसा नहीं है, इस प्रकारकी विधि-निषेध-जन्य वर्जना इस चिन्मय धामके किसी भी पदार्थ एवं वस्तुमें नहीं होगी। यहाँ गोप-गोपी-गौएँ, पशु-पक्षी, चर-अचर, स्थावर-जंगम सभी स्वातंत्र्ययुक्त स्वभावके होंगे। यहाँकी प्रत्येक वस्तुका अणु-अणु वात्सल्यमयी, जगज्जननी, पराम्बा, भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी स्वरूप-परिणति ही होगी।

यह सम्पूर्ण लोक ही एक क्षणमें अदर्शित हो सकेगा और कहीं भी व्यक्त हो सकेगा। यह पूरा-का-पूरा धाम ही सर्वभवन-समर्थ होगा। यह सम्पूर्ण धाम एक पुष्पमें भी परिणत हो सकेगा, और सारे ब्रह्माण्डोंको अपनेमें आवृत भी कर सकेगा। हे त्रिदेवों ! प्रिया श्रीराधाको आप लोग कदापि एक मानवी-पुत्री मत मान बैठना। प्रिया श्रीराधारानी अवाङ्मनस् अगोचर हैं। इसी प्रकार इनका धाम भी सर्वथा अप्राकृत मन-बुद्धिसे परेका है।

सत्य तो यह है कि अरूप ही इसका महिमामय रूप है और सर्वरूपता ही इसकी अरूपता है। साथ-ही-साथ यह रूप-अरूप दोनोंसे ही पूर्णतया अतीत, निरपेक्ष, अनिर्वचनीय, विलक्षण है।

हे देवाधिदेवों ! बृषभानुपुरके राजमहलके इस छठे खण्डमें महासौरभसे पूर्ण एक विलक्षण पद्मवन होगा। इस परम सुन्दर पद्मवनके दर्शन मात्रसे जीवका जीवत्व उसी क्षण विनष्ट हो जायगा और पूर्णतया अप्राकृत ईश्वरत्वका उसमें समावेश हो आयेगा। ईश्वरत्वके समावेशके बिना तो कोई प्राणी भगवतीके इस चिन्मय मन्दिरके दर्शन ही नहीं प्राप्त कर सकेगा। पूर्ण शिवत्वकी प्राप्तिके पश्चात् ही यहाँ प्रवेश संभव होगा।

पद्मवनमें भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरी देवीका अत्यन्त प्रकाशमान उज्ज्वल प्रभायुक्त मन्दिर होगा। यह चिन्तामणियोंसे निर्मित एवं अलौकिक विचित्रताओंसे भरा होगा। इसके चार द्वार होंगे। मन्दिरमें दस सोपानोंके ऊपर भगवतीकी पीठ विराजित होगी। ये दस सोपान भगवतीकी दस महाविद्याओंके ही स्वरूप होंगे। इन्हींसे युक्त भगवतीका परमोच्च मंच महान् शोभा पाता रहेगा। इस मञ्चके मध्य भागमें एक परम दिव्य मणिमय सिंहासनमें भगवती विराजमान होंगी।

सृष्टिके आदिमें अपनी महालीला करनेके लिये स्वयं भगवती ही दो रूपोंमें विभाजित हुई हैं। उस समय दाहिने भागमें भगवान् कामेश्वर एवं वाम भागमें शबल ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती कामेश्वरी प्रकट हुईं। भगवतीके अर्धांगस्वरूप ही ये महान् ईश्वर हैं। ये करोड़ों कामदेवोंके सम्मिलित स्वरूपको भी तुच्छ कर देनेवाले सौन्दर्यसे समन्वित हैं। इन महान् सर्वोपरि देवदेवेश्वरकी आयु सदैव सोलह वर्षकी ही रहती है। ये अनन्त कोटि सूर्योंके समान प्रकाशमान हैं, कोटि-कोटि अमृतस्रावी चन्द्रमाओंसे अधिक सुधासम सुशीतल हैं, विशुद्ध स्फटिक मणिके समान दैदीप्यमान हैं। इनके वामांगमें ही भगवती ललिता पराभट्टारिका श्रीविद्या त्रिपुरसुन्दरी विराजमान होंगी। **'सोऽहं'** एवं **'अहं सः'** ये दो उपधान तकिये भगवती लगाये होंगी। भगवतीके मणिमय सिंहासनपर अनन्तानन्तता-गुणयुक्त चन्दौवा वितान तना होगा, महामायाकी यवनिका पड़ी होगी। जिस किसी महाभाग्यवान् दर्शनेच्छुक प्रजाजनके सम्मुख ये भगवती परम कृपालु होंगी, उसीके आगेसे यह यवनिका हटा लेंगी। इस महामायारूपा यवनिकाके हटते ही भगवती आद्याका विलक्षण सच्चिदानन्द स्वरूप उसके सम्मुख प्रकट हो जायगा।

हे देवाधिदेवों ! आओ ! भविष्यके पंखोंसे उड़ते हुए हम भगवती आद्याशक्तिके इस बृषभानुभवनके छठे प्रखण्डमें स्थित भगवतीके मन्दिरमें चलें और उनके पावनतम दर्शनोंसे अपनेको कृतकृत्य करें।

अहा ! नवरत्नोंसे निर्मित करधनी भगवतीके कटिभागमें सुशोभित है। इन नवरत्नोंके प्रकाशकी एक-एक रश्मिसे इस प्राकृत ब्रह्माण्डोंके रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु आदि ग्रह अस्तित्व प्राप्त कर रहे हैं। संतप्त सुवर्ण एवं वैदूर्यमणिसे सम्पन्न बाजूबन्द देवीकी भुजाओंको सुशोभित कर रहे हैं। भगवतीके दिव्य यंत्र श्रीचक्रकी आकृतिके छतरी वाले कर्णफूल उनके कानोंमें विधृत हैं। इनकी दमकसे भगवतीका रक्ताभ मुख-कमल दैदीप्यमान हो उठता है। अर्ध-चन्द्रमा उनके मस्तकपर सुशोभित है, किन्तु भगवतीके ललाटकी शोभा उस चन्द्रमाकी कान्तिको हतप्रभ कर दे रही है। बिम्बफलको तिरस्कृत करनेवाले भगवतीके लाल-लाल ओठ हैं। विशुद्ध चिज्ज्योति भगवतीकी दन्तपंक्ति एवं उनके हाथोंकी दसों अँगुलियों एवं पैरोंकी दसों अँगुलियोंसे छिटक रही है। कुंकुम एवं कस्तूरीका लेप उनके सर्वांगोंमें है। इसीका तिलक भी वे अपने ललाटपर लगाये हैं। उनके परम सुन्दर त्रिनेत्र हैं। वे चन्द्रमा एवं सूर्यकी

चूड़ामणि धारण किये हैं। शुक्र नक्षत्रके समान परम स्वच्छ नासिकाभूषण है। उनका कण्ठदेश अनमोल मोतियोंकी लड़ियोंसे सुशोभित है। उनके मुखकमलपर अलकावली छायी है। चन्दनपंक, कर्पूर, कुंकुम एवं कस्तूरीकी सममात्राके लेपको वे अपने वक्षोजोंपर लेप किये हैं। उनकी शंखाकृतिकी ग्रीवा परम रमणीय लग रही है।

भगवतीके मुखपर छितराती उनकी अलकावलिसे अतिशय मधुर निर्मल सुगन्ध फैल रही है। चतुर्दिक् मँडराते भ्रमरोंकी गुंजारसे पूरा मन्दिर गुंजायमान हो रहा है। मस्तकपर अनमोल रत्नोंका मुकुट है । मणिजटित मुद्रिका अँगुलियोंमें जगमगा रही है। कमलोंकी शोभाको हेय बनानेवाले तीन नेत्र हैं, इन नेत्रोंकी सुन्दरता आननकी मनोहरताको सहस्रगुनी कर रही है। पद्मरागमणिके समान उनकी उज्ज्वल कान्ति है। उनकी धम्मिल्ल मल्लिका पुष्पोंसे ग्रथित है। चार भुजायें हैं। इनमें पाश, अंकुश, इक्षुधनु, एवं शब्द, स्पर्श रूप, रस गन्धात्मक पाँच पुष्पं- बाण हैं। लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, कीर्त्ति, कान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि, मेधा – ये मूर्त्तिमती होकर भगवतीके चँवर डुलारही हैं। जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दौग्ध्री, अघोरा, अमंगला, ये नौ पीठ शक्तियाँ पराम्बाकी सेवामें सतत संलग्न हैं। आओ ! इन सर्वेश्वरीकी सदा जय-जयकार करें।

हे देवाधिदेवों ! आओ, अब इस बृषभानुपुरके छठे खण्डके ऊपरी भागमें बनी रत्नमयी सीढ़ियोंसे ऊपर चलें। ब्रह्मगिरिपर स्थित होनेसे इसके सभी परकोटे एक-से-एक ऊँची भूमिपर स्थित होंगे और शनैः-शनैः मुख्य महल गिरिके शिखरके निकटतक चला जायेगा।

देखो, पुनः परकोटा आ गया। यह परकोटा ऐसे रत्नोंसे निर्मित होगा, जिससे ऐसा अनुभव हो, मानो रक्तपद्मोंका ही विशाल द्वार होगा। इस सर्वोच्च प्रखण्डपर महाराजा महीभानु अपनी पत्नी सहित निवास करेंगे।

ये महातेजस्वी नृपति जबतक वयोवृद्ध नहीं हो जावेंगे, तबतक अखण्ड तपस्यारत एवं भगवती जगदम्बाकी आराधनामें ही समय बितावेंगे। इनका प्रत्येक कर्म भगवती जगदम्बाकी उपासनारूपमें उनकी तुष्टिके ही लिये होगा। इनके हृदयकी धड़कन एवं रोम-रोमका स्पन्दन भी जगदम्बा-जगदम्बा उच्चारण करनेवाला होगा। ये भगवती त्रिपुराके अद्वितीय कृपा-पात्र भक्त होंगे। इनके समान ही इनके युवराज पुत्र बृषभानुवर गोप भी होंगे। श्रीमहीभानु गोप

यावज्जीवन अपना पल-पल भगवतीकी अर्चनामें ही व्यतीत करेंगे।

इनको स्वयंको ही पता नहीं होगा कि इनके कुलमें भगवतीकी उपासना कबसे प्रारंभ हुई है। एक बार ये महामना भागुरि ऋषिसे, जो इनके कुल-पुरोहित होंगे, यह प्रश्न करेंगे, किन्तु वे हँसकर इतना ही उत्तर देंगे कि वे तो अपनी किशोरावस्थासे ही भगवतीका पूजन करते आये हैं, उन्हें स्वयंको ही यह रहस्य अज्ञात है।

इनके युवराज बृषभानु गोप भी अपने निरे बचपनसे, जबसे इनकी यज्ञोपवीतदीक्षा होगी, तभीसे भगवतीका सहस्रार्चन करना प्रारंभ कर देंगे। महाराजा जब इन्हें युवराज पदपर स्थापित करेंगे, तबसे तो ये अपने ऋषितुल्य पितृचरणोंकी अनुमति लेकर भगवती पराम्बाकी समग्र सेवाका दायित्व अपने ही कंधोंपर ले लेंगे। तभीसे ये युवराज भगवतीके मन्दिर वाले प्रखण्डमें ही अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत लेकर रहना प्रारंभ कर देंगे। इनकी सहधर्मिणी कीर्त्तिदा भी इनकी धर्मानुगामिनी हुई, पवित्र ब्रह्मचारी-जीवन बिताती, जगज्जननीकी सेवामें ही अपना समग्र जीवन-यौवन समर्पित कर देंगी।

महाराजा बृषभानु तो अपने पिता महीभानु एवं वृद्धा माँ महारानी सुखदाको प्रायः समाधिस्थ ही रहती देखेंगे। इनका राजकाज तो स्वयं भगवती ही विश्वस्त मंत्रियों द्वारा निर्देश देकर संचालन करेंगी।

बृषभानुभवनका सातवाँ प्रखण्ड नीलकान्त मणियोंके परकोटेसे घिरा हुआ होगा एवं इसका विशाल द्वार भी नीलघनवर्णकी परम तेजोमयी मणियोंसे जड़ित होगा। इस भागका सौन्दर्य अवर्णनीय होगा। यह प्रखण्ड जनशून्य होगा। इसमें किसीका भी प्रवेश वर्जित होगा। महाराजा महीभानुके द्वारा इसके सम्बन्धमें इतना ही रहस्योद्घाटन युवराज महाराजा बृषभानुके सम्मुख किया जायगा कि जब भगवतीके संकेतसे उन्हें वंश एवं राज्यकी रक्षाके लिये सन्तान उत्पन्न करनेकी प्रेरणा मिले एवं उनका जो भी युवराज पुत्र हो, वही इस द्वारको उन्मोचन कर भीतर प्रवेश करे। इस प्रखण्डमें उसीका अधिकार होगा। साथ ही उनकी यदि पुत्रियाँ हों तो वे इस प्रखण्डमें रहेंगी। वह प्रखण्ड तबतकके लिये सर्वथा रिक्त ही रहेगा। हाँ ! राजाके एक सचिवकी पत्नी मैया कीर्त्तिदा सहित इसमें प्रवेशकर, इसकी देखभाल सँभाल करलें– महाराजा महीभानुकी इस प्रखण्डके संबंधमें यही व्यवस्था होगी।

श्रीकृष्णका जन्मस्थान - बृहद्वन

भगवान् नारायण यह पावन कथा सुना ही रहे थे कि मध्यमें ही भगवान् रुद्र (महादेवजी) उनसे प्रश्न कर बैठे।

"हे हरि ! आपने सम्पूर्ण बृषभानुपुर एवं उसके आसपासकी स्थलियोंका वर्णन तो कर दिया, किन्तु प्रभो ! आपने यह नहीं बताया कि भगवान् गोलोकपति श्रीकृष्ण कहाँ जन्मेंगे और उनका पावन धाम कैसा होगा ?"

भगवान् महादेवजीके प्रश्नको सुनकर गिरिराज पर्वत बने भगवान् नारायण कहने लगे – हे महादेवजी ! मैं पूर्वतः कह चुका हूँ कि यथाकालचक्रानुसार जैसे इन गिरिखण्डोंमें बृषभानुओंके कुल (गोप) निवास करेंगे, उसी प्रकार कलिन्दनन्दिनी यमुनाके किनारे बृहद्वनमें नन्दोंके कुल निवास करेंगे। भगवती लीलामहाशक्ति साक्षात् गोलोक धामकी छाया लेकर ही इस भूरिभाग्य पृथ्वीपर ये सभी आवास अवतरित करेंगी। इस बृहद्वनको हे त्रिदेवों ! आप लोग साक्षात् दूसरा वैकुण्ठ ही मानें। जैसे बृषभानुनगर साक्षात् पराभट्टारिका महादेवी योगमाया भगवती त्रिपुराम्बाके श्रीलोककी सम्पदासे सुभूषित होगा, ठीक इसी प्रकार इस बृहद्वनमें शेषशायी भगवान् वैकुण्ठपति अपनी समग्र सम्पदा और शोभासहित नित्य सुविराजित रहेंगे। ये वैकुण्ठपति मुझ नारायणके गिरिराज पर्वतरूपमें प्रतिष्ठित हो जानेपर भगवान् परात्पर श्रीकृष्ण द्वारा अपने अंशसे सृष्टिकी व्यवस्था हेतु पुनः स्थापित किये गये होंगे।

हे त्रिदेवों ! मनको पूर्णतया एकाग्रकर तनिक ध्यान करो – भगवान् परात्पर श्रीकृष्णका धाम पूर्ण श्रीकृष्णस्वरूप ही है, अतः यह चिन्मयलोक सर्वप्रथम तुम सबके अन्तःकरणमें तो प्रकाशित हो। यह बृहद्वन भगवान्की लीलामहाशक्ति सन्धिनीकी ही नित्य परिणति है। इस बृहद्वनके कुंज-निकुंज, गिरि-सरोवर एवं वन-उपवन सभी परम विभु, नित्य चिन्मय हैं। प्रिया-प्रियतम राधा-माधवकी चिदानन्दमयी लीलाके प्रकाशके साथ ही यह वन भी आविर्भूत होता है; और जब लीलाका अन्तर्धान होता है, तो यह वन भी अन्तर्हित हो जाता है। हाँ, जिनके नेत्रोंमें प्रिया-प्रियतमकी चरण-नख-चन्द्रिका भरी है, उनके लिये तो यह वन अनादि, अनन्त, निरवधिकालतक सदा वर्त्तमान रहता है।

किसी भी कविकी रसनामें ऐसी सामर्थ्य कहाँ है कि इस वनके विचित्र वैभवके किसी एक अंशका भी चित्रण कर सके।

हे त्रिदेवों ! देखो ! इस वनके पार्श्व देशोंमें अनेकों ब्रज बसे होंगे। इन ब्रजोंमें अगणित गोप निवास करेंगे। प्रत्येक गोपके पास अपार गोधन सम्पत्ति होगी। इस परम दिव्यस्थलीका नाम बृहद्वन इसीलिये पड़ेगा क्योंकि इस विशाल भूभागके अन्तर्गत बहुतसे वन होंगे।

यहाँ जितने वृक्ष होंगे सभी कल्पतरु होंगे, एवं जितनी वल्लरियाँ होंगी सभी कल्पलतिकाएँ होंगी। इन कल्पतरु एवं कल्पलतिकाओंको प्राकृत स्वर्गके कल्पपादप एवं कल्पवल्लरियाँ भूलकर भी मत मान लेना। ये उनसे सर्वथा अलौकिक हैं। ये सभी तो स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनके चिन्मय धामके चिन्मय संधिनीतत्वकी परिणति होंगी।

कहीं तो मरकत-द्रुमसमूह कनकलताओंसे परिव्याप्त होंगे, कहीं स्वर्णपादपश्रेणी मरकतकी बनी वल्लरियोंसे सुमण्डित हो रही होंगी। कहीं वृक्षोंकी अवली स्फटिककी होगी, जो परागमणिकी लताओंसे उद्भासित होरही होगी और कहीं स्फटिकके लताजालसे पद्मरागके वृक्ष समुज्वल हो रहे होंगे।

मरकतमणिमय अकृत्रिम भूमि होगी। स्वर्णमय गुल्मलतायें एवं द्रुमसमूह परिशोभित होंगे। स्वर्णमयी गलियाँ, वीथियाँ होंगी। सर्वत्र स्वर्ण-ही-स्वर्ण आस्तृत होगा, मृत्तिकाका लेश भी नहीं। यहाँके कण-कणसे एक परम दिव्य ज्योति झर रही होगी। यह ऐसी उज्ज्वल ज्योति होगी जो प्राकृत जगत्के कोटि-कोटि सूर्योंमें भी संभव नहीं होगी। साथ ही इतनी शीतल होगी, सुखद होगी जैसी प्रपंचके कोटि-कोटि चन्द्रोंमें भी कहीं नहीं। यहाँ सब कुछ रमणीय, परम तेजोमय, अत्यंत विलक्षण, परम सुन्दर, शोभन, अतिशय सुषमाशाली – सब कुछ अप्राकृत चिन्मय होगा।

हे त्रिदेवों ! अपौरुषेय श्रुति कहती है–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकः
नेमा विद्युतो भान्ति कुतो मग्नि
तमेव भान्तिमनुभाति सर्वम्
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

भगवान् श्रीकृष्णके प्राकट्यस्थल इस बृहद्वनमें यह तत्व प्रकट उजागर हो रहा होगा। श्रुति प्रतिपादित इस परमात्मधाम और इस बृहद्वनको दो पृथक्

सत्ता कदापि नहीं मानना चाहिये। इस बृहद्वनको यह श्रुति-प्रतिपादित ब्रह्मतत्त्व ही प्राकृतवत् सूर्य, चन्द्र, तारक, नक्षत्र, साथ ही भूमि-भवन बना, प्राकृत ग्रहोंसे सर्वथा भिन्न, अलौकिकरूपमें सुप्रकाशित करेगा।

यह धाम अपना कोई इत्थंभूत रूप नहीं रखेगा। इतना है, ऐसा है, ऐसा नहीं है – इसके लिये कोई नियम-सीमा नहीं होगी। जड़ वस्तुकी तरह इसमें रूप, रंग, आकार, स्थिति, गुण, भाव आदिकी इदमित्थं इयत्ता नहीं होगी। यह धाम प्रियतम नीलमणिकी अचिन्त्य लीलामहाशक्तिका निरन्तर अनुसरण करता रहेगा। प्रियतम श्रीकृष्णकी जब, जैसी लीलाका प्रकाश होगा, उसके लिये जो, जैसी, जितनी सामग्री चाहियेगी उसी रूपमें इसका प्रकाश यहाँ होता रहेगा। देखो ! देखो ! त्रिदेवों ! यह महाराजा पर्जन्यपुत्र नन्दरायका नन्दभवन है। जैसे महाराजा महीभानु भगवती पराभट्टारिका कामेश्वरीके अनन्य उपासक हैं, उसी प्रकार महाराज पर्जन्य उनके कुलदेव नारायणके पूर्ण शरणागत होंगे। इनकी नारायण-शरणागतिका ही विलक्षण चमत्कार होगा कि इनके सम्पूर्ण बृहद्वनमें त्रैलोक्यलक्ष्मी स्थिर, अचंचल निवास करेगी। महाराजा पर्जन्यकी धर्मपत्नीका नाम वरीयसी होगा। ये महासाध्वी, तपस्विनी, पतिव्रता, निरन्तर महाराजा पर्जन्यकी सेवामें रत होंगी, और पतिसेवाका प्रत्यक्ष फल इनको यही प्राप्त होगा कि भगवान् नारायण अपने वैकुण्ठलोकसहित इनके घरमें नित्य, प्रत्यक्ष, स्थित रहेंगे। उनकी कृपासे यहाँ नित्य अशेष मंगल-ही-मंगल सर्वत्र भरा रहेगा।

महाराजा पर्जन्यके सबसे बड़े पुत्र उपनन्द होंगे। उससे कनिष्ठ पुत्र अभिनन्द होंगे। महाराजा नन्द इनके तृतीय पुत्र होंगे। महाराजा नन्दसे छोटे इनके दो पुत्र और होंगे, जिनका नाम संनन्द और नन्दन होगा। इनकी दो पुत्रियाँ भी होंगी, जिनका नाम नन्दिनी एवं सुनन्दा होगा। पर्जन्यजी अपने सबसे बड़े पुत्र उपनन्दको सारिका वन (साहार क्षेत्र) प्रदानकर वहाँ अपनी धेनु लेकर रहनेकी आज्ञा देंगे। इनके पुत्र सुबलका विवाह श्रीकुन्दलताजी – श्रीराधाकी मौसीकी पुत्रीसे होगा। सुबल एवं श्रीकृष्ण एक प्राण दो देह होंगे, ऐसा इनका अप्रतिम स्नेह रहेगा।

उपनन्दजीकी पतिव्रता धर्मपत्नीका नाम तुंगी होगा। ये अपने तीसरे देवर नन्दरायको ही पुत्रवत् स्नेह करेंगी। ये उपनन्दजी भी बड़े धर्मात्मा, राजकाजमें कुशल एवं अपने छोटे भाइयोंकी पूरी सम्हाल रखनेवाले होंगे। महाराज पर्जन्य तो कुछ ही कालमें वैकुण्ठवासी हो जायेंगे और बृहद्वनका राज्य वे अपने तीसरे

पुत्र नन्दरायको सौंप देंगे।

महाराजा पर्जन्यके दूसरे पुत्र होंगे अभिनन्दजी। अभिनन्दजीकी पत्नी पीवरीदेवी होंगी। ये भी अपने देवर नन्दको ही सर्वाधिक स्नेह करेंगी। अभिनन्दके पुत्र होंगे कुण्डल। ये श्रीकृष्णके अति प्रिय सखा होंगे।

महाराजा पर्जन्यके तीसरे परम धर्मात्मा पुत्र नन्दराय होंगे। इनपर सभी भाइयोंका अप्रतिम स्नेह होगा। ये सर्वथा विरक्त, नारायण-भक्तिमें ही निरन्तर निरत रहेंगे। इनकी धर्मपत्नी यशोदा इनकी धर्म-सहभागिनी होगी और वह भी पूर्ण तपस्विनी, सच्चे अर्थोंमें इनकी धर्मसेविका होगी।

कहते हैं आयुके तृतीय चरण पहुँचनेतक इनमें न तो पत्नी-सहवासकी कभी प्रेरणा जगेगी, न ही कभी पुत्रप्राप्तिकी लालसा। प्रजा एवं सभी अग्रज-अनुज भ्राताओं द्वारा बहुत आग्रह किये जानेपर ये पुत्रेष्टि आदि यज्ञानुष्ठान करावेंगे, किन्तु जब कोई अपनी धर्मपत्नीसे सहवासगामी ही नहीं हो, जिसे भगवान् नारायणकी ध्यान-छवि निरखते-निरखते ही निशाके प्रथम प्रहरमें ही परमानन्द-सिन्धुमें डुबाने वाली समाधि लग जाय, उसे भला पुत्र-प्राप्ति कैसे संभव होगी।

किन्तु इन्ही नन्दरायको एक दिन स्वप्नमें एक ऐसे अनोखे बालकके दर्शन हो जावेंगे जिसे देखकर उसे पुत्ररूपमें प्राप्त करनेकी उनमें अदम्य लालसा जग उठेगी। वे अपनी धर्मपत्नी यशोदाको अपना स्वप्न-वृत्तान्त सुनाते हुए कहेंगे -- "प्रिये ! तू ही बता, भला हमारे इष्टदेव भगवान् नारायणसे भी अधिक मनोहर, सुन्दर कोई इस त्रिलोकीमें त्रिकालमें भी संभव है क्या ? असंभव ! सर्वथा असंभव !! किन्तु मेरी चित्तभूमिमें स्वप्नके समय, री यशोदे ! ऐसे ही एक अत्यधिक अनिर्वचनीय, अनन्त, असीम, सुन्दर बालककी मूर्त्ति अंकित हो जाती है, जो हमारे इष्टदेव नारायणसे भी अधिक अनिर्वचनीय, अनन्त, असीम सुन्दर है। और ओह ! उस क्षण मैं स्पष्ट देखता हूँ कि वह बालक तुम्हारी गोदमें तुम्हारे दुग्धस्रावी स्तनोंका पान करता हुआ खेल रहा है। प्राणप्रिये ! मैं उसके श्याम अंगोंको, चञ्चल सुदीर्घ नेत्रोंको, देख-देखकर सर्वथा मुग्ध हो जाता हूँ। मुझे भ्रम हो जाता है कि यह स्वप्न है या जाग्रत्काल। यह सचमुच क्या है ? मैं निर्णय ही नहीं कर पाता। मनमें आता है, एक बार तुमसे भी पूछूँ तो सही, कि क्या कभी स्वप्नमें तुम्हें भी ऐसी अनुभूति होती है क्या ?"

"हे यशोदे ! जब मुझे वह एक पलभरके लिये दिख जाता है, उस समय मेरे चतुर्दिक् आनन्दका महासागर लहराने लगता है। मैं उसमें निमग्न होने लग जाता हूँ। इतना ही नहीं, आनन्द-मन्दाकिनीकी प्रबल धारा उस महासागरमें एक आवर्त्त (भँवर) बन जाती है। मैं उस आवर्त्तमें चक्कर लगाने लगता हूँ। वह आनन्द-मन्दाकिनी मुझे अपने भुजपाशमें लपेटकर घुमा रही है।" हे त्रिदेवों ! इसके उत्तरमें ब्रजरानी यशोदा अपने पतिसे कहती है – "स्वामिन्! आप ठीक कहते हैं। ठीक, ऐसा ही स्वप्न मुझे भी आजकल प्रतिदिवस प्रातःकालमें आता है। लज्जावश मैं अबतक आपको कह नहीं सकी, किन्तु आपकी उपासनाकी समायोजना करने जब भी मैं भगवान् नारायणके विग्रहके सम्मुख होती हूँ, इस पुत्रप्राप्तिकी कामनामें मेरे हाथ जुड़ जाते हैं, मैं उनके चरणोंमें अपना सिर नवाकर परवश-सी उसकी प्राप्तिके लिये आपके मनमें संयोगेच्छा जगानेकी प्रार्थना कर बैठती हूँ।"

हे त्रिदेवों ! तभीसे महाराजा नन्दराय भी पुत्रके मुख-दर्शनजन्य भावस्रोतमें डूबे "प्रभो ! आपकी जो रुचि हो, वही हो"– इस संकल्पसे एक वर्षतक भगवान् नारायणकी उपासनामें लग जावेंगे और उसीके फलस्वरूप उनको अभूतपूर्व श्रीकृष्णरूप पुत्र प्राप्त होगा।

महाराजा पर्जन्यके चौथे पुत्र सन्नन्दजीकी धर्मपत्नीका नाम कुरला होगा। इनका पुत्र भी श्रीकृष्णका अनन्य सखा दंडी होगा। इनका दूसरा पुत्र भद्रकृष्ण भी श्रीकृष्णका सर्वप्रिय सखा होगा। महाराजा पर्जन्यके पाँचवे पुत्र नन्दनजीकी धर्मपत्नी तुला होगी। इनके बड़े पुत्रका नाम मण्डल होगा। यही भगवान्का सर्वप्रिय सखा होगा। इनका दूसरा पुत्र तोककृष्ण भी श्रीकृष्णका सर्वप्रिय सखा होगा। इसी प्रकार परम धर्मात्मा महाराज पर्जन्यजीकी दोनों पुत्रियाँ नन्दिनी एवं सुनन्दाके पति नील एवं काम नामके गोप होंगे। यह समग्र परिवार श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्यार करनेवाला होगा। ये सभी श्रीकृष्णको प्रसन्न देख-देखकर सुखी होनेवाले प्राणी होंगे।

हे त्रिदेवों ! अब मैं तुम्हें श्रीपर्जन्य गोपराजका पूर्व वृत्तान्त सुनाता हूँ, जो इन महाभाग नन्दवंशके महा सौभाग्यके हेतुका करनेवाला होगा। श्रीपर्जन्यजीके पिता देवमीढ़ नामके मुनि होंगे। उनके दो पत्नियाँ होंगी। पहली क्षत्रिय पत्नी होगी जिससे शूरसेन नामक क्षत्रिय पैदा होंगे। ये शूरसेन ही श्रीवसुदेवजीके पिता होंगे। इन्हीं श्रीवसुदेवजीको देवककी पुत्री देवकी ब्याही जायगी, जिनके

सखी श्रीविशाखाजी

आठवें गर्भसे भगवान् श्रीकृष्ण जन्म लेंगे। इन श्रीवसुदेवजीकी ही दूसरी पत्नी रोहिणीके पुत्र बलरामजी होंगे; और ये दोनों कृष्ण-बलराम पर्जन्यपुत्र नन्दरायके घरपर ही पोषित होंगे।

महाराज देवमीढ़की दूसरी पत्नी वैश्य जातिकी होगी और इस दूसरी वैश्यपत्नीसे पर्जन्यजीका जन्म होगा, जो कृषि, गोरक्षा आदिका कार्य करेंगे। श्रीपर्जन्यजीका मन वैकुण्ठाधिपति भगवान् नारायणकी भक्तिमें इतना तल्लीन रहेगा कि इन्हें गृहस्थाश्रमजन्य पत्नी-समागममें रुचि ही नहीं होगी। एक बार श्रीनारदजी इनके पास आवेंगे, वे उन्हें गृहस्थधर्म-निर्वाहकी प्रेरणा करेंगे। श्रीपर्जन्यजी देवर्षि नारदजीसे यही प्रार्थना करेंगे कि शूकर-कूकरोंकी तरह विषयभोगी सृष्टि उत्पन्न करनेकी उनकी सर्वथा रुचि नहीं है। यदि उनके वंशमें उनके इष्ट भगवान् श्रीहरि जन्म लें, तभी उनकी रुचि गृहस्थ सम्बध करनेमें है। श्रीनारदजी, श्रीपर्जन्य गोपके प्रार्थना करनेपर उन्हें श्रीलक्ष्मीनारायण-मंत्र दान करेंगे एवं उसे सिद्ध करनेकी आज्ञा देंगे।

श्रीपर्जन्य गोपराज उन दिनों रुद्रगिरिके नीचे स्थित नन्दग्राम नामक स्थानपर निवास करेंगे। श्रीपर्जन्यजी इस पर्वतकी तलहटीमें ही स्थित तड़ागतीर्थमें जाकर इस मंत्रकी सिद्धिके लिये कुटी बनाकर रहना प्रारंभ कर देंगे। वे गुरु श्रीनारदजी द्वारा प्रदत्त मंत्रका जाप करेंगे। इनकी महासती धर्मपत्नी वरीयसी भी इनका अनुसरण करेंगी और इनकी सेवामें संलग्न हो जावेंगी। कुछ ही समय पश्चात् वह मंत्र सिद्ध हो जायगा और महाराज पर्जन्यके लिये आकाशवाणी होगी। आकाशवाणी उन्हें साक्षात् भगवान् नारायणका सन्देश देगी – " हे पर्जन्य ! तुम परम भाग्यवान् हो। तुमने अत्यन्त शुद्ध मनसे तपस्या की है। तुम्हारे यहाँ एक नहीं, महान् भगवद्भक्त पाँच पुत्र होंगे। उन सभीकी बुद्धि मेरे परायण होगी और उनकी धर्मभीरुता, धर्माचरण, चारित्र्य, तप, दान, ब्राह्मण-सेवादिसे मैं परम प्रसन्न हुआ तुम्हारे तीसरे पुत्र नन्दरायके घर अपने परात्पर श्रीकृष्णरूपमें स्वयं जन्म लूँगा। मेरा यह जन्म समस्त ब्रजवासियोंके लिये अपार सुखकारी होगा।"

श्रीपर्जन्यगोप अत्यन्त हर्षोल्लाससे भर जायेंगे। वे नन्दीश्वरमें ही निवास करते रहेंगे। एक बार इस सम्पूर्ण गिरिक्षेत्र, बृषभानुपुर, नन्दग्राम एवं आसपासके सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें मनुजादोंका प्रबल आक्रमण होगा। भगवान् नारायणके ही आदेशसे उस समय श्रीपर्जन्य गोपराज यह क्षेत्र छोड़कर यमुनाके तटवर्ती

मथुरा राजधानीके समीपवर्त्ती इस बृहद्वनमें अपनी सम्पूर्ण प्रजा और गौओं समेत चले आयेंगे। उन दिनों महाराजा महीभानु भी अपना यह ब्रह्मगिरि पर्वतक्षेत्र छोड़कर रावलग्राम चले जावेंगे और वहीं श्रीबृषभानुजीका जगन्माता कीर्तिदासे विवाह सम्पन्न होगा। इस क्षेत्रमें प्रबल मनुजादोंका प्रायः आक्रमण हुआ करेगा।

श्रीपर्जन्यजी इसीलिये भगवदादेशका पालन करते हुए ही युवराजपद अपने सबसे बड़े पुत्र उपनन्दको न देकर नन्दरायजीको देंगे, क्योंकि उनके ही कुलमें परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण अवतार लेंगे।

हे त्रिदेवों ! मैंने तुम्हें संक्षेपमें इन दोनों परम धर्मात्मा गोपवंशों — बृषभानुगोपों एवं नन्दगोपोंका वृत्तान्त सुना दिया। आओ ! अब हम सभी कालकी प्रतीक्षा करें। उपयुक्त काल आनेपर इस पावन धरामें यह सभी गोलोकधामगत परम भागवती सृष्टिका अवतरण होगा एवं यह प्राकृत पृथ्वी अपने हृदयधाममें भगवान्‌की लीलाका प्रकाश होते देखकर परम कृतकृत्य हो उठेगी। उस समय इस ब्रह्माण्डके कारण हम सभी देवोंका भी सत्यांशमें भूरिभाग्य उदय होगा, जिसकी प्रतीक्षामें हम गिरि-पर्वत बने इस ब्रजमण्डलमें स्थित हैं।

{ नित्य चिन्मय गोलोकधामके ब्रजमण्डलमें अवतरणका यह सम्पूर्ण वर्णन जो त्रिदेवोंके द्वारा कथित है; पू. गुरुदेवकी स्वयंकी चिन्मय अनुभूति थी, किन्तु इसमें निहित जो भी कथाभाग है, उस सबका पौराणिक आधार है। यह सब कथा ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, पद्मपुराण, गर्गसंहिता आदिमें पूर्णतया वर्णित है। गौडीय वैष्णव ग्रन्थोंमें भी लीला-पात्रोंके नाम आदि ज्यों-के-त्यों वर्णित हैं। पू. गुरुदेव हम लोगोंको अपनी अनुभूतियाँ बताया करते थे, परन्तु वे अनुभूतियाँ शास्त्रोंके आधारसे परिपुष्ट ही हुआ करती थीं। शास्त्राधारसे भिन्न अपनी अनुभूतियोंका वे स्वयं आस्वादन तो करते, परन्तु उन्हें वे किसीके सम्मुख प्रकट नहीं करते थे। उनकी जो अनुभूतियाँ पूर्णतया शास्त्रसम्मत होती थीं, वही हम सबके सम्मुख वे प्रकट किया करते थे। बिना शास्त्रीय आधारके वे एक शब्दका भी प्रवचन नहीं करते थे। त्रिकालज्ञ ऋषियोंसे उनकी जो भावना सांगोपांग मेल खा जाती थी, उसीका उल्लेख वे यदा-कदा कर देते थे।}

पूज्य गुरुदेवको अप्राकृत जगत्के श्रीराधाजन्म-महोत्सवका दिव्य अनुभव

पाँचवाँ अध्याय

पूज्य पोद्दार महाराज सं. २०१३ के मार्गशीर्ष मासमें सपरिवार रतनगढ चले गये थे। सन् १९५६के नवम्बर मासका वह अन्तिम सप्ताह था।

गोरखपुरमें ही पू.गुरुदेवका सबसे बोलना, संकेत करना तथा देखना तो बन्द हो ही गया था। भिक्षाके समय भी वे चुपचाप रहते थे, कोई संकेत भी नहीं करते थे। अतः उनका स्वास्थ्य कैसा है, उनकी सुविधा-असुविधाका कुछ भी पता नहीं चलता था। जब किसी दिन भिक्षामें बहुत कम खाते थे, तब अनुमान होता था कि आज उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा। वैसे वे बहुत प्रसन्न एवं शान्त थे। श्रीभगवद्गीतामें लिखा है – ***"निर्द्वन्द्वो नित्य सत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्"*** अर्थात् "उसके लिये मैं एवं तू, तेरा एवं मेरा – द्वन्द्व है ही नहीं, मात्र एक पूर्ण घन-स्वरूप परमात्मा-ही-परमात्मा सर्वत्र अवस्थित है, वह स्वयंको भी उस परमात्माका रूप ही मानकर उसमें ही नित्य प्रतिष्ठित अनुभव करता है, उसे न कुछ कामना है, न प्राप्त वस्तुओंके बने रहनेकी भी चिन्ता है" – पू.गुरुदेवके जीवनमें यह गीता-तत्त्व पूर्णतया उतर चुका था। उनका इन दिनों बाह्य प्राकृत जगत्से ही नहीं, अपने शरीरसे भी सम्बन्ध पूर्णतया उपरत हो चला था। उन्हें न स्नानका ध्यान रहता था, एवं न ही भोजनका । वे ध्यानमें बैठे रहते थे, तो दिन-रात एक ही मुद्रामें बैठे ही रह जाते थे। उन्हें शौच-स्नानके लिये जाकर जगाया जाता था। तभी वे अपनी

ध्यानमुद्रासे उठ पाते थे। उनकी उपराम वृत्ति काष्ठमौनके पश्चात् कुछ ही दिनोंमें एकदम शरीर-सीमाका ही उल्लंघन कर गयी थी। वे अपने पांचभौतिक आवरणसे सर्वथा अतीत होकर अपने भावराज्यके शरीर और संसारसे एकात्म हो गये थे।

रतनगढ़का एक प्रसंग उल्लिखित कर रहा हूँ। रतनगढ़में पू.गुरुदेवको पू.पोद्दार महाराजके निवास(हवेली)के तीसरे खण्डमें ठहराया गया था। वहाँ सर्वथा एकान्त था। नीचेके खण्डमें पू. पोद्दार महाराजसे मिलने आने-जानेवालोंके कोलाहलसे वे सर्वथा असंपृक्त थे। उन दिनों ग्रीष्म ऋतु आगयी थी। श्रीपोद्दार महाराज नियमतः उन्हें जल पिलाने स्वयं ही जाया करते थे; कोई विशेष कारणसे ही भले उन्हें उसमें चूक करनी पड़े। इस प्रकार वे पू. गुरुदेवकी अन्तर्दशापर भी अपनी पूरी निगरानी रख लेते थे। उस दिवस जब वे दुपहरीमें लगभग दो बजे ऊपर पू.गुरुदेवको जल पिलाने गये तो उन्होंने पू.गुरुदेवको अपने साधनाकक्षमें ही नहीं पाया। श्रीपोद्दार महाराज विचार करने लगे –"क्या बाबा शौचके लिये गये हैं ? परन्तु यदि वे शौचके लिये जाते तो उनकी निगरानीमें बैठाया गया सेवक राधेश्याम धानुका(भगतजी) भी उनके साथ अवश्य जाता। वह तो अपने स्थानपर यथावत् बैठा था।"

श्रीपोद्दार महाराज इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उन्हें दृष्टिगोचर हुआ कि पू.गुरुदेव(राधाबाबा) तो झुलसती रेगिस्तानी लू एवं भीषण तपनमें छतपर नंगे पैरों खड़े हैं। छतपर सीमेण्टका प्लास्टर था; एवं सीमेण्टकी छतका तेज धूपमें अंगारोंकी तरह तप्त होजाना स्वाभाविक ही था। पू.गुरुदेव(राधाबाबा)के शरीरपर मात्र कौपीन था। श्रीपोद्दार महाराजने यह अनुभव करनेके लिये कि छत कितनी गर्म है, अपनी पहनी हुई हवाई चप्पलें उतारकर

किनारे रख दीं एवं नंगे पैरों ही पू.गुरुदेवकी तरफ बढ़े। श्रीपोद्दार महाराजके पैरोंके तलुवे छतपर पैर रखते ही जलने लगे। ऐसी कड़कड़ाती तेज धूपमें शरीरपर मात्र कौपीन पहने पू.गुरुदेव छतपर न जाने कितनी देरसे खड़े थे। वे इतने अन्तर्मुख थे कि उनको अपने शरीरका भान ही नहीं था, फिर छतकी तपनकी अनुभूति होनेका तो प्रश्न ही कहाँ था। श्रीपोद्दार महाराजने पू.गुरुदेवका हाथ पकड़ा और वे उन्हें उनके साधनाकक्षमें ले आये। थोड़ा समय बीत जानेपर तथा ऊष्मा शमित हो जानेपर पू.पोद्दार महाराजने उन्हें जल पिलाया।

पू.गुरुदेवकी ऊपरी शरीर-दशाका अनुभव तो हम सभीको, जो उनके निकट रहते थे, प्रत्यक्ष हो जाता था, परन्तु वे भीतर कहाँ रहते हैं, इसका पता तो कोई श्रीपोद्दार महाराज सरीखा प्राणी ही, जो स्वयं उनके भाव-संसारमें आवागमन करनेमें समर्थ हो, वही कर स्कता था।

पू.गुरुदेवने लगभग डेढ़-दो वर्ष पश्चात् जब उनकी यह उद्दीपन-अवस्था कुछ शिथिल हुई, तो स्वतः मुखसे फूटती काव्य-धारामें अपने भाव-संसारकी अभिव्यक्ति श्रीपोद्दार महाराज किंवा उनकी महाभाग्यवान् पुत्री अ.सौ. सावित्रीबाईके सम्मुख व्यक्त की थी। अ.सौ. सावित्रीबाईकी हेतुरहित अपार कृपावत्सलताके फलस्वरूप मुझे पू.गुरुदेवकी यह महाभाव-काव्यकृति प्राप्त हुई, जिसमें उनकी राधा-जन्मोत्सवकी अनुभूति वर्णित है। लीलासिन्धुमें नितान्त निमग्नताकी यह सहज और स्वाभाविक परिणति इस भावसमाधिमें व्यक्त काव्य-शब्दावलीके रूपमें प्रस्फुटित हुई है। यहाँ यह ध्यानमें रहे कि पू.गुरुदेवकी यह वाणी जन-साधारणकी वाणी नहीं है। उनकी शब्द-रहितता ही परिचायक बन गयी है, अबाध एवं अगाध रसावगाहनमें और तब यह चिन्मय रसस्फोट

हुआ है – अपौरुषेय रस-मंत्रोंकी वाणीमें, जिसे श्रुतिभाषामें वेद कहा जाता है। इसे किसी त्रिकालज्ञ कवि-ऋषिकी वाणी भी नहीं मानी जा सकती, क्योंकि आदिस्रष्टा वेदगर्भने भी वेद-ऋचायें कानोंसे सुनी भर थीं, निर्माण नहीं की हैं। यही मानना चाहिये कि चिन्मय भागवती श्रीराधा-माधवकी लीला ही जगत्‌के त्रिताप-संतप्त पामर जीवोंके अशेष कल्याणार्थ वाणीदेवीपर कृपा करती, उन्हें कृतकृत्यता प्रदान करती, चिन्मय दिव्य महाभाव-शब्दावलीके रूपमें ढल गयी है। पू.गुरुदेवका मुख तो इन्हें उच्चारण करनेका मात्र यंत्र है, वस्तुतः इनका शब्द-शब्द चिन्मय है। कोई भी साहित्यिक महानुभाव इन शब्दोंको प्राकृत शब्द माननेका पाप अपने सिरपर नहीं लें। ये प्राकृत शब्द हैं ही नहीं। ये तो गोलोकधामके दिव्य चिन्मय श्रीराधाकुण्ड-कृष्णकुण्डके सम्मिलन-स्थलकी अनन्त, अथाह, असीम उर्मियोंके परस्पर मिलित होनेके कारण उत्पन्न कल-कल छल-छल रव हैं। ये शब्द-समुच्चय त्रिताप-दग्ध प्राकृत जगत्‌के जीवोंके अशेष कल्याणार्थ उमड़ी उस कृष्ण-रसघटाका गर्जन-रव हैं, जिससे सुधावर्षाकी प्रारंभिक भूमिका बनती है। और तब होता है अशेष रसप्लावन। ये महाकल्याणकारी चिन्मय रस-सम्प्लावनको आकर्षण करनेके अमोघ मंत्र हैं, जिनके जापके पश्चात् अवश्यंभावी कृपा-उद्वेलन होता ही है। यह कृपा-उद्वेलन अपने अथाह-अजस्र प्रवाहमें अनादि-अनंत कालके संचित कर्मबीजोंको जड़से उत्पाटित कर देता है; अति विशाल कर्म-वृक्ष समूल उखड़ जाते हैं और समग्र भूमि ही अति रस-उर्वरा हो उठती है। क्या कहें, पू.गुरुदेवके महाभाव-राज्यकी मादन-मोहिनी परमावस्था ऐसी ही रसमयी है !

अब कबतक पाठकोंको अपनी भूमिकामें ही भटकाता रहूँगा? पाठक तो तरस रहे हैं, पूज्य गुरुदेवकी महाभाव-रचनाका आस्वादन करनेके लिये। यहाँ यह ध्यान रहे, पू.गुरुदेव इन काव्य-पंक्तियों

और उनके शब्दार्थका भी प्रकाश होते समय श्रीराधाभावमें स्वरूपतः, नित्य प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः यह उनकी स्वयं स्वसंवेद्य अनुभूति है। वे अपने ही द्वारा मनाया जाता अपना जन्म-महोत्सव अपने ही चिन्मय लीला-महाराज्यमें अपने प्रियतमके समालिंगनमें बँधे देख रहे हैं –

पू.गुरुदेव अपने 'प्रियतम'काव्यमें प्रिया श्रीमती राधाकिशोरी एवं प्रियतम श्रीकृष्णका तात्त्विक विवेचन करते हुए भगवती जगन्माता पराभट्टारिका त्रिपुरसुन्दरीकी वाणीमें कहते हैं–

सच्चिदानन्द असमोर्ध्व और जो भगवत्ताका भी प्रियतम।
है सार मूल मधुरिमा, यही नीली, पीली द्युति है प्रियतम।।
रसमय संविद केवल अद्वय जो नील पीतमय है प्रियतम।
रहकर जो नित्य एक जो है, दृग विषय हुआ वह है प्रियतम।।

पू.गुरुदेव द्वारा रचित उपरोक्त पंक्तियाँ स्पष्ट निर्देश कर रही हैं कि परिपूर्णतम, परात्पर, सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा और निखिल ऐश्वर्य, माधुर्य एवं सौन्दर्यके सागर दिव्य सच्चिदानन्दकन्दविग्रह श्रीप्रियाप्रियतम राधा-माधवमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है।

भगवान् अपने निजानन्दको परिस्फुट करनेके लिये ही अथवा उसका नित्य नवीन-नवीन रूपोंमें आस्वादन करनेके लिये ही स्वयं अपने स्वरूपानन्दको अनन्त प्रेमविग्रहोंके रूपमें प्रकट करते हैं; और स्वयं ही उसका रसास्वादन करते हैं। भगवान्‌के उस आनन्दकी प्रतिमूर्त्ति श्रीराधाजी हैं और यह प्रेमविग्रह सम्पूर्ण प्रेमका एकीभूत समूह है। श्रीराधाजी प्रेममयी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। जहाँ आनन्द है, वहीं प्रेम है; जहाँ प्रेम है, वहीं आनन्द है। आनन्दरससारका तत्त्वरूप जहाँ परब्रह्म परमात्मा है, वहीं उसका सच्चिदानन्द सान्द्रांग सगुण साकार रूप रसराज

श्रीकृष्ण हैं। इन श्रीकृष्णके दिव्य आनन्दविग्रहकी स्थिति ही दिव्य प्रेमविग्रहरूपा श्रीराधाजीके निमित्तसे है। श्रीराधारानी ही श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा हैं और इसी प्रकार श्रीकृष्ण ही श्रीमती राधारानीके जीवन हैं।

इन महाभावरूपा श्रीराधा (ह्लादिनीशक्ति)की अनुगामिनी शक्तियाँ, जो इनसे सर्वथा अभिन्न, इन्हींकी कायव्यूहस्वरूपा हैं, मूर्त्तिमती होकर प्रतिक्षण प्रथमतया दो उपभागों – सन्धिनी एवं चिच्छक्तिके रूपमें और तब अनन्त लीला, अनन्त धाम एवं अनन्त ही लीलाविग्रहोंके रूपमें अपनेको व्यक्त कर देती हैं। श्रीराधाकृष्णको सुख पहुँचाना ही इनका प्रयोजन होता है। ये सब शक्तियाँ ही चिन्मय बृन्दावनधाम, यमुना नदी, गिरिराजपर्वत, वहाँके सुशोभन काल, लहराता सौन्दर्यसिन्धु देश, कुञ्ज, वन, गिरि, दरी, सुन्दर सरोवर, उपवन, कुण्ड, उपवनोंमें प्रस्फुटित बकुल, रसाल, प्रियाल, कदली, जम्बु, वानीर, वंश, साल, कदम्ब, अश्वत्थादि वृक्ष, व्योम, रवि, चन्द्र, तारकसमूह, दिवा, निशा, सन्ध्या, प्रभात, मालती, बेला, चमेली, चम्पा, गुलाब, पद्म, मधुप, हंस, बरटा, अन्य जल-विहंगम, स्थल-विहंगम, वनचर, चतुष्पाद, हरिणादि, कोकिल, केकी, शुक, सारिकायें एवं सखी, सहचरी, मञ्जरी, दूतियाँ, सखा, गोधन, माता-पिता, चाचा-ताऊ, फूफी-फूफा आदि अनन्त दृश्य बन जाती हैं और लीलासिन्धु विलक्षण उत्ताल लहरियोंमें लहराता प्रवाहित होता रहता है। यह लीला अविराम अनादि अनन्तकालसे चल रही थी, चल रही है और चलती रहेगी। यह शाश्वत क्रम है।

नित्य आनन्दमय, नित्य तृप्त, नित्य एकरस, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड-विग्रह पूर्णब्रह्म परमात्मामें सुखेच्छा कैसे हो सकती है ?– यह प्रश्न युक्तिसंगत प्रतीत होनेपर भी इसीको सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। भाव एवं प्रेम परमात्मासे पृथक् वस्तु नहीं हैं।

प्रेमाश्रयका भाव प्रेम विषयमें और प्रेम विषयका भाव प्रेमाश्रयमें अनुभूत हुआ करता है। इसीलिये ये बृन्दावनादि धाम, धामान्तर्गत अनन्त लीलाक्षेत्र, अनन्त लीलापात्र प्रेमके आश्रय हैं और प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण प्रेमके विषय हैं। इन लीला-पात्रोंका उच्च भाव ही पूर्णकाममें कामना, नित्यतृप्तमें अतृप्ति, क्रियाहीन निष्क्रियमें क्रिया, एवं आनन्दमयमें आनन्दकी वासना जागृत कर देता है। अवश्य ही यह सुखेच्छा, कामना, अतृप्ति, क्रिया या वासना जड़ इन्द्रियजन्य नहीं है। यह इस मर्त्य जगत्‌की मायामयी वस्तु नहीं है; क्योंकि यह दिव्य आनन्द एवं दिव्य प्रेम अभिन्न है।

यहाँ यह सदैव ध्यान रहे कि बृन्दावनका एक तृण, गुल्म, लता, वृक्ष, वही तत्व है जो श्रीकृष्ण हैं। इनमें इनके प्रिया-प्रियतमसे तत्त्वतः तनिक भी भेद नहीं है। जैसे दूधमें सफेदी, अग्निमें दाहिका शक्ति और पृथ्वीमें गन्ध रहती है, उसी प्रकार यह बृन्दावनधाम, धामान्तर्गत सर, गिरि, सरितायें, सरोवर, वन, वृक्ष, वाटिका, पशु-पक्षी, कीट-भृंग, पुष्प, पशु-पक्षी – सब सदैव श्रीकृष्णमें रहते हैं और श्रीकृष्ण इनमें रहते हैं।

एक ही परम तत्व है, एक ही सत्य है, जो अनन्त रूपोंमें लीला-रसानन्दका आस्वादन करता रहता है। भगवान् श्रीकृष्ण एकमात्र रस हैं और उन दिव्यातिदिव्य मधुर रसका ही यह सारा विस्तार है। नित्य एक ही अनन्त बने लीलारसका वितरण तथा आस्वादन करते हैं इसी तत्वको पृथक्-पृथक् चौपदोंके रूपमें समझ लें।

यह शब्दार्थ भी पू.गुरुदेव द्वारा स्वयं बोलकर अ.सौ.बाई सावित्री (श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री)को लिखाया गया था। इस अनुवादको पूर्वतः प्रकाशित ग्रन्थ *'चलौ री आज ब्रजराज-मुख निरखिये'* में स्थान मिल चुका है। यह ग्रन्थ श्रीराधा-माधव-सेवा-संस्थान,

गीतावाटिका, गोरखपुरसे प्राप्त किया जा सकता है। ध्यान रहे यह शब्दार्थ भी विलक्षण रसमंत्र है। इसका पाठ करनेवाले साधकपर निश्चय ही श्रीराधामाधव युगलसरकार कृपामय होंगे। सत्य मानें, ये शब्द प्रिया-प्रियतमको वशीकरण करनेके अचूक मंत्र हैं। इनका फल अमोघ है।

पू. गुरुदेव द्वारा रचित
दिव्य अनुभूतिमयी काव्यकृति

(१)

कृष्ण-परिरम्भित किशोरी राधिकाकी मानसी
वृत्ति है प्रियतममयी, है आँखमें कुछ नींद-सी ।
है बिहारीलालकी अलकें तरौनामें फँसी
लाड़िलीके, और मनमें मूर्ति है उनकी बसी ।।

नीलसुन्दरके भुजपाशमें बँधी हुई (श्रीमती)राधाकिशोरीकी मानसी वृत्ति प्रियतममय हो रही है। आँखोंमें नींद-सी भर रही है। उस ओर वृन्दावनेश्वर बिहारीलालकी अलकें किशोरीके तरौनामें उलझी हुई हैं और उनके मानस-देशमें प्राणप्रियतमा राधाकिशोरीकी मूर्ति निस्पन्द भावसे विराजित है।

(तात्विक विवेचन-विस्तार)

यहाँ इस काव्य-प्रवाहके प्रथम चौपदेमें ही यह तत्त्व स्पष्टतया उजागर है कि नीलसुन्दरके भुजपाशमें बँधी हुई राधाकिशोरीकी मानसी वृत्ति प्रियतममयी हो रही है। उन्हें अपने भीतर अपनी सत्ता, चिति एवं अहंताके रूपमें श्रीकृष्ण ही दिख रहे हैं। उनके प्रियतम श्रीकृष्ण उन्हें बाह्य कलेवर मात्रसे ही समालिंगित

नहीं किये हैं, अपितु उनके भीतर भी रोम-रोममें वे ही पूर्णतया ओतप्रोत हैं। यही उनकी मानसी वृत्तिके प्रियतममय होनेका अर्थ है।

प्रिया राधाकिशोरीका सब-कुछ जब प्रियतममय हो रहा है, और उनके प्रियतम श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दकन्द हैं, अतः उन्हें मायामय अज्ञानमें संलीन करनेवाली घोर तमोगुणी निद्रा आनेका तो प्रश्न ही नहीं है। यह निद्रा वस्तुतः प्रियतम श्रीकृष्णकी घनस्मृतिरूपा ही है, जिसने प्रियाको अन्यस्मृतिलेशसे भी शून्य कर दिया है, और अन्य विस्मृति अवस्थाको ही वे भी निद्रा मान रही हैं। कवि भी निद्रा कहकर ही इस अवस्थाको उल्लिखित कर रहा है।

इधर श्रीकृष्णके मानसदेशमें भी उनकी प्रिया श्रीराधाकी मूर्त्ति ही निस्पन्द भावसे विराजित है। इसका भी स्पष्ट अर्थ यही है, श्रीकृष्ण मात्र तनसे ही, ऊपरसे श्रीकृष्ण प्रतीत हो रहे हैं, उनके भीतर तो श्रीराधा-ही-राधा हैं।

अब यहाँ श्रीकृष्णकी कृष्ण कुञ्चित अलकें श्रीराधाके हीरक मणिजटित स्वर्णिम तरौनोंसे उलझ रही हैं– यह तथ्य भी यही व्यक्त कर रहा है कि श्यामतेज एवं गौरतेजका मिलन ही पूर्ण, परम तत्त्वका स्वरूपविलास है। कृष्ण कुञ्चित केशराशि श्यामतेजकी प्रतीक हैं एवं स्वर्णिम हीरामणिमण्डित तरौना गौरतेजका प्रतीक है।

।।२।।

वार है आदित्य, शुक्ला अष्टमी है भाद्रकी,
है प्रथम दिनका पहर, गति है शिथिल थल-बातकी।
फुल्ल बकुल-रसाल-कदली-जम्बु-पत्रोंसे ढकी,
कुञ्ज है अतिशय मनोहर तपन-तनया-तीरकी ।।

आज आदित्यवार है । भाद्रपदकी शुक्ला अष्टमी है। दिवसका प्रथम पहर है। स्थलसमीर मन्दगतिसे प्रवाहित है ।

कलिन्दनन्दिनीके तटकी भूमि है । पुष्पित वकुल, आम्र, कदली एवं जामुनके पत्रोंसे ढँकी हुई कुंजकी शोभा अतिशय मनोहर दीख रही है ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

'वार है आदित्य'का अर्थ है – श्रीभानुनन्दिनी राधा सूर्यपुत्री होनेसे प्रकाशपुत्री हैं, वे पूर्ण अन्धतम कामस्वरूपा रजनीमें नहीं जन्मी हैं। श्रीचैतन्य-चरितामृतमें महाप्रभु चैतन्यकी वाणी है– ***'काम अन्धतम प्रेम निर्मल भास्कर'*** इसीलिये श्रीराधाका जन्म आदित्यवारको होता है। श्रीनारदजी अपने भक्तिसूत्रोंमें प्रेमको प्रतिक्षण नित्य नूतन वेगसे बढ़नेवाला बतलाते हैं। शुक्ला अष्टमीके पश्चात् चन्द्र नित्य नूतन वेगसे प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। यहाँ देश भी तपन-तनया सूर्यपुत्रीका तट है। यमुना तमोप्रधान जड़ जगत्की जल-प्रवाहिणी नदी नहीं है, अपितु प्रकाशके चिन्मय देव सूर्यकी चिन्मयी पुत्री हैं। दिनका प्रथम प्रहर पूर्ण तेजोमय काल है। स्थल-समीर भी मन्द-मन्द प्रवाहित हो रहा है। प्राणों (श्वास-प्रश्वास)में रजोगुण-तमोगुणका प्राबल्य नहीं है अपितु विशुद्ध सत्वकी शीतल मन्द गति है, जिसमें एकाग्र हुए चित्त, मन घन शान्तिमें डूबे हैं। यहाँ जम्बु प्रगाढ़ रागका प्रतीक है, कदली अखण्ड संयोगका प्रकाशक है, रसाल रसमत्तताका द्योतक है एवं बकुल उत्फुल्ल चित्तमें उच्छलित आनन्दका प्रकाशक है।

।।३।।

व्योम निर्मलमें नहीं है चिन्ह वारिदका कहीं ,
है पुलिन रवि-रश्मि-राजित, तप्त पर, रज है नहीं।
स्वर्णमय वेदी रचित है बीचमें सुन्दर वहीं ,
साँझ होते ही सदा रस रास बहता है यहीं।।

आकाश पूर्ण निर्मल है । मेघका चिह तक नहीं है,

उसमें। अंशुमालीकी किरणोंसे राजित पुलिनकी शोभा अत्यन्त मनोहर है । साथ ही बालुका-राशि अत्यन्त सुन्दर दीख रही है। यहीं वह स्थल है, जहाँ संध्या होते ही रास-रसका प्रवाह बह चलता है । सदाका सनातन नियम है – इस स्थलपर रास-रसकी अभिव्यक्ति होते रहना ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

व्योम चित्तका प्रतीक है। विशुद्ध सत्वको आच्छादित कर देने वाले वारिदका कहीं कोई लेश भी नहीं है। पुलिन विशुद्ध सत्वके प्रकाशसे जगमगा रहा है। परन्तु इस प्रकाशमें तप्त करनेकी, तपनरूप दुःख देनेकी शक्ति ही नहीं है। अतः रज शीतल है। मध्यमें स्वर्णमय वेदी है। स्वर्ण प्रीतिकी अनमोल पीतताका प्रतीक है। इस स्वर्णिम वेदीस्थलमें ही सदैव सन्ध्याकालमें रस-रासका प्रवाह बहता रहता है।

॥४॥

पार इस तटके द्रुमोंसे लिपटकर अगणित हरी,
हो नमित खगसे, सुमनसे, झूमती हैं वल्लरी ।
भारसे फलके विटपशाखा धरापर हैं ढरी,
है सुगन्धोंसे भरी अवनी तथा गिरिकी दरी ।।

तटके उस पार द्रुमोंसे लिपटी हुई अगणित हरित लताओंका जाल फैला हुआ है । विहङ्गमोंका क्रीड़ा-स्थल है, ये लताएँ । एक ओर गुच्छ-के-गुच्छ पुष्पोंका भार है इनपर, दूसरी ओर विहङ्गमोंका दल-का-दल झूल रहा है, इनकी टहनियोंपर । इस प्रकार वे बल्लरियाँ अत्यन्त नमित हो गयी हैं, भूमिका स्पर्श कर रही हैं । उधर वृक्ष-शाखाओंपर लगे हुए फलोंका भार इतना अधिक है कि वे सभी पादप धराका स्पर्श कर रहे हैं। भूमिका वक्षःस्थल

सुगन्धोंसे परिपूरित हो रहा है। और तो क्या, गिरिवरकी गुफाएँ भी सौरभसे मह-मह कर रही हैं।

(तात्विक विवेचन-विस्तार)

यहाँ 'द्रुम' विषयालम्बन रसराज स्वरूप प्रियतम श्रीकृष्ण हैं और अगणित हरी लताएँ प्रेमसे हरी हुईं आश्रयालम्बन भावापन्न सखियाँ हैं। खग इनकी प्रियतम गुणगानमें निरत वृत्तियाँ हैं। सुमन प्रेमभरा इनका मन है, जो प्रियतम श्रीकृष्णके दर्शनजन्य आनन्दसे खिल रहा है। ये गोपीरूपा वल्लरियाँ भावोन्मत्त हुई झूम रही हैं। अपने प्रियतमको सुख देनेकी लालसा ही फल हैं, जिनके भारसे वृक्षकी शाखाएँ अर्थात् प्रियतम श्रीकृष्णके अंग-प्रत्यंग अपनी प्रियाके तनपर निढ़ाल हो रहे हैं। अब भला प्रेमकी सुगन्ध सर्वत्र प्रसरित नहीं हो, ऐसा कैसे संभव है।

॥५॥

पी मधुप मधु, मत्त होकर, मौन-सा है हो चुका,
पर न किञ्चित् भी बिहग-कुलका सरस है स्वर रुका,
हंस, हो आसक्त वरटामें, रहा है सिर झुका ।
है जहाँ छूकर रही बह नीलधारा रेणुका ॥

इस समय भ्रमरावली पर्याप्त मधुपानसे मत्त होकर मौन-सी हो गयी है, किंतु विहङ्ग समुदायके सरस स्वरका किञ्चित् भी विराम अबतक नहीं हुआ है । कलिन्दनन्दिनीके प्रवाहके समीप, जहाँ धारा रेणुकाको स्पर्श करती हुई बह रही है, हंस-हंसिनियोंका दल विराजित है। प्रीतिकी ऊर्मियोंमें बहता हुआ हंस हंसिनीके चरणप्रान्तमें अपना सिर झुकाए आसीन है । भावकी तरंगें उसके पंखसे मानों ऊपर-नीचे, दाहिने-बाँयें बिखर-सी रही हैं ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

तनिक इस प्रेमभावभरी प्रकृतिका सौन्दर्य तो देखें ! सर्वत्र भाव एवं रसका ही विलक्षण उद्दीपन इस काव्यमें व्यक्त है। नीलधारा (श्रीकृष्णका प्रीति-सरस हृदय) रेणुका(श्रीराधारूपा उज्ज्वल निर्मल भावस्वरूपा धरा)को लहरा-लहराकर शनैः-शनैः संस्पर्शितकर भावोद्दीपित कर रही है। नर हंस (श्रीकृष्ण भाव-भावित जलविहग) अपनी प्रिया वराटी, हंसिनीके अणु-अणुमें प्रिया राधाको निरखता उसके चरणोंमें नतमस्तक है। मधुप (श्रीकृष्ण) अपनी प्रिया पुष्पराशि (राधा)का प्रीतिमकरन्द पान कर-करके अतृप्त हुआ मुखरता त्यागकर मौन शान्त हो गया है। किन्तु प्रेम-यश-गाननिरत वाणीदेवी जो अपनेको इस खगकुलके निमित्त धन्यजीवन कर रही है, भला कैसे शान्त हो सकती है, वे तो निरन्तर प्रिया-प्रियतमका प्रेमगान करती थकती ही नहीं।

।।६।।

नीर-तलपर जल-बिहर्मि तैरते हैं दीखते,
और निर्भय मेदिनीपर हैं चतुष्पद घूमते ।
डूबकर सुख-सिन्धुमें दृग मूँदते हैं, खोलते,
कीर है वह एक नीरव, और हैं सब बोलते ।।

कुछ जल-विहङ्ग धाराके ऊपर तैरते हुए दीख रहे हैं, और धारासे सम्बद्ध मेदिनीपर चतुष्पदोंका दल निर्भय होकर विचरता दीख रहा है । ये चतुष्पद कुछ चलकर रुक जाते हैं, सुख-सिन्धुके प्रवाहमें डूबकर अपनी आँखें मूँद लेते हैं, निस्पन्द हो जाते हैं । फिर अचानक इनकी आँखें खुल जाती हैं, और उन्मत्त-से हुए ये आगेकी ओर चल पड़ते हैं । हाँ ! केवल वह शुकपक्षी अकेला, चुपचाप, नीरव बैठा है । शेष सभी अपने-अपने कलरवमें तन्मय हो रहे हैं ।

(तात्विक विवेचन-विस्तार)

अहा ! प्रीतिरस कैसा कल-कल छल-छल रव करता हुआ बह रहा है। जल-पक्षी मनमें प्रिया-प्रियतमकी छवि भरे इस रस-प्रवाहमें तैरते दिखाई पड़ रहे हैं। पृथ्वीपर वनमें चतुष्पाद विचरण करते हैं, उन सभीके अन्तःकरण नील-पीत ज्योत्स्नाकी मादक स्निग्धतासे भरे हैं। उन सबके अन्तरमें इतना सुख-सिन्धु उमड़ रहा है कि वे चेष्टा करनेपर भी अपने नेत्र खुले नहीं रख पाते; आन्तरिक प्रेमोर्मियाँ उनके नेत्र मूँद देती हैं। उनका चेष्टाकरके नेत्र खोलना और तब पुनः मूँद लेना अति मनोरम लग रहा है। हाँ, वहाँ एक शुक पक्षी अवश्य है जो चुपचाप, शान्त आनन्दमें भरा मौन बैठा है, शेष सभी खग चंचल हुए चहक रहे हैं।

॥७॥

कुञ्जसे सटकर वहाँ फूला विशाल कदम्ब है,
डालपर शुक है उसीकी, तत्त्वविद् वह पूर्ण है ।
है सहज अनुभूति उसकी, कृष्णमय यह दृश्य है,
नन्दनन्दनमय बना बैठा हुआ ध्यानस्थ है ॥

कुञ्जसे सर्वथा जुड़ा हुआ वहाँ एक विशाल कदम्बका वृक्ष है। कीर उस वृक्षकी डालपर ही आसीन है । वह पूर्ण तत्त्ववेत्ता है । उसकी सहज अनुभूति है कि यह दृश्य-प्रपञ्च सर्वथा-सर्वांशमें कृष्णमय है, सच तो यह है कि वह नन्दनन्दनमय बना हुआ ध्यानस्थ बैठा है।

(तात्विक विवेचन-विस्तार)

कदम्बका वृक्ष तो प्रियतम श्रीकृष्णका ही स्वरूप है और कुञ्ज प्रिया श्रीराधाका निवास होनेसे अपनेमें उनकी छवि छकाछक भरे है। प्रिया-प्रियतम तो परस्पर सटकर ही खड़े होते हैं, सो यह वृक्ष भी कुञ्जसे सटा है। यह विचक्षण शुक श्रीकृष्णका सखा है।

सखी श्रीचित्राजी

यह निशामें भी इनके ही शयन-कक्ष नन्दभवनमें शयन करता है। जब माता यशोदा एवं गोपराज नन्दराय प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठ जाते हैं, तब यही शुक कुञ्जमें अपनी प्रिया राधा सहित शयित श्रीकृष्णको इसकी सूचना देने नन्दभवनसे उड़ता हुआ शीघ्रतापूर्वक इनकी कुञ्जमें प्रवेश करता है। यह श्रीकृष्णकी अति तत्त्वसारयुक्त काव्यमयी वाणीमें स्तुति करके उन्हें जगानेकी चेष्टा करता है। वैसे इस स्तुतिमें इसका साथ प्रिया श्रीराधारानीकी अतिशय प्यारी सखी सारिका भी देती है। वह सारिका स्त्रीपक्षी होनेके कारण निशापर्यंत प्रिया-प्रियतमके एकान्त रस-विलासकी साक्षी द्रष्टा होती है। ये दोनों शुक-सारिका प्रायः सदैव मौन, शान्त एवं ध्यानस्थ ही रहते हैं। शुक तत्त्वविद् है किन्तु सारिका रसविद् है। शुकराज विचक्षण सर्वत्र अपने भीतर एवं बाहर समग्र दृश्यको कृष्णमय ही देखता रहता है, इसका अन्तःकरण सदैव सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके उच्छलित आनन्दमें पुलकित ही रहता है। इसीलिये पंख प्रफुल्लित रहते हैं। यह नन्दनन्दनमय बना ध्यानस्थ आसीन है।

॥८॥

नित्य इसको कृष्ण हैं अपने करों से पोंछते,
स्पृष्टफल राधा-अधरसे चोंचमें हैं डालते
और रखकर लाड़िलीके सामने हैं पूछते,
"मित्र ! बोलो, क्या पढाऊँ, पाठ हो क्या चाहते"॥

इस बड़भागी शुकपक्षीको श्रीकृष्णचन्द्र अपने करसरोरुहसे प्रतिदिन स्नान कराते हैं, पोंछते हैं और फिर राधाकिशोरीके अधरामृतसे सिक्त, सुमधुर फल लेकर इसके चोंचमें भर देते हैं। इसके अनन्तर किशोरीके सामने उसे विराजितकर उसे पूछते हैं–'अहो मित्र ! बोलो, तुम्हें आज क्या पढाऊँ मैं ? तुम कौन-सा

पाठ पढ़ना चाहते हो ?'

(तात्विक विवेचन-विस्तार)

यदा-कदा जब भी श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रिया राधा वनमें साथ-साथ एकान्तमें होते हैं, यह शुक अवसर देखकर प्रियतम श्रीकृष्णकी भुजाओंमें हाथपर अँगूठेके पास बैठ जाता है। सारिका भी प्रियाके हाथपर बैठ जाती है। तब प्रियतम श्रीकृष्ण इसे अपने सच्चिन्मय हस्तकमलके संस्पर्शसे सहलाते हैं। यही इसके अंगोंको पौंछना, सम्मार्जित करना होता है। अपने प्रियतम सखाके पावन प्रेमभरे संस्पर्शसे यह शुक कृतकृत्य हो उठता है। श्रीकृष्ण इसे अपनी प्रियाके अधरोंसे संलग्नकर उनके अधरामृतसे सना प्रसाद खिलाते हैं। श्रीराधाके अधरोंमें पराभट्टारिका भगवती योगमाया श्रीविद्या विराजती हैं, अतः उस अधर-संस्पृष्ट प्रसादको पाकर यह शुक सर्व प्रेमरहस्योंका प्रज्ञाता हो जाता है। इसके उपरान्त भी प्रियतम श्रीराधारानीके सान्निध्यमें ही इससे प्रश्न करते हैं–'अहो मित्र ! सखे !! बोलो, मैं तुम्हें आज क्या पाठ पढाऊँ ? तुम कौनसा पाठ पढ़ना चाहते हो ?''

॥९॥

सहसा शुकस्य नेत्रोन्मीलनम् ।

अस्तु, सहसा यही शुकपक्षी अपनी आँखें खोलकर देखने लग जाता है।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

शुक पक्षीको सम्पूर्ण दृश्यमें श्रीकृष्ण इस प्रकार भरे दृष्टिगोचर होते हैं कि वह बार-बार नेत्र मूँद-मूँदकर खोलता है। उसे पाँच प्राकृत तत्त्व – आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वीमें भी अणु-अणुमें श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण समाये प्रतीत होते हैं। उसे यह

निश्चय तो हो जाता है कि उसके प्रियतम सखा श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द परतत्त्व हैं, किन्तु क्या प्रिया श्रीराधा भी मन-वाणीका अविषय हैं, और उनकी अनुजा मंजुश्यामा भी वही सच्चिन्मय परतत्व है ? वह इस जिज्ञासासे मथित हुआ, इस जिज्ञासाका समाधान अपनी सखी सारिकासे करने कुञ्जमें जानेको उद्यत होता है।

।।१०।।

कुञ्जप्रवेशः

उड़कर कुञ्जमें प्रविष्ट हो जाता है ।

।।११।।

तत्रस्थ सारिकया सह मूकमिलनम्

वहाँ विराजित सारिकाके साथ शुकका मौन मिलन होता है।

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

यह पुरातन आर्ष पद्धति ही है कि किसी भी तत्वज्ञ ऋषि गुरुके पास जिज्ञासु मुनि मौन होकर ही जावे। सबके सर्वमान्य परमगुरु भगवान् दक्षिणामूर्त्ति श्रीदत्तात्रेयजीके लिये भी यह श्लोक प्रसिद्ध है –

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौन व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः।।

'आश्चर्य है कि वटवृक्षके नीचे सभी शिष्य अति वृद्ध हैं और गुरु युवक हैं। गुरु मौन रहकर व्याख्यान कर रहे हैं और शिष्योंके सभी सन्देह स्वतः छिन्न हो रहे हैं।'

भगवान् दक्षिणमूर्त्ति दत्तात्रेयजीके लिये यह शास्त्रवाणी है कि वे मूर्त्तिमान् प्रणवकी व्याख्या हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेवजी– तीनोंके समवेत विग्रह(मूर्त्ति) हैं । वे विशुद्ध ज्ञानमूर्त्ति हैं, परम

निर्मल हैं, प्रशान्त गंभीर हैं और वयमें युवा हैं। वटवृक्षके नीचे खुली भूमिमें अपने पास आसीन शान्त वयोवृद्ध मुनिजनोंको वे मौन रहकर ही आद्योपान्त समग्र ज्ञान दे देते हैं। इसीलिये उन्हें त्रिलोकीका-गुरु माना जाता है।

।।१२।।

भावाविष्टदम्पतिदर्शनम्

दोनोंकी दृष्टि भावाविष्ट नीलसुन्दर और राधाकिशोरीकी ओर केन्द्रित हो जाती है, दोनों देखने लगते हैं उनकी ही ओर ।

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

किसीकी भी जिज्ञासाओंका वैसे समाधान हो ही नहीं पाता, चाहे कोई कितना ही उपदेश सुने। सच्चा समाधान तभी होता है, जब प्रिया-प्रियतम राधा-माधव किसीके भी अन्तःकरण-पटलपर अपनी हेतुरहित कृपासे अपने आपको सुव्यक्त कर देते हैं।

।।१३।।

प्रियतमायां भावान्तरोद्गमः ।

अचानक राधाकिशोरीमें एक नवीन भावका प्रवाह चल पड़ता है।

।।१४।।

स्वप्नदर्शनम्

वे एक स्वप्न देखने लगती हैं ।

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

भगवती श्रीराधा परात्पर परब्रह्मस्वरूपा ह्लादिनी महाभावशक्ति हैं। उनमें प्राकृत मर्त्यजगत्‌की गुणमयी तीन अवस्थाएँ– जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति हो ही नहीं सकतीं । प्रकृतिके मायामय सत्व, रज एवं तमोगुणोंकी न्यूनाधिकता होनेसे ही ये लौकिक

तीन अवस्थाएँ – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति त्रिगुण-भावापन्न जीवोंमें देखी जाती हैं। किन्तु श्रीमती राधारानीका हम लौकिक जीवोंकी तरह स्वप्न देखना तो संभव ही नहीं है।

वस्तुतः श्रीकृष्ण-स्मृतिकी आत्यन्तिक प्रगाढ़ता, साथ ही श्रीकृष्णेतर अन्य सम्पूर्ण लीलाजगत्‌की पूर्ण विस्मृति ही उनकी निद्रा है, जिसमें वे अबतक श्रीकृष्णके समालिंगनमें डूबी लिप्त थीं। अब उनकी इस प्रगाढ़ स्मृतिजन्य भाव-समाधिमें किंचित् विक्षेप हुआ है, और उन्हें सच्चिन्मय अप्राकृत लीलाजगत्‌की स्मृति उदित हो रही है। इसीको पू.गुरुदेव स्वप्न देखना कह रहे हैं।

।।१५।।

तद्दर्शनेन प्रियतमस्य भावसमाधिः ।

यह देखते ही प्रियतम नीलसुन्दरको भी भाव-समाधि हो जाती है ।

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

प्राकृत जगत्‌में तो कोई क्या स्वप्न देखता है, इसका अनुसंधान ही अन्य व्यक्तिको नहीं हो पाता। किन्तु प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधाकिशोरीसे इतने एकात्म हैं कि उसकी स्वप्नगत एक-एक भावस्फुरणाको प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं और उस भावोद्वेलनकी पवित्रतम प्रेमस्वरूपताको ठीक पहचानकर उसके आस्वादनमें इतने भावविह्वल हो उठते हैं कि उन्हें तत्क्षण भाव-समाधि लग जाती है।

।।१६।।

सारिकायाः जय-जयेति प्लुतरवेण प्रियतमस्य बाह्यसंज्ञालाभः ।।

सारिका 'जय-जय' पुकार उठती है । उसके इस प्लुत-रवसे प्रियतम नीलसुन्दरमें बाह्यज्ञानका संचार हो जाता है ।

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

सारिका पक्षी प्रिया श्रीराधाकी काय-व्यूहारूपा होनेसे अपनी सखीकी भाव-स्फुरणाओंकी भी द्रष्टा रहती है। सर्वविख्यात है कि श्रीप्रिया-प्रियतम तो ***'एक तत्व दो तनु धरैं'*** एक प्राण दो शरीर हैं। अतः ये दोनों परस्परके मनकी स्फुरणाओंको पहचान लें, यह रहस्य तो हृदयंगम हो जाता है, किन्तु ब्रजवनका एक अति साधारण पक्षी भी प्रिया श्रीराधारानीके हृदयकी प्रत्येक भावोर्मिको जान लेता है, यह आश्चर्य ही है।

।।१७।।

कम्पितकरेण प्रियतमानयनमार्जनम् ।

वे कम्पित करसरोरुहसे प्रियतमाकी आँखोंका संमार्जन करने लगते हैं।

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

वस्तुतः स्वप्न नेत्र नहीं देखते; स्वप्न तो अन्तःकरण एवं मनकी वृत्तियोंका हलन-चलन है जो मन ही अनुभव करता है। सभी स्वप्न मनःपटलपर ही व्यक्त होते हैं। फिर यहाँ श्रीकृष्ण स्वप्नकी अपूर्व प्रेममयता और विलक्षण दृश्यावलिसे मुग्ध हुए प्रिया श्रीराधाकिशोरीके बाह्य नेत्र क्यों सहलाने लगे ? क्या वे सर्वविद्, सर्वज्ञ, सर्वविद्याविशारद होते हुए भी इतने अज्ञानी हैं कि ऐसा समझ रहे हैं कि प्रियाके नेत्रोंमें स्वप्न विलसित हो रहा है ?

नहीं, नहीं, ऐसा कदापि नहीं है। सत्य तो यह है कि अपूर्व प्रेमावेशवश उनमें विलक्षण प्रेम-रहस्योंका प्रकाश हो जाता है; उनमें उच्छलित प्रेमोदधि सर्वज्ञता एवं मूढ़ता दोनों विरुद्धगुण धर्मी भावोंका युगपत् एक साथ प्रकाश कर देता है। सर्वज्ञता तो इस अंशमें व्यक्त होती है कि वे अपनी प्रिया राधाकिशोरीके स्वप्न देखनेकी अन्तरतमकी बात जान लेते हैं और मूढ़ता इस रूपमें

व्यक्त हो उठती है कि वे भावावेशवश उनके नेत्र-सरोजोंको सहलाने लगते हैं। अथाह प्रेमोद्रेकवश उनके कर-सरोजोंमें परम सात्विक कम्पन-भाव प्रकट हो जाता है।

॥१८॥

प्रियतमावबोधः ।

इस प्रकार नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाको बाह्यज्ञान हो उठता है ।

प्रियतमस्योक्ति

॥१९॥

स्वप्न सुन्दर, थी रही तुम देख, मैं था देखता ।
अर्धमुद्रित शरद-सरसिज-से दृगोंकी लवणता ॥
और हृत्तलमें लहर-सी नाचती जो सरसता,
चित्र अंकित हो रहे मुखपर उन्हींमें विहरता॥

प्रियतम कहने लगते हैं – प्राणेश्वरि ! तुम एक अतिशय सुन्दर स्वप्न देख रही थीं, और मैं देख रहा था तुम्हारे अर्द्धमुद्रित शारदीय सरोरुह-जैसे दृगोंका लावण्य। साथ ही तुम्हारे हृत्तलमें जो सरसताकी ऊर्मियाँ-सी नृत्य कर रही थीं और जो उनके चित्र तुम्हारे मुखसरोजपर अंकित हो जाते थे, उसे देख-देखकर मैं भाव-समुद्रमें डूबता-उतराता था।

॥२०॥

चिन्मयी तन्द्रासमावृत वदन-नीरज था सना ।
शान्तिसे, वह राशि सुषमाका मनोहर था बना ॥
'भाव एवं बोध' का संग्राम सुखमय था ठना,
था वितान तथा प्रकृति अपनी रचित मुझपर तना ।

चिन्मयी तन्द्रासे तुम्हारा वदन-सरोज आवृत हो रहा था, शान्तिका आकर बना हुआ वह सब ओर सुषमा बिखेर रहा था,

बरबस मेरे मनका हरण कर ले रहा था । अचरजकी बात यह थी कि उस समय भी भाव एवं बोधका अत्यन्त सुखमय संग्राम-सा छिड़ रहा था। साथ ही उस ओर मेरी अपनी प्रकृतिके द्वारा ही विरचित एक सुमनोहर वितान मुझपर तान दिया गया था ।

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

जिज्ञासाः- प्रिया श्रीराधाके हृत्तलमें जो सरसताकी उर्मियाँ नृत्य कर रही थीं और उनके द्वारा विशुद्ध सात्विक चित्र उनके मुख-सरोजपर अंकित हो रहे थे, उन्हें देख-देखकर प्रियतम श्रीकृष्णका भाव-समुद्रमें डूबना तो समझमें आता है; किन्तु उन्हें प्रिया राधाके दृगोंका लावण्य आकर्षित करे, यह बात किसी भी दृष्टिसे हृदयंगम नहीं होती। भगवान्‌के दृगोंका लावण्य आत्माराम -गणाकर्षी कहलाता है, किन्तु वे सर्वमोहन-मोहन भगवान् भी मोहित हो जावें, यह युक्तिसंगत नहीं लगता।

समाधानः- यह प्रेमतत्त्व ऐसा ही विलक्षण है। वह नित्यतृप्त भगवान् श्रीकृष्णको अतृप्त बना देता है। क्या यशोदाके स्तन्य (दूध)के लिये बालक श्रीकृष्ण बुभुक्षित नहीं होते ? जब उनको दूध पिलाना स्थगितकर उफनते दूधकी रक्षार्थ माता यशोदा उन्हें बुभुक्षित ही छोड़कर चली जाती है, तो क्या वे क्रोधमें भरकर यशोदा मैयाका दधिभाण्ड नहीं फोड़ देते ? वात्सल्यरसमें जहाँ श्रीकृष्ण माता यशोदाके दुग्धकामी होते हैं; ठीक इसी प्रकार मायुर्यरस-भाव-भावित होनेपर वे अपनी प्रिया श्रीमती राधाकिशोरीके रूप-सौन्दर्यके भी पिपासु हो उठते हैं। यहाँ ऐसा उल्लेख अवश्य है कि प्रियाके हृत्तलमें सरसताकी उर्मियोंका नर्तन देख वे भावसमुद्रमें डूबने-उतराने लगे। किन्तु उनका प्रेम कुछ भी अपेक्षा रखकर नहीं है। वे तो मात्र किसीके भी मुखसे 'राधा' नाम उच्चारित होता सुन लें, उसपर अपना सर्वस्व न्यौछावरकर उसकी चरण-रेणु प्राप्त

करने उसके पीछे-पीछे फिरने लगते हैं।

यहाँ एक बात और समझनेकी है कि अप्राकृत लीलाराज्यमें प्रिया श्रीमती राधारानी और उनके नेत्र दो वस्तु नहीं होते। वहाँ देह-देहीभाव प्राकृत जड़ संसार – मृत्युलोककी तरह नहीं होता। वहाँ चर्मचक्षु नहीं हैं। अतः राधा ही वहाँ पूर्णतया राधारानीके नेत्र भी हैं। ये सभी शंकाएँ भगवान्‌के लीलाराज्यको प्राकृत मान बैठनेसे ही होती हैं।

जिज्ञासाः- बीसवें चौपदेमें *'भाव एवं बोधका संग्राम सुखमय था ठना'* – यह पंक्ति उल्लिखित है। इसका विवेचन कृपया विस्तारपूर्वक करें।

समाधानः- इस उपरोक्त पंक्तिका भली प्रकारसे खुलासा करनेकी दृष्टिसे श्रीपोद्दार महाप्रभु रचित इस पदपर दृष्टिपात करें। यहाँ कृष्ण-प्रिया श्रीराधारानीकी चिन्मयी निद्रा क्या है, इसीका विस्तृत विवरण हैः–

कृष्ण-सुखैक-वासना केवल, कृष्ण-सुखैक-रूप सब काल।
काम-भोग-वर्जित स्वाभाविक राधा-ह्रदय रहित जग-जाल।।
महा मोह-तम-रजनी-विरहित प्रकट प्रेम-रवि-ज्योति अपार।
कृष्ण-स्मरण पूर्ण शुचि जीवन अर्पित सहज अखिल आचार।।
प्रियतम परम श्यामकी स्मृतिमें हुई राधिका अति तल्लीन।
स्वयं होगयी स्मृतिरूपा वह अपनी सुधिसे हुई विहीन।।
श्यामा, श्याम, श्यामकी स्मृति-इस त्रिपुटीका हो गया अभाव।
रहे नहीं आस्वाद्यास्वादन, रहा न आस्वादकका भाव।।

इन उपरोक्त आठ पंक्तियोंमें महाप्रभु श्रीपोद्दार महाराजने प्रिया श्रीराधा रानीकी चिन्मयी प्रगाढ़ निद्राका वर्णन किया है। यह जब प्रगाढ़ न होकर किंचित् शैथिल्ययुक्त होती है तो इसे ही उनकी तन्द्रा समझनी चाहिये। वे कहते हैं –

श्रीराधारानीमें सर्वकाल मात्र श्रीकृष्णको ही सुखी करनेकी एक वासना रहती है। श्रीराधारानीका हृदय सब जगजंजालसे तो स्वाभाविक ही सर्वथा मुक्त एवं समग्र कामना एवं देहभोगोंसे पूर्ण उपरत रहता है। वहाँ महामोहमयी अज्ञानान्धकारसे युक्त निशा तो विगत हो जाती है और प्रेमसूर्यकी ज्योति सदा छिटकी रहती है। श्रीराधारानी प्रियतम श्यामसुन्दरकी स्मृतिमें अतिशय तल्लीन हुई स्वयं स्मृतिरूपा ही हो जाती हैं, और उन्हें अपनी स्वयंकी भी स्मृति नहीं रहती। वे जब स्वयं अपने आपको ही भूल जाती हैं, तो फिर न तो प्रियतम श्रीकृष्णकी स्मृति रहती है, न श्रीकृष्ण ही रहते हैं। इस अवस्थामें आस्वाद्य, आस्वादक एवं आस्वादन – तीनों ही वृत्ति समाप्त होकर मात्र शून्य ही उनका अन्तःकरण हो जाता है।

इसे पुनः समझ लें । जैसे अज्ञानकी सप्तम भूमिका प्रगाढ़ निद्रा अथवा पूर्ण मूर्च्छा है; इसी प्रकार प्रेमकी सर्वोच्च भावसमाधि यही है। प्रेमसाधनाकी यही सर्वोच्च सिद्ध अवस्था है।

साधना चाहे भाव-भक्ति, प्रेम-साधनाके पथसे की जावे किंवा बोध-पथसे; पथ (यात्रा) में ही भिन्नता भेद रहता है, चरम लक्ष्यपर पहुँचनेपर तो यही दृष्टिगोचर होता है कि अन्तिम सत्य, चाहे किसी भी साधनाका आश्रय लो, अन्तमें एक ही है। वह अन्तिम उपलब्ध तत्व अनुभवातीत पद है। वहाँ ज्ञाता-ज्ञान एवं ज्ञेयकी भी आत्यन्तिक विस्मृति हो जाती है। ज्ञानमार्गके ये ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ही प्रेममार्गमें क्रमशः श्यामा, श्यामकी स्मृति एवं स्वयं श्याम हो जाते हैं। इन्हें ही चाहे नाम बदलकर आस्वादक, आस्वादन एवं आस्वाद्य कह लो। इस त्रिपुटीका अन्त हो जाना ही सच्चे बोधमार्गके साधकका भी लक्ष्य होता है। सर्वोच्च भावसे भी इसी अन्तिम उपलब्धिको प्रिया, प्रियतम, सखियाँ एवं ब्रजराज्यके सभी जीव निद्राभावमें तल्लीन होकर करते हैं। उनकी निद्रा

प्राकृत जड़ मायाराज्यकी घोर अज्ञानावस्था नहीं है, अपितु यही चरम एवं परम सत्यकी उपलब्धि है, जिसे प्रियतम श्रीकृष्णका प्रेम उन्हें उपलब्ध कराता है। इसी अवस्थामें क्षणके करोड़वें हिस्सेमें प्रियतम श्रीकृष्ण प्रिया राधामें पूर्णतया रूपान्तरित हो जाते हैं और श्रीराधा प्रियतम श्रीकृष्णमें पूर्णतया रूपान्तरित हो जाती है। सखियाँ श्रीराधामें समाहित हो जाती हैं एवं समग्र ब्रजराज्य प्रिया-प्रियतमके किसी-न-किसी अंग-अवयवमें मिलकर अपनी पृथक् अस्मिता, पृथक् अस्तित्व, अभिमान पूर्णतया विलय कर देता है।

ज्ञानराज्यकी यह पूर्ण मुक्तावस्था है। जीव इसे पाकर फिर अपुनर्भव गतिकी उपलब्धि कर लेता है। वह पूर्ण परात्पर सच्चिदानन्द सिन्धुमें सिन्धु बनकर बिन्दुत्वका विलय कर लेता है। बोधकी इस चरम सिद्ध अवस्थामें पहुँचकर साधक 'बुद्ध' हो जाता है, पूर्ण हो जाता है, संतृप्त हो जाता है, महासिद्ध हो जाता है। उसकी यात्राका उसे चरम एवं परम लक्ष्य उपलब्ध हो जाता है। किन्तु प्रेममार्गका साधक इस सिद्धावस्थामें भी संतृप्त नहीं हो पाता। क्योंकि विशुद्ध प्रीति नित्य नव-नवायमान रस देने वाली है। नित्य अभिवर्द्धनशील स्वभावकी होनेके कारण प्रेमीकी प्रेमसाधनाकी इति इस चरम अवस्थाको प्राप्त कर लेनेपर भी नहीं होती। भाव उसे बोधस्वरूपताके इस चरम एवं परम सर्वोच्च सिंहासनपर बैठा नहीं रहने देता। यहाँ भाव एवं बोधका सुखमय संघर्ष छिड़ जाता है।

श्रीपोद्दार महाराज अपनी इसी महाभावमयी पद-रचनामें आगे इस सुखमय संघर्षका भी बहुत ही स्पष्ट किन्तु अति रसमय विवेचन करते हैं:–

स्मृति स्मृतिकर्त्ताके अभावमें उपजा मनमें भाव नवीन।
विस्मय परम हुआ जब दीखा खाली हृदय सहज स्वाधीन।।

जाने कैसे दीं दिखलाई भावभरी आँखें पल एक।
पता नहीं क्यों जाग उठा कुछ, हार चला सब बुद्धि विवेक।।

दीखा नेत्रभावमें उसको रसका बहता विमल प्रवाह।
उसके प्रति आया द्रुतगतिसे भरा शून्य उर अमित अथाह।।
उदय हुई जिज्ञासा, थे ये किसके नेत्र सुधा रस पूर।
रसवन्यासे किया उसे अति विवश, विचित्र मधुर मद-चूर।।

बसे नेत्र, नेत्रोंके द्वारा, आकर उर मन्दिर तत्काल।
बता दिया उन नेत्रोंने, वे नेत्रवान हैं श्रीनँदलाल।।
टूट गया तब मनका बन्धन, बरबस तुरत हुआ अभिसार।
कहाँ, कौन, वह क्यों जाती है, रहा न इसका तनिक विचार।।

वे कहते हैं – स्मृति एवं स्मृतिकर्त्ताका भी जब पूर्ण अभाव हो जाता है, तो प्रेमिका राधामें एक नवीन भावका सृजन हो उठता है। श्रीराधा विस्मित हो उठती हैं, जब पाती हैं कि वे तो पूर्ण स्वाधीन, सर्वथा सर्वबन्धन-विनिर्मुक्त, पूर्ण हो गयी हैं। न जाने कैसे इस अवस्थामें पहुँचते-पहुँचते ही उन्हें अत्यन्त प्रेम भावसे छलकती अपने प्रियतम श्यामसुन्दरकी आँखें एक पलके लिये दिख जाती हैं। उन बंकिम चितवनयुक्त नयनोंकी स्मृति आते ही उनका समग्र बोधजन्य विवेक जो उन्हें पूर्ण स्वातंत्र्यके अनुभवसे प्राप्त होता है, प्रेमके सम्मुख हार मान लेता है। उन अपने प्रियतम प्राणवल्लभके नेत्रोंमें उन्हें महारसका निर्मल प्रवाह उछलता-बहता अनुभव होता है। वह निर्मलतम विशुद्ध प्रीतिरसका अथाह प्रवाह अत्यन्त द्रुतगतिसे उनकी ओर उमड़ उठता है, और वह उस अमित अथाह शून्यको पूरम्पूर भर देता है, जिसे वे विवेकजन्य पूर्ण स्वातंत्र्यके अनुभवसे प्राप्त कर चुकी थीं। उनमें एक जिज्ञासा उदय हो जाती है – "अहो ! ये महासुधारसपूर नेत्र किसके थे, जिनकी रसमयी दृष्टिसे वे अति विवश हो गयीं और जिनकी

विचित्र मधुरताने उनके स्वातंत्र्याभिमानजन्य मदको चूर-चूर कर दिया।"

अब तो वे जाग्रत हो गयीं। उनके नेत्र भी उन्मीलित हो गये, किन्तु उन उन्मीलित नेत्रोंके द्वारसे वे प्रियतमके रसभरे नेत्र उनके हृदय-मन्दिरमें प्रवेश कर गये। और उन प्रवेश पाये नेत्रोंने उन्हें यह सूचना भी दे दी कि इन रसीले नेत्रोंका स्वामी अन्य दूसरा कोई नहीं, मात्र ब्रजेन्द्रनन्दन हैं। अब तो उनके मनका समग्र मर्यादा-बन्धन टूट गया और वे बरबस अपने प्रियतम प्राणवल्लभ ब्रजकिशोरसे अभिसार करने चल पड़ीं। उन्हें न तो किसी अवरोधकी सर्वथा परवाह रही एवं न ही कुछ भी अनुसंधान ही रहा कि वे किसके पास कहाँ जा रही हैं और क्यों जा रही हैं।

श्रीपोद्दार महाप्रभुकी महाभावमयी वाणीमें आगेकी लीला वर्णित है; किन्तु यहाँ इतना ही समझ लें कि यह ज्ञानोत्तर महाभावकी अवस्था है। परिपूर्ण बोधस्वरूपताके पश्चात् किन्हीं महाभाग्यवानोंपर भगवान् श्रीकृष्णकी हेतुरहित विलक्षण कृपा होती है और मात्र उस कृपावश ही अपने सगुण साकार परात्पर परब्रह्म ब्रजेन्द्रनन्दन स्वरूपका प्रकाश वे किसी बिरले साधकके हृदयमें कर देते हैं और उसे अपने प्रीतिरससे सराबोर कर देते हैं।

जिज्ञासाः- इसी बीसवें चौपदेमें भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कथित *'था वितान तथा प्रकृति अपनी रचित मुझपर तना'* का अर्थ तनिक और सुस्पष्ट करें।

समाधानः- भगवान् स्पष्टरूपसे अपने मुखसे अपने श्रीकृष्णावतारके सम्बन्धमें कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।

भगवान् अजन्मा हैं, अव्ययात्मा हैं, सर्वभूतोंके ईश्वर हैं,

किन्तु अपनी प्रकृति योगमायाशक्तिसे प्रकट होकर लीला करते हैं। वे अविनाशी ब्रह्मकी भी प्रतिष्ठा होकर भी मनुष्यके सदृश भूख लगनेपर रोते हैं, मचलते हैं, यशोदा मैया द्वारा छड़ी लेकर पीछा करनेपर भयभीत भाग चलते हैं और इस प्रकार सभी गोप-गोपियों एवं सम्पूर्ण ब्रजजगत्को आनन्दसिन्धुमें निमग्न कर देते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ऐश्वर्य, माधुर्यके अनन्तानन्त निधि हैं। किन्तु उनके भी दो रूप हैं – 'ऐश्वर' एवं 'ब्राह्म'। वे अपने ऐश्वररूपसे असुरोंका संहार, लोक-धर्मका संस्थापन, अभ्युत्थान, साधु-परित्राण, दुष्ट-दलन, गीतोपदेश आदि लीला-कार्य करते हैं; साथ ही अपने 'ब्राह्म' स्वरूपसे माधुर्यलीलाका विस्तार करते हैं। वे अपनी प्रकृतिका वितान तानकर ही जहाँ ऐश्वररूपसे पूतनामोक्ष, तृणावर्त्त-उद्धार, गोवर्धनपर्वत-धारण, ब्रह्मा-विमोहन, कालिय-दमन आदि चमत्कारपूर्ण आश्चर्यचकित कर देनेवाले शक्ति-प्रकाशक कार्य करते हैं, वहीं उनकी प्रकृति – योगमायाका वितान ही उनके रूप-गुण-सौन्दर्य-माधुर्यको नित्य नूतन रूपमें ऐसा प्रकट करता है कि निर्ग्रन्थ ऋषि-मुनियों, देवताओं, समस्त लक्ष्मियों – यहाँ तक कि भगवत्स्वरूपोंको भी आकर्षित कर लेता है। दूसरोंकी तो बात ही दूर रही, उनकी वह परम मधुर अनिर्वचनीय सुन्दरतारूपा आकर्षिणी शक्ति स्वयं उन्हींके चित्तको आकर्षित ही नहीं, प्रलुब्ध भी कर लेती है।

किसी मणिकी दीवालमें प्रतिबिम्बित अपनी रूपमाधुरीको देखकर श्रीकृष्ण आश्चर्यके साथ कहते हैं – 'अहो ! इस रूपमाधुरीका तो इससे पहले मैंने कभी अनुभव किया ही नहीं। मेरी यह माधुर्यराशि कितनी चमत्कारकारी है, कितनी महान् श्रेष्ठ है और कितनी मधुर है; इसे देखकर तो मेरा स्वयंका ही चित्त लुब्ध हो गया है। श्रीराधारानी इस रूप-माधुरीको देखती कभी

थकती ही नहीं, निर्निमेष नेत्रोंसे परम उत्सुकताके साथ नित्य-निरन्तर देखा ही करती हैं – इससे अनुमान होता है, वे ही इस रूप-माधुरीका पूरा रसास्वादन करती हैं।

वस्तुतः भगवान् श्रीकृष्णके माधुर्यका वर्णन करनेके लिये न तो वाणीदेवीके पास शब्द हैं, न ही शक्ति। इस माधुरीके चमत्कारको तो वही जानता है, जिसने कभी उसे देखा हो। किन्तु वह 'गूँगेके गुड़-स्वाद'की तरह उसे बता नहीं सकता। उसका हृदय ही उसके पास रहता नहीं, अतः वह बतलावे भी तो क्या बतलावे ।

कहनेका यही अर्थ है कि इस दृश्यमान अनन्त विश्व तथा इससे अतीत जो कुछ है या हो सकता है, उस सबके मूल, सबको अपनेमें निहित रखनेवाले तत्वका पता लगाकर हमारे ऋषियोंने जिसका नाम ब्रह्म कहा, उस ब्रह्मके स्वरूपमें उसका स्वभाव, प्रकृति जो निहित है, वह प्रकृति ही उसकी महान् शक्ति है। *''परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते''*(श्वेताश्वतर) उस महाशक्तिकी चादर जब वह तानता है तो वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म एवं महान्-से-महान् युगपत् एक साथ हो जाता है। *''अणोरणीयान् महतो महीयान्''*(कठ. १।२।२०) वह बैठा हुआ ही दूर चला जाता है और सोता हुआ भी सर्वत्र चला जाता है, वह चलता है और नहीं भी चलता, वह दूर-से-दूर है और पास-से-पास है। वह अजन्मा अविनाशीस्वरूप होकर भी जन्म लेता है, निरे शिशुसे बढ़कर बालक होता है, पालनासे उठकर गायें चराने जाता है, उसे भूख लगती है, वह रोता है, भयभीत होता है, अश्रु बहाता है, किसीकी गोदमें चढ़ता है, स्तन पीता है। वह योगी होकर भी महाभोगी हो जाता है, विभु होकर भी देह-परिच्छिन्न हो जाता है; निरपेक्ष होकर भी सापेक्ष हो जाता है, परम चतुर होकर भी महामुग्ध हो जाता है।

इसी तत्वको संकेतित करते हुए भगवान् कहते हैं कि साथ ही उस मेरी प्रकृतिके द्वारा ही विरचित एक सुमनोहर वितान मुझपर तान दिया गया था।

॥२१॥

शुकस्य स्वप्नश्रवणाभिलाषा ।

अचानक कीरमें किशोरीके उस स्वप्नको सुननेकी अभिलाषा जाग उठी ।

॥२२॥

प्रियतमं प्रति प्रार्थना ॥

कीर प्रियतम नीलसुन्दरसे इसके लिये अनुरोध कर बैठता है ।

॥२३॥

प्रियतमास्तवनं च ।

साथ ही वृषभानुनन्दिनीका स्तवन भी वह करने लगता है।

॥२४॥

प्रियतमायाः सारिकां प्रति स्वप्नवर्णनाज्ञाप्रदानम् ।

किशोरी सारिकाके प्रति सजल नेत्रोंसे निहारती हैं और उस स्वप्नको शुक पक्षीसे बता देनेकी आज्ञा प्रदान करती हैं ।

॥२५॥

सारिके ! तू जानती है, देखती थी मैं अभी,
जो, समझती है तथा प्राणेशका संकेत भी।
कीर उत्सुक है, सुना दे तू इसे बातें सभी;
पात्र है, इसके न मनसे हैं हटे प्रियतम कभी॥

सारिके री ! जो स्वप्नमें अभी देख रही थी, उसे तू सम्पूर्णतया जानती है। साथ ही मेरे प्राणरमण नीलसुन्दरका

सखी श्रीइन्दुलेखाजी

संकेत भी तू समझती है । मैं क्या देख रही थी, यह सुन लेनेके लिये कीर अत्यन्त उत्सुक हो रहा है। अतएव इसे तू सब बातें सुना दे । यह सुननेका अधिकारी है, क्योंकि इसके मनसे मेरे प्रियतम नीलसुन्दरकी स्मृति क्षणभरके लिये भी कभी विलुप्त नहीं होती । कभी भी मेरे प्रियतम इसके मनसे नहीं हटे ।

॥२६॥

चञ्चुसे छूकर चरण-नख-चन्द्र दम्पतिके चली
सारिका ध्यानस्थ हो कहने पवित्र कथावली।
लाल एवं लाड़िलीकी लाड़में है यह पली,
है नहीं दुर्गम कहीं इसके लिये रसकी गली॥

सारिका उल्लासमें डूब गयी । अपने चञ्चुसे नील-गौर-दम्पतिके चरण-नख-चन्द्रको छूकर ध्यानस्थ हो गयी वह । ध्यानमें डूबी रहकर ही उस पवित्र कथावलीका वर्णन करने चली सारिका। लाड़िली-लालके लाड़में ही यह अनादिकालसे पली है। अतएव रसमयी ब्रजकी विभिन्न वीथियाँ कहीं, किञ्चित् भी सारीके लिये दुर्गम नहीं हैं । अनायास ही वह सबसे सम्पूर्णतया परिचित है ।

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

जिज्ञासाः- कृपया **"है नहीं दुर्गम कहीं इसके लिये रसकी गली"** इस पदको भली प्रकारसे हृदयंगम कराइये।

समाधानः- सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य मधुर रसमयी लीलाओंका रहस्य सचमुच बहुत ही थोड़े लोगोंके द्वारा हृदयंगम हो पाता है। इन बहुत थोड़े लोगोंमें से कुछ-एक ही इस ब्रजरसकी गलियोंकी ओर अपने कदम बढ़ाते हैं। इन कदम बढ़ानेवालोंमें भी एकाध ही इस भूलभूलैयायुक्त गलियोंसे ब्रजके राजमार्गपर पहुँच पाता है। इसमें कितनी कठिनाइयाँ हैं, इसका थोड़ा-सा उल्लेख श्रीपोद्दार महाप्रभुके सत्संग एवं पू.गुरुदेव

श्रीराधाबाबाकी चरणधूलिकी कृपावश करनेका साहस कर रहा हूँ।

जिस प्रकार भगवान् चिन्मय हैं, उसी प्रकार उनकी लीलाएँ, लीलापात्र, लीलाधाम और लीलाकी सर्वोपरि नायिकाएँ — गोपियाँ भी चिन्मय हैं। सच्चिदानन्द-रसमय साम्राज्यके जिस परमोन्नत स्तरमें ये लीलाएँ हुआ करती हैं, उसकी ऐसी विलक्षणता है कि अनेकों बार तो ज्ञान-विज्ञान-स्वरूप विशुद्ध चेतन परब्रह्ममें भी उसका प्राकट्य नहीं होता। और इसीलिये ब्रह्मसाक्षात्कारको प्राप्त महात्मा लोग भी इस लीला-रसका समास्वादन नहीं कर पाते। इस लीलारसका समास्वादन तो भगवान्की स्वरूपभूता ह्लादिनीशक्ति नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीबृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी और तदङ्गभूता प्रेममयी गोपियोंमें ही होता है। और वे ही निरावरण होकर भगवान्की इस परम अन्तरङ्ग रसमयी लीलाओंका समास्वादन करती हैं। गोपियाँ क्या चाहती थीं, यह बात उनकी साधनासे सुस्पष्ट है। गोपियाँ ही तो इस ब्रजरसकी साधनाकी अटपटी पगडंडियों और गलियोंका अपने पथचिह्नोंसे निर्माण करती हैं। इन पगडंडियोंसे चलकर ही वे राधारानीके निवासमहलमें जो प्रेमकी पूर्णताको प्राप्त है, उनके सम्मुख पहुँचती हैं। श्रीराधारानीकी कृपासे ही उन्हें 'राजमार्ग' अर्थात् भगवान्की अपूर्व चमत्कारी रूप-माधुरीके दर्शन होते हैं, वंशी-ध्वनिका निनाद श्रवण-गोचर होता है और भगवान् श्रीकृष्णकी उनमें पूर्वराग उत्पन्न करानेवाली कुछ-एक लीलाओंका दर्शन होता है, जिससे मुग्ध होकर उनके प्राण इस मार्गमें अग्रसर होनेको हाहाकार करते दौड़ पड़ते हैं।

प्रियतमसे मिलनेको जिसके प्राण कर उठे हाहाकार।
गिना नहीं उसने पथकी दूरीको, भयको किसी प्रकार।।
विकल, चल पड़ी वह निर्भय हो, बीहड़ वनमें बिना विचार।
दुःख-कष्ट बन गये सभी पथके पाथेय, सुखद आहार।।

नहीं ताकती किसी ओर वह, नहीं किसीसे भी डरती।
नहीं प्रलोभनमें पड़ती वह, नहीं चाह कुछ भी करती।।
पद-पदपर, पल-पल प्रियतमकी प्रिय सुधिमें आहें भरती।
चली जारही अटल लक्ष्यपर, वह जगमें जीवित मरती।।
वस्तुमात्रसे मेरापन उठ गया, मिट गया जगका राग।
नहीं किसीसे द्वेष रह गया, जाग उठा मन विमल विराग।।
मिटी कामना विषयमात्रकी, रहा न असत् अहंका भाग।
ममता पूरी प्रभु-चरणोंमें, अपनापन, अनन्य अनुराग।।
तन-मन-भोग, स्वर्ग-अपुनर्भवकी सुधि सारी सहज विसार।
प्रिय-आकर्षणसे खिंच वह जा पहुँची प्रियतमके दरबार।।
प्रेम-सुधाकी मधु धारासे प्रियतमके पद-पद्म पखार।
वह गिर पड़ी अचेतन-सी हो चेतन-चरणोंमें अनिवार।।
उठे प्राणधन, उसे उठाया, प्रेमविकल भरकर अँकवार।
लगा लिया निज वक्षःस्थलसे, बही अश्रुओंकी शुचि धार।।
कोमल कर धर शीश, प्राणधन मधुर दृष्टिसे उसे निहार ।
अमिय-मधुर वाणीसे फिर वे करने लगे सरस सत्कार।।
दुर्लभ-दर्शन-स्पर्श प्राप्तकर, प्रियतमके सुन प्रेमालाप।
आनन्दोदधि उछला, उसमें उठी तरंगें अमित, अमाप।।
धन्य हुई वह, मिटा सदाके लिये सकल, विरहानल-ताप।
रखा उसे निज हृदय-देशके मधु-मन्दिरमें प्रभुने आप।।

इस साधनामें प्रवेशके लिये प्रथम पगडण्डी है, भगवान् श्रीकृष्णके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण। यह आत्मसमर्पणरूपा पगडण्डी ही आगे जाकर एक गलीमें पर्यवसित हो जाती है, जिस गलीमें घुसनेका अर्थ है श्रीकृष्णको अपना प्राणवल्लभ प्रियतम मानकर उनके साथ इस प्रकार घुल-मिल जाना कि अपना रोम-रोम, मन-प्राण, सम्पूर्ण आत्मा केवल कृष्णमय हो जाय।

इस गलीमें अनेक भूल-भुलैया हैं। जैसे भगवान् श्रीकृष्णको तो असंख्य गोपियाँ अपना आत्मसमर्पण करती हैं। उनमें परस्पर सापत्न्य, ईर्ष्या-डाह, द्वेष होना, जो परम स्वाभाविक है, इसका

सर्वथा अभाव। साधकमें सापत्न्य ईर्ष्या तभी होती है, जब उसमें स्वसुखभोग-जनित 'काम' रहता है। इस ब्रजरसकी साधनामें मात्र श्रीकृष्णसुख ही एकमात्र लक्ष्य होता है और स्वसुख(काम)के लेशमात्र भी रहनेपर साधक भूल-भुलैयामें भटक जाता है। दूसरी भूल-भुलैया या भटकाव है – लोकलाजका भय, गाँव एवं जातिवालोंका भय। जब साधक लोकलाज एवं कुल-कानकी भूल-भुलैयासे मुक्त हो जाता है, तभी उसे आगेका पथ प्राप्त होता है। एक वाक्यमें साधकको अपना कुल, परिवार, लोक-धर्म, वेद-धर्म, संकोच और व्यक्तित्व – सब-कुछ भगवानके चरणोंमें समर्पित करना होता है। उसके पश्चात् सबसे बड़ी भूल-भुलैया इस मार्गमें आती है–निरावरित होकर भगवान्‌के सम्मुख चले जाना। भगवान्‌को अपना सम्पूर्ण अभिमान, मनके सभी संस्कार समर्पित कर देना ही अनावरित होना है।

साधक अपनी शक्तिसे, अपने बल और संकल्पसे, अपने अहंकारके निश्चयसे पूर्ण समर्पण नहीं कर पाता। समर्पण भी एक क्रिया है और उसका कर्त्ता असमर्पित रह ही जाता है। ऐसी स्थितिमें अन्तरात्माका पूर्ण समर्पण तब होता है, जब भगवान् स्वयं आकर संकल्प करनेवालेको भी स्वीकार कर लेते हैं। यहीं जाकर समर्पण पूर्ण होता है।

श्रीराधारानी सारिकाके सम्बन्धमें इन्हीं सब महत्त्वपूर्ण बातोंका उल्लेख अत्यन्त संक्षेपमें मात्र चौपदेकी एक पंक्तिमें ही कर दे रही हैं –" रसमयी ब्रजकी विभिन्न वीथियाँ सारीके लिये किञ्चित् भी दुर्गम नहीं हैं"– इसका अर्थ सामान्यतया यही है कि इस सारीने लोक-परलोक, स्वार्थ-परमार्थ, जाति-कुल, पुरजन-परिजन, सर्वस्वका त्यागकर मात्र श्रीकृष्णकी इच्छासे उनके सुखके लिये सारिकाका शरीर ग्रहणकर अपना सर्वस्व उनपर न्यौछावर कर रखा है।

इसको 'सारी' शरीरकी प्रतीति भी मात्र चिद्विलासके लिये है। प्रिया-प्रियतम राधा-माधवकी लीलासिद्धिके ही लिये यह 'सारी' है। और तो क्या, इस महाभागा पक्षी बनी साधिकामें जडजगत्के तो लेशात्मक संस्कार हैं ही नहीं, यह ज्ञानरूप या विज्ञानरूप जगत्का भी सर्वथा सर्वांशमें अतिक्रमण करके इस प्रेमराज्यमें अपने पैर रख चुकी है। यह तो चिन्मय तत्वको सर्वथा विस्मृतकर परम उज्ज्वल प्रेमरसमें डूबी है। इसीलिये इसके लिये अब रसमार्गकी कोई गली दुर्गम नहीं है। यही इस जिज्ञासाका समाधान है।

सारिका वदति

॥२७॥

कीर हे ! सुनकर चरित,आनन्द-वारिधिमें बहो,
कृष्णमें, तुममें नहीं है भेद रंचक भी अहो।।
छाँह पड़नेसे गया है अङ्ग यह हरिताभ हो
श्री-चरणकी, और मेरे स्नेहवश खगरूप हो।।

अस्तु, स्फुट स्वरमें सारिका कह उठती है —अहो कीर ! वह पवित्र चरित्र सुनकर आनन्द-सिन्धुमें बस, बह चलो । अहा ! देखो, नीलसुन्दरमें और तुममें रंचक मात्र भी भेद नहीं है । बस, इतना-सा ही अन्तर है कि श्रीचरणोंका तुम्हारे गात्रपर प्रतिबिम्ब पड़नेके कारण तुम्हारा यह अंग हरिताभ हो गया है और मेरे स्नेहके वशीभूत होकर तुमने विहंगमका रूप धारण कर लिया।

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

जिज्ञासाः- कृपया *"कृष्णमें, तुममें नहीं है भेद रञ्चक भी अहो!"* इस पदपर प्रकाश डालिये। जो श्रीकृष्ण भगवान् अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त बल, अनन्त यश, अनन्त श्री, अनन्त ज्ञान एवं अनन्त वैराग्यकी जीवन्त मूर्त्ति हैं, जो स्वयं अपने मुखसे अपनेको 'ब्रह्म'की

भी प्रतिष्ठा कहते हैं, जिनमें भूत, भविष्य एवं वर्त्तमानके सभी अवतारोंका समावेश है, जो गोलोकविहारी महेश्वर हैं, उन्हें एक ब्रजलीलाके साधारण पक्षी – शुकसे रञ्चक भी भेदशून्य बताना गले नहीं उतरता। शिव-ब्रह्मादिक सर्वदेव-वन्दनीय सर्वप्रभुको एक शुकपक्षीके समान कहना कैसे उचित है ? भगवान्‌की श्रीमद्भगवद्गीतोक्त वाणी ध्यानमें रखें–" ये समस्त भूत मुझमें हैं, मैं इनमें नहीं हूँ। ये भूत मुझमें नहीं हैं, मेरे योगैश्वर्यको तुम देखो।"

समाधानः- कृपया श्रीमद्भागवतके इस श्लोकपदका अनुशीलन करें – ***"रेमे रमेशो ब्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्ब विभ्रमः"*** अर्थात् "जिस प्रकार बालक अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, उसी प्रकार श्रीहरि गोपियोंके साथ रमण करते हैं।" यहाँ जड़ राज्यमें तो बिम्ब सत्य है एवं प्रतिबिम्ब मात्र छाया, किन्तु भगवान्‌का बिम्ब एवं प्रतिबिम्ब दोनों पूर्ण भगवान् ही हैं।

भगवान्‌का यह ब्रजराज्य इसीलिये मायामुग्ध दृष्टिसे समझमें नहीं आता। जैसे यह हमारा जड़, मृत्यलोक भगवान्‌की अविद्यामयी मायाशक्तिसे निर्मित हुआ है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका अप्राकृत ब्रजलीलाराज्य भगवान्‌की सर्वप्रधान, परम अन्तरंगा ह्लादिनीशक्तिके निमित्तसे उत्पन्न हुआ है। इस ब्रजकी दिव्य लीलामें श्रीराधा एवं गोपियाँ न तो मानवी नारी हैं न ही वहाँकी गौएँ, वहाँके शुक, पिक, मयूर एवं कदम्ब, आम्र, नीपादि वृक्ष साधारण जड़ जगत्‌के मायामय पशु-पक्षी, एवं वृक्षादि हैं। वस्तुतः शक्ति एवं शक्तिमान्‌में भेद वहीं प्रतीत होता है जहाँ अविद्यामय जड़ जगत् हो। इस जड़ जगत्‌को लक्ष्य करके ही भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्‌में यह कहा है कि "ये समस्त भूत मुझमें हैं किन्तु मैं इनमें नहीं हूँ।" वस्तुतः अविद्या मात्र मृगमरीचिकावत्

प्रातीतिक है, वह असत् है और असत् कुछ होता नहीं है। ''*नासते विद्यते भावो*'' का अर्थ यही है।

किन्तु भगवान्‌की ह्लादिनीशक्ति जो उनकी सर्वप्रधान शक्ति है, वह असत्, अविद्यामयी नहीं है। वह तो भगवान्‌की आत्ममाया है। भगवान् श्रीकृष्ण रसराजरूपमें ब्रजमें इसी ह्लादिनीशक्तिके निमित्तसे ही प्रकट होते हैं। इन ह्लादिनीशक्ति श्रीराधा और शक्तिमान् ह्लादात्मा भगवान श्रीकृष्णमें स्वरूपतः कहीं कोई भेद नहीं है। दिव्य ब्रजलीलामें स्वयं भगवान् ही अपने सौन्दर्य और माधुर्यका पूर्ण रसास्वादन करनेके लिये अपनी ह्लादिनीशक्तिसे महाभावस्वरूपिणी राधाके रूपमें प्रकट होते हैं और इन्हीं ह्लादिनीशक्तिसे विभिन्न लीलाओंके लिये असंख्य भागवती शक्तियोंका प्रकाश होता है, जो रसराज श्रीकृष्ण और महाभावरूपा श्रीराधाकी प्रेमलीलाको सम्पन्न करनेके लिये वृन्दावन-धाम, यमुना नदी, गिरिराज पर्वत, अनन्त परम सुन्दर वन, सरोवर, लता, वृक्ष, शुक, पिक मयूरादि अनेकानेक पक्षी, अनन्त गोपियाँ आदि लीलापात्रोंके प्राकट्यमें हेतु होती हैं। इन सभी लीलापात्रोंके जन्म-कर्म प्राकृत नहीं हैं, अप्राकृत चिन्मय हैं। भगवान्‌की लीलाशक्ति – योगमायामें और भगवान्‌में कहीं कोई भेद कदापि नहीं है।

ये सभी लीलापात्र भगवान्‌की अत्यन्त गोपनीय प्रेम-मिलनलीलाके सहयोगी हैं। इन राधाकृष्ण-गतप्राण राधाकृष्ण-भाव-मति शुक-सारिकादिके परम निर्मल योगीन्द्रदुर्लभ मन-बुद्धिमें प्रिया-प्रियतम राधामाधवके आनन्दके अतिरिक्त अपना कुछ होता ही नहीं। प्रातःकाल निद्रा टूटनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक वे जो कुछ करते हैं, सब अपने प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके लिये ही करते हैं। यहाँ तक कि उनकी निद्रा भी प्रिया-प्रियतमके

प्रगाढ़ स्मरणमें, अन्य सब विषयोंकी पूर्ण विस्मृतिरूपा ही होती है। स्वप्न एवं जागरण दोनोंमें ही वे प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी परमातिपरम मधुर लीलाके साक्षी, उसके द्रष्टा रहते हैं। इनका तन भी भगवान्‌की परम चिन्मयी सन्धिनी शक्तिका ही कार्य होता है, जो भगवान्‌की रुचिसे उनकी लीलाके अनुरूप पात्रके रूपमें प्रकट होता है।

कहनेका यही तात्पर्य है कि इन सभी पक्षीगणोंके भगवान् श्रीराधा-माधवके कायव्यूहस्वरूप होनेके नाते ही यहाँ सारिकाने शुकका भगवान् श्रीकृष्णसे अभेद बतलाया है।

जिज्ञासा :- ***"अंग यह हरिताभ हो"***- इस अर्धालीका क्या तात्पर्य है, कृपया प्रकाश डालें।

समाधानः- भगवान् श्रीकृष्णका वर्ण नवघनमेघकी तरह श्यामवर्ण-प्रधान है एवं श्रीराधारानी कनकप्रभावर्णकी हैं। श्याम एवं पीत जहाँ दोनों वर्णोंकी एक साथ छाया पड़ती है, निश्चय ही उसका वर्ण हरित् हो ही जाता है। श्रीशुकपक्षी हरितवर्णका होता है, इसलिये सारिका उसकी स्तुतिमें उत्प्रेक्षायुक्त वचन कहती है कि तुमपर प्रिया श्रीराधाके पीतवर्ण और प्रियतम श्रीकृष्णके श्यामवर्ण— इन दोनों वर्णोंकी छाया पड़नेसे ही तुम्हारा वर्ण हरित हो गया है।

॥२८॥

जानते हो बात सब, फिर भी बने अनजान हो;
ठीक है, जिस भाँति हो सुखलाभ, वैसे ही रहो॥
चाहते हो पर, तथा रसरीतिके मर्मज्ञ हो;
तो सुनो अब तुम, रहा था स्वप्नमें जो भान हो॥

तुम सब बातें जानते ही हो। परंतु जानकर भी अनजान बने हुए हो । बड़ी अच्छी बात है, जिस प्रकार तुम्हें सुखकी उपलब्धि हो, वैसे ही बने रहो ! किंतु तुमने अभी-अभी अभिलाषा व्यक्त की है तथा रसकी विभिन्न गतियोंके तुम पूर्ण मर्मज्ञ हो,

इसलिये तुम अवश्य सुनो कि किशोरी स्वप्नमें अभी क्या अनुभव कर रही थी।

॥२९॥

स्वामिनी श्रीने किया अनुभव, सँवारे केश हैं
प्राणबल्लभने हमारे, और अब गम्भीर हैं।।
किंतु सहसा उठ पड़े, अत्यन्त विह्वल अङ्ग हैं;
हैं रहे कह यह, दृगोंसे झर रहे कण नीर हैं।।

हमारी स्वामिनी श्रीराधाने अनुभव किया – प्राणवल्लभ नीलसुन्दरने मेरी अलकोंको सँवारा है और अब अचानक गंभीर हो गये हैं । पर यह देखो, कुछ ही क्षण बीतते-न-बीतते सहसा वे अपने आसनसे उठ पड़े हैं। उनके नील अंगोंमें आत्यन्तिक विह्वलताकी लहरें उठ रही हैं । वे सुमधुर वाणीमें कहते जा रहे हैं और उनके दृगोंसे अश्रुबिन्दु झर रहे हैं ।

॥३०॥

भानुपुरमें, प्रियतमे ! देखो सही तो, आज है।
वार्षिक शुभजन्म-उत्सव, दृश्य क्या ही रम्य है।।
वर्ष भारतकी धराका भाग्य भी अप्रतिम है,
श्रीचरणको पपनियोंसे छू, हुई जो धन्य है।।

प्रियतमे ! राधे !! देखो सही ! आज वृषभानुपुरमें तुम्हारा वार्षिक शुभ जन्मोत्सव हो रहा है । अहा ! क्या ही रम्य मनोहर दृश्य है ! भारतवर्षकी धराका भाग्य भी अप्रतिम ही है । अरे ! कितना कैसा सौभाग्य है इस धरणीका, जिसने श्रीचरणोंको अपनी पपनियोंसे छू लिया, छूकर धन्य-धन्य हो गयी है ।

॥३१॥

आज ही ब्रजजन हुए थे मुग्ध तुमको देखकर,
भानुनृप ऐसे हुए थे श्री-सुयश-सौभाग्य-धर।।

जो न अबतक हो सका दानव ,मनुज, कोई अमर,
हेतु पुत्रीके सके जिसकी ध्वजा ऐसी फहर।।

मेरे प्राणोंकी रानी ! आज ही ब्रजवासी तुम्हारा प्रत्यक्ष दर्शनकर मुग्ध हो गये थे । और तुम्हारे पिता वृषभानु महाराजकी शोभाका, सुयशका, सौभाग्यका, जिससे वे विभूषित हो रहे थे, सबके मनपर, आँखोंपर कैसा प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, उनकी जिस सम्पदाका, निर्मल सुयशका, अप्रतिम सौभाग्योदयका जो – जैसा चित्र अंकित हो रहा था, उसके लिये प्राणेश्वरि ! शब्द नहीं हैं, जिसका आश्रय लेकर मैं तुम्हें बतला सकूँ । इतना ही कह सकता हूँ – उनका वह सौभाग्य, वैभव, उनके यशकी वह अप्रतिम गरिमा, उनकी अंगशोभाका ऐसा अद्भुत चमत्कार – ये सब ऐसे व्यक्त हो रहे थे, जिसकी तुलना कहीं भी नहीं हो सकती, आजतक नहीं हो सकी है; आगे होगी भी नहीं । कोई भी दानव, मानव अथवा अमरेन्द्र ऐसा नहीं हो सका जिसकी उत्तुङ्ग आकाशमें इस प्रकार, ऐसी ध्वजा फहरा उठे, पुत्रीके जन्मको हेतु बनाकर ।

।।३२।।

आज था फल अंशुमालीको मिला तपका अमल,
आज थे ब्रजचन्द्रमाके भी खिले लोचन-कमल।
आज मैयाकी पुनः आँखें रही थी हो सजल,
पुत्र-परिणयका मनोरथ देखकर होता सफल।।

प्राणेश्वरि ! देखो अंशुमालीको उनके तपका निर्मल फल भी आज ही मिला था। आज ही ब्रज-चन्द्रमाके नेत्र-सरोज खिल उठे थे। आज पुनः मेरी मैया यशोदारानीकी आँखें सजल हो रही थीं । क्यों न हो, मैया सुस्पष्ट अनुभव जो कर रही थी कि उसके नीलम लालका परम मंगल परिणय-उत्सव मानो अभी-अभी सम्पन्न होने जा रहा है, चिरकालसे अभिलषित उसका

मनोरथ बस, पूर्ण होने जा रहा है ।

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

जिज्ञासा- कृपया इस चौपदेकी प्रथम पंक्ति **'आज था फल अंशुमालीको मिला तपका अमल'** का अर्थ सुस्पष्ट करें।

समाधान- पुराणोंमें कथन है कि सूर्यदेवने घोर तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे एक कन्यारत्नकी याचना की थी जो श्रीकृष्णकी प्राणोपम प्रिया हो। भगवान्ने सूर्यदेवकी तपस्यासे संतुष्ट हो, उन्हें 'तथाऽस्तु' कहा था। अतएव श्रीराधाके गर्भाधानके समय सूर्यका बृषभानुमें आवेश होगया था। अतः राधाका जब जन्म हुआ तो सूर्यदेव (अंशुमाली) को उनके तपका निर्मल फल मिल गया – यही भाव है।

॥३३॥

बेला थी मध्याह, बीती-सी, बस, उस समय,
था न हुआ अपराह, किंतु अभी ब्रजभूमिपर ॥

हृदयेश्वरि ! उस समय मध्यान्हकी बेला बस, बीती ही थी। अभी ब्रजके देशमें अपरान्ह भी नहीं हुआ था ।

॥३४॥

इतनेमें आ पाँव, जन्मवृत्त ले, दूतने,
रखे हमारे गाँव, मानो उसके पंख थे ॥

इतनेमें ही जन्मका समाचार लिये एक बड़भागी दूतने हमारे गाँवमें अपने मंगलमय पैर रखे। इतनी शीघ्रतासे वह दूत आया था कि मानो उसके अंगोंमें पंख लगे थे । बड़ी त्वरा थी दूतमें ।

॥३५॥

मङ्गलमय सन्देश दे बाबाको, चल पड़ा।
अनुमति ले, गोपेश-आँगनमें वह था खड़ा ॥

उस मंगलमय संदेशको जैसे-तैसे सबसे पहले उसने मेरे बाबाको दिया । इसके पश्चात् शीघ्रतासे उसने बाबाकी अनुमति ली और वेगसे चल पड़ा । देखते-न-देखते वह व्रजराज नन्दके आँगनमें खड़ा हो गया ।

॥३६॥

कर अञ्चलकी आड़ मैया थी मुझको लिये,
मुदित लड़ाती लाड़, अमृत-कुम्भ मुखमें दिये ॥

उस समय मैया अपने आँचलमें मुझको छिपाये बैठी थी, रोम-रोम उसका आनन्दमें डूबा हुआ था । मुझसे लाड़ लड़ा रही थी वह और अपने वक्षःस्थलका अमृतकुंभ मेरे मुखमें दिये हुए थी।

॥३७॥

'सदन बृहद् वह वन्य,' चर बोला,' सुख से बसे,'।
हुआ राजकुल धन्य अद्भुत कन्या-रत्नसे ॥

अचानक दूतने आँगनकी नीरवताको चंचल बनाकर यह कहा – 'जय हो ! वनस्थलका यह आवास अनन्त कालतक सुखसे बसा रहे । व्रजरानी ! सुनो, वृषभानुपुरका राजकुल अद्भुत कन्यारत्नसे विभूषित होकर धन्यातिधन्य हो गया ।'

॥३८॥

रुद्ध वाणी हो गयी सन्देशवाहककी, तथा
कुछ न आगे कह सका वृषभानु-पुत्रीकी कथा।
और मैयाका उधर, सुनकर इसे, क्या हाल था-
था सका वह जान, उसके प्राणका जो अंश था॥

प्राणेश्वरि ! मात्र इतना ही दूत कह सका । ओह ! उसकी वाणी रुद्ध हो गयी और आगे वह कुछ भी नहीं बतला सका कि वृषभानुपुत्री कब, कैसे आविर्भूत हुई । तथा उस ओर इन शब्दोंको सुनकर मेरी मैयाका क्या हाल हुआ, इसे कौन

बतावे ? मेरे प्राणोंकी देवी ! देखो ! मैयाका प्राण तो मैं हूँ । उसी प्राणके अंश हैं बलराम दादा । एक बलराम दादा ही जान सके थे कि उस समय मैयाकी क्या दशा हुई थी ।

॥३९॥

दूतके सन्मुख गलेका हार-हीरक फेंककर,
दृष्टि मानस डालकर रानी-प्रसूतिनिवासपर,
ले मुझे वह अंकमें निकली अकेली छोड़ घर,
एक पलभर भी नहीं अब थी कहीं सकती ठहर।।

उन्मादिनी-सी हुई मेरी मैयाने अपने गलेका हीरकहार निकालकर दूतके सामने फेंक दिया । यन्त्रकी भाँति उसकी आँखें नाच रही थीं। वह प्रत्यक्ष देख रही थी कि कहाँ, कैसे, कीर्तिदा महारानी अपने प्रसूति-गृहमें विराजित हो रही है । बाहरके व्यक्तियोंको इतना ही भान हो रहा था कि मैया मानसी दृष्टिसे कुछ देख रही है ।

अस्तु क्षण बीतते-न-बीतते मैया मुझे अपने अंकमें लेकर बाहरकी ओर निकल चली। एकाकिनी चली जा रही थी वह अपना घर छोड़कर । एक पल भी अब वह कहीं किञ्चित् मात्र भी ठहर ही नहीं सकती थी ।

॥४०॥

रोहिणी मैया, शपथ देकर, 'तनिक रुक जाइये,'
दौडती आयी वसन-भूषन उसे पहना दिये।
आ गया सेवक शकट ले, वह बिना घूँघट किये
जा चढ़ी ऐसे कि मानो भाँग-मद हों पी लिये।।

रोहिणी मैया भीतर आँगनमें किसी कार्यमें व्यस्त थीं । इस प्रकार मेरी मैयाको भागती देखकर यन्त्रवत् वह भी दौड़ पड़ी और मेरी मैयाको शपथ देकर बोली– "नन्दरानी ! तनिक रुक जाइये।"रोहिणी मैयाके हाथोंमें जो वस्त्र, जो आभूषण आये, उन्हें

लेकर पहुँची वह मेरी मैयाके पास । उन वस्त्रोंको, भूषणोंको उसने मेरी मैयाको जैसे-तैसे धारण करा दिया । इतनेमें ही सेवक शकट लेकर आ पहुँचा । मैया सेवकके आगे भी घूँघट कर लेती थी। पर आज बिना घूँघट किये शकटपर इस प्रकार जा चढ़ी कि मानो वह भाँग पीये हो, मदिरा पान कर बैठी हो !

।।४१।।

जा रहा था वृषभरथ वह वेगसे यद्यपि भगा,
किंतु मैयाका मसृणमन शीघ्रतामें था पगा।
यानकी गति मन्द है, दी भावना उसने जगा,
और उसके चित्तमें संकल्प यह उठने लगा।।

बैलोंकी जोड़ीसे आकर्षित हुई वह गाड़ी यद्यपि बड़े वेगसे भागी चली जा रही थी, किन्तु मैयाका मसृण मन आत्यन्तिक शीघ्रतामें सराबोर जो हो चुका था। मैया अनुभव करने लगी कि यान अतिशय मन्द गतिसे अग्रसर हो रहा है तथा ऐसी भावना होते ही उसके चित्तमें यह संकल्प उठने लगा –

(४२)

हों यहाँ साक्षी लिये सुत रोहिणी महिमामयी,
हूँ सती यदि मैं, उड़े रथ, बात यह देखूँ नयी।
बैल सचमुच उड़ चले, हो गन्धवाहकके जयी
थे नहीं बाबा पहुँच पाये, पहुँच मैया गयी।।

'अहो ! ठीक तो है। महिमामयी रोहिणी अपने पुत्रको अंकमें धारण किये साक्षी बन जायँ, और यदि मैं सचमुच सती नारी हूँ, तो यह नयी बात आज देख ही लूँ कि यह रथ आकाशमें उड़ चले।' मैयाका यह सोचना पूरा होते-न-होते सचमुच बैल आकाशमें उड़ चले। वायुके समान उनकी गति हो गयी। नहीं, नहीं ! वायुसे भी अत्यधिक वेग लेकर वे गतिशील हो रहे थे और वह देखो, बाबा अभी पहुँचे भी नहीं थे, पर मैया तो पहुँच ही गयी।

॥४३॥

भीड़ ऐसी थी वहाँ नरनारियोंकी द्वारपर,
जो चले कर जोड़कर भीतर लगे आधा पहर
था नहीं किञ्चित् किसीको भी किसीसे आज डर,
किंतु सबने दे दिया पथ अंकका शिशु देखकर ॥

वहाँ द्वारपर नर-नारियोंकी ऐसी भीड़ थी कि यदि कोई हाथ जोड़कर पथ देनेके लिये प्रार्थना करता हुआ – मनुहार करती हुई आगे बढ़े तो वह कहीं आधे पहरमें अन्तःपुरमें पहुँच पाता, पहुँच पाती। क्यों न हो, आज किसीको भी, किसीसे किञ्चित् मात्र भी भय नहीं रह गया था । किन्तु सबने मैयाको तो आगे जानेका मार्ग दे ही दिया। मैयाके अंकमें एक नीला शिशु जो विराजित था। सबकी आँखें बरबस उस नील शिशुपर चली ही जाती थीं और सभी परम उल्लसित होकर मैयाको पथदान कर ही दे रहे थे ।

॥४४॥

तीर-सी पहुँची महारानी, जहाँ थी तुम, तथा
देखने ऐसे लगी मानो नहीं यह सत्य था ।
हर्षनिर्मित जालमें फँसकर लगी पाने व्यथा,
मानकर ऐसे कि यह तो स्वप्नगत आनन्द था ॥

अस्तु, मेरे प्राणोंकी रानी ! मैया तारकी भाँति वहाँ जा पहुँची, जहाँ कीर्तिदा महारानी और तुम विराजित थीं तथा इस प्रकार देखने लग गयी मानों वह जो कुछ भी देख रही है, वह सत्य घटना नहीं थी। हर्षका इतना घना जाल मैयाको आवृत्त किये हुए था, आनन्दसे उद्भूत इतना घना आवरण मैयापर आ चुका था कि वह उसमें उलझकर एक व्यथा-सी अनुभव करने लग गयी थी – ऐसा मानकर कि यह तो मैं अभी स्वप्न देख रही थी, जो भी यह आनन्द मूर्त हो रहा है, वह तो वस्तुतः स्वप्नका

आनन्द है ।

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

उपरोक्त पंक्तियोंमें विशुद्ध सात्त्विक हर्ष-विकारका वर्णन है। अचानक ही प्रसन्नताकी अप्रत्याशित चरम उपलब्धिपर यह विकार उत्पन्न होता है, इसमें मनुष्य घटित सत्यको सम्मुख प्रत्यक्ष देखकर भी ऐसा समझने लगता है कि यह सत्य नहीं है, स्वप्न देखा जा रहा है। उसमें उस दृश्यके कुछ ही कालमें विलुप्त होजानेकी भी आशंका इतनी प्रबल हो उठती है कि हर्षित होनेके स्थानपर वह व्यथित हो जाता है। उसे हर्षके स्थानपर विपरीत भाव – विषाद घेर लेता है, और वह व्यथा अनुभव करने लगता है। उसे जो भी घटित हो रहा है, वह स्वप्नवत् क्षणभंगुर दिखने लगता है और जैसे क्षणभरमें ही छिन जाने वाली सम्पदाको पाकर मनुष्य व्याकुल होता है, वैसी ही व्याकुलता उसमें व्यक्त होने लगती है। यहाँ मैया यशोदाकी इसी भावप्रवणताका वर्णन है।

॥४५॥

हँस पड़ीं रानी दशा उसकी भ्रमित अनुमानकर,
तब हुआ जाकर कहीं कुछ चेत, अंग उठे सिहर ।
और अद्भुत एक चिन्मय कल्पवल्ली भूमिपर
देख उद्घाटित हुए वे द्वार विद्यामय दहर ॥

मैयाको इस प्रकार भ्रमित होते देख, कीर्तिदा महारानी उसकी दशाका अनुमान लगाकर हँस पड़ी । उनके हँस देनेपर ही मैयाको यत्किञ्चित् चेत हुआ । फिर तो उसके सागे अंग सिहर उठे, क्योंकि उसकी दृष्टि भूमिपर विराजित तुमपर जो केन्द्रित हो गयी थी। बड़ी निराली शोभा थी तुम्हारी उस समय हृदयेश्वरि ! मानो एक चिन्मयी अद्भुत कल्पवल्लरी भूमिपर पड़ी

सखी श्रीचम्पकलताजी

हो ! सचमुच प्राणवल्लभे ! तुमपर दृष्टि पड़ते ही मेरी मैयाके दहर विद्यामय द्वार उद्घाटित हो उठे थे – सम्पूर्ण तत्व निरावरण होकर उसके सम्मुख जो आ गया था ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

यह नियम ही है कि सगुण साकार भगवान्‌का जैसे ही जीवको दर्शन होता है, उसकी बुद्धिपर आवरणरूपमें पड़ा तमोमय अज्ञानका परदा तत्क्षण ही विनष्ट हो जाता है। उसी समय उसे सच्चिदानन्दमय सत्य अपरोक्ष अवगत हो उठता है।

यशोदाजीको अपने पुत्र-प्रसवके समय भी ऐसी ही अनुभूति हुई थी। उस समय भी समस्त सूतिकागार एक चिन्मय तेजसे आलोकित हो उठा था। वहाँका अणु-अणु मानो चिन्मयतामें निमग्न होगया था। "ब्रजमहिषीको प्रसव-वेदनाजन्य मूर्च्छा हो उठी है – रोहिणी एवं अन्य परिचारिकाएँ तन्द्रा एवं निद्रामें अभिभूत हो उठी हैं " बाहरसे तो सभीने यही जाना किन्तु सभीकी आन्तरिक अनुभूति यही थी कि उस दिव्य चिन्मय तेजके स्पर्शसे सभीको चिन्मय भाव-समाधि लग गयी थी। इसके पश्चात् जितने भी गोप-गोपियों एवं परिजनोंने यशोदाके क्रोड़से संलग्न उस शिशुके दर्शन किये, बस, शिशुकी एक झलक नेत्रमें आते ही उस क्षणकी शोभाके अनुभवको वे वाणीसे अभिव्यक्त करनेकी शक्ति खो बैठे। रोहिणी मैयाकी आँखें भी अचिन्त्य लीला-महाशक्तिकी प्रेरणासे जैसे ही खुलती हैं, वे भी यह देखकर चकित हो उठती हैं कि यशोदा द्वारा प्रसूत बालक इतना निराला है कि उसे देखनेपर अन्य सभी समयोचित कर्त्तव्य आत्यन्तिक विस्मृतिके गर्त्तमें चले जाते हैं। उस सद्योजात बालकका क्रन्दन भी ऐसा सदानन्दरूप था कि उसे सुननेवाला भी ज्यों-का-त्यों जहाँ-का-तहाँ जड़िमाभावग्रस्त

खड़ा हो जाता है; आनन्दातिरेकसे सभीके शरीर अवश, न हिल पाते हैं, ऐसे स्तंभित, जैसे-के-तैसे खड़े रह जाते हैं। सब आनन्दमें बेसुध रहते हैं, उनमें बोलनेकी शक्ति भी नहीं बचती। बस, सभीके अन्तर्हृदयमें आनन्द-स्रोत तरंगायमान होता रहता है।

यहाँ इन पंक्तियोंमें भी श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधाको उसके जन्मका वर्णन सुनाते समय यशोदा मैयाकी उसकी सद्योजात शिशु-अवस्थाके दर्शनकर हुई दशाका वर्णन करते समय यही रहस्य उजागर कर रहे हैं। श्रीराधा अन्य तो कुछ हैं नहीं, वे ह्लादिनी उपाधिपूर्ण स्वात्मा ही तो हैं, अतः उनके दर्शनसे मैयाके दहर विद्यामय द्वार तो उद्घाटित होने ही थे।

जिज्ञासाः- यहाँ कीर्त्तिनन्दिनी श्रीराधाकिशोरीको एक अद्भुत चिन्मय कल्पवल्ली कहा गया है। जिसे देखकर यशोदामैयाके दहर विद्यामय द्वार उद्घाटित हो उठते हैं। अद्भुत कल्पवल्ली कहनेका क्या अभिप्राय है ?

समाधानः- कल्पवृक्ष स्वर्गके उस वृक्षका नाम है, जिसकी छायामें कोई भी व्यक्ति कुछ भी कामना करता है, यह वृक्ष उस काम्य पदार्थकी तत्क्षण ही पूर्त्ति कर देता है। इसी वृक्षपर स्वर्णिम आभावाली जो लतायें लिपटी रहती हैं, उनका नाम भी कल्पलतायें किंवा कल्पवल्ली है। इनमें भी मनोरथ पूर्ण करनेकी वही अद्भुत सामर्थ्य होती है, जैसी कल्पवृक्षोंमें होती है। इन लताओंमें अतिशय सुन्दर कल्पप्रसून खिले रहते हैं। यहाँ श्रीराधारानीके पीताभ स्वर्ण जैसे सुन्दर वर्ण, उनकी अपूर्व सुन्दरता एवं साथ ही उनके दर्शन मात्रसे निस्साधन ब्रह्मज्ञान, परमोच्च सत्यके दर्शन और आह्लाद-वैभवका जो विलक्षण दान सभीको हेतुरहित रूपसे हो रहा है, इसलिये उन्हें 'कल्पवल्ली' कहा गया है।

जिज्ञासाः- कृपया 'दहर' शब्दका अर्थ बतलावें ।

समाधानः- 'दहर' शब्द वेदान्तका एक औपनिषद् वैदिक शब्द है। मनुष्यको जैसे अपनेसे बाहर शून्यमें आकाशके अनेक स्तर दिखते हैं, जैसे पृथ्वीमण्डलके ऊपरी सतहतक वायु है, उसके पश्चात् वायुशून्य वातावरण है; उसी प्रकार जैसे सभी नक्षत्रोंके ऊपर उनके भिन्न-भिन्न गुणधर्मयुक्त आवरण हैं; वैसे ही मनुष्यके भीतर भी अनेक स्तर है। जैसे मनस्तर हैं, उसके पश्चात् बुद्धिका स्तर आता है, बुद्धिके स्तरके पश्चात् चित्ताकाश, अहंकाराकाश, इस प्रकार भीतरी तहोंपर पहुँचनेपर मनुष्यको दहराकाशका अनुभव होता है। यहाँ जीवका अज्ञान एवं मायाका आवरण समाप्त हो जाता है। वह देहाध्यासरूप अविद्यासे मुक्त होकर विद्याकाशके नीचे पहुँच जाता है। इस दहराकाशमें प्रवेश करनेपर उसके सम्मुख ज्ञानशक्ति सम्पूर्ण तत्त्व निरावरित कर देती है। सारे अज्ञानजन्य आवरणोंसे उसकी बुद्धि निर्मल हो उठती है। दहर शब्द इसी स्थितिका वाची है।

।।४६।।

जान पायी, वस्तु है क्या कीर्तिदाकी बालिका,
है यही, जो है सदा विश्वेशकी भी चालिका ।
है यही अपरा-परा भी प्रकृति जगत्-विधायिका,
हूँ लिये मैं ब्रह्म, उसके प्राणकी है ह्लादिका ।।

मैया समझ गयी कि कीर्तिदा महारानीकी वह कल्पलतिका-सी बालिका क्या वस्तु है । मन-ही-मन वह सोचती जा रही थी – अहा ! यह तो वही है, जो नित्य निरन्तर विश्वेश्वरका भी संचालन करती रहती है । अहो ! यही तो वह जगत्का निर्माण करनेवाली अपरा-परा प्रकृति भी है । कैसी विचित्र बात ! मैं तो अपने अंकमें सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको लिये हूँ, और यह कीर्तिदा महारानीकी बालिका तो उस सच्चिदानन्द ब्रह्मके भी प्राणोंकी ह्लादिनीशक्ति है।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

जिज्ञासाः- यहाँ द्वितीय पंक्तिमें श्रीराधाके लिये श्रीकृष्ण कहते हैं – **''है यही जो है सदा विश्वेशकी भी चालिका''** । इसका क्या अर्थ है ?

समाधानः- आगम शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन आता है पराशक्ति आद्या भगवती जो श्रीराधारानींका ही ऐश्वर स्वरूप हैं – के कर-नखकी एक-एक कलासे एक-एक अवतारकी उत्पत्ति हुई है।

''करांगुलि नखोत्पन्न नारायण दशाकृतिः''(ललिता सहस्रनाम)

परमाद्या भगवतीके दक्षिण करांगुष्ठके नखसे कल्पका प्रथम मत्स्यावतार हुआ। इस मत्स्यावतारमें भगवान्ने शंखासुरका वध करके वेदोंकी रक्षा की थी। भगवती आदि-महाशक्तिकी दक्षिण हस्तकी तर्जनी अँगुलीके नखके प्रकाशसे दूसरा कूर्मावतार हुआ। इसी अवतारमें भगवान्ने अपनी पीठपर मन्दराचलको धारण किया। इनकी ही कृपासे अमृत-मंथन संभव हो पाया। भगवती कामेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी आद्या पराम्बाके दक्षिण हस्तकी मध्यमा अँगुलीके नख-प्रकाशसे तीसरा वाराह अवतार हुआ। इसी वाराह अवतारकालमें सारस्वत कल्पकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीमें भगवान् श्रीकृष्णावतार हुआ है। ये भगवान् वाराह ही अपनी दाढ़के ऊपर रखकर डूबी हुई पृथ्वीको कारण-समुद्रके ऊपर लाये हैं। इन्होंने ही हिरण्याक्ष दैत्यका वध किया था। भगवती पराम्बाके दक्षिण हस्तकी अनामिका अँगुलीके नखप्रकाशसे भगवान् नृसिंहका अवतार हुआ। इसी अवतारमें भगवान्ने हिरण्यकशिपु दैत्यका अपने नखोंसे फाड़कर वध किया था। प्रह्लाद इन्हीं नृसिंहभगवान्के परम भक्त हुए। भगवतीकी दक्षिण हस्तकी कनिष्ठिकाके नख-प्रकाशसे पाँचवाँ वामनावतार हुआ। इस अवतारमें भगवान्ने राजा बलिसे तीन पग पृथ्वी दानमें माँगी एवं विश्वातीत रूप प्रदर्शितकर तीनों लोकोंको

अपने तीन पगोंसे नाप लिया।

इसी प्रकार जगज्जननी पराम्बाके वाम करांगुष्ठके नखसे छठा परशुराम अवतार हुआ। श्रीपरशुरामने सहस्रार्जुनपर क्रोध करके पृथ्वीको इक्कीस बार निःक्षत्रिय कर दिया। भगवतीके बायें हाथकी तर्जनी अँगुलीसे सातवाँ भगवान् रामका अवतार हुआ। इस रामावतारमें देवताओंने वानररूप धारणकर भगवान्की सहायता की। भगवती पराम्बाकी वाम करांगुलिकी मध्यमाके नखसे श्रीकृष्णावतार हुआ।

ऐसा भी मत है कि आद्याशक्ति पराम्बा भगवतीकी भद्रकाली मूर्त्ति ही जो नवघनश्यामवर्णा है, श्रीकृष्णरूपमें अवतरित हुई है और भगवान् कामेश्वर सदाशिव स्वयं श्रीराधारूपमें अवतरित हुए हैं। भगवान् सदाशिव ही अपने अन्य आठ रूपों – शिखण्डीरूपसे ललिता, श्रीकण्ठरूपसे विशाखा, त्रिमूर्त्तिरूपसे चित्रा, एकनेत्ररूपसे चम्पकलता, एकरुद्ररूपसे इन्दुलेखा, शिवोत्तमरूपसे रंगदेवी, सूक्ष्मरूपसे तुंगविद्या, अनन्तरूपसे सुदेवी हुए। इसी प्रकार भगवान् सदाशिवके असंख्य भैरव सोलह हजार गोपी बने।

भगवती आद्याशक्तिकी ही वाम अनामिकाके नखसे बुद्धावतार हुआ और उनकी वाम कनिष्ठिकाके नखसे भविष्यमें कल्कि अवतार होगा।

इसी तात्पर्यको ध्यानमें रखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण भगवती श्रीराधाको **"विश्वेशकी संचालिका"** आदिशक्ति कहते हैं। श्रीराधा भगवान्की ह्लादिनी प्रमुख शक्ति होनेसे वह अनन्त विश्वके ईश्वरोंकी यथार्थतः संचालिका ही हैं।

यद्यपि शास्त्रोंमें अनेक बातें अनेक प्रकारसे कही जाती हैं, किन्तु इस सम्बन्धमें सभी शास्त्र एक मत हैं कि सच्चिदानन्दरूपा ह्लादिनी उपाधिपूर्ण स्वात्मा ही भगवती राधा हैं और इन पराम्बाके

निमित्तसे ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका अनन्त विश्वनियन्ता संचालन कर रहे हैं। इन श्रीराधाके ही आधार – सत्त्व, चित्त्व एवं आनन्दत्वरूप धर्मत्रयविनिर्मुक्त विशुद्ध धर्मी ह्लादात्मा भगवान् श्रीकृष्ण हैं। ये श्रीराधाकृष्ण ही असंख्य ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रोंके सेव्य हैं। ब्रह्मा ही नहीं, उनसे लेकर तृणपर्यन्त समस्त चराचर जीव अपने अधिष्ठातृ देवताओंके रूपमें इन युगल स्वरूपकी सेवामें मूर्त्तिमान् होकर उपस्थित रहते हैं। अणिमादि सिद्धियाँ, माया, विद्यादि विविध शक्तियाँ, महत्तत्व आदि चौबीस तत्त्वोंके अधिष्ठातृ देवता – सभी सेवाकी प्रतीक्षामें इन्हें घेरे खड़े रहते हैं। प्रकृतिक्षोभमें हेतु काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म, गुण आदि इन सबके देवता इन युगलकी अर्चना करते हैं। ये श्रीराधाकृष्ण ही परस्पर एक-दूसरेके युगपत् आधाराधेय हैं एवं ये ही परस्पर एक-दूसरेके आराध्याराधक भी हैं।

जिज्ञासाः- यहाँ माता यशोदाको राधाकुमारीमें 'परा-अपरा' प्रकृतिके दर्शन भी होते हैं। ये 'अपरा-परा' प्रकृति क्या हैं ? इसपर भी कृपया प्रकाश डालें।

समाधानः- भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें अपनी परा एवं अपरा – दो प्रकृतियोंका उल्लेख किया है, जिनके द्वारा वे समग्र सृष्टिकी रचना करते हैं। उनकी यह अपरा प्रकृति आठ प्रकारसे विभाजित है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार – इस प्रकार यह आठ प्रकारसे विभाजित भगवान्की अपरा प्रकृति है। यह भगवान्की अपरा प्रकृति ज्ञेय तथा जड़ होनेसे ज्ञाता, चेतन, जीवरूपा, पराप्रकृतिसे सर्वथा भिन्न और निकृष्ट है। यही संसारकी हेतुरूपा है और इसीके द्वारा जीवका बन्धन होता है। इसीलिये इसका 'अपरा' नाम है।

भगवान्की 'परा' प्रकृति ज्ञाता, चेतन, जीवरूपा है।

भगवान्‌की इसी परा प्रकृतिको 'अध्यात्म' नामसे गीताके ७।२९ एवं ८।३ श्लोकोंमें कहा गया है। इसका ही क्षेत्रज्ञ नामसे १३।१ श्लोकमें उल्लेख है। समस्त शरीरोंके शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण तथा भोग्य वस्तुएँ और भोगस्थान – यह व्यक्त प्रकृति भगवान्‌की अपरा प्रकृति ही है। इसे ही जगत् नाम भी दिया गया है। यह जगत् रूप जड़ तत्त्व अपरा प्रकृति भगवान्‌की परा प्रकृति चेतन तत्त्वसे व्याप्त है। अतः इसे परा प्रकृतिने ही धारण किया हुआ है। बिना परा, चेतनके संयोगके इस जगत्, अपराकी उत्पत्ति, विकास और धारण होना संभव नहीं है। ये सम्पूर्ण भूत इन दोनों भगवान्‌की प्रकृतियोंसे ही उत्पन्न होनेवाले हैं। जगदम्बा जगज्जननी जगद्विधायिका होनेसे श्रीराधा ही भगवान्‌की परा एवं अपरा प्रकृति हैं।

जिज्ञासा:- *''हूँ लिये मैं ब्रह्म, उसके प्राणकी यह ह्लादिका''* – कृपया इस पदका भी विस्तृत विवेचन कीजिये।

समाधानः- प्रसूतिगृहमें भूमिष्ठ कीर्त्तिदाकी विलक्षण बालिकाके दर्शन मात्रसे जब श्रीयशोदाजीके दहर विद्यामय द्वार उद्घाटित हो उठते हैं और उन्हें वह बालिका जगत्‌के ईश्वरोंकी संचालिका, भगवान्‌की अपरा-परा प्रकृति, जगत्-विधायिका दृष्टिगोचर होती है तो उनकी दृष्टि अपने पुत्रपर भी चली जाती है। श्रीयशोदाजीके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता। उन्हें उनके अपने पुत्रके स्थानपर अपनी गोदमें उस समय इस दृश्यमान अनन्त विश्व और इससे सर्वथा अतीत, जो कुछ है या हो सकता है, उस सबका मूलतत्त्व 'ब्रह्म' दिखाई पड़ता है। वे विस्फारित-नेत्र, चकित अपने 'कन्नू'को बार-बार देखती हैं, किन्तु अनुभव करती हैं कि यह तो वही है, जिसके तत्त्वका पता लगाकर तथा अनुभवकर परम तत्त्वज्ञ ज्ञानी महापुरुष 'ब्रह्म' नामकरण करते हैं। यह मेरा

बालक सर्वविधि बृहत्तम है। उनकी समझमें उसी क्षण यह भी तत्त्व ठीक उजागर हो जाता है कि यह बालक 'अनन्तं ब्रह्म' अनन्त शक्तियोंका स्वामी है। इस 'ब्रह्म'की यह अनन्त शक्तिमत्ता सभी विषयोंमें सिद्ध होती है – ब्रह्मके स्वरूपमें, उसकी शक्तियोंमें, उसके कार्योंमें, उसकी शक्तिके प्रकाशनकी विचित्रताओंमें। शक्तिकी ही विलक्षण क्रियासे यह ब्रह्म निर्विशेष वस्तुसे सविशेष होकर उसकी गोदमें चिपका है, निर्गुणसे सगुण हो उठा है, निराकारसे साकार परिलक्षित हो रहा है। यशोदाजीका तत्त्वज्ञान सर्वविधि सम्यक् है। वे जान जाती हैं कि मेरे इस बालकमें 'समग्र ब्रह्मभाव'का पूर्ण प्रकाश है। वस्तुतः ब्रह्मत्वका पर्यवसान भी इसीमें है। इसीसे यह ब्रह्मकी प्रतिष्ठा है, ब्रह्मका आश्रय है। यह मेरा बालक ब्रह्म 'स्वरूपमें' पूर्णतम, शक्तियोंमें पूर्णतम और शक्तियोंके विचित्र प्रकाशोंमें पूर्णतम है। इसीसे यह निर्विशेष, निःशक्ति और निराकार नहीं है। यह सविशेष, सशक्ति और साकार है। मेरे वात्सल्यको, मेरी कोखको कृतार्थ करने यह मेरा शिशु बना मेरी गोदमें अवस्थित है।

बालकमें परस्पर विरुद्ध धर्म-गुणोंका युगपत् प्रकाश है। यह सब इसकी शक्तियोंका प्राकट्य है। शक्तिके प्रकाशसे ही यह मेरा नीलमणि नवघन श्यामसुन्दर है। यह 'ब्रह्म' शून्य नहीं है। इसमें अस्तित्व शक्ति है। यह देखो, इस बालिकाको देखकर किलक रहा है। यह आनन्दमय है; इसमें आनन्दमयत्व शक्ति है। यह चेतन है, इसलिये यह चिच्छक्ति-सम्पन्न है।

'आनन्द' शब्दके भी दो प्रकारके अर्थ होते हैं। एक वह जो आस्वाद्य आनन्द है जैसे 'मधु' और एक इस मधुका आस्वादक भ्रमर भी आनन्दरूप ही है। अतः यह मेरा पुत्र भी दो रूपोंमें अभिव्यक्त यहाँ मुझे दीख रहा है। एक तो ह्लादात्मा रसिक भ्रमर

रूपमें, जो मेरी गोदमें स्थित है और दूसरे अपनी ह्लादिनी शक्तिके रूपमें, जो कीर्त्तिदाकी यह अलौकिक बालिकाके रूपमें है।

इस 'ब्रह्म'का लीलाविग्रह, सगुण साकार रूपमें प्राकट्य ही वस्तुतः अपनी ह्लादिनी शक्तिके निमित्तसे ही होता है। अन्यथा यह अपने निर्विशेषत्व, निर्गुणत्व, निराकारत्वका त्याग ही क्यों करे ? इसने अपने निजानन्दको परिस्फुट करनेके लिये, उसका नवीन रूपमें आस्वादन करनेके लिये ही स्वयं अपनेको 'द्विधा' रूपमें प्रकट किया है। यह स्वयं आनन्दविग्रह है और यह कीर्त्तिकन्या प्रेमविग्रहस्वरूपा है। यह अपने इस प्रेमविग्रहसे आनन्दका आस्वादन करेगा। अतः यह कीर्त्ति-कन्या प्रेममयी है, यह समग्र प्रेमविग्रहोंका एकीभूत समूह है। जहाँ आनन्द है, वहीं प्रेम है ; जहाँ प्रेम है, वहीं आनन्द है। अतः मेरे इस पुत्रकी स्थिति ही इस कीर्त्ति-कन्याके निमित्तसे ही है। यह कीर्त्तिकुमारी मेरे पुत्रकी जीवनस्वरूपा, जीवनीशक्ति है। यह मेरा पुत्र इस कन्याका जीवन है।

दिव्य प्रेम-रस-सार-विग्रह होनेसे यह कीर्त्तिकन्या ही इस आनन्द-रस-सार रसराज मेरे पुत्रको आनन्द प्रदान करती है। यही इस ह्लादात्माकी ह्लादिनी शक्ति है।

मेरा पुत्र नित्य आनन्दमय है, नित्य तृप्त है, नित्य एकरस है, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड-विग्रह है, पूर्ण ब्रह्म परमात्मा है किन्तु इस पूर्णानन्दस्वरूपकी ही सत्ता और इसके प्रति प्रेम दो वस्तु नहीं हैं। यह कन्या प्रेमाश्रय है और यह मेरा पुत्र प्रेम-विषय है। प्रेमाश्रयका भाव प्रेम-विषयमें अनुभूत हुआ ही करता है। ये दोनों वस्तुतः दो हैं ही नहीं, एक ही दो रूपोंमें प्रतीत हो रहे हैं। जो यह कन्या है, वही यह बालक है। इन दोनोंमें किञ्चित् भी भेद नहीं है। जैसे दूधमें सफेदी, अग्निमें दाहिका शक्ति, पृथ्वीमें गन्ध रहती है, उसी प्रकार इस बालकमें यह बालिका रहती है। जैसे 'ब्रह्म'से सत्,

चित् एवं आनन्द इन तीनों भावोंको कभी एक दूसरेसे पृथक् नहीं किया जा सकता, वैसे ही इस बालिकाको इस मेरे बालकसे पृथक् नहीं किया जा सकता। यह मेरा बालक इस बालिकासे पृथक्-कलेवर, पृथक् स्थानोंमें पृथक् उत्पन्न हुआ-सा जो दिख रहा है वह इसकी अनन्त शक्तियोंका ही चमत्कार है। ये दोनों बालक-बालिका अभेद होकर ही भिन्न मात्र प्रतीत हो रहे हैं। इस बालिकाके रूपमें मेरे इस बालककी सुखेच्छारूप दिव्य वृत्ति ही साकार होकर जन्म लिये है। यह दिव्य सुखेच्छा वस्तुतः प्राकृत मनकी वृत्ति नहीं है। यह तो ह्लादिनी-प्रधान विशुद्ध सत्वकी ही एक वृत्ति है जो मूर्तिमान होकर इस कीर्ति गोपीकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुई है।

॥४७॥

है चिदंश-सदंशमें परमेशकी चिति-सन्धिका,
शक्ति यह है योगमाया जो असम्भव-साधिका।
है यही वृन्दाविपिन-आधार, गोकुल-पालिका,
है यही धारण किये ब्रज, चर-अचरकी मालिका।।

ओह ! यही तो परमेश्वरके चिदंश-संदशमें नित्य विराजित चिति एवं संधिनी शक्ति है । अहा ! हा ! असम्भवको भी सम्भव करनेवाली अघटघटना-पटीयसी योगमाया भी तो यही है । ओहो! वृन्दावनकी आधार शक्ति यही, यही है । सम्पूर्ण गोकुलकी पालिकाशक्ति यही है । ओह ! क्या कहूँ – व्रजवनके चराचर प्राणियोंकी माला बनाकर अपने कंठमें धारण करनेवाली शक्ति भी तो यही है !........ सम्पूर्ण वनस्थलके चराचरको धारण किये हुए यही तो विराजित है ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

जिज्ञासाः-सैतालीसवें चौपदेकी प्रथम दो पंक्तियाँ हैं – ***"है चिदंश-सदंशमें परमेशकी चिति-सन्धिका, शक्ति यह है योगमाया भी असम्भव-साधिका"*** कृपया इनका विस्तारपूर्वक विवेचन करें।

समाधानः- तत्त्वदर्शी महात्माओं द्वारा परमेश अर्थात् परमात्माको शास्त्रोंमें सच्चिदानन्द कहा गया है। सच्चिदानन्द शब्दका अर्थ ही है कि जिसमें तीन स्वरूपभूत शक्तियाँ – सत्स्वरूपता, चित्स्वरूपता एवं आनन्दस्वरूपता हो। कुछ त्रिकालज्ञ तत्त्वदर्शी कहते हैं कि परमात्मा स्वरूपतः आनन्दस्वरूप तो है ही, उसमें अनन्त सत्य एवं ज्ञान – दो प्रधान शक्तियाँ हैं। ***'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'*** यह ब्रह्म अनन्त सत्य एवं अनन्त ज्ञानशक्तिसे युक्त है। इस परमात्माकी ज्ञानशक्ति – चिदंश ही उसकी चिति शक्ति और उसका सदंश ही सन्धिनी शक्ति कहलाता है। परमात्मामें चितिशक्तिके समावेशसे ही चित्स्वरूपता है और उसमें सन्धिनी शक्तिके होनेसे ही वह सत्स्वरूप है। यह चिदंशशक्ति – चिति ही योगमाया कहलाती है क्योंकि ज्ञान ही भगवान्से योग कराता है और अज्ञान ही परमात्मासे विमुख करता है। यह योगमाया ही लीलामहाशक्ति है, जो भगवानकी लीलामें पात्र जीवोंका सन्निवेश करती है। यह लीलाक्रममें असंभवको भी संभव करनेवाली है।

जगन्माता यशोदाको कीर्त्तिकुमारी राधारानीमें परब्रह्म परमात्माके चिदंश एवं सदंशमें नित्य विराजित चिच्छक्ति एवं संधिनी शक्तिके युगपत् दर्शन होते हैं, साथ ही उनमें लीलामहाशक्ति अघटन-घटना-पटीयसी असंभव-संभव-कारिणी योगमायाके भी दर्शन होते हैं। यही रहस्य ये दो पंक्तियाँ बतला रही हैं।

जिज्ञासाः- कृपया इसी चौपदेकी पीछेकी दो पंक्तियाँ– ***"है यही वृन्दाविपिन-आधार गोकुल-पालिका, है यही धारण किये ब्रज, चर-अचरकी मालिका।"*** का भी अर्थ समझाइये।

समाधानः- वस्तुतः वृन्दा-विपिन, गोकुल एवं यह ब्रज है क्या ? क्या ये किसी भूखण्डके नाम हैं ? नहीं ! ये प्राकृत भूखण्ड तो नहीं हैं, किन्तु चाहे इन्हें भगवान्की संधिनी शक्तिकी परिणति कह दें, ये प्रतीतिमें तो भूखण्डकी तरह ही लगते हैं। परन्तु इनका स्वभाव बड़ा विलक्षण है। कहनेमें यह बात विचित्र लगेगी। भूखण्डोंका भी क्या कोई स्वभाव होता है ? परन्तु सत्य यही है कि ये भूखण्ड चिन्मय हैं। श्रीप्रिया-प्रियतम राधा-माधवके सुखकी सामग्री एकत्र कर देना, इन भूखण्डोंका स्वभाव है। इन भूखण्डोंकी यही विचित्रता है कि जड़वत् प्रतीत होते हुए भी इनमें अज्ञानका लेश नहीं है। इन सभी भूखण्डोंमें एक ही बात है – श्रीराधामाधवकी सुख-संयोजना, दूसरी वस्तु है ही नहीं। इन्हें अपनी और जगत्की स्मृति ही नहीं है। ये भूखण्ड अपने चतुर्दिक् परस्पर एक दूसरेमें बस राधा-माधवको ही देखते हैं, ये श्रीराधा-माधवकी स्मृतिमें ही जड़ हो गये हैं। अगाध, अखण्ड स्मृतिकी प्रगाढ़तामें जैसे किसीमें जड़िमा भाव आ जाय, इसी प्रकार ये भूखण्ड जड़वत् हो गये हैं।

यह दशा मात्र वृन्दाविपिनकी, गोकुलकी, ब्रजकी पृथ्वीकी ही नहीं है, यही दशा इस विपिन, भूमंडलको आवृत किये आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों, वायु, अग्नि, जल – सभीकी है। इस सभी पंचभूतात्मक प्रकृतिपिण्ड – जिसका नाम गोकुल है, ब्रज है, वृन्दाविपिन है, सबकी यही दशा है कि यहाँ किसीमें अपनी वासना नहीं, अपनी स्मृति ही नहीं, अपनी कोई आकांक्षा नहीं, अपना पूर्ण आत्यंतिक विस्मरण है; और स्मृति है प्रेमास्पद

श्रीराधा-माधवकी, उनके सुखकी, चिन्ता है उनके सुख-सम्पादनकी। इस विचित्र धाराका यह गोकुल, यह ब्रज, यह वृन्दाविपिन मूर्त्त स्वरूप है।

अपने सुखकी इच्छा जहाँ अन्धतम काम है, वहाँ दूसरेके सुखकी इच्छा करना प्रेम है। इसीलिये अपने अणु-अणुमें श्रीराधाकृष्ण, प्रिया-प्रियतमको सुख देनेकी वृत्ति रखनेके कारण ही यह ब्रज, बृन्दाविपिन एवं गोकुल 'प्रेम-देश' कहलाता है।

इसी प्रेमका जो परम फल है, उसे कहते हैं 'भाव'। भावके अनेक स्तर हैं। रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव – ये प्रेमवृक्षके आठ विलक्षण फल हैं। यह प्रेमका विलक्षण फल क्रमशः पककर जब पूर्ण सरस, मीठा हो जाता है, और उसमें न गुठली ही रहती है, एवं नहीं छिलका – तब यह महाभाव हो जाता है।

इन समग्र भावोंकी उद्गमस्थली, मूल जननी, मूल स्रोत ये कीर्त्तिकुमारी श्रीराधारानी हैं। जगन्माता यशोदाके हृदयमें जब तत्वके परदे एकके पश्चात् एक खुलते जा रहे थे, तो सर्वप्रथम उन्हें यही अनुभव हुआ था कि श्रीराधा ही मेरे पुत्र 'ब्रह्म'की आह्लादिनी शक्ति हैं। श्रीराधा वस्तुतः श्रीकृष्णका सुख हैं। श्रीराधा नहीं हों तो श्रीकृष्णके आनन्दकी सिद्धि ही नहीं हो।

अतः श्रीराधाकी ही मूल भावधारासे अनुप्राणित यह ब्रजप्रदेश, गोकुल एवं बृन्दाविपिन है। परमोच्च प्रेमकी आदर्श श्रीराधा हैं और यही प्रेम अपनी अनन्त प्रकाशित आठ रश्मियोंसे ब्रजप्रदेश, गोकुल एवं वृन्दाविपिनका भी रूप धारण कर लेता है। इस सबकी श्रीराधा जीवनमूल हैं। इनके प्राणोंकी वे संजीवनी हैं। श्रीराधा ही इन सबकी सत्ताको अनुप्राणित करने वाली मूल शक्ति हैं। इसी भाव-प्रकाशको अभिव्यक्ति देती श्रीयशोदा कहती हैं –

"है यही वृन्दाविपिन-आधार गोकुल-पालिका । है यही धारण किये ब्रज चर-अचरकी मालिका"

।।४८।।

गोदमें मेरी यहाँ जो नीलिमाकी खानि है,
एक होकर ही वही यह गौर तेजोराशि है।
सर्वथा सर्वांशमें इनमें नहीं कुछ भेद है,
नित्यलीलाके लिये, बस, रंगभर ही भिन्न है।।
नित्यलीला हेतु हैं दो रंग भर, मत-वेद है।।
(पाठभेद)

अरे ! देखो सही ! मेरे अंकमें यहाँ जो नीलिमाका पुञ्ज बना हुआ बालक विराजित है, वह एक रहकर ही – बस, बस, बिलकुल वही तो यह गौर तेजोराशि बालिका बना हुआ है । ये दोनों गौर तेजोमयी बालिका एवं नीलिमाकी खान यह मेरा नील-पुत्र सर्वथा-सर्वांशमें एक हैं ! इनमें कहीं भी किञ्चित् मात्र भी भेद नहीं है भला ! नित्य लीलाके लिये ही दोनोंका रंगभर भिन्न दीख रहा है। यही नित्य नील है ! यही नित्य गौर है !

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

श्रीयशोदाजीको अनुभव हो रहा है कि मेरे अंकमें जो नीलिमाका पुञ्ज बना बालक विराजित है, वह अनादि पुरुष एक ही है, परन्तु अनादि कालसे ही यह अपनेको दो – आराध्य एवं आराधक रूपोंमें प्रकटकर अपनी ही आराधनाके लिये तत्पर है। इसीलिये यह गौर तेजोराशि बालिका श्रीराधा इसकी रसिकानन्दरूपा है। ये दोनों रसके सागर हैं, ये एक ही हैं, पर मात्र खेलके लिये दो भिन्न रंग धारण किये हैं। राधाकी आत्मा श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्णकी आत्मा श्रीराधा हैं। जो श्रीकृष्ण हैं, वही श्रीराधा हैं और जो राधा हैं, वही श्रीकृष्ण हैं। श्रीराधा एवं कृष्णके रूपमें एक ही

ज्योति दो रूपोंमें प्रकट है। श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द हैं और श्रीराधा सच्चिदानन्दविग्रहा हैं। श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान है, श्रीराधा पूर्ण शक्ति हैं। श्रीकृष्ण मृगमद हैं, श्रीराधा मृगमदगन्ध हैं। श्रीराधा दाहिका शक्ति हैं, श्रीकृष्ण अग्नि हैं। श्रीकृष्ण प्रकाश हैं, श्रीराधा तेज हैं। श्रीकृष्ण आकाश हैं, श्रीराधा व्याप्ति हैं। श्रीकृष्ण पूर्ण चन्द्र हैं, श्रीराधा ज्योत्स्ना हैं। श्रीकृष्ण सूर्य हैं, श्रीराधा आतप हैं। श्रीकृष्ण जलनिधि हैं, श्रीराधा तरंग हैं। यों वे दोनों नित्य एक स्वरूप हैं, परन्तु लीलारसके आस्वादनके लिये नित्य ही उनके दो रूप हैं।

वस्तुतः एक ही परिपूर्ण नित्य सच्चिदानन्दमय परम प्रेमतत्व श्रीकृष्ण ही आस्वादक रूपसे कृष्ण और आस्वाद्य रूपसे श्रीराधा हो जा रहे हैं। इसीलिये श्रीयशोदाजीको कभी तो श्रीराधा अपने नीलघन शिशुके दिव्य स्वरूपमें विलीन होकर उसके हृत्पद्मपर विराजित दिखायी देती हैं एवं कभी वही सर्वात्मसमर्पण करती उनके शिशुकी आराधिका बनी उसकी सेवामें संलग्न रहकर उसको सुख देनेमें ही अपना परम सौभाग्य मानती दृष्टिगोचर होती हैं। कभी उसे अपनी गोदमें राधा दिखायी देती हैं और कीर्तिदाके पास भूमिष्ठ उनका बालक दिखाई पड़ता है, कभी दोनों युगल साथ-साथ समझमें आते हैं। श्रीयशोदा चकित हैं कि ये एक होकर भी नित्य दो हैं और दो रहते हुए ही नित्य एक हैं।

।।४६।।

नाचती-सी तत्वके आवर्त-सागरमें गिरी,
डूबने मैया लगी, सब वृतियाँ थीं अब ठिरी।
पर अचानक रूपगरिमाकी लहरसे जा घिरी,
बह चली, उसका सहारा ले पुनःपीछे फिरी।।

इस प्रकार मैया तत्त्वके सागरमें – उस सागरके आवर्त्तमें नाचने लग गयी । आवर्त्तकी लहरें उसे वृत्ताकार नचा रही थीं । अरे ! नहीं, मैया तो उस आवर्त्तमें डूबने लग गयी । उसकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ शान्त हो गयी थीं । इसी बीच अचानक रूपगरिमाकी एक लहर आयी और उसने मैयाको चारों ओरसे घेर लिया । उसके प्रवाहमें बह चली वह । पर इस बार गति दूसरी ओर थी – उन लहरोंका सहारा लिये वह पुनः पीछेकी ओर लौटी आ रही थी ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

जैसे नीहार वृक्ष, लता, वल्लरियोंके साथ ही पशु, पक्षी, मानव, कीट, पतंग, भृंगको आवृत कर लेता है किन्तु वह प्रगाढ़ तमसाच्छन्न रजनीके अन्धकारको आवृत नहीं कर सकता; प्रबलतर अँधेरेका संयोग होते ही वह अपनी आवरण शक्तिको उसमें विलीन कर देनेके लिये बाध्य हो जाता है, स्वयं उससे आवृत हो जाता है; जैसे खद्योतका क्षुद्र प्रकाश घोर तमसाच्छन्न रात्रिके समय किसी तरु-वल्लरीके किसी पत्रांशको एक क्षणके लिये चमकका दान भले कर दे पर समुद्भासित मध्याह्न सूर्यकी किरणें उसकी सत्ताको सर्वथा नगण्य बना ही देती हैं, मैया यशोदाकी बुद्धि भी इस महाभावोदधि भानुपुत्रीको देखते-देखते तत्वरहस्यकी अथाह भवरोंमें, उसके आवर्त्तोंमें ऐसी फँसी कि उसकी सभी वृत्तियाँ हतप्रभ हो, स्थिर हो गयीं। मैया तो इस अथाह तत्वज्ञानमें पूरी डूब ही जाती, किन्तु भगवती लीलामहाशक्तिको तो उनके द्वारा विश्व एवं विश्वेश दोनोंको वात्सल्यरससिन्धुकी एक-से-एक ऊँची लहरोंमें परिस्नात कराना था। अतएव मैयाके नेत्रोंमें अचानक ही महाशक्ति योगमायाने इस सद्योजात बालिकाके मनोहर रूपकी ऐसी झाँकी भर दी कि मैया उसके दर्शन-प्रवाहमें बह गयी और

सखी श्रीरंगदेवीजी

उस तत्वरहस्य सिन्धुमें डूबनेसे बच गयी।

मैया दर्शन कर रही है कि एक कनक-गौर वर्णकी अद्भुत बालिका नेत्र निमीलित किये कीर्त्तिदा महारानीके पार्श्वमें लेटी है। यशोदारानीको ठीक अनुभव हो रहा है मानो उसके क्रोड़में संलग्न नील शिशु श्रीकृष्णको निरखकर ही इसके नेत्र सुस्थिर हुए उसके रूप-पानमें निमग्न निमीलित हो उठे हैं। उसके सद्यःजात बालिकाके अंगोंसे ऐसी विलक्षण सौरभ प्रसरित हो रही है कि जिससे सारा प्रसूतिगृह और आसपासका सब क्षेत्र उस सौरभसे महक उठा है। अत्यन्त शिशु अवस्थामें भी इसके पतले-पतले कमनीय अधर मधुर अमृत-रसकी जैसे फुहारें छोड़ रहे हों, इस प्रकार मन्द-मन्द मुसकान बिखेर रहे हैं।

सभी अंग-प्रत्यंग ऐसे तेजोमय हैं मानो राकाशशिका एक कमलाकृतिका टुकड़ा आकाशसे कीर्त्ति गोपीकी गोदमें पतित होगया हो और उससे पीयूषवर्षी मन्द-सुमन्द ज्योत्स्ना छिटक रही हो। अहा ! इस बालिकाके लाल गुलाबके फूल-जैसे कपोलोंमें कैसी तेजोमय दमक है, इन कपोलोंका सौन्दर्य तो सर्वांगजयी अप्रतिम है। कमलकी पँखुड़ियोंसे पतले-पतले कान बिना कुण्डलोंके ही ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो किसी सुकोमल स्वर्ण वल्लरीके मृदुलतम पान हों। इस बालिकाकी निरी सद्योजात अवस्थामें ही भौहें कामदेवके धनुषके समान टेढी हैं और नयन अति रसभरे हैं। शोभाका ढेर जैसे एक स्थानपर इकट्ठा हो, इस प्रकार इस बालिकाकी नासिका है। जैसे इसका रोम-रोम परमाह्लादसे परिपूर्ण हो, यह प्रीतिरसकी लघु वापी हो; ऐसी ही इसके रोम-रोमकी छवि है।

ओह, इसके लघु मधुपोंके समान काले कुञ्चित चिकने केश हैं, वे कपोलोंपर ललाटपर छित्राये परम मनोहारी शोभा

बिखेर रहे हैं। चिबुककी शोभा तो अपराजेय है और ठोडी अनुपम है। कण्ठ कमनीय है और नाभि अभिराम है। हाथ-पैर स्वाभाविक ही ऐसे लाल-लाल हैं मानो मेंहदी लगी हो। इस विलक्षण बालिकाके पैरोंमें छत्र, चक्र, ध्वजा, लता, पुष्पादि चिन्ह स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं।

तत्वानुसंधानमें निरत साथ ही उसकी अथाह गंभीर भँवरोंमें फँसी मैयाको इस बालिकाके सौन्दर्यदर्शनकी उर्मियोंने बरबस बाहर खींच लिया और इस लहरके सहारे मैया पीछे फिरकर किनारे आ लगी।

॥५०॥

क्या बताऊँ, प्रियतमे ! जो रूप तुमने था किया,
व्यक्त, उसका ध्यानकर ही विश्वमें मैं हूँ जिया।
और आगे भी रहूँगा, था उसीने बल दिया,
जो बची मैया तथा ब्रजने मुझे अपना लिया॥

प्रियतमे ! क्या बताऊँ उस रूपकी बात, उस सौन्दर्यकी लहरोंकी बात, जिसे तुमने उस समय व्यक्त किया था ! ओह ! उसका ध्यान करके ही मैं विश्वमें अब तक जी रहा हूँ, और आगे भी निश्चय ही जीवित रहूँगा। ओह ! उसीकी शक्तिके प्रभावसे मैया उस दिन जीवित बच गयी और व्रज-वनवासियोंने मुझे अपना लिया । मैं एक मात्र व्रज-वनवासियोंकी ही वस्तु बन गया ।

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

परस्पर जुड़े हुए तारोंमें किसी एकपर स्वर-लहरी उदय होते ही अन्य तार भी झंकृत होते ही है। यह अवश्य है कि सभी तारोंकी झंकारका रव समान नहीं होता, किसीका तीव्र एवं किसीका मन्द। इसी प्रकार वात्सल्यवती यशोदा मैया, कीर्त्तिदा मैया एवं अन्यान्य असंख्य ब्रजसुन्दरियों एवं गोपोंने सद्योजात

कीर्त्तिकुमारीके अप्रतिम सौन्दर्यको जब देखा तो सभी एक चमत्कारी आनन्दमें तो डूब गये किन्तु सबकी अनुभूति अपने-अपने अन्तःकरणोंके स्तरको लेकर पृथक्-पृथक् थी।

यशोदा मैयाको सर्वप्रथम उन्हें देखकर सच्चिदानन्दरूपा ह्लादिनी उपाधिपूर्ण स्वात्माके ही दर्शन हुए। इसी प्रकार अपनी गोदमें संलग्न शिशु श्रीकृष्णके रूपमें भी सत्त्व, चित्त्व एवं आनन्दत्त्वरूप धर्मत्रयविनिर्मुक्त मात्र सर्वधर्मी सर्वात्मा ब्रह्मके दर्शन हुए। यह ब्रह्मानुभव एवं ब्रह्मशक्तिका अनुभव यदि स्थायी रह जाता तो उनसे उनके कन्हैयाका लालन-पालन तो संभव ही नहीं था। और यदि मैया ही भगवती देवहूतिकी तरह सातवीं भूमिकामें प्रतिष्ठित विशद्ध ब्रह्मज्ञानी हो जाती तो भगवती योगमाया महाशक्ति द्वारा विश्व रंगमंचमें सम्पादित होनेवाला विशुद्ध वात्सल्यदानका खेल तो फिर संभव ही नहीं था। क्योंकि भगवतीको वह खेल, वह लीला सम्पादित करनी थी – अतः उन्होंने मैयाके सम्मुख श्रीराधाका अपूर्व सौन्दर्य व्यक्त कर दिया, उस सौन्दर्यसे अभिभूत मैया वात्सल्याभिभूत हो उठी और उनका ब्रह्मज्ञान तो उस सुधा-सौन्दर्यलहरीमें तिरोहित हो गया। मैयाके मनमें उस अपूर्व कीर्त्तिकुमारीका प्रेम उमड़ उठा। इस प्रकार ब्रजभावका वह विशाल स्तंभ, जिसके सहारे सम्पूर्ण ब्रजभावकी नींव स्थिर थी ध्वस्त होनेसे बच गया। इसी तथ्यका संकेत करते हुए श्रीकृष्ण अपनी प्राणप्रियासे कहते हैं कि 'प्रिये ! उस दिवस तुमने जो रूप प्रकट (व्यक्त) किया था उसका ध्यान करके ही मैं जीवित रहा, आज भी जीवित हूँ एवं आगे भी जीवित रहूँगा। उसने मेरी मैयाके मैयापनको बचा लिया। मेरी मैयाका मैयापन बचा, तो ब्रजगोपियाँ भी मुझे वात्सल्यदान दे सकीं और सम्पूर्ण ब्रजभाव ही बच गया।

श्रीकीर्त्तिकुमारीका यह रूप कोई सुष्ठु आकृतिका रूप

मात्र नहीं था, उनका यह रूप ह्लादिनी तत्त्वकी अभिव्यक्ति था। आनन्दतत्त्वका पुञ्जीभूत एकीकृत पूर्ण विग्रह था। वह पूर्ण रसमय था, पूर्ण आनन्दमय था, पूर्ण छविमय था, मधुरिमामय था, मोक्षतिरस्कारी दिव्य श्रीकृष्ण-सुखकारी था। वह रोम-रोमसे श्रीकृष्णको आकर्षित करनेवाला था। तभी उसका स्मरणकर श्रीकृष्णमें जीवनरसका संचार हुआ।

यहाँ यह ध्यान रहे श्रीकृष्ण ब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, भगवान् हैं। वे सच्चिदानन्दकन्द, स्वप्रकाश, अद्वय ज्ञानस्वरूप हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वग, अनन्त एवं विभु हैं। वे नराकृति परब्रह्म लीलामय भुवनमोहन श्रीविग्रह हैं। वे असमोर्ध्व, नित्य-नूतन प्रतिक्षण-परिवर्धनशील सौन्दर्य-माधुर्यके आकर हैं, वे विश्वविमोहन सर्वचित्ताकर्षक हैं। इन रोम-रोम-मधुर श्रीकृष्णको भी मुग्ध करनेवाला रूप श्रीराधारानीने उस दिवस व्यक्त करके अपना प्राकट्य किया था।

कोई भी व्यक्ति जब जीवन धारण करता है तो किसी आनन्द, रसको लेकर ही जीवित रहता है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरी संजीवनी औषधि तो श्रीराधारानीके उस रूपका प्रकाश था। श्रीकृष्णके प्रादुर्भावका कारण ही श्रीराधा हैं। श्रीराधाका प्रेम ही श्रीकृष्णकी जीवन-रसधारा है। श्रीराधाका सान्निध्य ही श्रीकृष्ण-जीवनका रस-लक्ष्य है। श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी जीवनीशक्ति हैं, उनकी आत्मा हैं, उनकी उपास्या, प्रेयसी और जीवनाधार हैं। क्या धवलताके बिना दूधकी सत्ता संभव है ? धवलता ही दूधका दुग्धत्व है, दाहिका शक्ति ही अग्निमें अग्नित्व है। इसी प्रकार श्रीराधा सहित श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं। श्रीराधा ही, उनका प्रेम ही श्रीकृष्णका कृष्णत्व बल है।

किसीके भी जीवनकी सत्ता तो आनन्दके कारण ही

टिकी रहती है। आनन्द न हो तो एक पल भी वह जीवित नहीं रहेगा। भला मिट्टी नहीं रहेगी तो घड़ा कैसे होगा, सोनेके बिना गहना कैसे संभव है ? इसी प्रकार श्रीकृष्णकी जीवनमूल तो श्रीराधाकी सत्ता ही थी। अतः श्रीराधारानीके इस प्रेममय रूपके प्रकाशसे ही भगवान् श्रीकृष्णकी ब्रजलीलाका भाव है – यही इन पंक्तियोंका अर्थ है। अब आगेकी पंक्तियोंमें भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रियाके अपूर्व अप्राकृत मूल सच्चिदानन्द शक्त्यात्मक रूपका वर्णन करते हैं। इस बातपर पाठकोंका पुनः ध्यान केन्द्रित करता हूँ कि इन सभी छन्दोंकी स्फूर्त्ति पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाको श्रीराधा- जन्म-लीला-दर्शनके मध्य हुई थी। ये शब्दोंकी तुकबन्दी नहीं हैं, अपितु लीलाप्रकाशके चिन्मय मंत्र हैं।

॥५१॥

कालके निर्लिप्त उरमें है छिपी जो स्निग्धता,
मृत्युके आवरणमें जो है मनोहर कृष्णता।
दो हृदय पावन मिलनमें है भरी जो वक्रता,
थी हुई अलकावलीमें इन सबोंकी एकता।।

हृदयेश्वरि ! एकाग्र होकर सुनो, देख लो, अनुभव कर लो ....कालके निर्लिप्त हृदयमें जो अद्भुत स्निग्धता छिपी है, मृत्युके आवरणमें जो मनोहर कृष्णता विराजित है, दो हृदयोंके पावन मिलनमें जो वक्रता परिपूर्ण है – इन तीनोंकी ही तुम्हारी अलकावलीमें एकता हो रही थी ।

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

यहाँ विचारणीय वस्तु है कि 'काल' किसे कहते हैं। हम प्राकृत विश्व दिन-रातके रूपमें कालका अनुभव करते हैं किन्तु यह तो पृथ्वीके अपनी परिधिमें घूमनेका परिमाण मात्र है। पृथ्वी जितने कालमें अपनी स्वयंकी परिधिमें एक बार घूमती है, उसीसे

सूर्यके सम्मुख आनेवाले भागमें दिन एवं सूर्यके परोक्षमें रहनेवाले भागमें रात होती है। इसी प्रकार सूर्यकी पूरी परिक्रमा पृथ्वी कर लेती है तो हमारे यहाँ वर्ष व्यतीत हो जाता है। इस पृथ्वीके परिक्रमा करने और तदनुसार हमारे शरीरोंमें होनेवाले वृद्धि-क्षयको देखते हुए हम कालका अनुभव करते हैं। हम समझते हैं कालने हमें शिशुसे बालक, किशोर, युवक, वृद्ध बनाया है। किन्तु वस्तुतः तनिक गंभीरतासे विचार करें तो इसमें कालका कोई लेना-देना नहीं है। कालका सम्बन्ध न तो जन्मसे है, न अभिवृद्धिसे है, न ही क्षयसे और न ही मृत्युसे। ये तो शरीरकी स्वतः अवस्थाएँ हैं, जो पृथ्वीकी सूर्यकी परिक्रमासे जुड़ी हैं। विकार तो क्रमशः स्वतः होता है, यह शरीरका स्वाभाविक परिणाम है। काल तो मात्र शून्य है, निष्क्रिय है, वह तटस्थ है। वह न आता है, न जाता है। उसमें गति है ही नहीं। वह एकरस शान्त है। वह निष्क्रिय है, निर्गुण है, निर्विशेष है। लोग समझते हैं कि काल जगत्‌के सृजन, विकास, ह्रास एवं विनाशमें हेतु है। किन्तु विचार करनेमें यही अनुभव होता है कि ये सब स्वतः गुणोंके द्वारा निष्पादित होते हैं। यह अवश्य है कि काल इन सबको अपने भीतर होता देखता रहता है, वह करता कुछ नहीं, निर्लिप्त द्रष्टा अवश्य है। कालका हृदय पूर्ण स्निग्ध है। परन्तु स्निग्धता भी विलक्षण निरपेक्ष है। स्निग्धता उसका स्वभाव है। वह निरतिशय घन शान्त, घन आनन्दरूप है। इसीलिये दार्शनिक काल एवं ब्रह्मको भिन्न नहीं मानते। कालको जड़तामें अध्यस्त करलो, तो वह ब्रह्मसे भिन्न लगेगा, किन्तु उसे हम जड़त्वसे पूर्णतया मुक्त मानलें तो काल ही चेतन ब्रह्म है। उसके अणु-अणुमें तब हमें असीम निर्लिप्त स्निग्धता दृष्टिगोचर हो जायगी।

इसी तत्वका प्रकाश करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं

–"प्राणेश्वरी! जन्मके समय तुमने जो अपनेमें अपूर्व सौन्दर्यका प्रकाश किया था, उस समय तुम्हारी शिशुसुलभ सुकोमलतम कृष्ण-कुंचित अलकावलीमें जो स्निग्धता थी, उसकी तुलना तत्कालीन कालगत स्निग्धतासे कुछ-कुछ की जा सकती है। पूर्णतया तो तुम्हारे केशोंकी स्निग्धता अतुलनीय ही थी। हाँ, वह कालगत स्निग्धतासे एकता स्थापित अवश्य कर रही थी।"

इसी प्रकार श्रीकृष्ण आगे कहते हैं– "प्राणेश्वरी ! महाप्रलयके समय जब कुछ भी शेष नहीं रहता; सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रमण्डल – सभी सृष्टि विलुप्त हो जाती है; पृथ्वीतत्व जलतत्वमें, जलतत्व अग्नितत्वमें, अग्नितत्व वायुतत्वमें, वायुतत्व आकाशतत्वमें, आकाशतत्व महत्तत्वमें, महत्तत्व अहंकारमें और अहंकार मुझ परमात्मामें लीन हो जाता है; उस समय सब प्रकाशोंके अभावमें एक विलक्षण घनघोर कृष्णता ही सर्वत्र व्याप्त रहती है। यह कृष्णता मुझ स्वप्रकाश परमात्मासे जुड़ी होनेसे अतिशय मनोहर होती है। इस कृष्णताके अणु-अणुसे मेरा विशुद्ध सत्वमय स्वरूप प्रकाशित होनेसे इसकी शोभा और मनोहरता विलक्षण ही होती है। हे प्राणप्यारी ! उस मनोहरतासे तेरी अलकावलीकी उस समयकी मनोहरता कुछ साम्यता कर रही थी; वस्तुतः तो उसकी मनोहरता निरुपम थी।"

"हे प्रिये ! सृष्टिमें सभीके अहंकार पृथक्-पृथक् होनेसे जीवोंके स्त्री-पुरुषके रूपमें शरीर तो भले ही मिलें किन्तु सच्चे अर्थमें हृदय तो मिल ही नहीं पाते। प्राणप्यारी ! एक तुम ही ऐसी हो जो किञ्चित् भी पृथक् अहंकार नहीं रखनेसे सर्वथा सर्वांशमें मुझसे अपना हृदय मिलाती हो, जोड़ती हो। तुमसे जब मेरा पावन मिलन होता है, उस समय तुममें किञ्चित् मान रहता है। यह तो अनादि नियम ही है, रसकी परिपाटी ही है कि मानके

पश्चात् ही प्रणयका प्रवेश प्रीति-रंगमञ्चमें हो। अतः हमारे दोनोंके हृदयोंके परस्पर मिलते समय एक अतिशय सरस चिन्मयी वक्रता भरी रहती ही है। हे हृदयेश्वरी ! इस परम सरस वक्रताकी झलक भी मुझे तुम्हारी अलकावलीमें प्राप्त हो रही थी, यद्यपि सर्वथा सर्वांशमें तो तुम्हारी अलकावलीकी कहीं कोई साम्यता संभव ही नहीं।"

॥५२॥

है क्षणिक संयोग यह, भावी विरहके ध्यानसे
हो पुनः तन्मय, कहाँ प्रियतम गये, इस तापसे
कल्पना जलकर बनी तेजोमयी, कवि-पाशसे
मुक्त हो उड़ आ जुड़ी थी मूल उज्ज्वल भालसे ॥

ओह ! यह मिलन तो क्षणिक है । उस कल्पनाके अनन्तर, भावी विरहका ध्यान होकर पुनः एक तन्मयता आ जाती है, और फिर तत्क्षण ही प्रियतम कहाँ गये – इस चिन्तनसे एक ज्वालाकी भट्ठी जल पड़ती है । उस भट्ठीमें सम्पूर्ण कल्पनाएँ जलकर तेजोमयी बन जाती हैं। कविका पाश ढीला हो जाता है। वह उन्हें अपने पाशसे बद्ध रखनेमें अक्षम हो जाता है । कल्पनाएँ मुक्त होकर उड़ चलती हैं । वही बात संघटित हुई थी आज यहाँ भी। कविकी सम्पूर्ण कल्पनाएँ जलकर, तेजोमयी होकर, कविपाशसे उन्मुक्त होकर उड़ती हुई आयी थीं और अपने मूलदेश – तुम्हारे उज्ज्वल भालसे जुड़ गयी थीं ।

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

"हे प्राणप्रिये ! उस दिवसकी घटना स्मरण करो जब अकस्मात् ही सारिका मुझे तुम्हारे पास ले आयी थी, और तुम मेरे मिलनकी तीव्र उत्कण्ठावश मध्याहमें ही अभिसार हेतु कुंजमें चली आयी थी। ओह ! वह तुम्हारे मिलनकी सरसता मुझे भुलाये नहीं

भूलती। तुम मुझसे क्षणभर भी तो नहीं मिल पायी थी कि तुम्हारे हृदयमें प्रेम-वैचित्यका निर्मल भाव उदय हो गया था। इस निर्मल भावमें मेरे अंकमें विराजित ही तुम भावी विरहका ध्यान करती "ओह ! प्रियतम चले गये" इस विरहज्वालासे प्रज्ज्वलित हो उठी थी। ओह ! इस विरह तापकी ज्वाला, जो उस समय मेरी उपस्थितिमें ही तुम्हारे हृदयमें धधक उठी थी, उसकी कल्पना भी यदि कोई कवि करले, तो उसकी कल्पना भी उस विरहज्वालामें जलकर अत्यन्त तेजोमय दैदीप्यमान हो उठे। वह दैदीप्यमान कवि-कल्पना अपने कल्पक कविके पास उसके हृदय-मनमें तो रह ही नहीं सकती। क्योंकि कवि यदि उस कल्पनासे अपनेको सम्बद्ध रख ले, तो वह और उसका हृदय – दोनों ही उस विरहकी ज्वालामें धधक उठें। अतः वह दैदीप्यमान कल्पना कविसे मुक्त होकर कहीं दौड़ पड़ती है । वह अब भला कहाँ जायगी ? जैसे जल अग्निके द्वारा तप्त किये जानेपर अपने मूल वायुतत्वसे मिलनेसे वाष्प हो जाता है, उसी प्रकार वह दैदीप्यमान कल्पना भी अपने मूल – तेरे भालसे ही संलग्न हो जाती है। तेरे दैदीप्यमान भालसे संयुक्त होकर ही वह अपनेको कृतकृत्य अनुभव करती है। क्योंकि तेरे जैसा तेजस्वी दिपदिपाता भाल अन्य किसीका तो संभव ही नहीं । प्रिये ! विश्वको समग्र दैदीप्यमानता तो तेरे तेजस्वी भालके एक कणसे ही तो प्राप्त होती है।

।।५३।।

प्रकृति हो चंचल चली बाहर निकल आवाससे,
ढूँढ़ने जिसने जगाया था उसे छू नींदसे।
सत्वने दीपक दिखाया व्यक्त होकर आँखसे
और रजने कर दिया पथ पुष्पमय झर हाथसे ।।

मेरे प्राणोंकी रानी ! किञ्चित् समाहित चित्तसे सृजनके आदिमें होने वाले खेलकी ओर दृष्टि डाल लो । तुम्हें स्मरण होगा

ही – प्रकृति चंचल होकर अपने आवाससे बाहर निकल आयी थी। वह उसे ढूँढ़ने निकली थी, जिसने उसे छूकर नींदसे जगा दिया था । उस समय आँखोंसे व्यक्त होकर सत्वने उसको दीपक दिखलाया था और रजने हाथसे झर-झरकर पथको पुष्पमय बना दिया था।

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

महाप्रलय तभी होता है जब प्रकृति (जीव) – अज्ञान (जड़ता) एवं चिदाभासके संयोगसे उत्पन्न मायाकार्य अपने रजोगुणी प्रवाहसे उत्पन्न सर्वक्षोभोंसे त्रस्त, थक-चूर होकर मुक्त होनेकी लालसामें शयित होनेका संकल्प कर लेती है। प्रकृतिका अज्ञान-निद्रामें अभिभूत होना ही महाप्रलय कहलाता है। उस समय ऊर्ध्व, मध्य एवं अधः –तीनों लोक (त्रिलोकी) एवं चतुर्दश भुवनसहित समग्र ब्रह्माण्ड अपने कारणोदधिमें लीन हो जाता है। इस सोयी प्रकृतिको परमात्मा श्रीकृष्णका संकल्प ही जगाता है। यह प्रकृति कोई अन्य तो है नहीं, परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी आत्ममाया श्रीराधाका ही त्रिगुणात्मक अज्ञानप्रधान जड़ पंचभूतात्मक कलेवर है। अतः श्रीकृष्ण इसे अपनी प्रेयसी ही मानते हैं। वे तो इसमें अनुस्यूत अपनी प्रिया श्रीराधाको ही देखते, अतः उसीसे बात करते हैं। उनकी दृष्टि ही सर्व राधामयी है। अतः वे कहते हैं – प्रिये ! देखो न ! कालके पंखोंसे उड़कर तनिक महाप्रलयके सृष्टि-प्रारंभके पूर्वके वर्षोंकी ओर अपना ध्यान ले आओ न ! उस समय तुम प्रकृतिरूपा जीव बनी घोर निद्रा(अज्ञान) में लीन थी। उस समय तुम्हारी ऐसी दशा हो गयी थी कि तुम मुझे (सबके साक्षी, सर्वाधार परमात्माको) भी पूर्णतया विस्मरण कर गयी थी। भला, यह मैं कैसे सह पाता। उस समय विशुद्ध ज्ञानस्वरूप मुझ परमात्माने तुम्हें संस्पर्श किया। प्रिये ! यह तो

तुम भली प्रकारसे जानती हो कि मुझ ज्ञानस्वरूप परमात्माके संस्पर्श (चिदाभासके संयोग)से ही प्रकृतिमें सृजन संभव है। बस, मेरे (ज्ञानके) किञ्चित् संस्पर्शने तुझ प्रकृतिको निद्रासे (घोर अज्ञानान्धकारसे) जगा दिया। तुम मुझ जगानेवाले परमात्माको ढूँढने चली। सत्व, जो तुम्हारे नेत्रोंमें ही नित्य निवास करता था, उस समय नेत्रोंसे बाहर आ गया, और उसने निर्गत होकर तुम्हें दीपक दिखाया। परन्तु वह तो प्रकाशमय ही था, उसमें क्रियाशीलता, गति तो थी नहीं। खोजके लिये तो गति (रजोगुण)की आवश्यकता थी। अतः तुम्हारे हाथोंमें नित्य निवास करनेवाले रजोगुणने प्रकट होकर तुम्हें गति दी, साधना कर्म करनेको उत्सुक कर दिया। प्रिये ! तुम प्रकृतिरूप बनी उस समय सतोगुणके प्रकाश और रजोगुणकी क्रियाशक्ति लेकर मुझे खोजने चल पड़ी। मुझे खोजनेकी साधनाका पथ तो सुखमय होना स्वाभाविक ही था। अतः उस पथमें रजोगुण द्वारा पद-पदपर तुम्हें फूल बिछाये मिले।

॥५४॥

दूर कुछ चलकर तथा बैठी कहीं अभिसारसे
श्रान्त, अँगड़ाई लगी लेने, पलककी ओटसे
हो उपस्थित, अंकमें तमने उसे भर लाड़से
पोंछकर मुख, था सुलाया, था बचाया शोकसे ॥

कुछ ही दूर चलकर, अभिसारके परिश्रमसे थककर प्रकृति बैठी थी, बैठकर अँगड़ाई लेने लग गयी थी। उसी समय पलककी ओटसे चुपचाप उपस्थित होकर, अंकमें भरकर तमने उससे लाड़ लड़ाना प्रारंभ किया था, उसका मुख पोंछकर उसे सुला दिया था उसने और इस प्रकार उसको शोक-संतापसे बचा लिया था ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

मैं तुमसे दूर तो सर्वथा ही नहीं था। साक्षीरूपसे तुम्हारे अणु-अणुमें मैं निहित था ही, वस्तुतः तुम्हे अपनी गोदमें ही लिये था, किन्तु प्रिये ! मैं किसी साधनागत पुष्ट अहंकारसे तो प्राप्त हो नहीं सकता था। साधनाकर्म करते-करते जब कोई थककर मेरी शरणागति ग्रहण करता है, तभी मैं भले ही किसीके पावन दृष्टिपथमें आऊँ। अस्तु प्रिये ! अज्ञानप्रधान आभासमयी वह प्रकृति अपने रजोगुणका बल लेकर एवं सतोगुणके प्रकाशमें मुझे ढूँढते-ढूँढते थक गयी। हाँ, इसी मध्य उसने मुझसे मानसिक संयोग (अभिसार) अवश्य सम्पादित कर लिया। और इस मानसिक ध्यानजन्य मिलन (अभिसार)से वह पूरी थक चुकी थी। ध्यान भी कर्म होनेसे उसके लिये परिश्रम ही तो था। उसका रजोगुण तो निरस्त हो ही गया था। उसने अपनी पलकोंमें निहित तमोगुणको बाहर आनेका संकेत कर दिया। तमोगुण प्रकट हुआ और उसने अस्तमित रजोमयी प्रकृतिको पहले तन्द्रामें भर दिया। अर्थात् तमोगुणने उसका लाड़ लड़ाना प्रारम्भ कर दिया। फिर उसके मुखपर सत्वकी क्षीण-सी आभा, किञ्चित्-सी तन्द्राजनित जाग्रतिकी लेशमात्र आभा शेष थी, उसे भी पौंछकर, मिटाकर उसे पूरा तमसावृत कर लिया। इस प्रकार वह रजोगुणजन्य सारे श्रम-संतापसे पूर्णतया मुक्त हो गयी।

।।५५।।

देखने सपना लगी वह, मिल गया पर रोषसे
भ्रू हुए कुंचित न भेंटी दौड़करके कण्ठसे।
छू चरण उसने कहा, अँगुली अड़ाकर गालसे
मैं प्रतीक्षामें खड़ा था पूर्व ही आगमनसे।।

वह सपना देखने लग गयी थी – अहा, हा ! यह देखो!

प्रियतम तो मिल गये, किन्तु तुरंत ही उसकी आँखोंमें रोष भर आया, भ्रू कुञ्चित हो उठे। उसने दौड़कर प्रियतमको कण्ठसे नहीं लगाया । प्रियतमने उसके चरणोंका स्पर्श किया और उसके कपोलोंसे अपनी अँगुलीका स्पर्श कराकर उससे बोले – 'मैं तो तुम्हारे आगमनसे पूर्व ही तुम्हारी प्रतीक्षामें खड़ा था'।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

अब वह प्रकृति इसी तमोगुणी निद्रा एवं तन्द्राको ही मेरा मिलन मान बैठी। इसी तमोगुणकी प्रवाहजन्य सघनतामें जब थोड़ा-सा भी परिवर्तन होता, तो उस परिवर्तन-संध्यामें क्षीण सत्वके उदयसे उसमें स्वप्नाभास होने लगता। उसमें मेरी स्मृतिके चित्र उभरकर व्यक्त हो उठते। इन्हें वह मेरा मिलन मान बैठती और स्वप्निल कल्पना कर उठती–"ओह ! प्रियतम तो मिल गये। क्षीणतम सत्वके तमोगुणमें उदय होनेको ही वह शान्ति और आनन्द मान बैठती। हाँ ! यह अवश्य था कि निद्रा एवं जाग्रतिके संध्याकालमें कुछ क्षणोंके लिये उसे मेरी झलक प्राप्त होती थी। वस्तुतः उसे छोड़कर मैं कहीं गया तो था ही नहीं। किन्तु इस निद्रा एवं जाग्रतिके मध्य संध्याकालके मेरे मिलनके समय भी वह मुझसे मानकर सदैव रूठी रही। मानमें भरी वह जब मेरे इस संध्याकालके आगमनको पहचान ही नहीं पायी तो दौड़कर मुझे कण्ठसे लगानेका तो प्रश्न ही कहाँ था।

परन्तु प्रिये ! तुम तो हेतुरहित प्यारके रूपमें मेरे भीतर नित्य निवास करती ही हो। तुम्हारी अकारण करुणासे संप्रेरित मैंने इसके चरणोंका संस्पर्शकर इसे जगाया। मेरे द्वारा चरणोंसे संस्पर्श किये जानेपर यह घोर तमोगुणावेशसे निवृत्त हो जागी तो अवश्य, परन्तु फिर भी इसे मेरी पूर्णानन्दमयी नित्य सन्निधिका बोध नहीं हुआ। मेरा पूर्ण प्रत्यक्ष बोध करानेके लिये मैंने इसके

कपोलोंसे अपनी अँगुलीका संस्पर्श कराया। मेरे द्वारा इसके चरणोंके संस्पर्श होनेसे इसका अज्ञान दूर हुआ और मेरी अँगुली द्वारा इसके कपोलोंके संस्पर्शसे इसे मेरा तत्वबोध, नित्य उसमें ही समाहित, संलग्न मेरी ज्ञानमयी सत्ताका बोध हो गया। उसे अब ठीक अनुभव होने लगा कि चाहे वह कितनी, कैसी ही अधम मलिन हो, वह है मुझसे नित्य संयुक्त, मिलित एवं पूर्णतया आलिंगित।

अब तो उसका सारा मान, रूठना जाता रहा। मैं तो विश्वमें अपना समग्र दृश्य तुमसे ही समावृत मानता हूँ। तुम द्रष्टा तो मैं दृश्य, और मैं द्रष्टा तो तुम दृश्य। मेरी तो यही सदैव सुदृढ़ एवं अखण्ड अनुभूति रही है। अतः मैं प्रकृतिको तुम्हारा ही स्वरूप मानकर उससे बोल उठा–"प्रिये ! मैं तो तुम्हारे अज्ञानसे जगनेके (आगमनके) पूर्व ही तुम्हारी आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था।"

॥५६॥

बात उसकी सत्य थी, अतएव विरहित-मानसे
हो लगी सुनने वचन उसके मधुर अवधानसे।
बंद दृग सुस्थिर हुए अब रूप निरुपम भारसे
प्राणगत वे प्राण भी प्रियमें मिले बन एक-से॥

प्रियतमकी बात सत्य थी । प्रकृतिका मान टूट गया, वह बड़े ध्यानसे, प्रियतमकी मधुर वाणीको सुनने लगी । इतनेमें प्रियतमका निरुपम रूप उसकी आँखोंके अन्तरालसे जादू करने लग गया – उसके दृग बंद हो गये, सुस्थिर हो गये । और तो क्या, घ्राणसे निस्सरित होनेवाले प्राण भी प्रियतममें जाकर मिल गये – एकमेक बन गये दोनोंके प्राण ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

अब तो उसने निस्सन्देह मेरी उक्तिकी सत्यताको स्वीकार

कर लिया। उसका मान भंग होगया। वह मेरी वाणीकी मधुरतामें डूब गयी। बस ! जैसे ही वह मेरी ओर सर्वेन्द्रियसे उन्मुख हुई उसके हृदयमें मेरा निरुपम रूप प्रकट हो गया। मेरे अलौकिक रूपकी छटा और उसके आकर्षणसे मुग्ध हो उसने अपना सब बाह्यावेश निवृत्त कर लिया। अपने बाहरके नयनोंको मूँद वह अन्तर्मुखी हो उठी। उसकी बहिरिन्द्रियोंका विषयगत आकर्षण ही समाप्त हो गया। इन्द्रियोंके द्वारा चंचल किया गया उसका मन जो विषयोंके पीछे अबतक भाग रहा था, अन्तर्मुखी होनेसे सुस्थिर हो गया। प्राण और मन स्वाभाविक ही एक दूसरेसे जुड़े रहते ही हैं। अतः मनके निगृहीत होते ही प्राण बिचारे कहाँ जाते ? मन ही मनमोहनसे जब युक्त हो गया तो प्राणोंको भी पूर्ण रसनिधान अपने प्रेमास्पदसे एकात्म होना ही था। अतः जैसे बिन्दु सिन्धुसे एक हो जाती है, उसके प्राण मेरे प्राण ही हो गये।

॥५७॥

वंकिमा, एकाग्रता, निस्पन्दता प्राणेशसे
प्राणकी एकात्मता उसमें हुई जो रागसे
थी मिली उसको वहींसे, नृपसुताके पाससे,
भौंहसे, श्रुतिसे, नयनसे और नासा-श्वाससे।।

इस प्रकार एक अ ुत बंकिमा, अप्रतिम एकाग्रता, निरुपम निस्पन्दता और अपने प्राणेश्वरसे प्राणकी उत्कृष्टतम एकात्मता – जो अचानक रागके बढ़ते हुए प्रवाहके कारण उसमें आविर्भूत हो गयी थी, ये सब-की-सब चीजें, अहा ! उसे तुम वृषभानुनृपनन्दिनीसे, तुमसे, तुमसे ही प्राप्त हुई थीं, तुम्हारी भौंहोंसे, तुम्हारे श्रुतियुगलसे, तुम्हारे नयन-सरोरुहोंसे, तुम्हारे नासाश्वाससे ही उसे यह अप्रतिम दान मिला था भला !

(तात्विक विवेचन-विस्तार)

प्रिये ! मैं यह अनुभवकर चकित था कि मानके समय जो उसमें (मानजन्य) बंकिमाका उदय हुआ था, वह दान उसे तेरी भौहोंसे ही मिला था, उसमें जो अन्तर्मुखताजन्य एकाग्रता प्रकट हुई थी, वह तुम्हारी युगल श्रवणेन्द्रियोंसे उसे दानरूपमें प्राप्ति हुई थी; और उसमें जो निरुपम निस्पन्दता व्यक्त हुई थी वह तुम्हारे नयन-युगलसे और अपने प्राणेश्वर मुझसे उसमें जो उत्कृष्टतम एकात्मता हुई थी, वह उसे तुम्हारे नासा-श्वाससे अप्रतिम दानके रूपमें मिली थी।

।।५८।।

विश्वका होकर विलय जब था अँधेरा आ भरा,
जीवका वह नित्य सी भी अहं मानो मरा,
प्राज्ञ-तैजस रूपमें मिल-मिल बना था बावरा,
मित्र उसका एक था पर साथ सोना-सा खरा।।

प्राणेश्वरि ! सुनो ! महाप्रलयकी बेला थी । सब ओर अंधकार भरा था। जीवका नित्यसंगी उसकी अहंता मानो मर-सी गयी थी । जब चेतनताका यत्किञ्चित् विकास होता, तब भी वह विक्षिप्त-सा ही बना रहता । कभी प्राज्ञमें मिलकर, कभी तेजससे एकात्मता स्थापितकर वह कुछ-का-कुछ बनता जा रहा था । उस समय उसका एक मित्र अवश्य ही उसके साथ था – खरे सोने के सदृश था वह मित्र ।

(तात्विक विवेचन– विस्तार)

शास्त्रोंमें चार प्रकारके प्रलयका वर्णन आता है। जगत्‌के कालमानमें एक हजार चतुर्युगी अर्थात् ४३,२०,००० वर्ष व्यतीत हो जानेपर ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीका एक दिन समाप्त होता है। कलि, द्वापर, त्रेता एवं सत्ययुग – चारों युगोंके कालको एक चतुर्युगी

सखी श्रीतुङ्गविद्याजी

कहा जाता है। कलियुग चार लाख बत्तीस हजार वर्षका एवं इसके पश्चात् कलिसे द्वापर दुगुना, त्रेता तिगुना, एवं सत्ययुग चौगुना होता है। इस प्रकार ब्रह्माजीकी जब रात्रि प्रारंभ होती है तो प्रलय होता है। इसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। यह नैमित्तिक प्रलय भी लौकिक गणनानुसार ४३,२०,००० वर्षका ही होता है। ब्रह्माजीकी आयुके सौ वर्ष व्यतीत होनेपर महाप्रलय होता है। पू. गुरुदेव इस चौपदेमें महाप्रलयकी बात कह रहे हैं। नैमित्तिक प्रलयमें तो ब्रह्माजी विश्वको अपने अन्दर लीन भर करते हैं, और सो जाते हैं, किन्तु महाप्रलयमें तो महत्तत्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा – ये सातों प्रकृतियाँ ही अपने कारण मूल प्रकृतिमें लीन हो जाती हैं। इसको प्राकृतिक प्रलय भी कहा जाता है।

इस प्राकृतिक प्रलयके समय जल पृथ्वीके विशेष गुण गन्धको ग्रस लेता है। पृथ्वी जलमें घुलमिलकर लीन हो जाती है। यह जलरूप ही बन जाती है। इस प्रकार पृथ्वीका प्रलय हो जाता है। तब जलके गुण रसको तेज तत्व ग्रस लेता है। इस प्रकार पृथ्वी और जल जाज्वल्यमान तेजपिण्ड बन जाते हैं। फिर तेज गुणको वायु अपनेमें लीन कर लेता है। और तब वायु भी शून्य आकाशमें मिलकर शून्य हो जाता है। शून्य तामस अहंकारमें मिल जाता है। अहंकार महत्तत्वमें एवं महत्तत्व अपने गुण सत्त्वमें लीन हो जाता है। तब मूल अव्यक्त प्रकृति सत्वादि गुणोंको भी ग्रस लेती है। उस समय जगत्का मूल कारण प्रकृति ही शेष रहती है। पू.गुरुदेव इसी अवस्थाका वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस समय जीवका नित्य संगी अहंकार भी मानो मर जाता है। उस समय यह अहंकार कभी तो प्राज्ञावस्थामें घोर सुषुप्तिजन्य अन्धकारमें लीन रहता है, अथवा किञ्चित् स्फुरणा होती है तो तैजस् अवस्थामें स्वप्निल -सा रहता है। अव्यक्त प्रकृतिके रूपमें एकमेक

यह अहं – जैसे कभी आकाशमें बादल होते हैं और कभी नहीं – इसी प्रकार जब यत्किञ्चित् चेतनाका विकास होता है तो कभी अव्यक्तमें स्फुरित होता है और कभी घोर निद्रामें सो जाता है। यही इसकी प्राज्ञ (सुषुप्त) एवं तैजस् (स्वप्नमयी) अवस्था है। इस अवस्थामें भी इस अहंकारका मित्र परमात्मा जो सोने-सा खरा है, इसका साथ नहीं छोड़ता। वस्तुतः यह अहंकार अपने अधिष्ठान परमात्मासे भिन्न कोई पृथक् वस्तु नहीं है। कोई चाहे भी तो आत्मासे भिन्न रूपमें इसका अणुमात्र भी निरूपण नहीं कर सकता। इसकी पृथक् सत्ता यदि देखी भी जाय तो यह भी चिद् रूप आत्माके समान स्वयंप्रकाश ही तो होगा और ऐसी स्थितिमें अहं और आत्मा दो नाम भले ही रख लो, तत्व तो एकरूप ही सिद्ध होगा।

पू.गुरुदेव इसीलिये यहाँ अहंकारके मित्रको सोने-सा खरा कहते हैं। जैसे व्यवहारमें मनुष्य एक ही सोनेको अनेकों रूपोंमें गढ़-गलाकर तैयार कर लेता है एवं उसके वह कंगन, कुण्डल, कड़ा आदि अनेक नाम रख लेता है। किन्तु वे कंगन, कुण्डल, कड़े आदि स्वर्णसे भिन्न कहीं कुछ भी नहीं होते, उसी प्रकार अहंकार परात्पर परमात्मा ही होता है। भक्तिभावसे ही उसे परमात्माका मित्र यहाँ कहा गया है। वैसे अहंकार मात्र परमात्मामें उपाधिभर है। तत्वतः तो परमात्मा-ही-परमात्मा है। इसीसे सोने-सा खरा उसका मित्र परमात्मा ही उस समय भी उसके साथ रहता है।

।।५९।।

उस अमाके नील अंचलमें छिपा विश्वास था
आ मिलेगी ही उषा, उसको तनिक संशय न था।
ओठ गालोंपर अतः जो फुल्लताका चिह्न था,
भाल था प्रतिबिम्ब उन अधरों-कपोलोंका तथा।।

हृदयेश्वरि ! सच्ची बात है, सर्वत्र अँधेरा-ही-अँधेरा होनेपर भी उस अमाके नीले अंचलमें छिपाहुआ विश्वास उसका साथ न छोड़ सका था। खरे मित्रकी भाँति उसके प्राणोंमें यह विश्वास ही नवीन-नवीन उल्लासका सृजन कर देता था – अरे ! अँधेरा निश्चित ही मिट जायेगा, उषा निश्चय ही उसका स्वागत करने आयेगी ही। उसके परम सखा विश्वासमें तनिक भी संशयकी छाया-की-छायातक नहीं थी भला ! इसीलिये उसके होंठपर, गालोंपर जो फुल्लता नाच उठती थी, स्पष्ट दीख जाते थे फुल्लताके चिह्न – यह सब सचमुच तुम्हारे अधरों, कपोलोंकी विकसित फुल्लताका ही प्रतिबिम्बमात्र था, प्राणेश्वरि !

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

यद्यपि उस कालमें दृश्यरूपमें अहंकारके सम्मुख अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था, किन्तु उसे इस घोर कालरात्रिरूपा अमासे कहीं कोई भय नहीं था। उसके हृदयमें सुदृढ़ विश्वास था कि उसका जो नित्य संगी परमात्मा उसके साथ है, वह पूर्ण, प्रकाशस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है। उस परमात्माकी आनन्द एवं प्रकाशस्वरूपताकी स्मृतिमें, साथ ही उसे अपना सुहृद, नित्यका साथी समझ अहंकार नवीन-नवीन उल्लाससे क्षण-क्षणमें भर उठता था। वह सोचने लगता –" दृश्य तो परिवर्तनशील क्षणभंगुर होता ही है। वह एकरस सदैव नहीं रह सकता। आज अँधेरा है तो कल प्रकाश होगा ही। उषा सुन्दरी इस निशाके पश्चात् अवश्य ही उसका स्वागत करेगी।"उसके विश्वासमें कहीं कोई सन्देहकी लेशमात्र भी छाया नहीं थी। इसलिये उसके होठोंपर कपोलोंपर प्रफुल्लता नाच उठती थी। श्रीकृष्ण कहते हैं – हे प्राणेश्वरी ! उस समय इस अहंकारकी प्रफुल्लताके मूल उद्गमरूपमें मुझे तुम्हारे कपोलों एवं अधरोंपर नित्य अखण्डरूपसे विकसित

रहनेवाली प्रफुल्लताकी छाया ही दृष्टिगोचर हो रही थी। इस अहंकारको यह तुम्हारा अप्रतिम दान था।

॥६०॥

कौन मनसिज-सा खड़ा था कौन थी रति-सी अभी
लिप्त इस संकल्पसे थे क्षुब्ध देवी-देव भी।
कामका ध्वज थे लिये अणिमादि-साधक-सिद्ध भी
है नहीं यद्यपि कहीं कमनीयताका लेश भी॥

अहो ! जीवनकी कैसी भ्रान्त दशा होती है ! क्या-से-क्या वह सोच लेता है । प्राणेश्वरि ! तनिक सोचकर देखो – कोई सुन्दर युवक खड़ा है, कोई सुन्दर युवती खड़ी दीख गयी । बस, भ्रान्त जीव भूल जाता है, इतनेमें ही अपनेको, अपने स्वरूपको । सोचने लगता है – अभी यहाँ कौनसा व्यक्ति कामदेवकी भाँति सुन्दर खड़ा था ? कौन था वह ! और वह जो अभी युवती थी, वह कौन थी ? रतिके समान सुन्दरी थी वह ! जीवन इस भाँति संकल्प करके क्षुब्ध हो उठता है, प्राणोंकी रानी ! अभी-अभी तुम्हारे अवतरणसे पहले प्रायः सबकी दशा ऐसी ही थी, देवी-देवता भी इस संकल्पमें डूबते-उतराते हुए अत्यन्त क्षुब्ध हो रहे थे । कामकी ध्वजा लिये, अणिमादि साधक भी, सिद्धतक भी चंचल हुए घूम रहे थे – यद्यपि यहाँ कमनीयताकी गन्धतक भी नहीं है । लेश मात्र भी, कहीं भी सौन्दर्यकी कोई भी सत्ता नहीं है। तब भी इस प्रकारकी आँधीमें सभी बह रहे थे ।

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

इस चौपदेमें कामान्धताका वर्णन है। यह अन्धता भी विलक्षण है। संसारमें अन्धता रोग होनेपर कुछ नहीं दीखता। अन्धकार-ही-अन्धकार अन्धे व्यक्तिका दृश्य होता है। किन्तु कामान्ध व्यक्तिको मलिनतम वस्तु सुन्दर चित्ताकर्षक अनुभव होती है।

मैंने सुना है, पुष्कर तीर्थमें पहले एक महात्मा रहते थे। वे प्रायः लम्बे-लम्बे दीर्घकालिक उपवास किया करते थे। ऐसा नहीं कि किसी विशेष पर्व एकादशी-पूर्णिमादिको ही वे उपवास रखते हों। अकस्मात् ही वे घोषणा कर देते कि आजसे हमारा उपवास है, और फिर तीन-चार-पाँच और कभी-कभी तो सात दिन-आठ दिन वे कुछ भी आहार नहीं लेते। वे किसीको भी अपने उपवासका हेतु नहीं बतलाते थे।

एक दिवस एक साधुने जो उनका बहुत अन्तरंग था, उनसे बहुत एकान्तमें उनके उपवास करनेका हेतु पूछा। महात्माजीने जो रहस्य बताया वह भी विलक्षण था। महात्माजी कहने लगे – मैं प्रातःकाल नियमसे पुष्कर सरोवर स्नानार्थ जाता हूँ। रास्तेमें घाटके पास ही बने एक मन्दिरके आगे एक अस्सी-पचासी वर्षकी बुढ़िया भीख माँगती रहती है। वह दमाकी मरीज है और हर किसीके सम्मुख ही खाँसीमें उलझी कफ-थूक उगलती रहती है। वह रंगमें काली-कलूटी है और उसके मुखकी सभी हड्डियाँ उभरी हुई हैं। मात्र दो-चार टेढे-मेढे दाँत उसके मुखमें हैं और वे भी अतिशय मैलसे भरे हैं। पायरियाके कारण उसके मुखसे दुर्गन्ध आती है। किन्तु आश्चर्य है कि इसके उपरान्त भी कभी-कभी वह मुझे सुन्दर दिखने लगती है। वह मुझे आकर्षित भी कर लेती है और खाँसीमें उलझे उसे देखकर मेरा मन कभी-कभी उसे स्पर्श करनेको इतना आकुल हो जाता है कि मैं उलझी खाँसीमें उसकी सहायता करनेके बहाने उसकी पीठ सहलाने लगता हूँ।

भाई ! जिस दिन ऐसा होता है, उसी दिवससे मैं उपवास करने लगता हूँ और तबतक आहार लेना बन्द रखता हूँ जबतक वह बुढ़िया मुझे पुनः घृण्य, कुरूप और मलिन नहीं लगने लगती है। मैं उस बुढ़ियामें रमणीयताका बोध होते ही समझ जाता हूँ

कि मुझमें कामान्धताका प्रादुर्भाव हो गया है। उसे रोकनेके लिये उपवास करके शरीरको निर्बल कर लेना ही मुझे उपाय समझमें आता है।

उपरोक्त घटनासे यही समझमें आता है कि कामान्धता मनुष्यको इस अंशमें अन्धा नहीं बनाती कि उसे कुछ भी नहीं दिखे। वह तो उसे घोर मलिनतामें सौन्दर्य एवं रमणीयताका बोध कराके मलिनतम, मृत्युमय, जड़ एवं प्राकृत देहमें बाँध देती है। वह घृण्य, रोग-शोकमय देहमें आसक्त करती है।

पू.गुरुदेव इस चौपदेमें अपने परमाराध्य श्रीकृष्णके मुखसे इसी तथ्यका प्रकाश करवा रहे हैं। श्रीकृष्ण आगेकी पंक्तियोंमें कहते हैं कि इस कामके संकल्पसे मृत्युधर्मा मनुष्य ही नहीं, दिव्य तेजोमय देहधारी देवी-देवतातक क्षुब्ध हैं। जो उच्च कोटिकी तीव्र तपश्चर्या करके अणिमा-महिमादि सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, ऐसे साधक और सिद्ध – दोनों कोटिके तपस्वी भी इस कामदेवसे पराजित हैं और उसकी ध्वजा अपने हाथोंमें उठाये हैं। किसीका ध्वज ग्रहण करना उसका आधिपत्य स्वीकार करना ही होता है।

॥६१॥

हैं अहो ग्रीवा, भुजा, हृद्देश, नाभि, कमर,चरण
पुष्पनिर्मित,लुब्ध ऐसे दुःख करते थे वरण,
भूल जीवन-मूलको, उनका मिटा अब संसरण।
हे दयामयि ! हो प्रगट तुमने बचाया, दी शरण॥

अहा ! देखो सही ! इसकी ग्रीवा कितनी सुन्दर है ! भुजा, हृद्देश कितने मनोहर हैं ! नाभि, कमर, चरण, सब-के-सब मानो फूलोंसे बने हैं । इस प्रकार सब-के-सब संकल्पके झंझावातमें पड़कर, उससे लुब्ध होकर दुःखको ही वरण कर रहे थे । दुःख ही उनके हाथ लगता था, क्योंकि वे अपने जीवनके मूलतत्त्वको

भूल गये थे । किन्तु अहा ! अचानक उन सबका भाग्य जाग उठा। उन सबका संसरण सदाके लिए समाप्त हो गया । हे दयामयि राधे ! तुमने प्रकट होकर उनको बचा लिया, तुमने उनको शरण दे दी !

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

इस आगेके चौपदेमें श्रीकृष्ण इसी विषयको आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि कामान्ध व्यक्ति चाहे नारी हो या पुरुष हों, वे एक दूसरेके परस्पर अंगों – ग्रीवा, भुजा, हृद्देश, नाभि, कमर एवं चरण आदिको इस प्रकार सुकोमल एवं मनोहर समझते-देखते हैं मानो इन मलिन अंगोंका निर्माण ही रक्त-मांस-मल-मूत्रसे न होकर मनोहर पुष्पोंसे हुआ हो। कामान्ध व्यक्ति स्त्री-पुरुषोंके अंगोंपर लुब्ध हुआ इनकी आसक्तिवश इन देहोंकी कामनामें संसारचक्रमें पड़ता है एवं जन्म-मृत्युरूप आवागमनमें फँसकर जरा-व्याधिका घोर दुःख वरण करता रहता है। वह अपने स्वरूप परमात्माको स्मरण ही नहीं करता जो उसका जीवन-मूल है। श्रीकृष्ण आगे कहते हैं–'हे दयामयि ! यदि तुम्हारा प्राकट्य इनके अन्तःकरणमें हो जावे और ये अधम जीव यदि तुम्हारी शरण पा जावें तो निश्चय ही इनका अनादिकालीन संसारचक्रमें बार-बार आना समाप्त हो जावे।'

भगवान् श्रीकृष्णके उपरोक्त कथनका यही तात्पर्य है कि श्रीराधा मूर्त्तिमान प्रेम है, एवं प्रेमके प्राकट्यके बिना कामका नाश असंभव है। तपके द्वारा रसवर्जन एवं इन्द्रियोंके दमनसे काम दब तो जाता है, परन्तु उसका समूल नाश कदापि नहीं होता। इसीलिये शिव, ब्रह्मादि भी इसके द्वारा पराजित हो जाते हैं और प्रायः सभीको अनुकूल अवसर पाकर यह पराभूत कर देता है।

प्रेममें दृष्टि स्वदेहपर नहीं, भगवान्के सच्चिदानन्दमय

भगवद्देहपर रहती है। कामका लक्ष्य ही जहाँ स्वसुख-अनुसंधान है, वहाँ प्रेमका लक्ष्य भगवद्देहका भगवत्स्वरूपमय शाश्वत सुखानुसंधान है। काम जन्म-मृत्युयुक्त, कर्मजनित, किसी पाञ्चभौतिक देहकी उपलब्धि चाहता है, वहाँ प्रेम अनन्त सच्चिदानन्द विग्रहको आनन्द प्रदान करना चाहता है। प्रेमीकी दृष्टि किन्हीं प्राकृत मलिन अंगोंपर केन्द्रित नहीं होती। उसकी दृष्टि सदैव केन्द्रित रहती है सच्चिदानन्दघन दिव्य प्रेमरसविग्रह श्रीकृष्णपर। प्रेमीके प्रियतम निरतिशय रसमय, रसस्वरूप, दिव्य रसिकेन्द्रशिरोमणि भगवान् श्यामसुन्दर होते हैं। प्रेमीके चित्तका अहं तो अपने प्रियतमके सौन्दर्य, माधुर्य एवं रसमें ही डूबा रहता है। वह भोग एवं मोक्ष दोनोंके कल्पनाक्षेत्रसे भी अतीत चला जाता है।

यह प्रेमी यदि कहीं अपना आदर्श देखता है तो उसे श्रीराधा-रानी ही अपना सर्वांगीण आदर्श समझमें आती है। प्रेमीकी राधा कोई नारी, रमणी नहीं। प्रेमीके प्रियतम भी पुरुष रमण नहीं। वहाँ स्त्री-पुरुषका भेद ही नहीं है। प्रेमी तो नित्य निरन्तर अपने प्रियतमकी भावरूपा सर्वात्मसमर्पणमयी परम त्यागमयी आराधनाका लक्ष्य रखता है और इन सभी दिव्य गुणोंकी मूर्त्ति उसे श्रीराधा ही प्रतीत होती हैं।

श्रीराधाके दर्शन मात्रसे, उसके दिव्य त्यागमय स्वरूपके चिन्तनमात्रसे प्रेमी साधकके समस्त दुर्गुण-दुर्विचारोंका आत्यन्तिक विनाश हो जाता है। भोगासक्ति, भोगकामना, भोगवासना, इन्द्रियतृप्तिकी इच्छा, जागतिक धन-वैभव, पद-अधिकार, यश-कीर्त्ति आदिके मनोरथ, सब प्रकारके लौकिक-पारलौकिक पदार्थ एवं परिस्थितियोंकी प्राप्ति-लालसा, क्रोध, लोभ, मोह, मद ईर्ष्या, अभिमान, वैर, हिंसा; भोग-सुख, स्वर्ग-सुख, उत्तम लोक तथा सद्गतिकी तृष्णा, साधनाभिमान, भक्त्यभिमान, ज्ञानाभिमान आदि समस्त

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(पञ्चम खण्ड)

पृष्ठ संख्या
201-300
तक

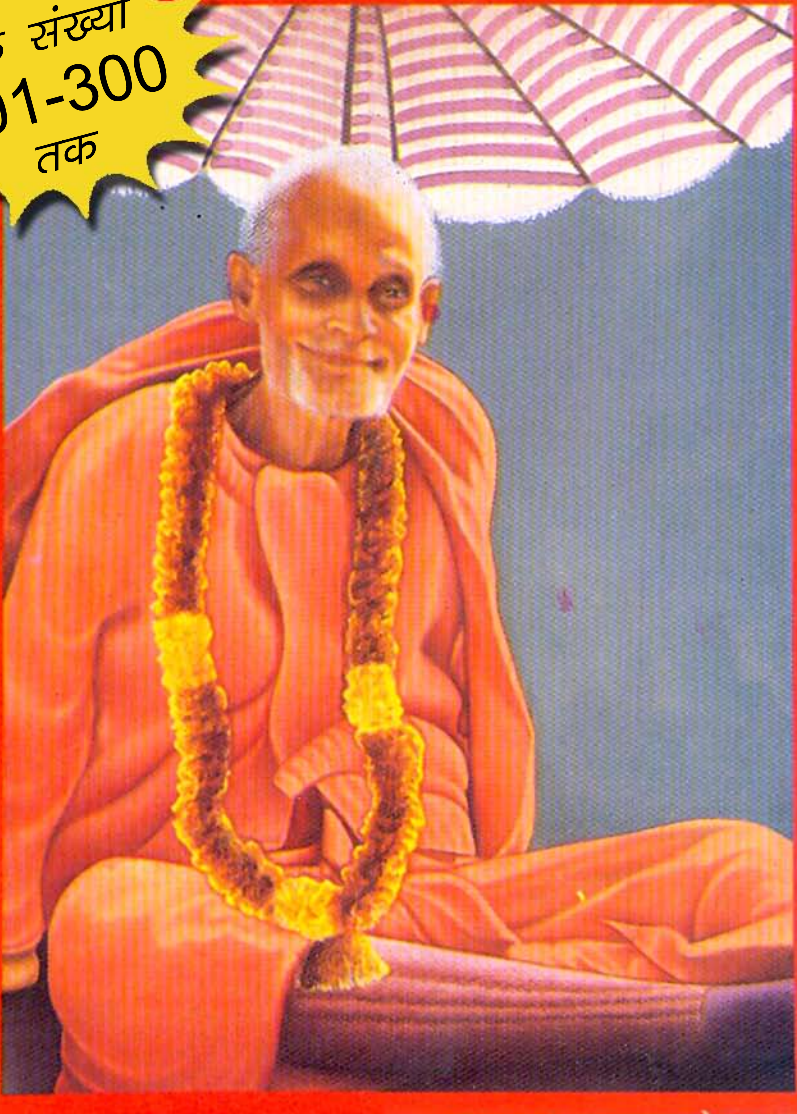

साधु कृष्णप्रेम

प्रेम-विघ्न मात्र एक राधारानीके चिन्तनसे ही नष्ट होते हैं, क्योंकि प्रेमीको उनमें ये सब दुर्गुण लेशमात्र भी नहीं दिखते। अतः प्रेमीके हृदयमें श्रीराधारानीके प्रकट होते ही अथवा प्रेम-साधकको श्रीमती राधारानी द्वारा शरणमें लिये जाते ही उसमें केवल मधुरतम श्रीकृष्ण-सुख-दर्शनकी ही लालसा पवित्रतम भावसे जग उठती है और भगवत्संस्पर्श पानेसे उसके मन-प्राण, अंग-अवयव – सब भगवद्रूप ही हो जाते हैं। भगवद्रूप होते ही साधकका अनादि जन्म-मृत्यु रूप संसरण समाप्त हो जाता है।

।।६२।।

जीव तुमको देखते ही, जो जगत्‌में थे भ्रमित,
सत्यको पाये समझ वे, ओह ! इन सुन्दर अमित
कण्ठ-उर-कर-उदर-कटि-पद-अंगकी छायाजनित
मोहमय सौन्दर्य मायामें हुआ था संक्रमित।।

मेरे प्राणोंकी रानी ! जीव तुमको देखते ही चेत गये । जो जगत्‌में भ्रमित हो रहे थे, उनमें तुम्हें देखते ही ज्ञानका प्रकाश हो गया । सत्य क्या है, यह वे समझ गये। उनकी आँखें खुल गयीं। उन्होंने प्रत्यक्ष देख लिया – ओह ! अनन्त अपरिसीम सौन्दर्यके पुञ्ज तुम्हारे कण्ठदेशकी, तुम्हारे उरःस्थलकी, तुम्हारे करयुग्मकी, उदरदेश, कटितट, चरणसरोरुह एवं शेष अंगोंकी छायासे ही मोहमय सौन्दर्यकी भ्रान्ति मायाकी वस्तुओंमें हो रही थी । तुम्हारे श्रीअंगोंका सौन्दर्य ही, सौन्दर्यकी छाया-की-छाया ही मायामें संक्रमित हो गयी थी और उन सत्ताहीन मायाकी वस्तुओंमें सुन्दरताकी भ्रान्ति उत्पन्न कर दे रही थी ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

इस चौपदेमें श्रीकृष्ण बहुत ही तात्विक बात कह रहे हैं। वे कहते हैं कि जबतक जगत्‌में भ्रमित जीव श्रीराधारानीका दर्शन

नहीं कर लेता, उसे यह ज्ञान ही नहीं होता कि संसारमें जो, जहाँ, जैसा भी सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य, रमणीयता, सुकोमलता एवं सद्गुण हैं, उनका उद्गमस्थल कहाँ है ? श्रीराधारानीके दर्शनोंके पश्चात् ही मनुष्यको यह तत्व स्पष्टतया उजागर होता है कि यह समस्त जड़-चेतन रूप विश्व भगवती श्रीराधारानी और उनकी सन्धिनी एवं चिच्छक्तियोंका प्रतिबिम्ब मात्र है। यह विश्व मायाकी डोरसे बँधा इसीलिये नाच रहा है, क्योंकि श्रीराधारानी अपनी अनन्त भाव-शक्तियों – गोपियोंके साथ अपने प्रियतमके प्रेम-संकेतपर रास-नृत्य कर रही हैं। इन श्रीमती राधारानीके साथ उनके संकेतपर स्वयं भगवान् श्रीहरि भी, जो समस्त जड़-चेतनको अपनी मायाकी डोरसे नाथे नचा रहे हैं, करताल बजाते नाच रहे हैं। श्रीराधाकृष्णके नृत्यकी छाया पड़नेसे ही विश्वमें यह समग्र गतिशीलता एवं चाञ्चल्य है। इन गोपदेवियोंकी इन्द्रियाँ – जो भगवान् श्रीकृष्णको अपने भीतर भरा रखती हैं तथा भगवानका नित्य संस्पर्श पाकर कृतकृत्य एवं परम सुन्दर बन गयी हैं – इनकी छायासे ही जगत्के प्राणियोंकी समस्त इन्द्रियोंमें सौन्दर्य, आकर्षण, सरसता एवं रमणीयताका संचार हो रहा है। इन भगवन्मयी गोपियोंकी, भगवान्को अपने भीतर बसाकर रखनेवाली मन-बुद्धिकी छायासे ही सम्पूर्ण विश्वमें मन-बुद्धिकी चंचल सत्ता क्रियाशील हो रही है। इन गोपरामाओंके नेत्रकमलोंकी, जिनमें मदनका मद हरण करने वाले स्वयं भगवान् मधुर मधुकर बनकर नित्य बसे रहते हैं, छायासे ही सम्पूर्ण जगत्में नेत्रेन्द्रियोंकी सत्ता और सौन्दर्य है। इन गोपियोंकी घ्राणेन्द्रियोंकी छायासे सम्पूर्ण जड़-चेतनमें नासा-इन्द्रिय एवं सूँघनेकी शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ है। इन श्रीराधारानीकी रसनेन्द्रियकी छायासे ही सम्पूर्ण विश्वमें रसनेन्द्रियकी सत्ता है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि

श्रीराधारानीके दर्शन करते ही जीवका अज्ञान-तिमिर दूर हो जाता है और उसे स्पष्ट अनुभव हो जाता है कि यहाँ मायाजगत्में नर-नारीके कण्ठ, वक्षोज, हाथ, पेट एवं कटिप्रदेश आदि अंगोंमें जो मोहमय सौन्दर्य अनुभव हो रहा है वह सब इन श्रीराधाके ही अंगोंकी छायाके संक्रमणसे ही अनुभवमें आ रहा है।

सारिका वदति

।।६३।।

प्रियतम हो गद्गद गये, होकर पुलकित-गात
क्षण कुछ रुककर ही सके वे कह अग्रिम बात ।।

सारिका इतना कहकर, शुककी ओर दृष्टि डालकर कुछ रुककर बोली – अहो ! कीर ! इतना कहते-कहते प्रियतम गद्गद हो गये, उनका शरीर पुलकित हो गया, वाणी रुद्ध हो गयी, कुछ क्षणतक वे बोलना स्थगित कर गंभीर मुद्रामें निस्पन्द अवस्थित रहे, कुछ ठहरकर ही आगेकी बात बतलानेमें समर्थ हुए । अस्तु,

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

श्रीसारिका कहती है कि "अपनी प्रियाके अपूर्व सौन्दर्यके स्मरण मात्रसे सनातन ब्रह्म, पूर्ण पुरुषोत्तम, विश्वात्मा, विश्वातीत भगवान् श्रीकृष्ण पुलकित हो जाते हैं। वे वाणीके गद्गद् होजानेसे कुछ क्षण बोल नहीं पाते।" सारिकाकी इस उक्तिपर यहाँ कोई शंका कर सकता है कि श्रीकृष्ण ही जो लोकोंके अविनाशी उत्पत्तिस्थान हैं, चराचर विश्वकी उत्पत्ति ही जिनके द्वारा हुई है, जो अव्यक्त प्रकृतिके सनातन कर्त्ता है, अच्युत हैं, सर्वभूतोंसे श्रेष्ठतम और पूज्यतम हैं, ईश्वरोंके ईश्वर हैं, जो महेश्वर एवं परब्रह्म कहलाते हैं – वे भी किसी अपनेसे इतर अन्य सत्ताके

सौन्दर्यका स्मरण मात्र करके पुलकित हो जावें; जो सच्चिदानन्द, सान्द्रांग हैं, वे अपनेसे किसी पृथक् सत्ताको देखकर आनन्दित हो उठें – यह बात समझमें नहीं बैठती।

वस्तुतः यह शंका उन्हींमें उठती है जो श्रीराधारानीके प्रेममय रूपतत्त्वको जानते नहीं हैं। यह सत्य है कि आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे त्रिभुवनको आनन्द प्राप्त होता है, वे सच्चिदानन्द सान्द्रांग हैं, उनका माधुर्य असमोर्ध्व है और उनका रूप कोटि-कोटि कामदेवोंके सौन्दर्यपर विजय प्राप्त करनेवाला है। परन्तु श्रीराधारानीके सम्बन्धमें सत्य यही है कि वे श्रीकृष्णको भी आनन्दित करनेवाली उनकी ह्लादिनी शक्ति हैं। श्रीकृष्णके नेत्र श्रीराधाके अप्रतिम रूप-सौन्दर्यका दर्शन करके ही शीतल होते हैं। यह सत्य है कि श्रीकृष्णकी कलित-ललित वंशी-ध्वनि चतुर्दश भुवनोंको आकर्षित करती है, परन्तु श्रीकृष्णके कान श्रीराधाके वाक्य-सुधा-पानसे ही तृप्त होते हैं। श्रीकृष्णके अंग-गन्धसे जगत् सुगन्धित होता है, परन्तु श्रीकृष्णके प्राण तथा घ्राण श्रीराधाके ही अंग-सुगन्धिके नित्य लोभी बने रहते हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् रसरूप रसराजशिरोमणि हैं, यह सारा जगत् श्रीकृष्णके रससे सुरसित है; परन्तु श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीमती राधारानीके अधररसके वशीभूत हैं। श्रीकृष्णका संस्पर्श कोटि-कोटि शशांक-सुशीतल है, किन्तु श्रीकृष्णके अंग श्रीराधारानीके ही अंगोंसे सुशीतलता प्राप्त करते हैं। श्रीराधाकी सेवाके द्वारा ही प्रियतम श्रीकृष्णको अपार आनन्द अनुभव होता है। श्रीराधा श्रीकृष्णको सुख देनेवाली एक अपार एवं अगाध प्रवहमाना स्रोतस्विनी सदृश हैं।

॥६४॥

उस अनोखे रूपकी ही ऊर्मिमें बहती हुई
आ किनारेपर लगी मैया वहाँ विस्मित हुई,

और थपकाकर, कलेजेपर मुझे रखती हुई
छू चिबुक अपनी सखीसे कह उठी हँसती हुई।।

प्राणवल्लभे ! तुम्हारे उस रूपकी अनोखी लहरोंमें ही बहती हुई मेरी मैया किनारेपर आ लगी । उसका कण-कण विस्मयसे परिपूर्ण था । फिर मुझे थपकाकर, अपने कलेजेपर रखकर, तुम्हारी मैया कीर्तिदा महारानीके चिबुकको छूकर हँसती हुई उनसे बोल उठी – तुम्हारी मैया और मेरी मैया, दोनों सखी जो ठहरीं । अस्तु,

।।६५।।

'है, बहिन ! सुस्मरण क्या घटना सुता-रवि-घाटकी,
पर्व था अक्षयतृतीयाका, खड़ी थी तुम थकी ।
था नहीं स्वीकार तुमको यान चढ़ना पालकी
तुष्टि भागुरिकी अपेक्षित थी तथा ऋषि गर्गकी।।

मेरी मैयाने कहा – क्या उस घटनाका तुम्हें स्मरण है बहिन ? कलिन्दनन्दिनीके घाटपर वह घटना घटी थी। उस दिन अक्षयतृतीयाका पुनीत पर्व लग रहा था । तुम थककर खड़ी हो गयी थीं । तुमको पालकीपर चढ़कर चलना स्वीकार नहीं था । मन-ही-मन तुम सोच रही थीं – 'महर्षि भागुरि तथा गर्ग ऋषिकी तुष्टि तो उनके पास पैदल चलकर जानेसे ही होगी।' वे दोनों तुमपर प्रसन्न रहें – मात्र इतना-सा ही तुम्हें अपेक्षित था ।

।।६६।।

कोस नौ पैदल चली थी इसलिये, मैं साथ थी,
और कोई था नहीं, संयोगकी ही बात थी।
भानुपुर, गोपेशपुरकी गोपियोंकी भीड़ थी
जो हुई, मिटकर बनी शैवालिनी अब मूक थी।।

इसीलिये उस दिन तुम नौ कोस पैदल चलकर आयी

थीं। मैं निरन्तर तुम्हारे साथ थी । संयोगकी बात, और कोई भी साथ नहीं चल पायी। उस दिन भानुपुर एवं नन्दग्रामकी गोपियोंकी अपार भीड़ थी । पर अब सब भीड़ छँटकर यमुनाका तटदेश शान्त हो चुका था । जहाँ हम दोनों खड़ी थीं, वहाँ शैवालिनीकी धारा निस्पन्द-सी होकर बह रही थी ।

।।६७।।

खींचकर तुमने लगाया प्रेमसे मुझको गले,
बोलने एवं लगी यह हाथमें जल-पुष्प ले
पौर्णमासी भगवतीके वचन अविचल हैं, भले
शेष भी डिगकर हटें, गिरि मेरुका गौरव टले।।

उसी समय कीर्तिदा बहिन ! तुमने मुझको खींचकर अपने गलेसे लगा लिया था। हाथमें जल और फूल लेकर तुम इस प्रकार बोलने लग गयीं – नन्दरानी ! भगवती पौर्णमासीके वचन सर्वथा अविचल हैं । शेषनाग भले ही डिगकर हिल उठे, मेरु पर्वत भी हिल जाय, पर पौर्णमासी भगवतीके मुखसे निकले वचन तो अविचल ही रहेंगे ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

ब्रजलीलामें सहयोग करनेके लिये भगवती पौर्णमासीके रूपमें भगवान्‌की अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया शक्ति प्रकट होकर ब्रजमें निवास करती हैं। इनके साथ सदैव हँसमुख मधुमंगल नामक ब्राह्मणकुमार रहता है। देवीका ब्रजमें अत्यधिक आदर है।

इनके एवं कुमारके जीवनके सम्बन्धमें ब्रजवासियोंको बहुत ही कम परिचय प्राप्त है। जिस पावन दिवस इनका ब्रजमें पदार्पण होता है, उस दिवस पूछनेपर पुरवासियोंको इन्होंने इतना ही बतलाया था कि "मेरा नाम पौर्णमासी है। मैं सदा काषाय

वस्त्र पहनती हूँ। बाल ब्रह्मचारिणी तपस्विनी हूँ, ज्योतिष जाननेवाली हूँ। मेरे पास जो यह बालक रहता है, यह स्नातक है। इसकी प्रकृति देवर्षि नारदके समान है। एक विशेष विद्याके प्रभावसे हम दोनोंकी आयु सदा एक-सी – इतनी ही बनी रहती है।" इससे अधिक ब्रजवासी इनके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते। इतना अवश्य है कि बृषभानुपुरमें महाराजा महीभानु एवं सुषमा दादी, रावलमें महाराजा बिन्दु और मोक्षदा नानी, बृहद्वनमें महाराज नन्दराय एवं मैया यशोदा एवं आसपासके सभी गोपावासोंके अधिपति समानभावसे जन्मदात्री माताके समान इनका आदर एवं विश्वास करते हैं।

गोपावासोंमें ये जो भी मंगल-विधान, पूजाव्यवस्थाका निर्देश दे देती हैं, वह सब एकमतसे सर्वमान्य होता है। इनकी आज्ञाओंका उल्लंधन कोई नहीं करता।

इन्होंने ही सर्वप्रथम ब्रजवासियोंके सम्मुख भविष्यवाणी की थी कि ब्रजगोपोंके अधिपति नन्दरायको एक पुत्र होगा एवं वह निश्चय ही सर्व जगत्‌के लिये परम मंगलकारी एवं घर-घरमें आनन्ददायी होगा। इसी भविष्यवाणीका इस चौपदेमें कीर्त्तिदा मैया उल्लेख करती हुई यशोदाजीको कह रही हैं कि" बहिन नन्दरानी ! भगवती पौर्णमासीके वचन सर्वथा अविचल हैं। शेषनाग भले ही डिगकर हिल उठे, मेरु पर्वत भी हिल जाय, इन महादेवीके निकले वचन अमोघ ही रहेंगे। तुम्हारे इस गर्भमें पुत्ररत्न ही विराजित है, और मैं किसी दिन शुभ मुहूर्त्त आनेपर पुत्रीका प्रसव करूँगी।" सचमुच ही इनकी भविष्यवाणी सत्य ही निकली थी।

॥६८॥

पुत्र ही इस गर्भमें तेरे अवस्थित है, बहिन !
और मैं कन्या करूँगी प्रसव आनेपर सुदिन।

गुप्त है इतिहास कुछ, मैं हूँ रही, बस, मास गिन,
ज्ञात है पतिदेवको जिनको न छू पाया बृजिन।।

'सुनो बहिन ! तुम्हारे इस गर्भमें पुत्ररत्न ही विराजित है, और मैं किसी शुभ दिनके आनेपर कन्याका प्रसव करूँगी । इसका कुछ इतिहास बड़ा ही गुप्त है, बस, मैं महीना गिन रही हूँ। मेरे पतिदेव महाराज वृषभानुको पाप छू तक नहीं गया है । इसीलिये उनको तो पूरा-पूरा इस इतिहासका पता है ।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

इस चौपदेमें जिस इतिहासका संकेत मैया कीर्तिदा यशोदाजीके सम्मुख कर रही हैं, वह इतिहास यह है कि राजा नृगके पुत्र सुचन्द्रने अपनी पत्नी कलावतीके सहित घोर तपस्याकर ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त किया था कि द्वापरके अन्तमें श्रीराधा इनकी पुत्री होंगी। यह भी पुराणोंकी कथा है कि राजा हिमालयकी पत्नी मेनका एवं राजा जनककी पत्नी सुनयना और पितरोंकी मानसी कन्या कलावती तीनोंको ही आदिशक्ति योगमायाका वरदान मिला था कि वे उनके यहाँ पुत्रीरूपमें जन्म लेंगी। अतः भगवती मेनकाके पार्वती, सुनयनाके सीताजीका जन्म हुआ। पितरोंकी मानसी कन्या कलावती राजा नृगके सुपुत्र सुचन्द्रको विवाही गयी। इन्होंने द्वापरके अन्तमें राजा बृषभानु एवं कीर्त्तिदाके रूपमें जन्मग्रहण किया और कीर्त्तिदाकी कोखसे श्रीराधा प्रकट हुईं। माता कीर्त्तिदा अयोनिजा सन्तान थी और महाराज विन्दुके यहाँ यज्ञसे प्रकट हुई थीं। श्रीनन्दरायजीने ही इनका विवाह बृषभानु गोपराजसे कराया था। इस विवाहकी प्रेरणा श्रीनन्दरायजीको भगवती पौर्णमासीसे ही मिली थी। श्रीराधाके जन्म लेनेकी भविष्यवाणी भी श्रीपौर्णमासीजी पूर्वतः ही कर चुकी थीं। यह सब वृत्तान्त श्रीबृषभानुजीके सम्मुख भी भगवती पौर्णमासी प्रकट कर चुकी

सखी श्रीसुदेवीजी

थीं। अतः वे सब रहस्य जानते थे।

।।६९।।

और मैं दिनकर-तनूजा-तीरपर होकर खड़ी
हूँ रही संकल्प कर है, पुण्यमय अतुलित घड़ी
जो यहाँ श्रीदामकी भगिनी उदरमें है पड़ी,
जन्म ले गर्भस्थ शिशुके प्राणमें रहकर जड़ी।।'

'अस्तु, बहिन, मैं भानुतनूजाके तीरपर खड़ी होकर संकल्प कर रही हूँ, यह अत्यन्त अतुल पुण्यमय वेला है, इस समयका संकल्प सत्य होगा – यहाँ मेरे उदरस्थलमें श्रीदामकी जो बहिन विराजित है, वह तुम्हारे गर्भस्थ शिशुके प्राणोंसे निरन्तर जुड़ी रहकर ही जन्म धारण करे भला !'

।।७०।।

घोष जय-जयका लगा क्षण उस गगनमें गूँजने,
हो चकित मैं और तुम दोनों लगी थीं देखने ।
किंतु ऊपर था न कुछ, कोई न पीछे, सामने,
कण्ठसे सटकर पुनः हँस-हँस लगी तुम झूलने ।।

अचानक आकाशमें 'जय-जय' की ध्वनि उस क्षण ही गूँज उठी। उस समय बहिन कीर्तिदा ! तुम और मैं दोनों चकित हो देखने लग गयी थीं कि यह ध्वनि कहाँसे आ रही है। किन्तु न तो कोई ऊपर दीखा, न पीछेकी ओर कोई था, सामने भी कोई नहीं दीखा। फिर तो हम दोनों ही एक दूसरीके कण्ठसे लगकर, हँस-हँसकर नाचने लग गयीं ।

सारिका वदति

।।७१।।

उक्ति सुनते ही उठी आनन्दकी मीठी लहर,
हो महारानी गयीं रसमुग्ध, आया कण्ठ भर।

वे सकीं, बस बोल यह, सम्पूर्ण धृति एकत्रकर
'है यहाँ कलिका-सुमन, सखि ! सुप्त अर्भक है भ्रमर।।'

सारिका कहने लगती है – नन्दरानीकी उक्ति सुनते ही आनन्दकी सुमधुर लहरी रानीके चारों ओर बिखर गयी । कीर्तिदा महारानी रसमुग्ध हो गयीं । उनका कण्ठ भर आया । अपना सम्पूर्ण धैर्य एकत्रितकर कीर्तिदा महारानी, बस, इतना ही बोलनेमें समर्थ हो सकीं – 'नन्दगेहिनी ! देखो ! यहाँ मेरे आगे सुमनकी कलिका पड़ी हुई है । सखी ! सत्य कह रही हूँ – तुम्हारे अंकमें जो सोया हुआ बालक है, वही इस सुमनकलिकाका भ्रमर है ।'

।।७२।।

फिर हुए वे कृत्य, जो उस कालके अनुरूप थे,
बीस दिन पुर-भानु रावल-ईश मेर तात थे
पूर्व इसके ब्रजजनोंने जो सुने-देखे न थे,
स्रोत उत्सवके हुए ऐसे प्रवाहित नित्य थे ।।

सारिका कहती ही चली गयी – इसके अनन्तर जो उस समय कृत्य होने चाहिये थे, वे सब-के-सब विधि-विधानसे सम्पन्न हुए । बीस दिनतक भानुपुर एवं रावल ग्रामके राजा ब्रजराज ही थे । इसके पूर्व ब्रज-वनवासियोंने जो कभी न देखे थे, न सुने थे, ऐसे उत्सवके नवीन-नवीन स्रोत नित्य प्रवाहित हो रहे थे।

(तात्विक विवेचन–विस्तार)

जिज्ञासाः- कृपया राधा-जन्म-महोत्सवपर बीस दिवसतक जो रसोच्छलन हुआ उसका एक संक्षिप्त ध्यानचित्र प्रस्तुत करें एवं जो-जो पुण्यकृत्य हुए उनकी भी शब्दसूची दें। साथ ही ***'बीस दिन पुरभान रावल-ईश मेरे तात थे''*** –इस पंक्तिका रहस्य भी समझावें।

समाधानः- ध्यान करें —" बृषभानु-महारानी कीर्तिदा अपने पितृगृहमें अपने पिता महाराजा रावलनरेश बिन्दुके राजमहलमें मणिमय पर्यंकमें चुपचाप निस्पन्द लेटी हैं। महामाया आदिशक्ति पराम्बाके ध्यानमें उनके नेत्र अर्धनिमीलित निस्पन्द हैं। उद्यद्दिनकर-सदृश माणिक्यमणि रक्ताभ तेजसे समग्र प्रसूतिगृह उद्भासित है। उनके नेत्रोंमें, हृदयमें, भगवतीकी ध्यानमूर्त्ति जीवन्त प्रत्यक्ष स्थित है।"

" ओह ! एक अभिनव सच्चिन्मय रस ही मानो नारी आकृति धारणकर उनके सम्मुख मणिमय सिंहासनासीन है। मस्तकपर विराजित घनकृष्ण कुञ्चित केशराशिपर रत्नमय मुकुट है। परम सुन्दर तेजोमय ललाटके मध्यमें तीसरा नेत्र अर्धनिमीलित है। दोनों नेत्र आकर्ण-विलम्बी दीर्घ हैं और उनपर भौहें सुन्दर कमानकी तरह खिंची हैं। नयनोंमें मोटी-मोटी काजलकी रेखा हैं, जिनसे नेत्रोंकी शोभा द्विगुणित हो रही है। तीनों नेत्र अर्धविकसित निस्पन्द हैं।

केशचूड़ाको मणिमालायें आवृत किये हैं और उन सबपर अष्टमी चन्द्र अपनी चन्द्रिका छिटका रहा है। भालके ऊपर रत्नमय मुकुट है। केशराशि इतनी सघन एवं दीर्घ है कि उनका एक अंश ही चूड़ा-निबद्ध है, शेष घुँघराली लटोंके रूपमें स्कन्ध-देश एवं पीठपर लहरा रही है।

कान कमलदलोंके समान अत्यन्त सुकोमल पतले हैं, उनपर पुष्पोंके तेजोमय कुण्डल हैं। ये पुष्प जगदम्बाके कदम्ब-वाटिकाके हैं। इन पुष्पोंकी अलौकिकता यही है कि ये सुकोमलतामें पुष्पोंके समान हैं किन्तु इनसे निस्सृत ज्योति रत्नोंको भी तिरस्कृत कर देनेवाली है। इन ज्योतिर्मान कदम्ब पुष्पोंसे कुण्डलोंकी-सी आभा निकल रही है, वह कपोलोंपर

कस्तूरीकी चित्रकारीको दमका रही है।

लाल-लाल पतले अधर हैं, जिनके मध्य स्वच्छ दंतपंक्ति चिज्ज्योति छटा छिटका रही है। शुकचञ्चुसम नासिकामें बेसरकी अनमोल मुक्ता लटक रही है। ओठोंकी लालिमासे समन्वित यह मुक्ता माणिक्यवत् अनुभूत हो रही है। पद्मरागके वर्णकी अंगछटाके कारण उभरी ठोढी ऐसी लगती है मानों किसी अभिनव विकसित कमलके पास पद्मरागमणिखण्ड पड़ा हो। ठोढीकी आकृति परम सुष्ठु है और उसपर मसिविन्दुकी शोभा ऐसी है मानो कमलकोशके मकरन्दपानसे तृप्त हुआ कोई भ्रमर किसी पद्मखण्डपर विश्राम कर रहा हो।

अनन्त अनमोल रत्नमालाओंसे कम्बुकण्ठ आभरित है। मणिरत्नोंकी ज्योति कण्ठके चतुर्दिक् ऐसी शोभा पा रही है मानो रत्नमाला पर्वतकी परिक्रमा करती रत्नगंगा प्रवाहित हो रही हो। अति उन्नत स्कन्ध हैं। चारों भुजाओंमें पुण्ड्र, इक्षुचाप, पुष्पवाण, अंकुश एवं पाश धृत हैं। भुजाओंमें पद्मरागरत्नमयी चूड़ियोंसे कलाइयाँ भरी हैं। उनके दोनों ओर सुवर्णके मुक्ता और मरकत मणियोंसे विजड़ित दो अंगद हैं। बाहुओंमें बाजूबन्द शोभा पा रहे हैं। कमलदल-सी सुकोमल अंगुलियोंमें रत्नजटित अँगूठियाँ धृत हैं। अंगद, चूड़ियों, बाजूबन्द, अंगुलीयकों – सभीके रत्न यद्यपि अनमोल, विलक्षण शोभामय हैं फिर भी चारों भुजाओंकी अँगुलियोंके अग्रभागमें सुशोभित बीस नखमणियोंके प्रकाशके सम्मुख इन सबकी आभा हतप्रभ है।

जगन्माता स्वर्णतारोंसे निर्मित रत्नखचित चौड़े पाटकी लाल साड़ी धारण किये है। उनके पद्मरागमणिकुम्भों-सदृश वात्सल्यपूर वक्षोजोंको गहरे नीले रंगके क्षोम वस्त्रकी कंचुकी आच्छादित किये है। इस गहरे नीले रेशमी वस्त्रके आवरणके उपरान्त भी

उसके मध्यसे उनकी रक्तकमल-सी सुन्दर कुन्दनवर्णी आभा प्रस्फुटित हो रही है।

जगन्माताके अंगों-अंगोंसे जो अनुपम सौरभका स्फोट हो रहा है, वह अतुलनीय है, समूचा सूतिकागृह उस दिव्य सौरभसे भरा है।

कीर्त्तिदाकी ध्यानवृत्ति जगन्माताके चरणोंकी दस अँगुलियोंके नखप्रकाशसे उद्भासित है और इस विलक्षण तेजसे श्रीदामा-जननी नख-शिख डूबी हैं।

बृषभानु-महारानीके पार्श्वमें ही बैठी उनकी छोटी बहिन कीर्त्तिमतीके भी नेत्र निस्पन्द हैं। अन्य समस्त परिचारिकाओंको भी एक विलक्षण भाव-समाधि लगी है।

सहसा माता कीर्त्तिदाको अनुभव होता है कि उनकी ध्यानस्थ जगन्माताकी छवि तिरोहित होकर एक परम सुन्दरी सद्यःप्रसूत कन्या आकृति ग्रहणकर उनके पार्श्वमें प्रकट हो गयी है। परम दिव्य कनकगौरवर्णा पराशक्तिका कन्या रूपमें यह प्राकट्य कोई नहीं देख पाता। बस, माता कीर्त्तिदाको ही उसके प्रथम दर्शन होते हैं। कालके पंखोंमें उड़ती वे आजके नौ माह पूर्वकी स्मृतिको अपने मानसपटलपर देखती हुई मुग्ध हो उठती हैं। मानो कोई स्वप्न हो, पूर्वकालकी सम्पूर्ण घटना उनके सम्मुख वर्तमान सरीखी प्रत्यक्ष हो उठती है।

"यह नौ माह पूर्वकी बात है। मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमीकी तिथि थी। हेमन्तकी सम्पूर्ण सम्पदासे धरणी विभूषित हो रही थी। प्रातःकालका समय था। वे उस समय अपनी कुलदेवीके मन्दिरमें अवस्थित थीं। महाराज बृषभानु द्वारा देवीकी पूजा हो, इसकी सभी पूर्व तैयारी करनेमें वे उस समय व्यस्त थीं। गत सायंकी पूजाकी कुसुमावली महादेवीकी प्रतिमाके चरण-सरोरुहोंमें बिखरी

पड़ी थीं, वे उन्हें उठा-उठाकर नयनों एवं मस्तकसे संलग्नकर एक ओर सुन्दर स्वर्णतारोंसे निर्मित डलियामें रखती जा रही थी। इन सभी निर्माल्य पुष्पोंको बादमें कालिन्दीमें विसर्जित किया जाना होता था। अभी महाराजा बृषभानु महादेवीकी अर्चना करनेके लिये मन्दिरमें नहीं पधारे थे। महारानी अकेली पूजाकी तैयारीमें जुटी थीं। उनका नियम ही था कि महादेवीकी पूजा-सम्पादनके कार्यमें वे किसी अन्य दासी किंवा परिजनका सहयोग कदापि नहीं लेती थीं। यह कार्य वे स्वयं अपने हाथों ही यथाशक्ति सम्पन्न करती थीं।

महारानीका आधा ध्यान तो महादेवीके आनन-सरोजके दर्शनमें निरत रहता था एवं आधे ध्यानसे वे सभी सेवाकार्य सम्पादित करती जाती थीं।

महारानी कीर्तिदाको सहसा अनुभव हुआ कि महादेवी सहसा मुसका उठी हैं। अब तो उनके हाथसे सेवा-कार्य होना स्थगित हो जाता है और उनका सम्पूर्ण ध्यान भगवतीके मुसकाते आननको देखनेमें ही निरत हो जाता है। और अहो ! आश्चर्य ! महान् आश्चर्य!! उन्हें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि महादेवीका उरस्थल जैसे किसी कपाटकी तरह खुलता जा रहा है। उनके वक्षस्थलपर पहने वस्त्र परदेकी तरह दायें-बायें सरक गयें और मध्यमें एक रिक्त अन्तराल हो जाता है। और तब उन्हें दिखाई पड़ता है – उस रिक्त अन्तरालमेंसे एक अत्यन्त मनोहारिणी, अनिर्वचनीय सुन्दरी, कांचनवर्णी भोली-भाली शिशु बालिका बाहर निकल आती है। वह बालिका महारानी कीर्त्तिदाके अत्यन्त निकट आ जाती है, और उनके सद्यस्नात उन्मुक्त कुन्तलोंकी एक लटको हाथमें ले लेती है। वह उस लटको हाथमें लेकर अत्यन्त मनोहारी मुसकानसे उनके मुखकी ओर देखती है और अति मधुर

यशोदा है, उसका दुग्ध पान कर लेगा। इस किशोरके द्वारा तेरी सखी यशोदाका गृह आलोकमान करनेके उपरान्त ही यह किशोरी तेरी कोखको धन्य करेगी।"

"महारानी ! यह नित्य किशोर तेरी उस प्राणसखी यशोदाके प्राणोंमें समाया रहता है और इधर यह नित्यकिशोरी तेरे प्राणोंकी सार-सर्वस्व है। तुम्हारी वह प्राणसखी यशोदा एवं तुम दोनों इस बातको भूल गयी हो ! अब मैं याद करा देती हूँ। तुम दोनों सखियोंकी जय हो, जय, जय, जय, नित्य जय हो !"

इतनेमें ही महारानीके मानसिक नेत्रोंमें वह भूतकालकी नौ माह पूर्व घटित हुई घटनाका चित्र तिरोहित हो जाता है और उनकी दृष्टि उस कंचनाभा बालिकापर पड़ती है, जिसका सौन्दर्य इतना निराला है कि महारानी निर्निमेष नयनोंसे उसे देखती ही रह जाती हैं। रानीके अतिरिक्त सर्वप्रथम रानीकी बहिन कीर्तिमती जान पाती हैं कि उसकी बहनने पुत्री प्रसव की है। उस कंचनवर्णी बालिकाका सौन्दर्य एवं आकर्षण ही ऐसा है कि किसीको समयोचित कर्तव्यका ज्ञान ही नहीं होता। बालिका क्रन्दन करने लगती है। सभी बालिकाका मधुर अस्फुट क्रन्दन सुनती हैं, पर न जाने क्यों वह क्रन्दन भी उन्हें अनन्त सुमधुर रागिनियोंसे भी अधिक सुरीला लगता है; वे काष्ठ पुत्तलिकाकी भाँति सभी ज्यों-की-त्यों, जहाँ-की-तहाँ खड़ी स्तम्भित रह जाती हैं। सभीके शरीरोंमें ऐसा आनन्दातिरेक है कि सबके अंग अवश हो गये हैं।

सहसा कीर्त्तिमती एक दासीको दौड़ाकर बृषभानुजीको सूचना देनेका आदेश देती हैं। इस आदेशके पश्चात् ही जैसे सभी जागरूक हो उठती हैं। सूतिकाकक्ष आनन्द-कोलाहलसे मुखरित हो उठता है। एक दासी दाई माँको बुलाने जाती है। एक दासी महाराजा विन्दु और मोक्षदारानीको सूचना देने दौड़ती है। कुछ

परिचारक शहनाई-वादकके गृह लपकते हैं। कुछ दासियाँ सम्पूर्ण रावलग्राममें सूचना देने आनन्द ध्वनि करती जा रही हैं। पुत्री होनेकी सूचना प्राप्त होते ही सर्वप्रथम महाराजा बृषभानु अपने मित्र नन्दरायको एवं ब्रजराजमहिषी नन्दरानीको सूचित करने अतिशय शीघ्रगामी रथसे दूतको गोकुल ग्राम भेज देते हैं।

पुरमहिलाओंका दल भी महाराजा बिन्दुके प्रासादमें एकत्र होने लगता है। बृषभानुजी तो आज ही प्रातः बृषभानुपुरसे अपने श्वसुरालयमें पधारे थे। महाराजको भगवती महादेवी जगन्माताका पहले ही आदेश हो गया था कि जाओ, असमोर्ध्व महामहामहिमामयी स्वयं भगवान्‌के भी प्राणोंकी अधिदेवीका जो उनकी पुत्री बनकर आविर्भूत होने वाली हैं, स्वागत करो।

केवल महाराज ही नहीं, यह सूचना तो अन्तर्यामीके द्वारा अन्तर एवं बाह्य जगत्‌के जितने भी मस्तकमणिस्वरूप मुनिजन थे, सभीको स्वतः मिल गयी थी। इतना ही नहीं, स्वर्लोक, पितृलोक एवं नागलोकके अधिवासी भी इस सूचनासे वंचित नहीं थे। अपनी स्वतः प्रेरणासे सभी जो जैसे थे, जिस वेषमें थे, ज्यों-के-त्यों रावलग्रामके अन्तरिक्षमें चले आये थे। इन सभीने एवं देवगणोंने भी अपना वेष गोप-गोपालिनियोंका बना लिया था।

अंशुमालीकी किरणें व्योममें चमक रही थीं। सभीके लिये वे किरणें सुखद थीं। उस ओर धरणी पल-पलमें नवीन सुषमासे सुसज्जित होती जा रही थी। यद्यपि वर्षा ऋतुका काल था, किन्तु ब्रजवनके सभी सर-सरिता एवं निर्झरोंका जल दो घड़ी पूर्वसे ही अप्रतिम उज्ज्वल मोतीकी तरह स्वच्छ बन गया था।

शीतल सुगन्धित मन्थर समीर सब प्राणियोंको छू-छूकर मानो सबके कानोंमें धीरे-धीरे कह रहा था—देखो ! क्रमशः एक-से-एक उत्तुंग रसकी लहरें इस भाव-समुद्रमें आनेवाली हैं। तुम सभी उनमें

अनन्तकालतक अवगाहन करते रहना।

आज तो काल भी समस्त शुभ गुणोंसे युक्त और परम शोभन हो गया था। आज कालकी आधार, उसकी नियन्ता महाशक्तिका प्राकट्य कालके भीतर जो होने वाला था। फिर भला उसके आनन्दकी सीमा कैसे रहती। आज तो कालने प्रत्येक ऋतुके सभी सद्गुणोंको चुन-चुनकर अपने भीतर धारण कर लिये थे। वह विलक्षणरूपसे सुसज्जित हो गया था। बसन्त ऋतुका मलय समीर, कोकिलोंका कूजन, भ्रमरोंकी गुंजार, आम्रवृक्षोंमें नवीन मौरोंका उदय, अशोक एवं चम्पाका मुक्त हास्य, वर्षाका कदम्बानिल, शरद्की स्वच्छता और प्रसन्नता, हेमन्तकी मालती, शिशिरके कुन्द कुसुम, दिवसकी कमलिनी, निशाकी कुमुदिनी, उसका शान्त भाव, सत्ययुगकी तपस्या, त्रेताका यज्ञ, द्वापरकी परिचर्या, कलियुगका नाम-गान, आदि, आदि कालके पास जो-जो भी सद्गुण थे, सभीको अपनेमें धारणकरके वह सर्वांगसुन्दर हो गया था।

आज अभिजित् नक्षत्र था। आज तो सभी नक्षत्र अपनी उग्रता, वक्रता परित्यागकरके शान्त हो रहे थे। कोई वक्रगतिसे, कोई अतिचार गतिसे, तो कोई महातिचार गतिसे – सभी अपने-अपने उच्च स्थानोंमें स्थित होकर भगवत्प्रिया राधाकुमारीका अभिनन्दन करनेमें सानन्द संलग्न थे।

स्वयं भगवान् अपने श्रीमुखसे कहते हैं कि 'जिस समय मैं किसीके भी मुखसे 'रा' अक्षर सुन लेता हूँ, उसी समय उसे अपनी उत्तम भक्ति-प्रेम दे देता हूँ, और 'धा' शब्दका उच्चारण करनेपर तो मैं अपनी प्रियतमाका नाम-श्रवण करनेके लोभसे उसके पीछे-पीछे चलने लगता हूँ।' जिन राधाके नामका इतना माहात्म्य है, उनके स्वयंके अवतीर्ण होनेपर वार, तिथि, नक्षत्र योग

आदिके परम शुभ होकर आनन्दित और कृतकृत्य होनेमें कौनसी आश्चर्यकी बात थी।

आज तो दसों दिशायें प्रसन्न थीं। कहीं भी मलिनता नहीं रह गयी थी। सभी दिक्पति परम प्रफुल्लित परमानन्दपूर्ण हृदयसे अपनी स्वामिनीके शुभागमनका अभिनन्दन करनेके लिये दिग्वधुओंके साथ हाथोंमें अर्घ्यपात्र लेकर खड़े थे। भूः, भुवः, स्वः– सभी देशोंमें आनन्दकी बाढ़ आगयी थी। मंगलमयीके मंगल आगमनसे सर्वत्र आनन्द मंगल परिपूर्ण हो रहा था।

सर्वत्र परमानन्दमयीके शुभागमनकी आनन्दधारा बह चली। किरणमालीके रथके अश्व जब ठीक मध्य व्योममें आकर अवस्थित हुए, बस, उसी संधिपर महाराज बृषभानुकी पुत्रीका आविर्भाव हुआ।

तुमुल आनन्दध्वनिसे प्रसूतिगृह ही नहीं, समस्त प्रासाद निनादित हो उठा। पुर-महिलाओंकी भीड़के मध्यसे किसी प्रकार नन्दरानी यशोदा अपने पुत्रको लिये रास्ता बनाती, प्रसूतिकक्षतक पहुँची। यशोदा मैया जैसे ही उस कन्याको देखती हैं, उनके हृदयका समग्र संचित स्नेहरस उमड़ पड़ता है। वह अप्रतिम वात्सल्य भाव, अपने सामने कोई भी व्यवधान नहीं पाकर अश्रुबिन्दुओंके रूपमें झरने लग जाता है। भावाभिभूत नन्दरानी कभी अपने सिरको अत्यन्त नीचे झुकाकर, कभी बायीं ओर टेढा करके, कभी दाहिनी ओर घुमाकर और कभी अपने मस्तकको ऊँचा उठाकर कीर्त्तिदा-पुत्रीके सौन्दर्यका सुख लेने लगती हैं। उन्हें इस प्रकार वात्सल्य-विह्वल देखकर कीर्त्तिदा किञ्चित् मन्द-मन्द मुसका उठती है। वे प्रसूतिके कारण शिथिल हुईं, मात्र इतना ही कह पाती हैं -- सखी नन्दगेहिनी ! देखो, यह मेरे पार्श्वमें जो कंचनलताकी सुमनकलिका लेटी है, उसका रसलोभी श्यामभ्रमर

तुम्हारे अंकमें धृत बालक ही है। मेरी बातको किञ्चित् भी असत्य मत समझना। "

कीर्त्तिदाकी बात सुनकर यशोदाके नयनोंसे झरते अश्रुबिन्दु मालाकार बन जाते हैं। सद्यःजात बालिकाको अपनी पुत्रवधू स्वीकारती माता यशोदारानी मानो एक निर्मल मुक्ताहारकी भेंट उसे प्रथम मिलनमें ही दे बैठती हैं। सर्वोत्कृष्ट रागमयी आराधनाके उपकरण कुछ भी हों, पर नियम तो नियम ही हैं, उनका व्यतिक्रम भला माता यशोदा द्वारा कैसे होता। पुत्रवधूके प्रथम मुखदर्शनपर उनकी ओरसे उसे उपहार तो मिलना ही उचित था।

दूसरा उपहार उनके द्वारा सद्योजात बालिकाको यही मिलता है कि वे अपने अर्धनिद्रित शिशुको कीर्त्तिदा-कन्याके पार्श्वमें ही कुछ-एक क्षणोंके लिये लिटा देती हैं।

इसी समय अन्तर्जगत्से जय-जय-निनादकी तुमुलध्वनि होने लगती है। अवश्य ही यह ध्वनि गोपियोंकी भीड़के कोलाहलमें अन्य कोई नहीं सुन पाता।

गोकुलसे नन्दबाबा, उपनन्दजी एवं सभी गोप बृषभानुजीको बधाई देने पहुँच जाते हैं। " महाभाग ! आपको पुत्रीरत्नकी प्राप्ति हुई, बधाई है।" बृषभानुजीको प्रतीत होता है मानो हठात् कोई उन्हें अमृत-समुद्रमें डाल देता है। उनके चारों ओर आनन्दामृतका महासागर लहराने लगता है। वे उसमें निमग्न हो जाते हैं। इतना ही नहीं आनन्द-महासिन्धुकी प्रबल तरंगें उस महासिन्धुमें आवर्त्त बना देती हैं और बृषभानुनृप उस आवर्त्तमें ब्रजराज नन्द एवं अन्य सभी समवयस्क गोपोंके साथ चक्कर लगाने लगते हैं।

उपनन्दजी एवं नन्दरायजीने आते ही सभी समयोचित व्यवस्था सँभाल ली है। रावलनरेश महाराज बिन्दुने अपना सम्पूर्ण कोषागार श्रीनन्दरायको सौंप दिया है। स्वर्ण, रत्न, आभूषण,

रजत, गोधन, दही, घृत, मधु, धान्य, वस्त्र वे जो जिसको जितना दें, जितना लुटावें, सब उनकी इच्छापर है। अनवरत बीस दिवसतक श्रीनन्दराय रावल एवं बृषभानुपुर – दोनों नगरोंके जैसे पूर्ण स्वामी हों, इस प्रकार कन्याके जन्मोत्सवकी सभी व्यवस्था कर रहे हैं।

ब्राह्मणोंको बुलानेके लिये दूत प्रस्थान कर गये हैं। तोरणद्वारके पास नगारेवालोंको समस्त ब्रजमें घोषणा करनेकी बात समझा दी गयी है। शहनाईवाले सदलबल आ पहुँचे हैं। उन्होंने मधुरातिमधुर रागिनी छेड़ दी है। रावलनरेशके प्रासादोंकी मणिमय भित्तियों, छतों और स्तम्भोंको निनादित करती वह शहनाईकी मधुर ध्वनि समस्त ब्रजपुरमें फैल रही है। ब्रजमें अनेकों बार शहनाई बजती रही हैं, शहनाईवादक भी वे ही हैं किन्तु आजकी शहनाई में रागिनियाँ मूर्त्तिमान हैं और स्वर ऐसा अपूर्व है, जिसकी तुलना गंधर्व भी नहीं कर सकते।

ब्राह्मण आ गये हैं। श्रीबृषभानु एवं ब्रजेश – दोनों स्नानकरके नवीन क्षौमवस्त्र पहने, अलंकृत होकर प्रणाम करते हैं। ब्रजेशके पार्श्वमें यशोदा मैया भी अपने लालासे ब्राह्मणोंको प्रणाम करवा रही है।

ब्राह्मणोंने आज अनमोल रत्नोंसे नवग्रह एवं मातृकाचक्र सृजन किये हैं। नान्दीमुख श्राद्धकर्म सम्पन्न होता है। फिर नन्दबाबा, यशोदा, कीर्त्तिदा एवं बृषभानुजी सूतिकागारमें आकर कन्याका विधिवत् जातकर्म संस्कार कराते हैं। जिसकी संकल्पशक्तिसे अनन्त विश्व ब्रह्माण्डोंका पलक झपकते विनाश होता है और पलक-उन्मेषसे सृजन होता है, आज उसका जातकर्म हो रहा है। हे लीला महाशक्ति ! तुम्हारी सर्वमोहनकारिणी लीलाको धन्य है। अस्तु,

ब्राह्मणोंके द्वारा 'भूस्त्वयि' इत्यादि मंत्रोंका पाठ करके

बालिकाके बिम्बविडम्बी अधरोष्ठको किञ्चित् खोलकर सुवर्णसंयुक्त अनामिका अंगुलीसे घृतका एक कण चटाया जाता है। ओह ! जिसके एक-एक रोमकूपमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं, प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक-एक ब्रह्मा जिनके नियन्त्रणमें सृजनका कार्य वहन करते हैं, आज उस महादेवीका ब्रह्म-मुख-निस्सृत वेदमंत्रोंसे संस्कार हो रहा है।

ब्राह्मणदेवोंके आचार्य महर्षि भागुरि कन्याके अधरोष्ठोंको खोलनेके लिये जैसे ही उन्हें संस्पर्श करते हैं, उसके अधरोंकी बिम्ब सदृश लालिमामेंसे अचानक महर्षिको एक अद्‌्‌ुत तेज दृष्टिगोचर होता है। ऐसे विलक्षण तेजका दर्शन महर्षि भागुरिने पहली बार ही किया है। महर्षि हतप्रभ हो जाते हैं। उनके नेत्र उस प्रखर तेजसे मुँद जाते हैं। नेत्रोंके मुँद जानेपर वह तेज उनके अन्तःकरणमें भी उसी प्रकार जगमगा उठता है, जैसा उन्हें बाहर दृष्टिगोचर हुआ था। शनैः-शनैः वह दिव्य तेज उनके सम्पूर्ण अस्तित्वको ही व्यावृत कर लेता है। और अरे, यह क्या ? वह बालरविके समान रक्तवर्णका तेज एक अतिशय सुन्दरी षोडशवर्षीया रमणीके रूपमें परिणत हो जाता है। महर्षिके नेत्र एकटक उस दिव्य रमणीके सौन्दर्यसे अभिभूत, स्थिर हो जाते हैं। इस रमणीके अंग-अंगसे ऐसा प्रकाश झर रहा होता है मानो सहस्रों सूर्योंका एक साथ उदय हो गया हो, साथ ही वह प्रकाश इतना सुशीतल होता है मानो सहस्र चन्द्रोंकी ज्योत्स्ना भी उसके सम्मुख नगण्य हो।

उस दिव्य रमणीकी चार भुजाओंमें ऊर्ध्व आयुध, पाश, अंकुश, कुसुमबाण, एवं इक्षुचाप धृत थे। वह एक रत्नसार निर्मित सिंहासनपर विराजित थी। दिव्यातिदिव्य अतिशय मनोहर असंख्य कुमारिकायें उसपर श्वेत चामर डुला रही थीं । रत्नोंकी ज्योतिसे

सिंहासन चम-चम क़र रहा था।

भागुरि उस देवीके दर्शनकर कृतकृत्य हो जाते हैं। उनके हाथ प्रार्थनातुर होकर परस्पर बँध जाते हैं। वे विस्फारित नेत्र यही समझ रहे थे कि ब्रजपुरदेवी त्रैलाक्यलक्ष्मी ही इस बालिकाके रूपमें अवतरित हुई हैं। महर्षि उनकी स्तुति करनेको शब्द ही नहीं पा रहे थे। बस, कुछ क्षण महर्षिको अपनी समग्र पुण्यराशिका फल दान करती भगवती विद्युल्लताके समान अपनी झलक दिखाकर उसी बालिकाके अधरोंमें पुनः विलीन हो जाती हैं।

भागुरि ऋषि तो इस दर्शनके पश्चात् आगेके कोई भी कर्म करानेमें असमर्थ हो जाते हैं। किन्तु अन्य ब्राह्मणोंके सहयोगसे किसी प्रकार आयुष्यक्रिया सम्पन्न होती है। किन्तु आश्चर्य है, जो भी ब्राह्मण बालिकाका 'दिवस्परि' आदि मंत्र बोलकर स्पर्श करता है, उसके समग्र अंग काँपने लगते हैं। सभी ब्राह्मण आश्चर्यमें हैं कि आजतक उन्होंने कितने ही ब्रजबालकों एवं बालिकाओंके संस्कार कराये हैं, आजतक तो ऐसी घटना नहीं घटी। किसी प्रकार भूमि अभिमंत्रित की जाती है, एवं बालिकाका अंग ब्राह्मणोंके आदेशसे उसकी मौसी पौंछती है। तत्पश्चात् बालिकाके कुञ्चित केशकलापमण्डित मस्तकसे स्पर्श कराकर 'आपो देवेषु' इत्यादि मंत्रोंके उच्चारण सहित एक जलपात्र सूतिका-पर्यंकके नीचे रक्खा जाता है। इस प्रकार कीर्त्तिकुमारीका जातकर्म-संस्कार सम्पन्न होता है।

इसी समय नन्दबाबा सभी ब्राह्मणोंको प्रत्येकको दस सहस्र गौओंका दान कर देते हैं। सभी ब्राह्मणोंको कुल बीस लाख गौओंका दान उस दिवस नन्दरायजी द्वारा दिया जाता है। गायोंके सींग सुवर्णपत्रोंसे मढे हैं; एवं प्रत्येकके गलेमें बहुमूल्य मणियोंकी माला झूल रही है। सभी गौएँ नवप्रसूता हैं।

अब धात्री नालछेदन करने आती है। इस विचित्र सुन्दरी बालिकाको देखकर ही धात्री तो सब-कुछ ही पा जाती है, निहाल हो जाती है। धात्रीका तो बालिकाको देखते ही बाह्यज्ञान सर्वथा लुप्त-सा हो जाता है। यशोदा किसी प्रकार उसे होशमें लाती हैं परन्तु वह तो उन्मादिनी-सी प्रलाप करती हुई किसी प्रकार नालछेदनका कार्य सम्पादन करती है। वह बृषभानु महारानीसे कितना ही नेग पानेका मनोरथ करके गृहसे चली थी। परन्तु अब तो उसे कुछ भी, किसी भी वस्तुकी स्मृति ही नहीं है। वह तो गद्‌गद् कण्ठसे सबको यही सुना रही है – 'ओहो ! कन्याके अंग इतने स्वच्छ एवं तेजोमय हैं मानो वारिदविहीन स्थिर विद्युल्लता ही कीर्त्तिदाकी कोखसे प्रकटी हो, इतने उत्कृष्ट हैं मानो चन्द्रकान्तमणिके अंकुर हों, इतने मृदु हैं मानो पद्मपत्र हों, इतने स्निग्ध एवं पवित्र हैं मानो मन्दाकिनीकी फुहारें हों, इतने मंगलमय, सुरभित हैं मानो त्रैलोक्यलक्ष्मीके भालपर लगा सिन्दूर हो, इतने सुचिक्कण एवं आकर्षक हैं मानो पद्मवनके परागको संचितकर उससे किसी कलाकारने कन्यामूर्त्ति बनायी हो। धात्री तो आनन्दसिन्धुमें आपाततः निमग्न हो रही है, फिर भी यशोदा मैया बिना माँगे ही उसके गलेमें अपना अनमोल मणिमुक्ताओंका मनोहर मूल्यवान हार डाल देती हैं।

इतने सब कार्य होनेके उपरान्त यशोदारानी कीर्त्तिदाको अपनी कन्याको बड़ी ललकसे स्तनपान करानेकी अनुमति देती हैं। यशोदारानी इतनी धर्मभीरु थीं कि वे स्तनदानके पूर्व सभी शास्त्रीय संस्कार – जातकर्मादि सम्पन्न करा लेना चाहती थीं। अब धर्ममर्यादा पूरी हो चुकी थी। माता कीर्त्तिदा अत्यन्त स्नेहसे बालिकाका मुख देखती उसके जपा पुष्पके द्विदल-सदृश अधरोष्ठोंको खोलकर उसमें अपना स्तनाग्र दे देती हैं। धन्यभाग्य!

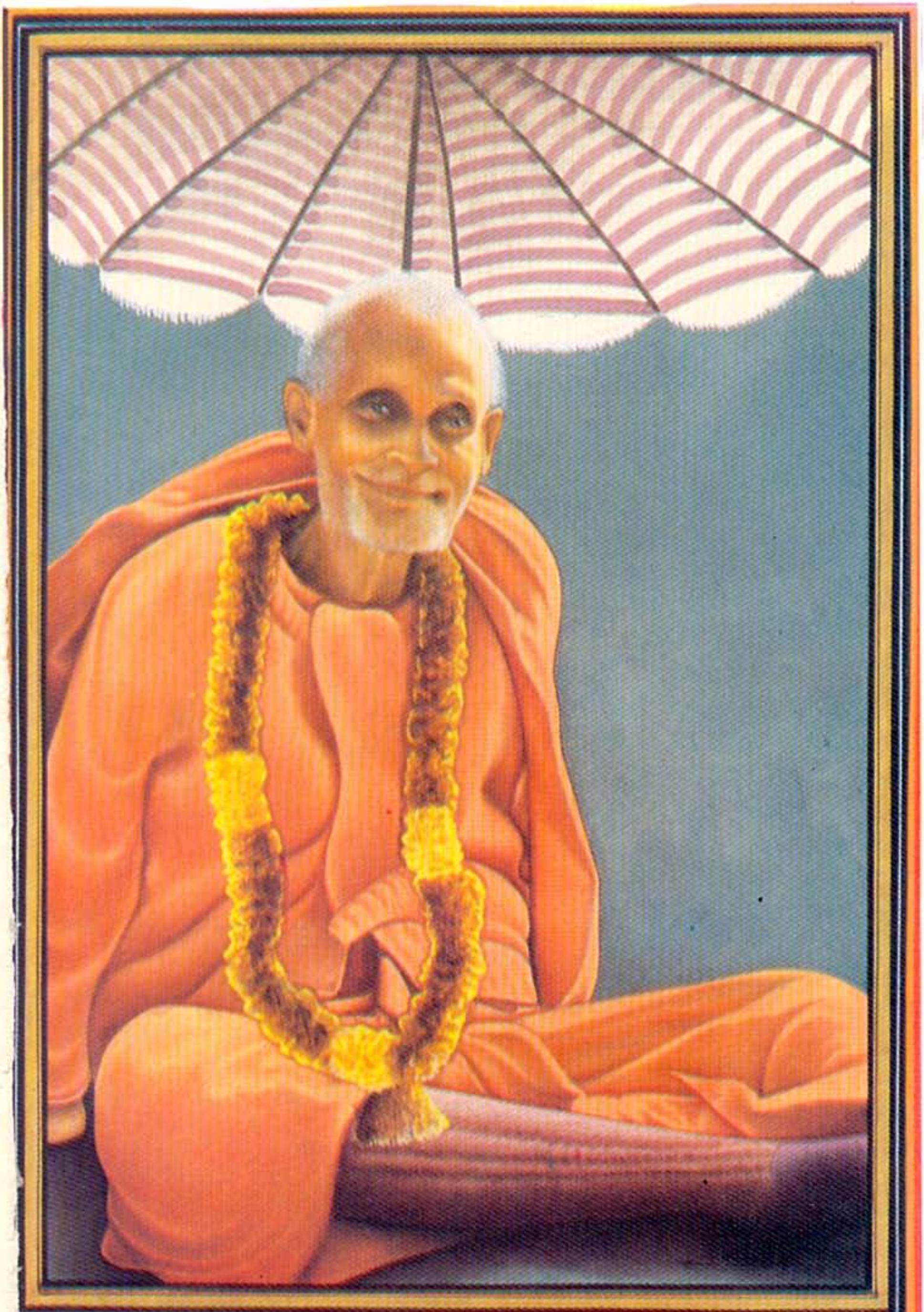

महाभाव—दिनमणि श्रीराधाबाबा

माताका वात्सल्य-रस-सुधासार रूप दुग्ध झर रहा है और अलौकिक कन्याकृति पराशक्ति अतिशय प्रेमसे और उत्कण्ठासे उसका पान कर रही हैं।

अब नन्दरायजीकी आज्ञासे अविलम्ब तिलके सात विशाल पर्वत निर्माण किये जाते हैं; उन पर्वतोंपर रत्नराशि सर्वत्र बिखेर दी जाती है। फिर इन पर्वतोंको स्वर्णतारोंसे निर्मित क्षौमवस्त्रोंसे आवृत किया जाता है, और यह पर्वत भी ब्राह्मणोंको दान कर दिये जाते हैं। नन्दरायजी जब महाराजा बृषभानुकी ओरसे इन पर्वतोंके दानका संकल्प पढ़ते हैं, उस समय आकाशसे देवध्वनि जय-जयकार कर उठती है।

अब रावलग्राम सजाया जाता है। रावलका प्रत्येक प्रासाद, प्रासादका प्रत्येक गृह, द्वार, प्रांगण, कोना-कोनातक पहले चन्दन एवं केसरजलसे धोया जाता है। फिर सर्वत्र पुष्परससार (इत्र) छिड़का जाता है। कोई ऐसा गृह नहीं है जहाँ सुकोमलतम पल्लवोंके बन्दनवार नहीं बँधे हों। प्रत्येक द्वारपर आम्रपल्लव-समन्वित जलपूर्ण मंगलघट रखा गया है। हरिद्रा, दूब, अक्षत, दधि और कुंकुमसे प्रत्येक द्वारदेश चित्रित किया जाता है। स्थान-स्थानपर मोतियोंके चौक पूरे गये हैं।

महाराजा महीभानुजी एवं राजमाता सुखदारानी दोनों जगज्जननी पराम्बाकी सेवार्थ बृषभानुपुरमें ही थीं। वे दोनों वैसे भी सभी व्यावहारिक कार्योंसे सर्वथा उपरत ही रहते हैं। अस्तु, इस अलौकिक बालिकाके जन्मका सब वृत्तान्त उन्हें सूचित कर दिया जाता है। सभी गोपोंको दूसरे दिवस बृषभानुपुरमें बृहदुत्सव मनानेकी सूचना दे दी जाती है।

पृथ्वीकी दूरीको पार करता रावलनरेशका दूत बृषभानुपुरकी

ओर अग्रसर हो रहा है। उसकी दृष्टि बृषभानुपुरके ब्रह्मपर्वतपर है। बृषभानु-प्रासादका उत्तुंग स्वर्ण गुम्बज एवं उसपर लगी फरफराती पताका दूतके ध्यानको अपनी ओर आकृष्ट किये है। वह अपने लक्षको स्पष्ट देख रहा है कि उसे शीघ्रातिशीघ्र कहाँ पहुँचना है। प्रासादका मणिमय मंगलदीप सांध्य गगनमें अपनी किरणें फैलाने लगा है। दूतको और शीघ्र ही रावलसे चल पड़ना चाहिये था, किन्तु बृषभानुजीको ही उसे आज्ञा देनेमें दिवसका तृतीय पहर हो गया था। उन्हें मध्याहमें पुत्रीके प्राकट्यकी तो सूचना मिल गयी थी, परन्तु सर्वप्रथम ही यह सूचना नन्दरायजीके यहाँ गोकुलमें पहुँचानी परमावश्यक थी। उनके एवं यशोदाजीके पहुँचनेपर ही आगेके सभी धार्मिक कृत्य प्रारंभ होने थे। गोकुलसे नन्दरायके आते-आते मध्याह तो विगत हो ही गया था। अब बृषभानुजीको जातकर्म-संस्कारादि सम्पन्न करनेमें समय लग गया। शीघ्रता करते-करते भी दूतको बृषभानुपुर समाचार देनेके लिये भेजनेमें सायंकाल हो गया था।

दूतको अनुभव हो रहा था कि बहुत शीघ्रता करके वायुवेगसे अश्वारोहण करनेपर भी वह प्रथम पहर निशाके पूर्व किसी भी प्रकार बृषभानुपुर प्रासाद पहुँच पावेगा। फिर भी दूतने अश्वको शीघ्र पथ पूरा करनेके लिये उत्साहित किया। दूतके लिये पथ-ज्ञानमें कोई कठिनाई नहीं थी क्योंकि चाँदनी रात थी और मद्धिम चाँदनीमें पथका अभ्यस्त अश्व शीघ्रतापूर्वक सुविधासे जा रहा था।

सन्ध्याके प्रथम पहरमें ही दूत सकुशल बृषभानुपुर पहुँच गया । बृषभानुपुरके प्रथम कोट द्वारपर पहुँचते ही उसने अञ्जलि बाँध ली, घुटने टेक दिये तथा सिरसे पृथ्वीको छूकर उसने बृषभानुपुरकी कुलदेवी जगज्जननी महामायाको प्रणाम किया।

बेचारे दूतको यह कहाँ पता था कि जिनके अव्यक्त पादपंकजमें वह अपना सिर टेक रहा है, वे महाशक्ति ही बृषभानु-महारानीकी कोखसे अपनी मधुर प्रीति-रस-चरितावलीसे आत्माराम योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंको भी महाभाव-सिन्धुमें डुबोने, उन्हें प्रीति-पथका सर्वोच्च आदर्श दिखानेकी अभिसंधि लेकर एवं लीला-रस-सुधाकी शत-सहस्र मन्दाकिनी-धाराओंमें ब्रजके जन-जनको बहाते हुए सदाके लिये आनन्द-सिन्धुमें निमग्न कर देनेके लिये प्राकृत बालिकाका रूप रखकर प्रकट हुई हैं।

दूत जैसे ही बृषभानुपुरके प्रथम द्वारपर पहुँचा दूतके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा कि द्वार अपने आप बिना किसी बाह्य संकेतके पूरा खुला और द्वाररक्षक वरभानुजी गोपराज उसके स्वागतके लिये उसे सम्मुख खड़े समुपस्थित मिले। वे अतिशय आनन्दसे दूतको गले लगाकर पुरके भीतर ले गये। उनके अनुचरने यात्राके कारण श्रान्त घोड़ेकी यथायोग्य विश्रामकी व्यवस्था करने उसे घुड़सालके व्यवस्थापकको सौंप दिया एवं वरभानुजी दूतको लेकर सीधे ऋषितुल्य महाराज महीभानु एवं महारानी सुषमाके पास ले गये। महाराजा महीभानुको जगदम्बाके द्वारा पूर्वतः ही दूतके आनेका समाचार मिल गया था और उन्होंने ही वरभानुजी गोपराजको द्वार पूर्वतः ही खोल दिये जानेका संकेत किया था।

महाराजा भगवतीके मन्दिरमें भगवती पराभट्टारिकाकी संध्याकालीन पूजामें निरत थे। दूतने सर्वप्रथम जैसे ही भगवतीकी प्रतिमाको प्रणाम किया, उसे अनुभव हुआ मानो भगवती मुसका रही हैं। भगवतीकी मुसकान इतनी मनोहारी थी कि दूत आनन्दावेशमें हर्षित हुआ होश ही खो बैठा और आनन्दोन्मत्त हुआ महाराजको नाच-नाचकर विलक्षण कन्याके प्रादुर्भावकी सब घटना सुनाने

लगा।

दूत आनन्दोन्मत्त होकर कह रहा था–' महाराज ! भगवती पराम्बाकी जय हो ! आपके घरमें आपकी पौत्री इतनी सुन्दर तेजोमयी उत्पन्न हुई है, मानो नभसे वारिदको त्यागकर विद्युल्लता ही बालिकाका रूप धारणकर रावलनरेशके राजमहलके प्रसूतिकक्षमें प्रकट हो गयी हो।'

'महाराज ! जय हो !! उसके गण्ड-युगल तो ऐसे हैं मानो द्रवीभूत चन्द्रकान्तमणिके जलमें दो बुदबुदे उठे हों, नासापुट इतने सुघड़ हैं कि भगवान् नारायणकी शोभा हतप्रभ हो उठे, महाराज! बालिकाके अंग मन्दाकिनीकी स्वच्छ तरंगोंके सदृश सुकोमल हैं, नेत्र मानो दो मुकुलित रक्त पद्मोत्पल हों, उसकी छोटी-छोटी घुँघराली कुन्तलराशिकी ऐसी निराली शोभा है मानो भ्रमरोंका दल प्रचुर परिमाणमें नव मकरन्दराशिका पानकर अतिशय मत्त हुआ, उड़नेकी सामर्थ्य खोकर निश्चल अवस्थित हो। महाराज ! बालिका जबसे भूमिष्ठ हुई है, रावल ग्रामकी गोप-गोपियाँ तो उसके वदनारविन्दका मधुपान करती थकती ही नहीं। उसे जो भी देखता है, न तो उसके नेत्र ही थकते हैं, न तृप्त ही होते हैं, अपितु जो जितना देखता है, देखती है, उतनी ही उसके दर्शनोंकी प्यास और बढ़ती जाती है।'

'महाराज ! जय हो !! उसके अंग पद्मरागमणिकी शोभाको, अधर रक्तरागमणिको, करतल, चरणतल चन्द्रकान्तमणिको, नखावलि पक्व दाड़िमबीजोंको हेय करते हैं। महाराज गाँवकी औरतें तो उसे मणिमय कन्या समझ रही हैं और कल्पनाके सुमधुर राज्यमें भ्रमित हो रही हैं, किन्तु जब उन्हें कोई समझाता है कि मणि तो जड़ एवं कठोर होती हैं, बालिका तो जीवन्त, मृदु एवं अत्यन्त सुकुमार है तब वे बालिकाको विधाताकी पुष्पमय रचना बतलाने

लगती हैं। ओह ! तब वे कल्पना करने लगती हैं कि उसके समस्त अवयव कांचनपद्मसे, अधरोष्ठ बन्धूकपुष्पोंसे, चरण-करतल जपाकुसुमोंसे, एवं नखराशिका निर्माण मल्लिकाकोरकोंसे हुआ होगा।'

'महाराज ! ब्रजवासी इस प्रकार बालिकाके सौन्दर्यकी उपमा ढूँढते-ढूँढते थककर हार जाते हैं।'

महाराज महीभानुने उसी समय दूतको महामाया पराभट्टारिकाके चरणतलोंमें रत्नपात्रोंमें रखी रत्नराशि एक क्षौम वस्त्रमें लपेटकर प्रदान करदी। उसके उपरान्त उन्होंने दूतको पहननेके नवीन पाँच वस्त्र – रत्नजटित किनारीका पीताम्बर, स्वर्णतारों एवं हीरकखचित चित्रित अपनी रेशमी अचकन, बँधी-बँधायी सुन्दर मणिखचित स्वर्णकी कलंगीसे युक्त पाग, एक अनमोल हीरक मुद्रिका एवं रत्नजटित स्वर्णकी खड़ाऊ उपहारमें दी। फिर वरभानुजीने आदेश दिया कि दूतको पाकशालामें ले जाकर यथारुचि भोजन करावें और उसके विश्रामका प्रबंध करें।

दूतने जाते-जाते निवेदन किया कि महाराज ! सारे नगरमें सूचना हो जाय कि कल सूर्योदय होते ही महाराज बृषभानु, नन्दराय और अपने शिशु पुत्र सहित यशोदा महारानी, साथ ही गोकुल एवं बृहद्वनके सभी सम्मान्य गोप यहाँ पहुँच जावेंगे और कल उन सभीके सान्निध्यमें पुत्रीका बृहत् जन्मोत्सव इस नगरीमें पूरे धूमधामसे मनाया जायगा।

\+ \+ \+

जैसे ही प्रातः रविने उदयाचलसे निकलकर बृषभानुपुरकी भूमिपर पदार्पण किया, वह उस भूखण्डकी शोभा देखकर चकित हो गया। जनसंकुल ग्रामकी शोभा तो अपूर्व थी ही बृषभानुपुरको चतुर्दिक् घेरे जो अरण्य था, वह भी पूर्णरूपेण सज-धजकर

अपना आनन्द स्वान्तःसुखाय प्रकट कर रहा था। अरण्यके एक-एक वृक्षने अपनी सज्जा इतने मनोयोग एवं सम्पूर्ण प्रकृति-प्रदत्त कौशलसे की थी कि भगवान् सूर्यदेवको अपनी किरणोंके नेत्रोंसे उस शोभाको देखनेके लिये कुछ कालके लिये अपने रथको रोकना पड़ गया। वे स्थिर होकर चकित देखते ही रह गये थे – निर्जन अरण्यकी शोभा देखने उस ब्राह्मबेलामें कौन तो आता; परन्तु आज उसे अपनी शोभा किसीको दिखानी थोड़े ही थी, उसे तो अपनेको स्वयंको आजके हर्षमें सम्मिलित होकर कृतकृत्य होना था। साल, तमाल, ताल, आम्र, अशोक, चम्पा, मौलश्री, बट, अश्वत्थ, नीप, कदम्ब सभीने बिना बसन्तके ही वर्षा ऋतुमें ही अपने पुराने पत्ते विगत रात्रिमें ही फेंक दिये थे। नये-नये कोंपलोंसे, अरुण पल्लवोंसे सभी विभूषित थे। सभी वृक्षोंके नवीन मौर प्रस्फुटित हो उठे थे। मौरोंके मध्य-मध्यमें रंग-बिरंगे पुष्प इस प्रकार प्रस्फुटित हुए थे, मानों वृक्षोंने रंग-बिरंगे मौरोंके वस्त्रोंके ऊपर अनमोल पुष्पाभूषण धारण किये हों। गुच्छोंमें सजे पुष्प मृदु मन्द पवनके मधुर हिलोरोंके साथ नूतन नृत्य कर रहे थे। मालती आदिकी लताएँ बृक्षोंकी शाखा-प्रशाखाओंमें लिपट-लिपटकर उनपर अपने-अपने कुसुमोंका हास्य बिखेरकर उनकी शोभा और अभिवर्धित कर दे रही थीं। जूही चमेली आदि सभी लताएँ पत्रशून्य थीं और अपने सर्वांगोंको मात्र विकसित कुसुमोंसे ही आच्छादित किये थीं। रात्रिके समय कमल-कोषोंमें बद्ध सुखसे सोये भ्रमर मानो स्वप्नमें राधाकिशोरीके जन्मका शुभ संवाद प्रभाती वायुसे सुनकर सहसा जाग उठे और मधुर गुञ्जार करते हुए पुष्पोंके पास जा-जाकर आनन्द-समारोहका समाचार सुना-सुनाकर उन्हें भी हर्षित कर रहे थे। शाखाओंपर घोंसलोंमें सोये हुए पक्षिगणोंको भमरोंने अपनी झंकारों द्वारा जगा-जगाकर

राधा-जन्मका शुभ संवाद सुनाया और वे भी अपनी कमनीय काकलीसे वन-प्रान्तमें सर्वत्र यह शुभ संवाद एक दूसरेको इधर-उधर उड़कर देने लगे। आम्रवृक्षोंमें असमय मौर देखकर कोयलोंके आनन्दकी सीमा ही नहीं रही। वे बड़े वेगसे उड़कर शाखाओंपर पहुँच गयीं और पञ्चम स्वरमें तान छेड़कर अपनी आनन्दमग्नता और अधिक उन्साहसे व्यक्त करने लगीं।

भगवान् सूर्यदेवने अपनी प्रथम दृष्टि फेंकते ही पाया कि बृषभानुपुरके आसपासके क्षेत्रोंमें, साथ ही बृहद्वनके भी अरण्योंमें सर्वत्र आनन्दका पूर्ण विकास हो रहा है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र आनन्द-भवन ही बन गया है।

भगवान् सूर्यदेव तो पुत्रीके प्रकट होनेसे अपनी तपश्चर्याका मनोनुकूल फल पानेके कारण हर्षित थे ही, उन्हें पूर्ण प्रसन्न देखकर दसों दिशायें भी उत्फुल्ल हो उठी थीं ।

वरभानुजीने दूतसे सूचना मिलते ही आर्श्व-पार्श्वकी सभी गोप-बस्तियों, अहीरोंकी ढाणियोंमें सूचना भेज दी थी, अस्तु सारा क्षेत्र आनन्द-मंगलकी क्रीड़ाभूमि ही बन गया था। रात्रिमें ही बृषभानुपुर एवं आसपासके एवं दूर-दूरके सभी गोपावासोंमें विलक्षण दीपमालिका आलोकित की गयी थी। प्रातः ही सभी गोपावासोंसे दिव्य शंखध्वनि निनादित होने लगी थी। विविध वाद्य बजने लगे, जगह-जगह गोप अपने-अपने इष्ट देवताओंकी पूजा एवं स्तुतियाँ कर रहे थे। इन गोपावासोंमें जितने ब्राह्मणोंकी बस्तियाँ थीं, उन सभी बस्तियोंसे मन्त्रोच्चारणकी ध्वनि होने लगी। भगवान् सर्वेश्वरकी ह्लादिनी शक्तिका प्राकट्य था, अतः सभी स्थानोंमें आनन्दप्लावन तो होना ही था। नद-नदी, सरोवर, अरण्य, पर्वत आदि सभी स्थानोंमें आनन्द उन्मत्त होकर नृत्य कर रहा था। कालिन्दीको जैसे ही अपनी प्राणसखी बहन राधाके जन्मोत्सवका समाचार

अपने पिता द्वारा मिला, वे तो उन्मत्त ही हो उठीं। वे सारे ब्रजक्षेत्रको अपने कल-कलनादसे यह संवाद सुनाने लगीं और उत्ताल तरंगोंके रूपमें अपनी भुजाओंको उठाकर नाचती हुई बड़े वेगसे समुद्रको यह संवाद सुनाने दौड़ चलीं।

यमुना नदीने वायुको तर्जना करके कहा कि मेरी प्राणसखी आयी है, अब मुझे ऐसा सौभाग्य मिलनेवाला है, जैसा अनादि कालसे अबतक किसी भी नदीको नहीं मिला। सुरसरिने तो प्रभुके चरण मात्र पखारे थे, मैं तो मेरी प्राणसखीकी कृपासे उनकी रसमयी क्रीड़ा-केलि-स्थली होने जा रही हूँ। मेरे पावन तटपर सैकत भूमिपर भगवान् नन्दनन्दन असंख्य गोपरामाओं और मेरी बहिन भानुतनयाके साथ रासक्रीड़ा करेंगे, अतः अपनी वर्षाजनित ऊष्मासंयुक्त आर्द्रताका सर्वथा सर्वांशमें त्याग कर देना भला ! मलय पवनको अविलम्ब बुलाओ और उसके साथ जहाँ-जहाँसे तुम्हें उत्तमोत्तम सद्गन्ध मिले उसे अपने समग्र अंगोंमें लगा लेना और आनन्दमत्त हुई वृक्षोंके मस्तकों, गोपरमणियोंके अञ्चलों और प्रासाद-शिखरोंकी पताकाओंके साथ नृत्य-क्रीड़ा करो। देखो ! सावधान रहना – मेरी बहिन भानुतनया विशुद्ध सत्त्वमयी हैं, अतः अपने अन्दर मलिन रजका संश्लेष भी मत रखना।

इस प्रकार भगवती ह्लादिनी शक्ति भानुकुमारीके अवतरणसे पृथ्वीमें ही नहीं, त्रिलोकीमें महानन्द छा गया। कल मध्याह्नसे एक ही साथ असंख्य देवदुन्दुभियाँ ब्रह्मताल, रुद्रताल एवं नारायणतालमें बजायी जाती हैं, परन्तु आज इस राधा-जन्म-महोत्सवमें वे विलक्षण पूर्ण सर्वतन्त्र-स्वतंत्र कृष्णतालमें बजने लगीं।

ये दुन्दुभियाँ कल मध्याह्नसे ही समस्त स्वर्गको निनादित कर रही थीं। देवसभाके संगीत-रस-विशारद हाहा, हूहू, तुम्बरु आदि गन्धर्व एवं किम्पुरुषगण इन दुन्दुभियोंके मधुर नादसे निशा

पर्यन्त सो ही नहीं पाये। अबतक तो ये दुन्दुभियाँ सुननेवालोंके चित्तमें विलास रसको उद्रिक्त करती थीं, किन्तु आज तो इनके निनादमें परमानन्द- पूर्ण भगवद्गुणगान सभीको श्रवणगोचर हो रहा था।

गन्धर्वोंका गायन अबतक देवताओंका आनन्द बढ़ानेके लिये देव-सभामें हुआ करता था। सिद्ध एवं चारण भी उन्हींकी स्तुतिमें ही अपना कालक्षेप करते थे। परन्तु आज भगवती भगवत्प्रेममयी राधा-जन्मोत्सवके परिणामस्वरूप वे अपने पूर्वकृत्योंके लिये परिताप करने लगे और अपने स्वभावसिद्ध मधुर कण्ठसे भी कहीं विलक्षण मधुरता तथा सुरीलेपनको प्राप्त करके भगवान् श्रीकृष्णका गुणगान करने लगे। इन गन्धर्वोंके भगवद्यशगायनसे उत्साहित उर्वशी, मेनका एवं रम्भादि अप्सरायें भी अप्राकृत परमानन्दमें भर गयीं और स्वर्गके विलास-नृत्यकी सम्पूर्ण बातोंको भूलकर श्रीगोविन्द-गुण-गानकी शुद्ध सत्वमयी तालोंमें ताल मिलाकर मधुर नृत्य करने लगीं। इस प्रकार सम्पूर्ण स्वर्ग ही नृत्यकी मधुरतम ध्वनिसे भर गया। देवताओंके समस्त शयन-प्रासाद श्रीकृष्ण-नाम-ध्वनि एवं उनके लीला-गायनोंसे मुखरित हो उठे।

सभी देवता सहसा जगकर आश्चर्यचकित नेत्रोंसे देखने लगे और आनन्दमत्त होकर मन्त्रमुग्धकी भाँति परमानन्दकी प्रेरणासे अपने- अपने स्थानको छोड़कर तुरन्त बृषभानुभवनपर स्वर्गके पारिजात सुमनोंको चुन-चुनकर पृथ्वीपर बरसाने लगे।

भगवान्की ह्लादिनीशक्तिका अवतार पृथ्वीमें हुआ है– ऐसा मानकर सभी देवगण उसके सौभाग्यकी सराहना करने लगे। पृथ्वीमें तो विलक्षण आनन्द-शोभाकी बाढ़ ही आ गयी है, अतः उसका आनन्द स्वर्गमें भी प्रतिबिम्बित हो उठा है।

वस्तुतः इस अप्राकृत महानन्दकी मूल तो भगवती

श्रीराधा ही हैं। उनके यथार्थ स्वरूपको तो भगवान् श्रीकृष्णके सिवा कोई नहीं जानता। इतना अवश्य है कि उन्होंने चुपके-से पृथ्वीपर अवतरण करके सबको अपने महानन्दमें उन्मत्त अवश्य कर दिया है। आज चौदह भुवन उसके जन्मोत्सवकी बधाईमें नाच रहे हैं। इस महाह्लादसे सप्तसिन्धुओंमें आनन्द-क्षोभ हो गया है। वे सभी क्षीरोदधि, घृतोदधि, मधूदधि, दधि-उदधि, शर्करोदधि, तैलोदधि एवं लवणोदधि मन्द-मन्द गर्जना करके उत्ताल तरंगोंमें नृत्य करने लगे।

समुद्रकी कन्या लक्ष्मीजी हैं, और श्रीराधा लक्ष्मीकी भी लक्ष्मी हैं। अतः इसी सम्बन्धसे गौरव-मण्डित हुआ सिन्धु गर्जना कर रहा है कि आज जिसके जन्मागमनसे समग्र विश्वब्रह्माण्ड परम आनन्दित है, वह मेरी पुत्री है।

समुद्रका गर्जन सुनकर जलधर भी मुखर हो उठे हैं। उन्होंने भी सोचा कि हमारे हृदयमें तो श्रीराधा सदासे ही विद्युल्लताके रूपमें रहती ही है। यह हमारी आराध्या ही मूर्तिमती होकर आज पृथ्वीमें अवतरित हो रही है।

चतुर्दिक् महान् आनन्दके मध्य ब्राह्ममुहूर्त्तके पूर्व ही बृषभानुपुरको एवं आसपासके सभी गोपावासोंको गोपोंने विलक्षणरूपसे सज्जित करना प्रारंभ कर दिया है। गोपोंकी सहायता करने स्वयं देवशिल्पी अपने असंख्य सहायकोंके साथ आकर जुट गये हैं। ब्रजके ग्रामीण गोप अपने-अपने प्रासादोंको भले ही वह सौन्दर्य न दे पाते, किन्तु जहाँ देवगण सहायक होकर समुपस्थित हो जावें फिर प्रासाद-सज्जामें क्या कसर रह सकती थी। प्रासादका प्रत्येक गृह, द्वार, प्रांगण, प्रत्येक प्रासादके बाहरकी गलियाँ, राजपथ– सब इस प्रकार स्वच्छ कर दिये गये कि कहीं मलिनताका एक कण भी दृष्टिगोचर नहीं हो सके। अहा ! इतना चन्दनवारि न

जाने कहाँसे प्रकट हो गया, बृषभानुपुरके पार्श्वसे बहता गिरिस्रोत ही मानो चन्दनवारिका निर्झर बन गया है, सम्पूर्ण ग्राम ही चन्दनवारिसे स्वच्छ हुआ महक उठा है। ओह ! गोपियाँ विपिनसे घड़े भर-भर पुष्प-रस-सार एकत्रितकर ले आ रही हैं, और सारा पुर ही पुष्प-रस-सारके छिड़कावसे आमोदित हो उठा है। यह पुष्पसार भी विलक्षण है, यह कृत्रिम क्रिया करके पुष्प-वाष्पसे निर्गत नहीं हुआ है, यह तो स्वाभाविक ही असंख्य पुष्पोंके द्वारा उनके मकरन्दसे निर्गत सत्व है, जो उनके द्वारा श्रीभानुकुमारीके जन्मोत्सवके उपलक्षमें समर्पण किया गया है।

अहा ! बृषभानुपुर एवं आसपासके ग्रामोंका ऐसा कोई गृह नहीं है, जहाँ सुकोमलतम पल्लवोंके बन्दनवार नहीं बाँधे गये हों; चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ जहाँ नहीं फहरा रही हों। गोपोंके यहाँ घृत-दुग्धकी तो कहीं कोई कमी नहीं, किन्तु बहुमूल्य रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्रोंकी तो न्यूनता स्वाभाविक ही है, परन्तु आज तो सभी गृहोंमें नये-नये रेशमी वस्त्र अनेकों भिन्न-भिन्न रंगोंमें इस भाँति लहरा रहे हैं कि ब्रज प्रदेशकी शोभा ही निराली हो गयी है। और आश्चर्य ! आज तो तितिक्षाकी मूर्त्ति, मात्र भिक्षाटनसे उदरपूर्ति करनेवाले, तपोमूर्त्ति ऋषि-ब्राह्मणोंके भवन भी पुष्पमालाओंकी लड़ियोंसे ही नहीं, अनमोल रत्नों, मुक्ता, गाणिक्य एवं नीलमणियोंकी मणिमालाओंसे सज्जित किये गये हैं। प्रत्येक गोपके आवासोंके आगे आम्रपल्लवसमन्वित जलपूर्ण मंगलघट रखे गये हैं। हरिद्रा, दूब, दधि, अक्षत एवं कुंकुमसे प्रत्येक गोपका द्वारदेश चित्रित है। स्थान-स्थानपर जहाँ-जहाँ चतुष्पथ हैं, गलियोंके मोड़ हैं, गलियोंके एक-दूसरी गलीसे मिलनस्थल हैं, सर्वत्र मोतियों एवं रत्नोंसे चौक पूरे गये हैं।

निशामें प्रकाशके लिये बृषभानुपुर एवं आसपासके गाँवोंमें

चतुष्पथोंपर, गलियोंमें लगे जो मणिस्तम्भ हैं, जिनमें लगी चन्द्रकान्त मणियों एवं सूर्यकान्त मणियोंसे चन्द्र एवं सूर्यकी ज्योत्स्नाएँ सम्पूर्ण ग्रामको उद्भासित करती रहती हैं, इन स्तम्भोंपरसे आवासोंके गवाक्ष-रन्ध्रोंतक जोड़कर रेशमी डोरियाँ बाँध दी गयी हैं और इनमें अति सुगन्धित पुष्पोंकी मालायें लटक रही हैं। घर-घरके आगे अगुरु, चन्दनचूर्ण, गुलाबके पुष्पोंकी पत्तियोंके चूर्ण, धूपवृक्षकी छालके चूरे, लोबान आदिको घृतमें सानकर जो मिश्रण बना है उसमें अनेकों प्रकारका इत्रसार मिलाकर जलाया जा रहा है, जिससे सम्पूर्ण नगर सुगन्धित हो रहा है।

महाराज बृषभानु बृहद्वननरेश नन्दरायके साथ ब्राह्ममुहूर्त्तमें ही नगरमें आ गये हैं और अपने प्रथम परकोटेके पूर्णरूपेण सुसज्जित तोरण-द्वारपर ही एक ऊँचे मञ्चपर विराजित हैं। उनके आसनसे भी एक और उच्च मञ्च बना है, जहाँ मृगछाला-आसनोंपर विराजमान सैकड़ों ब्राह्मण आशीर्वादात्मक मंगलवाची एवं सुभाषित पदावलियोंमें स्वस्तिवाचन कर रहे हैं। इनमें अनेक ब्राह्मण तो आशुकवि हैं, वे तत्क्षण ही सुन्दर गंभीर आशीर्वादमूलक अर्थयुक्त श्लोक-रचना करके महाराज बृषभानुकी सद्योजात पुत्री एवं नन्दरायके पुत्र श्रीकृष्णको सम्बोधितकर आशीर्वाद दे रहे हैं। उनसे कुछ दूरीपर सूत पुराणवाचन कर रहे हैं। उनसे कुछ दूरीपर हटकर मागध (मगध देशके पंडे) बृषभानुपुर नरेश एवं ब्रजेशकी वंशावलीका बखान कर रहे हैं। उनसे कुछ दूरीपर बन्दीजनोंकी पंक्तियाँ है; वे मधुर स्वरमें बृषभानु एवं नन्दराय दोनों नरेशोंके गुण गा रहे हैं।

दूर-दूरके गाँवोंसे यूथ-के-यूथ दल बनाकर गोप एवं गोपियाँ बृषभानुपुरनरेशको बधाई देने आ रही हैं। ये सभी बहुमूल्य वस्त्र-आभूषणोंसे सज्जित हैं। सबके पीताम्बरोंकी किनारी स्वर्णतारोंसे

गले लगकर मिल ही रही थीं कि बृषभानुपुरके एवं आसपासके गावोंके गोपोंने हल्दी एवं दही मिले घोलके माट नन्दबाबापर एवं उपनन्दजीपर ढोर दिये। अब तो क्या था, गोपोंका आनन्दोन्माद फूट पड़ा। नन्दग्राम एवं बृहद्वनके गोपोंने बरसानेके गोपोंपर इतना दूध, दही, घृत एवं नवनीत ढरकाया कि पीली नदी-सी बह गयी। दूध-दहीके अनेकों गड्ढे (गर्त्त) बन गये और उनमें उछल-कूद मचाते गोपबालकोंका उल्लास दर्शनीय हो रहा था। बृषभानुपुरका राजपथ दूध-दहीका सरोवर-तुल्य हो गया।

नन्दरायजी, जो भी गोप उनपर दधि-भाँड उडेलता है, उसे गले लगाकर रत्नमालाओंके हारोंसे उसका कण्ठ अलंकृत कर देते हैं। याचनाकी आवश्यकता नहीं, प्रत्येक मागध, सूत, चारण, बन्दीजन गायकोंकी टोलियोंको नन्दराय अनमोल स्वर्णजड़े वस्त्रोंकी गठरियाँ, रत्नोंकी पोटलियाँ एवं गौओंकी टोलियाँ दे रहे हैं कि उनका सदाके लिये मँगतापन मिट जाय। बृषभानुकुलके सूत, मागध, बन्दीजन, गायक, चारण, सहस्रों प्रकारके कलाकार – सभी नन्दराय द्वारा इतना धन-धान्य पा रहे हैं कि उसकी गणना ही संभव नहीं है।

बृषभानुजीने अपने सभी कोषागार श्रीनन्दरायजीको लुटानेके लिये पूरे खोल दिये हैं। किन्तु आश्चर्य है कि असंख्य गोपों एवं गोपियोंको इतनी सम्पत्ति एवं गोधन दान किये जानेपर भी कोषागारोंमें कहीं कोई रिक्तता दृष्टिगोचर ही नहीं होती। प्राकृत भंडारकी तो सीमा होती है, उसमें से कुछ निकालनेपर उतना अंश कम हो जाता है, उतने अंशकी पूर्णता अपेक्षित होती है। किन्तु श्रीबृषभानुजीका कोष तो प्राकृत नहीं है। वह तो भगवती जगदम्बाका अनुग्रहस्वरूप है। उसमेंसे तो श्रीनन्दबाबा एवं यशोदाजी जितना उलीचती हैं, वह उतना ही बढकर पुनः पूर्ण-परिपूर्ण हो

है। इनके पीछे दौड़ते हुए बालक-बालिकाएँ और गोप-गोपांगनाओंकी भीड़ चली आ रही है।

इन सब समुदायोंका स्वागत प्रथम द्वारपर ही नन्दबाबा, उपनन्दजी आदि नन्दग्रामके गोप कर रहे हैं। गोप परस्पर श्रीनन्दरायके गले मिल रहे हैं और कह रहे हैं – 'नन्दरायजी ! हम सभी बालिका राधाका मुख देखकर आ रहे हैं, स्रष्टाने इन नेत्रोंकी सृष्टि ही तुम्हारे सुत कृष्ण एवं इस बालिका भानुकुमारीको देखनेके लिये ही की थी। युगल जोड़ी चिरंजीवी हो।'

मागध एवं बन्दीजनोंसे कुछ हटकर संगीतज्ञोंका दल अति उच्च सुरीले स्वरमें गा रहा है। राग परजमें इन सबके संगीतकी स्वर-लहरी सुनते ही बनती है।

धन्य धन्य द्वापर जुग, धनि यह, भादौंकी आठैं अति पावनि।
प्रकटे पहलीमें मोहन, दूजीमें श्रीराधा मन-भावनि।।
उजियारौ पखवारौ पावन, भाग्यसील सुभ समय दुपहरी।
प्रकट भई राधा मन-मोहिनि, आनँदघनकी आनँद लहरी।।
पुन्यथली बरसानौ नगरी, भाग्यवान बृषभानु सुनरपति ।
कीरति रानी अति सुभागिनी, जिनतैं प्रगटी स्वयं स्याम-रति।।
भाग्यवान वे स्याम सलोने, जिन पाई यह दुरलभ संपति।
हम सब भाग्यवान नरनारी, भये धन्य कर तिनकी सुस्मृति।।

संगीतज्ञ वीणाके स्वर-में-स्वर मिलाकर इतना मधुर गायन कर रहे हैं कि श्रोता झूम रहे हैं। राजपथमें गोप-गोपांगनाओंकी भीड़ उमड़ी आ रही है।

गोपांगनाएँ श्रीराधाको आशीर्वाद देती हुई गा रही हैं –

मंगल बधाइयाँ हो, बँट रही भानुके दरबार।
राधिका प्रेममूरति हो, छबीलीने लीनौ अवतार।।
सुवासिन नारियाँ हो, कर रहीं सब कुलके आचार।
गा रहीं गीत मंगल हो, लौन-राई कर अति मनुहार।।

नन्दबाबा गोपोंसे एवं यशोदा, रोहिणी आदि स्त्रियाँ गोपियोंसे

गले लगकर मिल ही रही थीं कि बृषभानुपुरके एवं आसपासके गावोंके गोपोंने हल्दी एवं दही मिले घोलके माट नन्दबाबापर एवं उपनन्दजीपर ढोर दिये। अब तो क्या था, गोपोंका आनन्दोन्माद फूट पड़ा। नन्दग्राम एवं बृहद्वनके गोपोंने बरसानेके गोपोंपर इतना दूध, दही, घृत एवं नवनीत ढरकाया कि पीली नदी-सी बह गयी। दूध-दहीके अनेकों गड्ढे (गर्त्त) बन गये और उनमें उछल-कूद मचाते गोपबालकोंका उल्लास दर्शनीय हो रहा था। बृषभानुपुरका राजपथ दूध-दहीका सरोवर-तुल्य हो गया।

नन्दरायजी, जो भी गोप उनपर दधि-भाँड उडेलता है, उसे गले लगाकर रत्नमालाओंके हारोंसे उसका कण्ठ अलंकृत कर देते हैं। याचनाकी आवश्यकता नहीं, प्रत्येक मागध, सूत, चारण, बन्दीजन गायकोंकी टोलियोंको नन्दराय अनमोल स्वर्णजड़े वस्त्रोंकी गठरियाँ, रत्नोंकी पोटलियाँ एवं गौओंकी टोलियाँ दे रहे हैं कि उनका सदाके लिये मँगतापन मिट जाय। बृषभानुकुलके सूत, मागध, बन्दीजन, गायक, चारण, सहस्रों प्रकारके कलाकार – सभी नन्दराय द्वारा इतना धन-धान्य पा रहे हैं कि उसकी गणना ही संभव नहीं है।

बृषभानुजीने अपने सभी कोषागार श्रीनन्दरायजीको लुटानेके लिये पूरे खोल दिये हैं। किन्तु आश्चर्य है कि असंख्य गोपों एवं गोपियोंको इतनी सम्पत्ति एवं गोधन दान किये जानेपर भी कोषागारोंमें कहीं कोई रिक्तता दृष्टिगोचर ही नहीं होती। प्राकृत भंडारकी तो सीमा होती है, उसमें से कुछ निकालनेपर उतना अंश कम हो जाता है, उतने अंशकी पूर्णता अपेक्षित होती है। किन्तु श्रीबृषभानुजीका कोष तो प्राकृत नहीं है। वह तो भगवती जगदम्बाका अनुग्रहस्वरूप है। उसमेंसे तो श्रीनन्दबाबा एवं यशोदाजी जितना उलीचती हैं, वह उतना ही बढकर पुनः पूर्ण-परिपूर्ण हो

जाता है, इसलिये उनके देनेमें विराम नहीं, हिसाब नहीं। कोषागारके सेवक कोषमेंसे रत्नोंभरे पूर्ण पात्र ढो-ढोकर श्रीनन्दरायके सम्मुख रखते जाते हैं और नन्दराय उसे लुटाते जा रहे हैं।

हाँ ! इतना अवश्य है कि ब्रजेशके वात्सल्य-प्रेम-परिभावित मनमें निरन्तर केवल एक भावना है –

अनेन प्रीयतां भगवती ललिता तेन अस्य सुतायाम् मम सुतस्यच शिवम्।

(इस दानसे बृषभानुकी आराध्या भगवती ललिता प्रसन्न हों, और उससे इसकी कन्या एवं मेरे पुत्रका कल्याण हो।)

नन्दबाबाको पता ही नहीं कि जिसके कल्याणके लिये वे इतने प्रयत्नशील हुए इतना दान कर रहे हैं, वे स्वयं अनन्त लक्ष्मियोंको लक्ष्मीत्व प्रदान करनेवाली शक्ति हैं।

गोपांगनाओंकी भीड़ भीतर अन्तःपुरमें चली गयी है और वहाँ यशोदा मैया, रोहिणीजी, उपनन्दजीकी पत्नीको उन्होंने हरिद्रा-तैलके कीचसे सान दिया है। गोपांगनाएँ परस्पर एक दूसरेपर भी हल्दी-तेल छिड़कती बाहर-भीतर धूम मचा रही हैं।

इधर बृषभानुजीने सर्वाधिक सम्मान यशोदाजी, उपनन्दजीकी पत्नी एवं रोहिणीजीका किया है। पति-वियोग एवं पति-कारावाससे खिन्न राहिणीजी भी आज पूर्ण प्रसन्न दृष्टिगोचर हो रही हैं। सद्यजाता बृषभानुकुमारीका मुख जबसे इन गोकुल-महिषियोंने देखा है, इनका रोम-रोम आनन्द-विह्वल है। श्रीबृषभानुजी द्वारा प्रदत्त दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर ये गोपांगनाओंके सत्कारमें लगी हैं।

दिनका तीसरा पहर होता है। अब सभी गोप-गोपांगनाएँ स्नान करके स्वच्छ पीत वस्त्र पहन-पहनकर भोजनशालामें पहुँच रहे हैं । विशाल भोजन-शालामें सहस्रों पाकशास्त्रियोंने इतने

प्रकारकी सुस्वादु भोजन-सामग्री बनायी है कि आगन्तुकोंके मुँहमें देखते ही पानी आ जाय। गोंदपाक, पिश्तापाक, काजूपाक, केसरपाक, खारकपाक, बादाम, काजू एवं पिश्ताकी कतलियाँ – सभीपर स्वर्ण एवं रजतके बर्क मढ़े हुए हैं। केसरमिले बूँदीके लड्डू, मावेकी मिठाई, गुलाबजामुन, कालाजामुन, छेनापाक, छेनेकी बर्फी, रबड़ी, मलाई, बासौंदी, खीर, मलाई-लड्डू , कलाकन्द, मावाबर्फी, खीरमोहन, मलाई-मोहन, छेना-रसभरी, मलाई-रसभरी, आदि तो दूधसे बनी मिठाइयाँ थीं, इनके उपरान्त घृतसे सेंककर बनी मिठाइयाँ तो असंख्य थीं। इसके अतिरिक्त सैकड़ों ही शाक, अचार, पूड़ी, पूआ, मेवाखिचड़ी, भात, सभी प्रकारकी दालें, फिर गेहूँ, बेसन, बाजरा, मक्का आदि सभी धान्योंकी स्वादिष्ट रोटियाँ आदि थीं। ग्वाल-बाल हजारोंकी संख्यामें पंगतें लगाकर जेंवनार कर रहे हैं। एक तरफ गोपियोंकी भोजनशाला है और दूसरी ओर गोपोंकी।

आजके इस उत्सवकी सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि ब्रजप्रदेशके बृहद्वन, लोहवन, अम्बिकावन, कुमुदवन, तालवन, मधुवन, बहुलावन, गोदृष्टिवन, कदम्बवन, गह्वरवन, पिपासावन, सारिकावन, अंजनवन, विह्वलवन, कामनावन, मोहिनीवन, कोकिलावन, इत्रवन, खिदिरवन, विस्तरणवन, कोटवन, चमेलीवन, खेलनवन, भूषणवन, गुञ्जावन विहारवन, अघवन, आदि वनोंमें एवं उनके आसपास भिन्न-भिन्न ग्रामोंमें अपनी असंख्य धेनुओं सहित बसे सभी ब्रजवासी बालक-बालिकाएँ, पुरुष-नारी, वृद्ध-वृद्धायें इसमें सम्मिलित हुए थे। इस दिनसे पूर्व जन्मे प्रसूति-स्नानके पूर्वके बालक और उनकी प्रसूता मातायें अथवा पुरुष एवं स्त्रियाँ भी जो पैदल चलनेमें असमर्थ थीं, वे भी किसी-न-किसी बैलगाड़ी अथवा पालकीमें इस उत्सवमें सम्मिलित होने चली आयीं थी। सभी गोप-गोपियाँ अपने छकड़ों, बैलगाड़ियोंमें उपहार-सामग्री भरे अपने समग्र गोधन सहित

सर्वप्रथम तो रावलग्राममें जाकर सद्योजात श्रीराधाकुमारीका दर्शनकर तब बृषभानपुरके इस बृहदुत्सवमें सम्मिलित होने आये थे।

ब्रजवासियोंका यह सभी जनसमुदाय अनवरत बीस दिनोंतक इस उत्सवमें सम्मिलित रहा। अनवरत बीस दिनोंतक श्रीनन्दरायजी, श्रीमती यशोदारानी एवं नन्दगाँवके नन्दोंने ही इन सब अतिथियोंकी आवभगतकी सब व्यवस्था की। बीस दिनतक अनवरत प्रातःसे लेकर सायंतक श्रीनन्दबाबाने इतना स्वर्ण एवं रत्न, साथ ही गौएँ दान कीं कि ब्रजप्रदेशमें कोई भी याचक नहीं रहा। सबके कोष वस्त्रों, स्वर्णाभूषणों और रत्नोंसे भर गये। किसीकी भी गौशालाओंमें दूध प्रवाहित करनेवाले गोवंशका अभाव नहीं रहा।

एक गायक अनवरत बीस दिनोंसे पागलसा बृषभानुपुरकी गली-गलीमें गाता फिर रहा है। राग देसके शुद्ध आलापमें उसकी स्वरलहरी सम्पूर्ण ग्रामको गुँजा रही है—

अतुल आनन्द भर मनमें पुकारो भानुनृपकी जय।
मोदमें मस्त हो बोलो मातु श्रीकीर्तिदाकी जय।।

भाद्रपद मासकी जय-जय, पक्ष शुभ शुक्लकी जय-जय।
रुचिर तिथि अष्टमीकी जय, काल मध्याह्नकी जय-जय।।

सरस बृषभानुपुरकी जय, भानुके महलकी जय-जय।
कीर्तिके प्रसवगृहकी जय, चमारिन दाई माँकी जय।।

चूर आनन्द-मंदमें आज बोलो, राधिकाकी जय।
सलोने साँवरे गोविन्द राधा-प्राणकी जय-जय।।

परस्पर चावकी जय-जय, प्रेमके भावकी जय-जय।
तत्सुखी प्रेमकी जय-जय, प्रेमके नेमकी जय-जय।।

अनोखे त्यागकी जय-जय, विलक्षण रागकी जय-जय।
मधुर अनुरागकी जय-जय, हमारे भागकी जय-जय।।

परम आह्लादसे बोलो ह्लादिनी राधिकाकी जय।
ह्लादिनीके परम प्रियतम मनोहर श्यामकी जय-जय।।

।।७३।।

आज उससे भी अधिक आनन्द छाया है वहाँ,
गोपियाँ भूली हुई हैं, कौन है बैठी कहाँ।
मत्त-सा प्रत्येक है, जिस गोपको देखो जहाँ,
देख इसको हो रहा विक्षिप्त मैं भी हूँ यहाँ।।

किन्तु मेरी प्राणेश्वरी ! राधे !! आज तो उसकी अपेक्षा भी बहुत अधिक आनन्द व्रजपुरमें लहराता हुआ दीख रहा है । व्रजसुन्दरियाँ भूल गयी हैं कि कौन कहाँपर बैठी है । आज जहाँ, जिस गोप-गोपीको देखो – प्रत्येक व्यक्ति ही आनन्दमत्त हो रहा है । और सच तो यह है प्राणेश्वरि ! इस दृश्यको देख-देखकर मैं यहीं बैठे-बैठे आनन्दसे विक्षिप्त हो रहा हूँ ।

।।७४।।

तत्र आवामपि गच्छावेति प्रियतमस्योत्कण्ठा ।।

"तो प्रियतमे ! हम दोनों भी वहाँ चलें – इस प्रकार प्रियतम नीलसुन्दरमें उत्कण्ठा जाग्रत हुई ।

।।७५।।

प्रियतमां प्रति मनोरथनिवेदनम् ।

वे प्रियतमा राधाके प्रति अपना मनोरथ निवेदन करने लगते हैं ।

||७६||

प्रियतमास्वीकृतिः

प्रियतमा सम्मत हो जाती है ।

||७७||

प्रियतमेन सह गमनम्

प्रियतमके साथ चल पड़ती है ।

||७८||

यथा आवयोः निकुञ्जे नित्यस्थितिः तथैव सर्वथा अभिन्नत्वेन प्रकाश-रूपतया तव वृषभानुपुरे मम च बृहद्वनस्थगोकुलग्रामे वृन्दारण्ये च नित्यनिवासः क्रीड़ा चेति प्रियतमस्य पथि तत्त्वप्रवचनम् ।।

'जैसे हम दोनोंकी निकुञ्जमें नित्यस्थिति है, वैसे ही सर्वथा पारस्परिक अभिन्नता होनेके कारण प्रकाशरूपसे तुम्हारा वृषभानुपुरमें तथा मेरा वृहद्वनस्थ गोकुल ग्राममें और वृन्दाकाननमें नित्य निवास रहता है । नित्य क्रीड़ा भी चलती ही रहती है' – इस प्रकार प्रियतमका पथमें चलते समय तत्त्व-प्रवचन होता है ।

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

जिज्ञासाः- कृपया इस विषयको और अधिक विस्तारसे समझाइये ।

समाधानः- यह बात इसी ग्रन्थमें पूर्वतः ही भगवान् नारायणके मुखसे त्रिदेवोंके सम्मुख भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थान बृहद्वनका वर्णन करते समय कही जा चुकी है कि भगवान्का धाम भी भगवान्के तुल्य परात्पर ही होता है। भगवान्के नाम, रूप, लीला एवं धाम – ये चारों नित्य निरन्तर एक ही अनुपम परम तत्व हैं। इनमें कहीं भेद नहीं होनेसे भगवद्धाम – भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मस्थली चाहे बृहद्वन गोकुल हो अथवा श्रीराधारानीकी

जन्मस्थली बरसाना, ये सभी उज्ज्वलतम रसरूप प्रकाश मात्र हैं। यह नित्यनिकुञ्ज भी नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा एवं नित्य निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं, एवं परस्पर नित्यनिकुञ्जेश्वरी एवं नित्यनिकुञ्जेश्वर भी एक ही परात्पर परमतत्वके लीलारसके लिये बने दो स्वरूप हैं। वस्तुतः हैं एक ही। जो राधा हैं, वही श्रीकृष्ण हैं; एवं जो श्रीकृष्ण हैं वे ही राधा हैं। जैसे दूधमें धवलता है, अग्निमें दाहिकाशक्ति एवं पृथ्वीमें गन्ध है उसी प्रकार राधाकृष्ण भी परस्पर एक हैं और इनसे इनकी लीला एवं लीलापात्र; धाम एवं धामगत भिन्न-भिन्न नामधारी गोकुल-वृन्दावनादि देश, काल, देशान्तर्गत नदी-पहाड़-कुञ्ज-निकुञ्ज एवं कालान्तर्गत मास-पक्ष-सप्ताह-दिन सब एक हैं। इसी प्रकार लीलापात्रोंमें भी जितनी भी गोपियाँ और जीवन्त मादायें हैं, सब श्रीराधारानीकी कायव्यूहरूपा हैं और जितने भी जीवित नर हैं, सब श्रीकृष्णके ही कायव्यूहरूप हैं।

वह अनादि परात्पर पुरुष एकमेव अद्वितीय है; परन्तु अनादिकालसे वही अपनेको दो रूपोंमें नित्य निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण एवं नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा बनाकर अपनी ही आराधनाके लिये तत्पर है।

इसी तत्त्वका प्रकाश करते नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण इस चौपदेमें अपनी भोली प्रियाको समझाते हुए कहते हैं कि एक ही ज्योति जैसे अनेक रूपोंमें प्रकट होती है, इसी तरह हम दोनों यहाँ नित्य निकुञ्जमें नित्य प्रकाशक रूपमें अवस्थित हैं; किन्तु प्रकाशरूपसे मैं ही गोकुलमें यशोदोत्संगलालित बालकृष्ण बना खेल रहा हूँ और बृषभानुपुरमें तुम नित्यनिकुञ्जेश्वरी ही कीर्तिदाकुमारी राधा बनकर गोष्ठलीला कर रही हो। प्रकाशक रूपमें जो यहाँ नित्य निकुञ्ज है, वह प्रकाशरूपमें गोकुल एवं बरसाना हो जाता

है। अप्राकृत लीलाराज्यमें निकुञ्ज, बरसाना एवं गोकुल कोई पृथक्-पृथक् प्राकृत धराखण्ड नहीं हैं।

एक ही आनन्दघन परात्पर परमतत्व जो सत्-चित् एवं आनन्दघन है अपनी सत् – संधिनी शक्तिसे नित्य निकुञ्ज, बरसाना गोकुल, गिरि, नदी, एवं सरोवर बनता है, वही चित् – चिति शक्तिसे योगमाया बनकर निरन्तर रस-लीलाका आयोजक होता है और वही परात्पर परमतत्व ही ह्लादिनी – आनन्द श्रीराधा बन अनन्त गोपरमणियोंके रूपमें प्रकट हो लीला कर रहा है। एकमेव अभिन्न तत्व होनेसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होनेपर भी वस्तुतः सब एक हैं।

॥७९॥

तदनन्तरं स्वजन्मोत्सवं स्मारयन् वदति – –

धूम मेरी वर्षगाँठजनित मची थी जो अभी,
आजसे पन्द्रह दिवस ही पूर्व आये थे सभी।
थी नहीं माता बची वृषभानुपुरकी एक भी,
जो न आ बोली, 'ललन ! तेरा न टूटे बाल भी।।'

इसके अनन्तर प्रियतम नीलसुन्दर अपने जन्ममहोत्सवका स्मरण दिलाते हुए कहने लगते हैं – प्राणवल्लभे ! अभी मेरी जन्मगाँठकी तिथिको निमित्त बनाकर जो धूम मची थी – आजसे पन्द्रह दिन पहलेकी ही तो बात है – उस उत्सवमें सभी आये थे। वृषभानुपुरकी एक भी माता नहीं बची थी, जो आकर मुझे आशीर्वाद देते हुई यह न बोली हो 'मेरे लाल ! तेरा एक भी केश न टूटे भला।'

॥८०॥

और जैसे प्रतिपदासे द्वादशी पर्यन्त थे
छत्रधर वृषभानु, मेरे तात मानो दास थे,

जो महाराजा कहें, करते वही सानन्द थे,
वे कहीं भी जायँ, रहते वे सदा ही साथ थे।।

और फिर जैसे प्रतिपदासे आरंभकर द्वादशीपर्यन्त मानो राजाके पदपर महाराज वृषभानु सुशोभित थे और मेरे पिता नन्दबाबा, जैसे उनके दास हों, ऐसा आचरण कर रहे थे, महाराजा वृषभानु जो भी कह देते, मेरे पिता वही आनन्दमें निमग्न होकर करने लगते थे । वृषभानु कहीं भी जायँ, मेरे बाबा उनके सदा साथ ही रहते थे ।

।।८१।।

क्या तथा किस भँति हो कब, भारसे वे मुक्त थे,
देखते सारी व्यवस्था एक भानुनरेश थे।
देवता भी प्रेम दोनोंका निरख निस्तब्ध थे,
मित्रता-भ्रातृत्वका दोनों बने आदर्श थे।।

'क्या, कब, किस प्रकार हो' – इस प्रकारकी चिन्ताओंसे मेरे बाबा इतने दिनोंके लिए मुक्त हो गये थे। अकेले वृषभानु बाबा ही सम्पूर्ण व्यवस्था करते थे, व्यवस्थाकी सँभाल करते थे । देवता भी दोनोंका पारस्परिक प्रेम देखकर स्तब्ध हो गये थे । दोनों ही मित्रता एवं भ्रातृत्वका आदर्श बने हुए थे।

।।८२।।

और अन्तःपुर निदर्शन था अतुल इसका बना,
जो सखीके प्रति सखीमें है भरा अपनापना।
ग्वालिनोंको प्रीति निर्मलकी मिली थी प्रेरणा,
प्राणमें थी जा बसी सौहार्दकी वह साधना।।

और अन्तःपुर इस बातका अप्रतिम निदर्शन बना हुआ था कि एक सखीके प्रति दूसरी सखीके मनमें कैसा विचित्र अपनापन भरा होता है ! गोपसुन्दरियोंके मनमें, निर्मल प्रीति कैसी होती है, इसकी प्रेरणा उपर्युक्त उन दोनों सखियोंको देखकर ही प्राप्त हुई

थी । सौहार्दकी वह साधना उनके प्राणोंमें जा बसी थी भला ।

।।८३।।

स्वामिनी हैं इस भवनकी भानुमहिषी, यह विमल
भाव मैयामें प्रतिष्ठित था हुआ ऐसा अटल,

देखकर जिसको स्वयं भी कीर्तिदा होतीं विकल,
प्रेम-विह्वल हो बहाती थीं अनर्गल अश्रुजल ।।

'इस भवनकी स्वामिनी तो वृषभानुमहिषी हैं' – यह निर्मल भाव मेरी मैयामें इस प्रकार अचल रूपसे प्रतिष्ठित हो गया था कि जिसको देख-देखकर स्वयं कीर्तिदा महारानी भी विकल हो उठती थीं, भावविह्वल हो जाती थीं कीर्तिदा मैया और उनकी आँखोंसे अनर्गल अश्रुप्रवाह बहता रहता था ।

।।८४।।

जो जिसे देना तथा उपहार लेना, काम सब
गेहिनी-वृषभानु करती थीं वहाँ दिन-रात अब।
मूर्त मैयामें हुई रहती सरस विस्मृति अजब,
जान तक पाती न थी, है बन्धु आया कौन, कब।।

जिसको जो कुछ भी देना होता तथा जिसका जो उपहार स्वीकार करना होता – यह सब काम वृषभानुगेहिनी ही अब दिन-रात वहाँ करती थीं। मेरी मैयामें तो एक सरस विस्मृति निरन्तर जाग्रत रहती । वह यह बाततक नहीं जान पाती कि कुल-कुटुम्बका कौन व्यक्ति कब आया।

।।८५।।

देखती रहती मुझे तुमको, बनी प्रतिमा कला,
'री ! चले गाय जाऊँ क्या, तनिक बतला, भला।'
मैं उसे जब छेड़ता, तब बोलती हँस, 'साँवला
लाल ! मेरे ! पूछ ले, रानी कहे तो जा चला।'

बस, वह तो मुझे और तुमको, एक कलामयी प्रतिमा-सी बनी रहकर देखती रहती थी । जब मैं जाकर उसे छेड़ता – 'री मैया ! मैं गाय चराने जाऊँ क्या ? तनिक तू बतला तो भला ?' तब वह हँसकर बोलती – 'मेरा साँवला लाल ! तू जाकर कीर्तिदा रानीसे पूछ ले । यदि वे कह दें तो चला जा।'

॥८६॥

आज है उल्टा हुआ क्रम, तात हैं पालक बने,
पालिका मैया बनी है। आठ दिनसे भावने
जाल हैं ऐसे बिछाये, भानुगृहके सामने,
और अन्दर, जो न देखे थे कभी रवि-चन्द्रने॥

किन्तु मेरे प्राणोंकी रानी ! यही क्रम आज ठीक उलट गया है । मेरे बाबा तो राजा बने हुए हैं । और आज वृषभानुपुरकी रानी मेरी मैया बनी है । आज आठ दिनोंसे भावने निरन्तर भानु-भवनके सामने, अन्दर, ऐसे जाल बिछा दिये हैं, जिनका दर्शन, और तो क्या – कभी चन्द्र-सूर्यको भी अबतक नहीं हुआ था।

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

जिज्ञासाः- उपरोक्त चौपदेमें वर्णित है– **"भावने आठ दिनोंसे निरन्तर भानु-भवनके सामने और अन्दर, ऐसे जाल बिछा दिये थे, जिनका दर्शन सूर्य-चन्द्रको भी अबतक नहीं हुआ था।"** कृपया इसका स्पष्टीकरण करें।

समाधानः- यहाँ श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधारानीको निकुञ्जसे बृषभानुपुर ले जाकर वहाँ उनके जन्मोत्सवका दर्शन कराके वर्णन बतला रहे हैं। श्रीराधारानीका जन्म तो वैसे रावलग्राममें उनके ननिहालमें हुआ था, किन्तु उनका जन्मोत्सव एवं तत्पश्चात् प्रतिवर्ष उनकी वर्षगाँठ बृषभानुपुरमें मनायी जाती है। श्रीबृषभानुजी एवं श्रीनन्दरायजीकी मैत्री इतनी प्रगाढ़ थी कि श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवके समय

नन्दभवन एवं गोकुलमें मनाये जानेवाले सभी उत्सवोंकी सब व्यवस्था श्रीबृषभानुजी करते थे। उस समय श्रीनन्दराय सारा राज्यभार, कोषागार एवं अपना सर्वस्व बृषभानुजीको सौंप देते थे एवं स्वयं दासवत् उनके आधीन हुए उनकी आज्ञाका पालन करते हुए उत्सव मनाते थे। इसी प्रकार श्रीकृष्णजन्मोत्सवके ठीक पन्द्रह दिवस पश्चात् जब राधा-जन्मोत्सव होता तो यही क्रम उलटा हो जाता था। उस समय श्रीनन्दराय बृषभानुपुरके स्वामीवत् सब कार्य सम्हालते और श्रीबृषभानुजी उनके अनुगत हुए रहते थे।

इसी प्रसंगमें आगे श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो राधाजन्मोत्सव बृषभानुभवनके सामने राजपथमें प्रजा द्वारा मनाया जाता है, उसमें प्रजा द्वारा लगातार आठ दिनोंतक जैसा भाव प्रकट किया जाता है, इस प्रकारका भावोत्साह सृष्टिके इतिहासमें कभी नहीं हुआ।

वस्तुतः बात यही है कि बृषभानुपुरकी सम्पूर्ण प्रजा ही परिपूर्ण प्रेम-प्रतिमा है। उनमें पवित्रतम सहज सरलता कूट-कूटकर भरी है। उन सब प्रजाजनोंका जीवन ही पूर्ण भगवत्परायण है। इन सभी गोप प्रजाजनोंमें गुण, ऐश्वर्याभिमान छूकर भी नहीं गया है। वे सब इतने त्यागमय, मधुर स्वभाववाले हैं कि नारदादि ऋषिगण इनका स्वभाव पानेको ललचाते हैं, परन्तु ये गोप-गोपीजन अपनेको सदैव सर्व सद्गुणहीन ही अनुभव करते हैं। अपनेको त्रुटियोंसे भरा समझते हैं, अयोग्य और भोला मानते हैं।

बरसानेके सभी गोप-गोपी प्रजाजन श्रीराधाके जन्मके पश्चात् उसके रूप-गुण-सौन्दर्य-सौशील्यसे इतने मुग्ध एवं अभिभूत हैं कि उसपर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर बैठे हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन ही राधा-प्रेममय हो गया है। वे चलते-फिरते हैं, सोते-जागते हैं, सब व्यवहार करते हैं, किन्तु उनका जीवन- धारण करना अपने लिये नहीं है। वे यह सब-कुछ अपनी पुत्री राधाको सुख

पहुँचानेके लिये करते हैं। वे सदा-सर्वदा यही अनुभव करते हैं कि उनके समस्त मन-इन्द्रिय, अंग-अवयव, चित्त-बुद्धि, उनका चेतन-आत्मा उनकी राजकुमारी राधामें ही संलग्न रहे। उन्हें बृषभानुकुमारी राधा एवं उसके संभावी वर नन्दरायके पुत्र श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यका संकल्प भी कभी नहीं होता।

अतः जब श्रीराधाजीकी वर्षगाँठ आती है तो इनके हृदयमें अपने विशुद्ध अनिर्वचनीय प्रेमके कारण ऐसे निर्मलतम पवित्र अनुपम भावोंका उच्छलन होता है, जैसा पवित्र भावोच्छलन सृष्टिके इतिहासमें भी कभी नहीं होता। इनके अन्य राग और काम तो सर्वथा ही जल गये हैं, इनका प्रेम एकान्त परिशुद्ध हो उठा है। अतः यह परमोच्च शिखरपर आरूढ़ दिव्य प्रेम पन्द्रह दिन पूर्व तो श्रीकृष्णजन्मोत्सवपर और अब श्रीराधाकी जन्म-वर्षगाँठपर स्वभावतः ही ऐसी निर्मल भावोंकी उछालें लेता है, उसमें ऐसी-ऐसी निर्मल उत्ताल तरंगें आती हैं कि देखनेवाले सूर्य एवं चन्द्रदेव कृतकृत्य निहाल हो उठते हैं। यही इस चौपदेका भाव है।

सारिका वदति

॥८७॥

ऐसे कह हँसते हुए आ तोरणके पास,
हुए प्रफुल्लित देखकर अद्भुत भानुनिवास।

सारिका किञ्चित् रुककर दुगुने उल्लासमें भरकर फिर बोल उठी । इस प्रकार कहकर नीलसुन्दर हँसते हुए तोरणद्वारके समीप आ उपस्थित हुए और वहींसे अद्भुत वृषभानुभवनका दर्शन करके अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठे ।

॥८८॥

द्वार पाँच फिर पारकर, वे अर्चन-संलग्न
थे सब लोग जहाँ, वहीं पहुँचे हो रसमग्न ॥

इसके पश्चात् पाँच द्वार पार करनेके अनन्तर नीलसुन्दर वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ सब लोग देवाराधनमें संलग्न हैं, उनके आनन्दका पार नहीं रहता है, यह दृश्य देखकर ।

॥८९॥

लगे निरखने आप ही अपना ही वह रूप।
नृपतिसुता सुत-नन्दका नित्य नवीन अनूप॥

वहीं खड़े-खड़े वे अपने आप ही अपना रूप देखने लग जाते हैं – नन्दपुत्रके रूपको, वृभभानुनन्दिनीके रूपको ! अहा ! सर्वथा अप्रतिम सुन्दर दोनोंका रूप था। दोनों रूप क्षण-क्षणमें नवीन होते जा रहे थे ।

(तात्त्विक विवेचन–विस्तार)

जिज्ञासा:- यहाँ भगवान् नित्यनिकुञ्जेश्वर नीलसुन्दर एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा अपना ही नन्दनन्दन एवं कीर्त्तिदाकुमारीका दूसरा रूप कैसे देखते हैं – जब वे स्वयं ही तो उस रूपमें थे। क्या भगवान् भी प्रकाशक एवं प्रकाशके भेदसे अनेक हो सकते हैं ? वेद-प्रतिपाद्य तो यही है कि भगवान्में अंशांशी भाव संभव ही नहीं, क्योंकि पूर्णका अंश भी पूर्ण ही होता है, फिर दो पूर्ण होने कैसे संभव हैं ?

समाधान:- सर्वभवनसमर्थ, कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं शक्तिमान् भगवान्के लिये दोनों जगह दो रूपोंमें एक साथ प्रकट होना तनिक भी असंभव नहीं है। जो भगवान् करोड़ों गोपियोंके साथ एक ही समय रासमण्डलमें दो-दो गोपियोंके बीच एक-एक रूपसे प्रकट हो गये थे, द्वारकामें जो हजारों रानियोंके राजप्रासादोंमें प्रत्येक रानीके यहाँ नारदजीको विविध लीला करते दिखाई दिये थे, वे भगवान् एक ही साथ बृषभानुपुरमें भी प्रकट हो सकते हैं और स्वयं नित्यनिकुञ्जेश्वरके रूपमें अपनी प्रियाके साथ अपना

दर्शन करें – यह असंभव सर्वथा नहीं है। श्रीराधाजी अपने दिव्य चिन्मय देहसे गोलोकमें नित्यनिकुंजेश्वर श्रीकृष्णके साथ नित्य लीला करती हुई ही गोकुलमें नन्दयशोदाके यहाँ एवं बृषभानुपुरमें मैया कीर्तिदाके यहाँ जन्म लें –इसमें असंभव कुछ भी नहीं है।

बात यह है कि भगवान् अनिर्वचनीय सर्वतंत्रस्वतंत्र सर्वनियम-बन्धनविनिर्मुक्त हैं। उनकी सब लीला तर्कगोचर नहीं है। वे जो करें, वही नियम होता है।

॥९०॥

फिर देखी आराधना देवगणोंकी दिव्य।
थे कर रहे ब्रजेशसुत पद-पदपर साचिव्य॥

इसके अनन्तर वे देवगणोंकी दिव्य आराधनाका दर्शन करने लगे । उनका अपना ही रूप – नन्दनन्दन बना पद-पदपर परामर्श कर रहा था ।

॥९१॥

तत्र राजपुत्रीमंगलकामनया ब्रजेश्वरीभानुपुरेश्वरी-कृत श्रीगणपतिपूजनम्।

पूजाका क्रम यह था – राजपुत्री वृषभानुनन्दिनीकी मंगलकामनासे ब्रजेश्वरी नन्दरानी एवं भानुपुरेश्वरी श्रीकीर्तिदा महारानीके द्वारा सर्वप्रथम गणेशकी पूजा हुई ।

॥९२॥

ब्रजेशभानुपुरेशकृतजगद्गुरुश्रीदक्षिणामूर्तिपूजनम् ॥

फिर ब्रजराज एवं भानुपुरेश महाराज वृषभानुके द्वारा जगद्गुरु श्रीदक्षिणामूर्तिकी पूजा सम्पन्न हुई ।

॥९३॥

भानुपुरेश्वरकृतस्वकुलदेवीमहामायाजगज्जननीयोगमायाभगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीसमर्चनम् ॥

तदनन्तर महाराज वृषभानुके द्वारा अपनी कुलदेवी महामाया जगज्जननी योगमाया भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका समाराधन हुआ ।

॥९४॥

व्रजेशभानुपुरेशकृतसाम्बसदाशिवपूजनं श्रीमन्नारायणसमर्हणं च ॥

व्रजेश एवं भानुपुरेशके द्वारा जगदम्बाके सहित सदाशिवकी अर्चना हुई। और उन्हींके द्वारा श्रीमन्नारायणका समर्हण भी हुआ।

॥९५॥

भानुपुरेश्वरकृतश्रीसूर्यस्तवनम् ॥

भानुपुरेश्वर महाराज वृषभानुने श्रीसूर्यका स्तवन किया।

॥९६॥

व्रजेश्वरीभानुपुरेश्वरीकृतकालिन्दीस्तुतिः ॥

व्रजेश्वरी नन्दरानी एवं भानुपुरेश्वरी कीर्तिदा महारानीके द्वारा कलिन्दनन्दिनीकी स्तुति हुई।

॥९७॥

व्रजेशभानुपुरेशकृतश्रीगोवर्धनवन्दनम् ॥

और अंतमें व्रजेश्वर एवं भानुपुरेश्वरके द्वारा श्रीगिरिराज गोवर्धनकी वन्दना शुरू हुई ।

॥९८॥

समाप्य

चले न्योतने लोग वे अब नृपपुरकी प्रजा,
जब आया शुभयोग, पौ बस फटने था लगा ॥

इस प्रकार अर्चनाका समापन करके अब सभी भानुमहाराजकी प्रजाको निमन्त्रित करनेके लिए चल पड़े। शुभ योग लग चुका था । पौ बस, फटने ही जा रहा था।

॥९९॥

ब्रजपुरके वे काल-देश देखते बाट हैं-

अभी नन्दके लाल करते क्या संकल्प हैं ॥

सच बात तो यह है कि व्रजपुरके वे काल और देश प्रतीक्षा करते रहते हैं – अभी-अभी नन्दके लालके मनमें किस संकल्पका उदय हुआ है, वे क्या संकल्प कर रहे हैं ।

॥१००॥

होते हैं अनुरूप उसके ही वे, हे सखे !

रहकर बने स्वरूप गोपतितनया-नाथके ॥

सारिकाने बड़े स्नेहसे शुककी ओर देखा और पुनः कह उठी – सुनते हो शुक ? नन्दलालके संकल्पके अनुरूप ही व्रजपुरके देश-काल अपना रूप धारण कर लेते हैं । वे वैसे ही साँचेमें ढल जाते हैं । और यह भी सत्य है कि उनके स्वरूपमें कभी विकृति नहीं होती। वे तो ब्रजकुलचन्द्र नन्दनन्दनके स्वरूप ही जो ठहरे ।

॥१०१॥

अस्तु, गमनसमये ईदृशी अवस्थितिः

सर्वाग्रे साञ्जलिः ब्रजेश्वरः ॥

अस्तु, चलनेके समय लोगोंकी अवस्थिति निम्नांकित प्रकारसे हो रही है । सबसे आगे अञ्जलि बाँधे व्रजराज नन्द चल रहे हैं ।

॥१०२॥

तमनुसरन् तथैव भानुपुरेश्वरः ॥

ठीक उनका अनुसरण करते हुए वैसे ही अञ्जलि बाँधे महाराज वृषभानु चल रहे हैं ।

॥१०३॥

तत्पश्चात् निजदक्षिणहस्तं राधिकाकण्ठाभरणं कृत्वा ब्रजेश्वरी ॥

उनके पीछे अपने दाहिने हाथको नित्यनिकुञ्जेश्वरी

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके कण्ठदेशका आभूषण बनाये नन्दरानी चली जा रही हैं ।

।।१०४।।

राधिकायाः दक्षिणपार्श्वे भगिनी मञ्जुश्यामा ।।

राधाकिशोरीके दक्षिण पार्श्वमें उनकी बहिन मञ्जुश्यामा जा रही है ।

।।१०५।।

तस्याः दक्षिणे सखीसमाजः ।।

मञ्जुश्यामाके दाहिने सखियोंका समूह चला जा रहा है।

।।१०६।।

ब्रजेश्वर्याः वामपार्श्वे नन्दकुलचन्द्रमाः ।।

ब्रजेश्वरीके वाम पार्श्वमें नन्दनन्दन हैं ।

।।१०७।।

तस्य वामे श्रीरोहिणी ।।

नन्दनन्दनसे बायीं ओर श्रीरोहिणी मैया हैं ।

।।१०८।।

तस्याः वामपार्श्वे बलरामः ।।

रोहिणी मैयाके वामभागमें श्रीबलराम हैं ।

।।१०९।।

तत्य वामे श्रीदामा ।।

बलरामके बायीं ओर श्रीदाम हैं ।

।।११०।।

तस्य वामपार्श्वे गोपशिशुभिः सह सुबलः मधुमंगलश्च ।।

उसके वामपार्श्वमें गोप-शिशुओंके साथ सुबल और

मधुमंगल हैं ।

।।१११।।

ब्रजेश्वरीं अनुसृत्य भानुपुरेश्वरी ।।

ब्रजेश्वरीके पीछे-पीछे भानुपुरेश्वरी कीर्तिदा महारानी जा रही हैं।

।।११२।।

तस्याः वामपार्श्वे कीर्तिः ।।

उनके वामपार्श्वमें कीर्ति मैया है ।

।।११३।।

तस्याः वामे मातुश्च दक्षिणे राधिकापितृव्य गोपपत्न्यः।।

उनके वाम भागमें तथा कीर्तिदा मैयाके दक्षिण भागमें राधाकिशोरीकी ताई एवं चाची वर्गकी स्त्रियाँ चल रही हैं ।

।।११४।।

भानुपुरेश्वरीमनुसृतः राधिकापितृव्यगोपगणः ।।

कीर्तिदा मैयाके पीछे-पीछे राधाकिशोरीके ताऊ एवं चाचा वर्गके गोपगण हैं ।

।।११५।।

तमनुगच्छन्त्यः राजकुलसेविकाः ।।

इनके पीछे-पीछे चलने वाली राजकुलकी सेविकाएँ हैं।

।।११६।।

तत्पश्चात् राजकुलसेवकाः ।।

सेविकाओंके पीछे राजकुल-सेवक-दल है ।

।।११७।।

अष्टमपंक्ति विरचयन् भानुपुरराजमन्त्रिणः वामस्कन्धे हस्तं निधाय भ्रातृभिः सह उपनन्दः।।

अष्टम पंक्तिकी रचना करते हुए भानुपुर-राजमंत्रीके बायें

कंधेपर हाथ रखकर भाइयोंके साथ उपनन्दजी जा रहे हैं ।

॥११८॥

तथा राधाकृष्णैकत्वभाक् सन् एवं गच्छन्तं प्रत्येकं जनमेव अनुव्रजन् च सर्वालाक्षितश्च नित्यनिकुञ्जेश्वर्या सह श्रीकुञ्जबिहारी ।।

तथा राधाकृष्णसे सर्वथा एकत्वकी स्थापना किये हुए एवं निमंत्रणके उद्देश्यसे जानेवाले प्रत्येक व्यक्तिके ही पीछे-पीछे चलते हुए, फिर भी सबके अलक्षित बने हुए नित्यनिकुञ्जेश्वरीके सहित श्रीकुञ्जबिहारी चले जा रहे हैं।

॥११९॥

गणनामें थीं गाय सबसे कम जिसके यहाँ,
पहुँचे गोकुलराय मण्डल ले पहले वहाँ।।

इस प्रकार चलते हुए जिस गोपके घर गायोंकी संख्या सबसे कम थी, उसके निवासस्थलपर नन्दरायजी सम्पूर्ण मण्डलीको लिये हुए जा पहुँचे ।

॥१२०॥

भावकी कुञ्जेश्वरी-उरमें इधर धारा बही-
हैं खड़े प्रियतम, लगीं वे देखने सर्वत्र ही।
और है कुछ भी नहीं, थी वृत्ति ऐसी हो रही,
पीत तनका रंगतक था होगया साँवर सही।।

उस ओर कुञ्जेश्वरी राधाके हृदयमें भावकी एक नयी धारा बह चली । राधाकिशोरी अनुभव करने लगीं कि सर्वत्र ही केवल-केवल प्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वर ही खड़े हैं और यहाँ कुछ भी नहीं है – किशोरी इस वृत्तिमें परिनिष्ठित हो जाती हैं । बड़े अचरजकी बात यह थी कि राधाकिशोरीके श्रीअंगका पीतवर्णतक सचमुच श्यामवर्ण हो गया ।

॥१२१॥

फिर हुआ यह भान, मेरे पास तो वे एक हैं,
और हो अगणित अकेले नीलसुन्दर नाथ हैं।
झूमते-से जा रहे आनन्दमें वे मत्त हैं,
भानुपुरका गाँव है, अब रुक गये, पर मौन हैं।।

अस्तु, फिर राधाकिशोरीको अनुभव होने लगा कि एक रूपसे तो ये मेरे पास ज्यों-के-त्यों खड़े हैं और ये ही मेरे प्राणनाथ आज तो अगणित होकर स्वयं अपने रूपमें ही अकेले विराजित हो रहे हैं ! और देखो – आनन्दमें मत्त होकर झूमते-से चले जा रहे हैं । सामने भानुपुरका गाँव है । इसीके सामने आकर अब वे रुक गये हैं, चलना स्थगित कर दिया है; पर बोल कुछ भी नहीं रहे हैं – मौनव्रत धारण कर लिया है इन्होंने !

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

इस समग्र वर्णनमें निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण एवं निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाके तीन रूपोंका एक ही साथ वर्णन है। इसे ध्यानमें रखें। प्रथम तो श्रीकृष्णकी ही गोदमें श्रीराधा विराजित हैं और उन्हें निद्रा-सी आने लगती है। वे श्रीराधा श्रीकृष्णकी गोदमें स्वप्न देखने लगती हैं। दूसरे स्वप्नमें प्रकट श्रीकृष्ण भी स्वप्नकी ही भानुदुलारीके केश सँवारते हैं, और केश सँवारते-सँवारते उठकर कहने लगते हैं कि 'प्रियतमे राधे ! आज बृषभानुपुरमें तुम्हारा जन्मदिवस मनाया जा रहा है, वहाँ चलकर उसकी शोभा देखें।' अब स्वप्नके ये राधा-कृष्ण पुनः बृषभानुपुरमें जन्मोत्सवके समय अपना ही नन्दतनय एवं बृषभानुकिशोरीका रूप देखकर मुग्ध होते हैं – इस प्रकार यहाँ तीन रूपोंमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्ण अपने आपको ही देख रहे हैं। इन उपरोक्त दो चौपदोंमें दूसरे अर्थात् स्वप्नमें देखे जानेवाले उन प्रिया-प्रियतमकी दशाका

वर्णन है, जो बृषभानुपुरकी प्रजाके उत्सवमें नन्दरानीके बायीं ओर चलनेवाले श्रीकृष्णको देख रहे हैं। उनका वर्णन नहीं है जो अपनी प्रजाको अपने माता-पिताके साथ निमंत्रण देने जा रहे हैं। इसे ध्यानमें रखें।

।।१२२।।

इतने बोले श्याम, देखो तो, हे प्रियतमे !

देती हैं ब्रजबाम तुमको क्या उपहारमें ।।'

उस ओर इतनेमें ही नीलसुन्दर राधाकिशोरीके स्कन्ध-देशको हिलाकर बोल उठे – 'प्रियतमे ! देखो, सही ! ब्रजसुन्दरियाँ उपहारमें तुमको क्या दे रही हैं, भला !'

।।१२३।।

केवलं त्वां एव अहं पश्यामि इति वदन्तीं प्रियतमां प्रति प्रियतमस्य उक्तिः -

तव लोचनयोश्च रोमकूपे निखिले भावमयेऽहमेव वर्त्ते ।

अतएव मदेकदृष्टिभक्ता भवसीहापि पितुः पुरेऽद्य कान्ते ।।

राधाकिशोरी अविलम्ब ही उत्तर देती हुई बोल उठी – "प्राणरमण ! मैं तो केवल-केवल-केवल तुमको ही देख पा रही हूँ।" प्रियतमाको इस प्रकार बोलते देखकर प्रियतमासे प्रियतम नीलसुन्दर कह उठते हैं – 'प्राणप्रिये ! देखो, तुम्हारी आँखोंमें, तुम्हारे सम्पूर्ण रोमकूपमें भावका समुद्र लहरा रहा है। सर्वथा भावमयी तुम बन गयी हो। और इसीलिये अणु-अणुमें, परमाणु-परमाणुमें तुम्हारी दृष्टिमें केवल मैं-ही-मैं विराजित हूँ। तुम्हारी ऐसी ही दृष्टि आज अपने पिताके राज्यमें– पिताके गाँवमें इस समय भी हो रही है ।

।।१२४।।

तथापि मत्सुखार्थमेव मन्निगदितं श्रोतुं स्वल्पांशं द्रष्टुं च अर्हसि इति ।।

तथापि मुझे सुख देनेके लिए ही मेरी कही हुई बातोंको

तुम्हें सुन लेना चाहिए और उसका कुछ अंश अपनी आँखोंसे देख भी लेना चाहिये ।

।।१२५।।

सुख अपार है हो रहा, आज हुआ कृतकृत्य,
प्राणेश्वरि, हे प्रियतमे, देख चरित यह भृत्य ।।

प्राणोंकी रानी ! मुझे अपार सुख हो रहा है। आज मैं कृत्यकृत्य हो गया । मैं तो तुम्हारा भृत्य हूँ, यह चरित्र देखकर आज तुम्हारा यह भृत्य धन्य हो गया, प्रियतमे !

।।१२६।।

भले न देखो चित्र, अंकित हूँ जो कर रहा ।
वर्णन अतुल पवित्र सुन भर लो करके कृपा ।।

प्रियतमे ! हमारे सजाए हुए दृश्योंको तुम भले मत देखो, किन्तु कृपा करके इसका अत्यन्त पवित्र वर्णन तो सुन ही लो ।'

।।१२७।।

तदनन्तरं प्रियतमासम्मतिं निरीक्ष्य राजपुत्रीदर्शनेन प्रजाजनभाववैक्लव्यं तत्पश्चात् विस्तारेण उत्सवदशां वर्णयति।।

इसके पश्चात् प्रियतमा राधाकी सम्मति देखकर वहाँ राजपुत्रीका दर्शन करनेसे वृषभानुपुरकी प्रजामें भावोंकी कैसी विकलता प्रकट हुई थी, इसे वर्णन करनेके अनन्तर विस्तारसे सम्पूर्ण उत्सवके विभिन्न दृश्योंका नीलसुन्दर वर्णन करने लगते हैं।

।।१२८।।

त्रयोदशी पर्यन्तम् ।।

त्रयोदशीपर्यन्त कैसे क्या हुआ था, सब सुना जाते हैं।

।।१२९।।

सम्वर्ण्य प्रत्यावर्तनकाले पथि कथयति - 'प्राणेश्वरि ! स्मरसि किं पुरोवर्तिनौ ग्रामकासारौ?'

ग्राम है यावट यही, जिसमें रही तुम दग्ध थी,
आँचमें उस आगकी, जिसकी न है उपमा, न थी।
योगमायाकी रची सौ वर्षकी वह रात थी,
शोकसे निकली हुई ही आह बनती गीत थी।।*

इसी आह*पर एक हजार एक सौ ग्यारह (१११९) चौपदोंकी पू. गुरुदेव द्वारा रचित टिप्पणी है जो ग्यारह(११) शतकमें विभक्त (प्रियतम काव्य)के रूपमें प्रकाशित है। इस रचनाका अर्थ एवं विवेचनयुक्त टिप्पणियों सहित पृथक् ग्रन्थमें प्रकाशन किया जा रहा है।

यह सब सुना लेनेके अनन्तर जब वे पुनः निकुञ्जकी ओर लौटने लगते हैं तब प्रियतमा राधासे सहसा कह उठते हैं – 'प्राणेश्वरी ! राधे !! वह जो सामने ग्राम एवं तालाब दीख रहा है, उनकी बातें तुम्हें स्मरण हैं ? हृदयेश्वरी ! यही वह जावट ग्राम है, हाय रे ! यहाँ रहकर तुम ऐसे जल रही थीं, आगकी ऐसी लपटें तुम्हें घेरे हुई थीं, जिसकी उपमा न तो अबतक हो सकी है, न है। ओह ! योगमायाके द्वारा निर्मित उस समय सौ वर्षकी वह विपत्तिकी रात्रि थी। शोकसे जल-जलकर तुम्हारे मुँहसे निकली हुई आह ही गीत बन जाती थी भला !'

।।१३०।।

ततो यमुना तीरं प्राप्य वटकुट्टिमे उपविष्टस्य 'प्राणेश्वर क्वगता मम जननी तातश्च कुत्रास्ति, क्व च ममानुजा वर्तते' इति पृच्छन्तीं प्रियतमां प्रति प्रियतमस्योक्तिः -

कीर्तिदा वृषभानु एवं मञ्जुकृष्णा नामकी।
जो कनिष्ठा है सुता वृषभानुपुरके ईशकी,
हूँ बना मैं, प्रियतमे ! सब वस्तुएँ भी गोष्ठकी।
नित्य हैं कृति इन चरण-अम्भोजके इस दासकी।।

इसके अनन्तर यमुनातीरकी वटवेदीके समीप नील-गौर

दम्पत्ति पहुँचते हैं, विराज जाते हैं। उसके आलबालके समीप ही दोंनों चकित-सी हुई प्रियतमा राधा-प्राणरमण नीलसुन्दरसे पूछ बैठती हैं – "प्राणरमण ! मेरी मैया कहाँ चली गयी ? मेरे बाबा कहाँ हैं ? और कहाँ मेरी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा है ? इस प्रकार पूछती हुई प्रियतमा राधाके प्रति नीलसुन्दर रहस्योद्घाटन करते हैं – 'हृदयेश्वरि ! कीर्तिदा महारानी, महाराजा वृषभानु और मञ्जुकृष्णा नामकी जो वृषभानु महाराजकी छोटी पुत्री है – यह सब मैं ही तो बना हुआ हूँ। प्रियतमे ! सुनो, गोष्ठकी सब वस्तुएँ, तुम्हारे चरण-सरोरुहका नित्यदास जो मैं हूँ, उसीकी तो नित्यकृति हैं ।'

॥१३१॥

यथा बृहत्सानुपर्वतराज्याधिपतिमहीभानोः तस्य अर्धांगिन्याश्च सुषमायाः सुखदेति च ख्यातायाः रावलेशस्य च बिन्दोः तत्पत्न्याश्च ज्योतिः इति नामभूषितायाः बाल्यतः सर्वत्र मुखरेति परिचितायाः शरीराणि अधिष्ठाय चिन्मयत्वं सम्पाद्य स्वयमेव वृषभानुरूपे कीर्तिदारूपेण च समभवत् इति आरभ्य गोष्ठलीलां वर्णयति ॥

जैसे वृहत्सानुपर्वतके राज्याधिपति महीभानु, उनकी अर्द्धांगिनी सुषमादेवी – सुषमाको ही सुखदा भी कहकर लोग पुकारते हैं – तथा उस ओर रावलके राजा बिन्दु महाराज, उनकी पत्नी – जो ज्योति नामसे परिचित हैं, किन्तु बचपनसे सब कोई उसे मुखरा कहकर पुकारते हैं – इन सबके शरीरमें अधिष्ठित होकर, उनके शरीरोंको चिन्मयत्व प्रदानकर, स्वयं नीलसुन्दर ही वृषभानुरूपसे, कीर्तिदा महारानी रूपसे, आविर्भूत हो गये थे – यहाँसे आरम्भकर नीलसुन्दरने विस्तारसे सम्पूर्ण गोष्ठ-लीलाका वर्णन कर दिया ।

॥१३२॥

सम्वर्ण्य प्रियतमां आश्लिश्य कथयति – प्राणेश्वरि ! पश्य –

आकुल हो उस कुंजमें जय-जय करती गान ,
है पुकार तुमको रही सारी भरकर तान ।।

इस प्रकार वर्णन करके प्रियतमाको अंकसे लगाकर नीलसुन्दर कहते हैं – प्राणेश्वरी ! देखो उस कुञ्जमें आकुल होकर 'जय'जय' का रव भरती हुई, तान लेकर गाती हुई वह सारिका तुमको पुकार रही है ।

(तात्त्विक विवेचन-विस्तार)

जिज्ञासाः- चौपदे एक सौ तीस तथा एकसौ इकतीसमें श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'कीर्त्तिदा महारानी, महाराजा बृषभानु और मञ्जुकृष्णा नामकी बृषभानु महाराजकी छोटी पुत्री मैं ही बना था। मैंने ही राज्याधिपति महीभानु, उनकी धर्मपत्नी सुषमा, रावलके राजा बिन्दु, उनकी धर्मपत्नी सुषमा, रावलके राजा बिन्दु, उनकी पत्नी ज्योति (मुखरा) को चिन्मयत्व प्रदानकर उनके घरमें बृषभानु एवं कीर्त्तिदाके रूपमें जन्म लिया था'' – इस तथ्यपर कृपया प्रकाश डालें। इसी ग्रन्थमें यह तथ्य अनेक स्थानोंपर उल्लिखित है कि श्रीराधाकृष्ण ही परात्पर परम तत्व हैं। सृष्टि तो ब्रह्माजी द्वारा होती है, परात्पर परम तत्व तो निष्परिणामी निर्विकल्प निर्विकार है, फिर श्रीकृष्ण यह सृष्टि कैसे करते हैं ? ***''नित्य है कृति इन चरण-अम्भोजके इस दासकी''***–इस उक्तिपर कृपया प्रकाश डालें।

समाधान :- भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णतम हैं। भगवान् जब अपने अशेष गुणोंको प्रकट करते हैं तब वे 'पूर्णतम' कहे जाते हैं; जब सब गूणोंको प्रकट न करके बहुत-से गुणोंको प्रकट करते हैं, तब 'पूर्णतर' और जब उनसे भी कम गुणोंको प्रकट करते हैं तब 'पूर्ण' कहलाते हैं। भगवान्के पूर्णावतारमें भी उनकी अपनी इच्छासे बहुत सी शक्तियाँ सन्निहित रहती हैं। ये शक्तियाँ क्या हैं ? ऐश्वर्य, माधुर्य, कृपा, तेज आदि गुण ही भगवान्की शक्तियाँ हैं । भगवानका

श्रीकृष्णावतार तो पूर्णतम होनेके कारण सर्वशक्ति-निकेतन अवतार था। इसे एक अंशमें तो 'अवतार' कहना ही युक्तिसंगत नहीं है। यह तो परिपूर्णतम भगवान्का स्वयंका आविर्भाव ही था। ये श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, परमात्मा हैं, और ब्रह्म भी हैं। इसीलिये भगवान्में परिपूर्णतम ज्ञान, परिपूर्णतम शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज सदैव स्वरूपतः वर्त्तमान है।

भगवान्का ऐसा पूर्णतम आविर्भाव बहुत कम ही हुआ करता है। इन भगवान्में जबतक पूर्ण आनन्द (रस), पूर्ण भोक्तृत्व, पूर्ण कर्तृत्व, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण ज्योति, पूर्ण शक्ति, पूर्ण ऐश्वर्य, पूर्ण अदोषदर्शित्व और पूर्ण विरुद्धशक्तित्व नहीं होता, वह पूर्णतम नहीं होता।

इसीलिये ये श्रीभगवान् अकर्त्ता होकर भी कर्त्ता हैं। अभोक्ता होकर भी सर्वभोक्ता हैं। वे पूर्ण परात्पर ब्रह्म ही नहीं, ब्रह्मकी भी प्रतिष्ठा, सर्वथा सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, फिर भी उनका स्वरूप और आकार प्राकृत मनुष्यका सा दिखता है। वे स्नान, भोजन, शयनादि करते हैं। वे सर्वभवनसमर्थ हैं। वे चाहे जो कर सकते हैं, चाहे जैसे बन सकते हैं।

निर्विशेष, निराकार, निर्विकल्प, निर्विकार परब्रह्म और श्रीकृष्णमें वैसा ही एकत्व है जैसा किरणोंमें और सूर्यमें है। श्रीकृष्ण इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीतामें अपना परिचय देते हुए स्वयं अपनेको ब्रह्मकी प्रतिष्ठा बतलाते हैं। वे विश्व स्रष्टाओंके भी स्रष्टा हैं – यह चमत्कारी कर्तृत्व वे अपनी ब्रह्ममोहनलीलामें सिद्ध कर चुके है। । उन्हें एक क्षण भी नहीं लगता, लव मात्र काल पूर्ण नहीं हो पाता कि वे ब्रह्माजीके सम्मुख अपना ऐसा योगवैभव प्रदर्शित करते हैं कि कलिन्दकन्याके शुभ्र पुलिनपर वैसे-के-वैसे सम्पूर्ण सखा, गोवत्स तथा समस्त लीला-उपकरण प्रकट हो जाते हैं। ब्रह्माजीके द्वारा अपहृत गोपशिशु और गोवत्स तो वैसे ही

शिलाखण्डसे ढकी गुफामें उनकी मायासे अभिभूत पड़े रहते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण अपने आपको ही ठीक उतनी ही संख्यामें प्रकट कर देते हैं। केवल संख्या ही नहीं, इन गोप-शिशुओंकी, गोवत्सोंकी ऊँचाई, लम्बाई, उनका परिमाण, उनके कर-चरण ठीक पूर्ववत् ही होते हैं। उनके जिन-जिन अंगोंमें जो-जो किसलय-कुसुम आदिके आभूषण थे, इन सबके अंगोंमें भी वैसे ही आभूषण परिशोभित होते हैं। कहनेका इतना ही तात्पर्य है कि भगवान्‌के लिये किसी भी वस्तुकी रचना करना कुछ भी कठिन नहीं है। वे सर्व कर्त्तुम्-समर्थ हैं, सर्व अकर्त्तुम्-समर्थ हैं और सर्व अन्यथा-कर्त्तुम्-समर्थ हैं। उनमें अनन्त क्रियाशक्ति प्रतिक्षण वर्त्तमान रहती है। *'सर्वं खल्विदं कृष्णः'* का अर्थ ही यही है कि जो कुछ, जहाँ, जैसी भी व्यक्त, अव्यक्त शक्ति है सब सर्वशक्तिमान श्रीकृष्णकी ही है। वे इसे स्वीकार किये रहें अथवा उससे सर्वथा असंग होकर अपने विशुद्ध आनन्दस्वरूपमें प्रतिष्ठित रहें – यह उनकी सर्वतंत्र स्वतंत्र इच्छा, संकल्पशक्तिपर निर्भर है। वे अपने संकल्पसे सब करने, होनेमें पूर्णतया समर्थ हैं। उनका सर्व शास्त्रोक्त चरित्र यही सिद्ध करता है। इसी शक्तिके प्रकाशसे भगवान् श्रीकृष्ण यदि महीभानु आदि गोपोंको चिन्मयत्व दानकर और उनके यहाँ बृषभानु महाराज अथवा महाराज विन्दुके यहाँ कीर्तिदाके रूपमें अपनेको प्रकट कर दें तो इसमें असंभव कुछ भी नहीं है।

दूसरे पिता-माता पुत्रका जगत्‌में प्रकाश करते हैं, इसीसे वे पुत्रके प्रकाशक कहे जाते हैं। भगवती श्रीराधा तो भगवान् श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्ति हैं। उनके प्रकाशक तो स्वयं भगवान् ही संभव हैं। फिर भगवान् तो स्वप्रकाश हैं। उनका प्रकाश भला अन्य कौन कर सकता है। क्योंकि भगवान्‌की स्वप्रकाशिका शक्ति ही भगवान्‌का प्रकाश कर सकती है, अतः बृषभानुजी एवं माता

कीर्त्तिदा दोनों ही भगवान्की स्वप्रकाशिका सच्चिदानन्दमयी शक्ति ही थे – यही सिद्ध होता है । फिर इनको जन्माने वाले महीभानु-सुखदा अथवा बिन्दु-मोक्षदामें चिन्मयत्व नहीं होगा तो भगवान्की बृषभानु एवं कीर्तिदाके रूपमें अभिव्यक्त स्वप्रकाशिका शक्ति इनसे अवतरित कैसे होगी ? अस्तु, यही सिद्ध होता है कि भगवान् द्वारा अवतार लेनेके दो पीढ़ी पूर्व से ही चिन्मयत्वका प्रकाश उन पुरुषोंमें हो जाता है, जिनके वंशमें भगवान्का आविर्भाव होना होता है। श्रीकृष्ण अपनी उक्ति द्वारा इन चौपदोंमें यही सिद्धान्त प्रतिपादित कर रहे हैं।

।।१३३।।

पुनरत्रागमनम् ।

सुनते ही प्रियतमा चल पड़ती हैं और कुञ्जमें पदार्पण करती हैं ।

।।१३४।।

भावाविष्टनिजस्वरूपदर्शनम् ।।

पहुँचते ही अपने ही भावाविष्ट स्वरूपपर दोनोंकी दृष्टि चली जाती है।

।।१३५।।

हँसकर दोनों आ मिले इनमें ही अविलम्ब,
और खुले प्रियतम-नयन बन मेरे अवलम्ब ।।

दोनों ही हँसकर अविलम्ब उसी स्वरूपमें जा मिलते हैं । बस, प्रियतमकी आखें खुल जाती है । कातर सारिकाको अवलम्ब प्राप्त हो जाता है।

।।१३६।।

थे वे हुए अधीर जैसे श्रीमुख देख, फिर
जगीं स्वामिनी, कीर ! हैं तुमने देखे स्वयं ।।

सारिका उल्लासमें भरकर कहने लगती है – 'तोता ! अहो ! फिर वे प्रियतमाका श्रीमुख देखकर जैसे अधीर हो उठे थे और इसके अनन्तर जिस भाँति स्वामिनी जग उठी थी – यह सब तो तुमने स्वयं देखे ही हैं ।'

॥१३७॥

तर्हि दम्पतिदृष्टमिदं किं सर्वथा स्वप्नवत् मिथ्याएव इति पृच्छन्तं शुकं प्रति सारिकोक्तिः -

जिस समय ये देखते हैं, कीर ! जो, सब सत्य है,
सत्यमय इनमें प्रतिष्ठित भूत और भविष्य है ।
सत्यका संकल्प भी प्रत्येक उसका रूप है,
है न उससे भिन्न वह, सर्वांशमें ही आप है ।

'तो क्या दम्पतिके द्वारा देखी हुई ये सब बातें स्वप्नवत् मिथ्या हैं ? – शुक तुरन्त ही इस भाँति प्रश्न कर उठा और उसके उत्तरमें सारिका बोल उठी – 'कीर ! देखो, दम्पति स्वयं नित्य सत्य है, सत्यमय इनमें ही भूत और भविष्य – दोनों ही प्रतिष्ठित हैं । सत्यका प्रत्येक संकल्प भी उसका रूप ही होता है, भला ! वह उससे भिन्न कदापि नहीं है । सर्वांशमें वह आप-ही-आप नित्य विराजित है ।'

॥१३८॥

सारिकावचनश्रवणेन शुकस्य भावसमाधिः ॥

सारिकाके वचन श्रवणमात्रसे शुक भावसमाधिमें डूब जाता है।

॥१३९॥

प्रियतमस्य शुकं गृहीत्वा निजांके स्थापनम् ॥

नीलसुन्दर प्रियतम शुक पंछीको उठाकर अपने अंकमें विराजित कर लेते हैं ।

॥१४०॥

राधिकावतु स्वप्नस्था श्रीकृष्णं दयितावेशम् रक्षतु मञ्जुश्यामायाः रूपकृद् वल्लभाकेशम् । सारिकायाः नित्यनिकुञ्जेश्वरी चिकुरैकत्वम् ॥

सहसा सारी बोल उठी – 'स्वप्नावस्थामें अवस्थित राधिका दयिता-वेशमें विराजित श्रीकृष्णकी रक्षा करें । मञ्जुश्यामाका रूप धारण करने वाले नीलसुन्दर वल्लभाके कुन्तलोंकी रक्षा करें – इस प्रकार कहती हुई सारिका नित्य निकुञ्जेश्वरीके चिकुरमें समा जाती है । उनसे एकतालाभ कर लेती है।

॥१४१॥

तदनन्तरं एव शुकस्य प्रियतमकुन्तलमयत्वम् ॥

उसके अनन्तर तुरंत ही शुक पक्षी नीलसुन्दरके कुन्तलोंमें समा जाता है । उन कुन्तलोंसे एकत्व प्राप्त कर लेता है ।

॥१४२॥

है नहीं श्रोता वहाँ कोई, न अब है नायिका,
मात्र वे प्रियतम विराजित और हैं प्राणाधिका ।
है तनिक अन्तर रहीं हैं देख पट-अपसारिका ।
कृष्ण हैं राधा बने, माधव बनी हैं राधिका ।

अब वहाँ कोई श्रोता नहीं है । और न अब कोई गायिका है । केवल मात्र प्रियतम नीलसुन्दर और प्राणाधिका श्रीराधा ही विराजित हैं । हाँ, तनिक-सा अन्तर अवश्य है, पर इसे एकमात्र पट-परिवर्तन करने वाली अघटघटनापटीयसी योगमाया देख रही हैं – नीलसुन्दर कृष्ण तो राधा बने हुए हैं और राधाकिशोरी माधव बनी हुई हैं ।–

गीतावाटिका,गोरखपुरका राधाष्टमी–महोत्सव एवं उसकी परंपरा

छठा अध्याय

पिछले अध्यायमें जो श्रीराधा-जन्म-महोत्सवका वर्णन किया गया है, इस सम्पूर्ण लीलाकी स्फूर्ति पू.गुरुदेवको सन १९५७ ई. के राधाष्टमी-महोत्सवपर रतनगढ़(राजस्थान)में हुई थी। चिन्मय बृषभानुपुरमें राधा-वर्षगाँठका जो उत्सव बीस दिवसतक चला, उसे पू.गुरुदेव अपने रतनगढ़ प्रवासकालमें अनवरत छः माहतक देखते रहे। पू.गुरुदेवको प्राकृत कालके दिन-रातका भान ही उन दिनों लुप्त हो गया था। अतः पूरे छः माह पू.गुरुदेव इसी लीलाके दर्शनमें निमग्न रहे।

पू.गुरुदेव सन् १९४०ई. से ही भाद्रपद शुक्ला अष्टमीके मध्याह्नमें राधा-जन्म-महोत्सव मनाते आये थे। दो-तीन वर्ष तो यह उत्सव पू.गुरुदेव द्वारा उनके भावराज्यमें मानसी रूपमें ही मनाया गया, उसके पश्चात् इसका विस्तार होता गया। आगे जाकर तो इस उत्सवमें दो-तीन हजार व्यक्ति सम्मिलित होने लगे। लगभग सत्तावन वर्षोंसे यह उत्सव गीतावाटिका, गोरखपुरमें अनवरत मनाया जा रहा है।

ललिता-जन्मोत्सव

ललिता-जन्मोत्सवका आयोजन गीतावाटिकामें भाद्रपद शुक्ला षष्ठीको होता था। पाँच हजार वर्ष पूर्व इसी दिवस बृषभानुपुरके समीप ही एक पहाड़ीकी तलहटीमें बसे ऊँचेगाँव नामक स्थानमें पिता सत्यभानु (विशोक)के घर माता शारदाकी कोखसे भगवती ललिताका प्राकट्य हुआ था। श्रीललिताजीकी माता शारदा थी, जो कीर्तिदा मैयाकी मौसेरी बहिन थी। सखी ललिताके जन्मका संक्षिप्त वर्णन हम पीछेके अध्यायोंमें पढ़ चुके हैं। निकुञ्जमें सखीरूपमें श्रीराधाकी सेवार्थ भगवती त्रिपुरसुन्दरीका ही श्रीललिता रूपमें अवतरण है। श्रीराधाकी सखियोंमें ये ही प्रधान सखी हैं । ये बहुत ही उदार स्वभावकी हैं। प्रकारान्तरसे राधारानीकी समस्त लीलाओंकी परम अध्यक्षा ये ही हैं। निरन्तर वाम्य एवं प्रखरताका एक अद्भुत सम्मिश्रण इनकी चेष्टाओंमें परिलक्षित होता

रहता है। जिस भाँतिसे अधिकाधिक रसपोषण संभव है, उसी प्रकारकी चेष्टाओंसे परिव्याप्त रहकर ये प्रिया-प्रियतमका आनन्दवर्धन करती रहती हैं। ये निकुञ्जमें प्रिया-प्रियतमकी ताम्बूल-सेवा करती हैं। वैसे पुष्प-वितान, पुष्पमण्डल, पुष्पछत्र, पुष्पशय्या, पुष्पगृह आदिकी रचनामें भी ये अत्यन्त निपुण हैं। विविध इन्द्रजालकी ये पंडिता हैं एवं पहेली-अवधारणामें इनके समान निकुञ्जमें कोई नहीं है।

निकुञ्जलीलामें इन ललिताजीकी आयु चौदह वर्ष, तीन महीने और बारह दिनकी रहती है। ये वीणा बजानेमें अति कुशल हैं। भैरव, कालिंगड़ा राग इन्हें अत्यधिक प्रिय है। ये मयूरपिच्छाभ वस्त्र पहनती हैं एवं इनका रंग ललाई लिये विद्युद्वर्ण है। इनके कुञ्जसे गोरोचन-सी कान्ति सर्वत्र प्रकीर्ण होती रहती है।

सखी ललिता विशुद्ध खण्डिता भावकी मूल स्रोत हैं। अतीत, वर्तमान एवं भविष्यमें प्रवाहित खण्डिता भावकी प्राकृत धारा इनके विशुद्ध रसमय, चिदानन्दमय भावकी ही छाया है। अवश्य ही इनमें जो खण्डिता भाव है, वह अपने स्वयंके निमित्तसे व्यक्त नहीं होता। भानुकिशोरी श्रीराधा एवं श्रीकृष्णचन्द्रके निर्दिष्ट सम्मिलनमें विलम्ब होनेपर ही इस दिव्य भावका उन्मेष इनमें प्रायः होता है।

निकुञ्जलीलामें प्रिया-प्रियतमकी सेवामें इनकी तीन प्रधान सहायिकाएँ रहती हैं– (१) अनंगमञ्जरी (श्रीराधारानीकी छोटी बहिन, जिनका दूसरा नाम मञ्जुकृष्णा, मञ्जुश्यामा भी है) (२) लवंगमञ्जरी, (३) रूपमञ्जरी।

इनके अतिरिक्त इनकी आठ प्रधान सखियाँ हैं – (१) रत्नप्रभा, (२) रतिकला, (३) सुभद्रा, (४) भद्ररेखिका, (५) सुमुखी, (६) धनिष्ठा,(७) कलहंसी, (८) कलापिनी।

इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला षष्ठीको सूर्योदयके ठीक दो घड़ी (अड़तालीस मिनट) पश्चात् होता है। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा गीतावाटिकामें षष्ठीके दिवस प्रातःकाल ही यह उत्सव मनाया करते थे। गीतावाटिकामें सूर्योदयके दो घड़ी पश्चात् यह पूजा सम्पन्न होती थी। श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला (पू.पोद्दार महाराजके जामाता) भगवती ललिताके प्रच्छन्न-रस-सम्पुटित खण्डिताकी छाया लिये जगज्जननी रूपकी षोडशोपचारसे पूजा किया करते थे। इस पूजाके पश्चात् श्रीललिताजीकी बधाईके पद गाये जाते थे। तत्पश्चात् **'जय राधे जय**

जय ललिते' का नाम-संकीर्त्तन हुआ करता था।

विशाखा-जन्मोत्सव

इसी प्रकार दूसरे दिवस सप्तमीके दिन विशाखाजीका जन्मदिवस भी मनाया जाता था। श्रीविशाखाजीका जन्म ठीक उसी समय हुआ था, जिस समय श्रीराधाजीका जन्म हुआ था। किन्तु यह मान्यता गौड़ीय सन्तोंकी है। श्रीवंल्लभ सम्प्रदायके वैष्णव इनका जन्म सप्तमीको ही मानते हैं। पू.गुरुदेव अपने भावसे तो गौड़ीयोंकी मान्यता स्वीकारते थे, परन्तु सप्तमीको प्रातः श्रीविशाखाजीकी बधाईके पद अवश्य सुना करते थे।

श्रीविशाखाजीके पिताका नाम पावन एवं माताका नाम सुदक्षिणा था। एक भिन्न मतसे इनके पिताका दूसरा नाम गुणभानु एवं माताका नाम गुणकला भी था।

श्रीविशाखाजीका जन्म कामेई ग्राममें हुआ था। इस ग्रामका प्राचीन नाम कामनावन था। इनकी भी अंगकान्ति विद्युत् जैसी है, किन्तु ललिताजीकी विद्युत्प्रभ कान्तिमें किंचित् कुमकुम जैसी लालिमा निहित रहती है एवं इनकी अंगकान्तिमें तारकावलीकी तरह शुभ्रता भरी रहती है। इनका परिधान भी तारावलीप्रभ शुभ्र है। इनके कुञ्जका नवघनश्यामवर्ण है।

कर्पूर आदि विविध सुगन्धित द्रव्योंसे प्रिया-प्रियतमके अंगोंमें विलेपन करना इनकी सेवा है। इस विलेपनके निर्माणकी भी ये विशेषज्ञ हैं।

इनका स्वाधीनभर्तृका भाव है। दूसरे शब्दोंमें यों कहें कि इस भावकी अप्राकृत चरम परिणति इनमें ही है। विश्वसृष्टिमें यह भाव यदि कहीं दृष्टिगोचर होता है तो उसकी मूल उद्गमस्थली ये ही हैं। अतीत एवं अनागत विश्वमें स्वाधीनभर्तृका भावका उन्मेष इनकी सत्तापर ही अवलम्बित है।

इन्हें सारंग राग बहुत प्रिय है और मृदंग इनका प्रिय वाद्य है। निकुञ्जलीलामें इनकी आयु चौदह वर्ष दो माह पन्द्रह दिनकी रहती है। प्रिया-प्रियतमकी सेवामें इनकी तीन मुख्य सहयोगिनी रहती हैं – (१) मधुमतीमंजरी, (२) रसमञ्जरी, (३) गुणमञ्जरी। इनकी आठ सखियोंके नाम निम्न हैं – माधवी, मालती, चन्द्ररेखिका, कुञ्जरी, हरिणी, चपला, सुरभि, शुभानना।

इनके पिता महान् विद्वान हैं। ये स्वयं भी पूर्ण विदुषी हैं। इनका परामर्श

कभी व्यर्थ नहीं जाता। ये अत्यन्त परिहास-कुशल हैं। प्रिया-प्रियतमके मिलनकी विविध युक्तियाँ, नव-नव रसास्वादनके उपाय ये सोचती ही रहती हैं।

प्रिया-प्रियतमके अंगोंमें पत्रावली आदिकी रचना करनेमें, मालाके संयोगसे विचित्र शिरोभूषण प्रस्तुत करनेमें, विचित्र सर्वतोभद्र निर्माण करनेमें, मण्डल आदिकी रचना करनेमें, विविध सूत्रोंको लेकर वस्त्रोंपर जीवन्त चित्र, बेलबूटे निकालनेमें ये बहुत ही प्रवीण हैं। वस्त्रोंकी वल्लरी, वृक्षावलीपर वृन्दादेवीकी जिन-जिन सखियोंका अधिकार है, वे सभी इनके आदेशसे ही काम करती हैं।

पू.गुरुदेवका मानसोत्सव तो भाद्रपद शुक्ल प्रतिपदासे ही प्रारंभ हो जाता था। पू.गुरुदेवके भावानुसार रंगदेवी एवं सुदेवी दोनों युग्म बहनोंका प्राकट्य भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदाके दिन हुआ है। इसी प्रकार इन्दुलेखाजीका जन्म भाद्रपद शुक्ला द्वितीयाके दिवस सन्ध्याकालमें हुआ है। उस दिवस पश्चिम गगनमें चन्द्रमा एक लेखाकी तरह ज्योंही प्रकट होता है ब्रजभूमिमें श्रीइन्दुलेखाजीका आविर्भाव होता है। भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीके ठीक प्रातः चार बजे श्रीचम्पकलताजीका जन्म हुआ है। श्रीललिताजी एवं श्रीविशाखाजीका प्राकट्य क्रमशः भाद्रपद शुक्ला षष्ठी तथा सप्तमीको मान्य है ही। शेष रही सखियोंका – चित्राजी एवं तुंगविद्याजीका भी प्राकट्य शेष तिथियों – तृतीया अथवा पंचमीको होना शास्त्रोंमें उल्लिखित है अथवा नहीं, यह विचारका विषय है। अस्तु, पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा ये सभी जन्मोत्सव अपने भावराज्यमें ही मानसिकरूपसे मनाया करते थे।

अबतक राधाष्टमीके सभी उत्सव धूमधामसे गोरखपुरमें ही मनाये गये थे। मात्र सं.२०१४ वि.में प्रथम बार ऐसा अवसर आया, कि श्रीपोद्दार महाराजके गोरखपुरसे रतनगढ़ चले आनेके कारण इस वर्ष यह उत्सव रतनगढ़ ग्राम (राजस्थान)में मनाया गया था।

प्रभातफेरी

भाद्रपद शुक्ला षष्ठीके ब्राह्ममुहूर्त्तसे ही लाउडस्पीकरमें शहनाईकी ध्वनि प्रारम्भ हो जाया करती थी। पू.गुरुदेव चाहते थे कि उन्हें कहीं कोई आस्तिक तथा शुद्ध खान-पान व्यवहारवाले शहनाईवादक मिल जावें, जिन्हें मुख्यद्वारपर मंचपर बैठाकर जीवन्त शहनाईवादन करवायी जा सके, किन्तु अधिकांश शहनाईवादक मुस्लिम धर्मावलम्बी तथा मांसाहारी ही उपलब्ध होते थे। काशी

आदि स्थानोंके हिन्दू शहनाईवादकोंसे भी सम्पर्ककी चेष्टा की गयी, किन्तु उनके खान-पानकी शुद्धि होनेकी कोई निश्चिन्तता नहीं होनेसे शहनाईके केसेट ही बजाये जाते थे। ब्राह्ममुहूर्त्तमें यह शहनाईवादन वातावरणको अत्यन्त ही सात्विकभाव-मुखरित बना देता था।

शहनाईवादनका पर्यवसान प्रभातफेरीके प्रारम्भसे होता था। प्रभातफेरी-संकीर्त्तन प्रमुखतया बीकानेरके गोस्वामी परिवारके सदस्यों एवं बालकों द्वारा संचालित किया जाता था। इसमें अन्य लोग भी सम्मिलित होते थे। यह प्रभातफेरी-संकीर्त्तन गीतावाटिकाके सामने स्थित पू.पोद्दार महाराजकी नई कोठीमें स्थित षोडशगीतमन्दिरसे प्रारंभ होता था। गीतावाटिकाके चतुर्दिक् बसे सभी राधा-परिवारके लोग इसमें सम्मिलित होते जाते तथा उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये बाहरसे आये भक्तगण भी जुट जाते थे। कुछ ही समयमें सम्मिलित जनोंकी संख्या सैकड़ोंतक पहुँच जाती थी। यह जनसमुदाय संकीर्तन करता हुआ सर्वप्रथम पू.पोद्दार महाराजका दर्शन एवं आशीर्वाद प्राप्त करने उनके कक्षके सम्मुख पहुँचता था। पू.गुरुदेव द्वारा रचित रसमंत्र

'राधिकारमण अम्बुजनयन नन्दनन्दन नाथ हे !

गोपिकाप्राण मन्मथमथन विश्वरञ्जन कृष्ण हे !!'

ही इस संकीर्त्तनके गानयुक्त बोल हुआ करते थे। इस चिन्मय रसमन्त्रके संकीर्त्तनकी रागीय बन्दिश इतनी सुमधुर, रसमय तथा भावोत्पादक होती थी कि संकीर्तनकर्ताओंके सम्मुख श्रीकृष्णकी जीवन्त छवि ही मूर्त्त हो जाती थी।

जब यह संकीर्त्तनमण्डली श्रीपोद्दार महाराजके कक्षके सम्मुख उनका आशीर्वाद प्राप्त करने पहुँच जाती थी, तबतक तो इस संकीर्तनमें सम्मिलित जनसमुदायकी संख्या बढकर लगभग हजारतक हो जाती थी। संकीर्तन करते लोग एक-एककर श्रीपोद्दार महाराजके चरणोंमें प्रणाम करते और मन-ही-मन उनसे प्रिया-प्रियतमके दुर्लभ कृपादानकी प्रार्थना करते । श्रीपोद्दार महाराज उस समय अपनी ब्राह्ममुहूर्तकी संध्या-पूजा सम्पन्न करके अति भावविह्वल, विशुद्ध सात्विक भावमुद्रामें हाथ जोड़े तबतक खड़े रहते, जबतक सभी समुदाय उनसे आशीर्वाद नहीं ले लेता था। परम संकोची स्वभावयुक्त वे बड़ी ही झिझक प्रदर्शित करते हुए, सभी लोगोंके प्रेमाग्रहसे दबे उनके प्रणामको स्वीकार करते थे तथा प्रेमाकुल नेत्रोंसे एवं भाव-गद्गद मुख-मुद्रासहित किसीको गले लगाकर,

किसीके शिरपर हाथ फेरकर अपना भावानुग्रह प्रकट करते जाते थे। उनकी वह परमप्रेममयी पावन छवि इन पंक्तियोंको लिखते समय मन एवं नेत्रोंके सम्मुख आज भी ज्यों-की-त्यों जीवन्त खड़ी प्रतीत होती है। यह परम रसमय नामसंकीर्त्तन संकीर्तनकर्ताओंके दल तथा सम्मिलित भावुक जनोंके द्वारा इतनी भावप्रवणतापूर्वक किया जाता था कि सम्पूर्ण वातावरण भक्तिभावोद्रेकसे परिपूर्ण हो उठता था। इस संकीर्तनकी सरसतासे घोर सांसारिक रजोगुणमें रचे-पचे प्राणियोंको भी कुछ कालके लिये रस-सरिताका सुखद शीतल संस्पर्श प्राप्त होता ही था।

संकीर्त्तन करते, रसमें झूमते जन-जन पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी कुटीपर पहुँचकर उनके दर्शनोंका लाभ प्राप्त करते तथा उनकी चरण-वन्दना करके कृतार्थतालाभ करते थे।

श्रीगिरिराज-परिक्रमा

इस संकीर्त्तनका पर्यवसान पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी श्रीगिरिराज-परिक्रमास्थलीमें पहुँचकर होता था। सन् १९६५ ई. से ही पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा भावात्मकरूपसे गिरिराज परिसरमें ही रहते थे। उन्होंने अपनी भावनानुसार अपनी कुटीके सम्मुख ही गिरिराज परिसरकी स्थापना की थी और सात कोस (तेरह-तेरह मील) की दो परिक्रमाएँ वे सात दिवसोंमें सम्पन्न करते थे। सप्ताहके प्रथम दिवसकी परिक्रमामें प्रत्येक रविवारको राधाकुण्डसे पाँच मील चलकर आन्यौरमें उनका विश्राम होता । दूसरे दिन सोमवारको आन्यौरसे तीन मील चलकर वे सीधे यतीपुरामें विश्राम करते। तीसरे दिन मंगलवारको यतीपुरासे पाँच मील चलकर राधाकुण्डमें उनका विश्राम होता । इस प्रकार सप्ताहके प्रथम तीन दिनोंमें उनकी एक परिक्रमा सम्पन्न हो जाती थी। सप्ताहकी द्वितीय परिक्रमामें बुधवारको राधाकुण्डसे तीन मील चलकर उनका गोवर्धनमें विश्राम होता । गुरुवारको गोवर्धनसे चलते एवं दो मील चलकर आन्यौरमें विश्राम किया करते । शुक्रवारको वे आन्यौरसे प्रस्थान करके तीन मील चलकर यतीपुरामें विश्राम किया करते थे। शनिवारको वे यतीपुरासे पाँच मील चलकर सीधे राधाकुण्ड पहुँचते थे एवं वहाँ विश्राम करते थे। इस प्रकार सात दिनमें पू.गुरुदेव गिरिराज गोवर्धनकी दो परिक्रमाएँ सम्पन्न कर लेते । उन्होंने अपने निवासके बाहर ही

गिरिराज पर्वतके दोनों भाग एवं बीचमें दानघाटीकी राह इस प्रकार भावनात्मक गिरिराज परिसरका निर्माण किया हुआ था, जो ठीक गिरिराजकी ही अनुकृति कहा जा सकता था। अपने परिसरकी परिक्रमास्थलीको फुटोंसे नापकर ५२८० फुटोंके एक मीलके हिसाबसे उन्होंने अपने परिसरकी प्रतिमील परिक्रमा नियत कर रखी थी। उदाहरणार्थ यदि उनके परिसरका परिक्रमामार्ग १३२ फुट था तो उन्हें प्रति मील चालीस परिक्रमा करनी होती थी और जिस दिन उन्हें जितने मील जाना होता था उस हिसाबसे परिक्रमा नियत हो जाती थी। वे उस दिन अपने परिसरके मार्गकी उतनी ही परिक्रमा कर लेते थे। उन्होंने अपने परिसरमें राधाकुण्ड, जतीपुरा, गोवर्धन, कुसुमसरोवर, आन्यौर आदि सब स्थल नियत कर रखे थे। विश्रामस्थल आनेपर वे अपने आन्यौर, यतीपुरा आदि नियत स्थानोंपर कुछ काल लेटकर विश्राम करते थे। उनके परिक्रमा कालमें इतना मधुर संकीर्त्तन हुआ करता था कि वातावरण अतिशय रसमय हो जाता था।

राधाष्टमी आदि उत्सवोंके समय तो उनकी परिक्रमामें हजारों लोग सम्मिलित होते थे, वैसे साधारण कालमें भी नियत समयपर पच्चीस-पचास व्यक्ति एवं स्त्रियाँ इसमें अवश्य सम्मिलित होती थीं। गिरिराज परिसरकी भावात्मक पावनस्थली, चतुर्दिक् वृक्षोंकी सघनता, सम्मुख ही विस्तृत भूमिमें लगा कदली वृक्षोंका कुञ्ज, प्रातःकालका शान्त वातावरण, भक्तोंकी पू.गुरुदेवके प्रति उमड़ती श्रद्धा, संकीर्त्तनकारोंका साजबाजके साथ भावविभोर होकर पद-गायन, भावुक बृहत् जन-समुदायका भी संग-संग संकीर्तन एवं पद-गायनका सुमधुर अनुकरण उस समय जो रस-रंग जमाता था, उसे शब्दों द्वारा आलेख नहीं किया जा सकता। परिक्रमाके समय भारतके दूरवर्त्ती शहरों — कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, नागपुर, हैदराबाद, जबलपुर, राजस्थानके रतनगढ़, बीकानेर, नापासर, डूँगरगढ़, आदि अनेक स्थलोंसे सैकड़ों समागत लोग सम्मिलित होते रहते थे। इनमें अधिकतर रजोगुणी व्यापारी, संसार-प्रवाहमें बहते गृहस्थजनोंकी ही बहुलता रहती थी। परन्तु पू.गुरुदेवकी परमोच्च भावमयी मुद्रामें परिक्रमा करती छविका दर्शन, साथ ही अति भाव-प्रवाह छलकाती सरस संगीतमयी संकीर्तन-स्वरलहरीके श्रवणसे सभी समागत लोगोंके मन एवं अन्तःकरण रजोगुणके प्रभावसे मुक्त होकर विशुद्ध सत्वमय भक्तिभावनामें लहराने लगते थे।

परिक्रमाके प्रारंभके साथ ही परमभक्त सूरदासजीका ***'बन्दौं चरणकमल***

हरिराई' पदगायन किया जाता था। इसके पश्चात् ***'सुमिरौ नटनागरवर सुन्दर गोपाललाल'*** पद जो वृन्दावनके रसिक भक्त श्रीगदाधरभट्टजी द्वारा रचित है, भैरव कालिंगडा रागमें गाया जाता था। परिक्रमामें संकीर्त्तनकी प्रमुख सेवा पू. गुरुदेवने इन पंक्तियोंके लेखकको ही प्रदान कर रखी थी। उस समय बीकानेरके गोस्वामी-परिवारके बालक-बालिकायें बड़ी ही तत्परता, महत्त्वबुद्धि तथा सर्वाधिक रुचिपूर्वक संकीर्तनमें सहयोग करते थे। भैरव, भैरवी, कालिंगड़ा, प्रभाती आदि रागोंमें गेय पद तथा नाम-संकीर्त्तनकी प्रस्तुति संकीर्त्तनदलमें सम्मिलित बीकानेरके गोस्वामी परिवारके बालक-बालिकायें ऐसी भावमयी, मधुर तथा रसमय रीतिसे सम्पन्न करते कि परिक्रमामें सम्मिलित जनसमुदाय रसमें झूम-झूम उठता था। पू. राधाबाबाका भावमें डूबकर हाथ उठाकर अपनी ग्रीवाको किंचित् नमित कर देना तो सोनेमें सुगन्धि बन जाता था। संकीर्त्तन-दल अपनेको कृतकृत्य मानकर उत्साहसे भर जाता था, साथ ही परिक्रमामें उपस्थित जनसमुदाय भी कृपाको प्रत्यक्ष बरसती देखकर निहाल अनुभव करने लगता था। बरबस सभीके हाथ भावतरंगोंकी उछालसे ऊपर उठ जाते थे, नयन अर्धनिमीलित हो उठते थे और सभीके भावनामय नेत्रोंके सम्मुख पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके स्थानपर साक्षात् प्रिया-प्रियतम ही गिरिराज-परिसरकी परिक्रमा करते हुए अभिव्यक्त हो उठते थे। इस प्रसंगकी कल्पनातीत मधुरता एवं रसमयताका सर्वांगीण चित्रण संभव ही नहीं। पदगायनके अनन्तर परिक्रमाके लिये पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा स्वयंस्वीकृत नामध्वनि – ***'कृष्ण गोविन्द–गोविन्द गोपाल नन्दलाल'***का संकीर्त्तन प्रारम्भ होता था। इसकी गुञ्जित ध्वनिके बीच पू.गुरुदेव परिक्रमामें दौड़ते-दौड़ते ही भावविभोर होकर अपने हस्तकमल ऊपर उठा लेते थे। उस समय अनुपम नृत्यमुद्रा-सरीखी उनकी छवि ऐसी दिखाई देती थी मानो पाँच सौ वर्ष पूर्वकी चैतन्य महाप्रभुकी संकीर्तनरत भावमुद्रा वर्त्तमानकालमें गोरखपुरकी गीतावाटिकाकी गिरिराज-परिक्रमास्थलीमें अवतरित होकर नयनगोचर होगयी हो।

राधाष्टमीके अवसरपर परिक्रमा-पथका एवं श्रीगिरिराजपर्वतका पुष्पोंसे नयनाभिराम श्रृंगार किया जाता था। बाटिकाकी समागत बहनें ही परस्पर हिल-मिलकर इस श्रृंगार-सेवाको सम्पन्न करती थीं। ऐसा लगता था मानो भक्तिभावापन्न बहनोंका मन ही सुमनोंके रूपमें श्रीगिरिराजजीकी तलहटीमें पू. गुरुदेवके चरणोंमें समर्पित होकर प्रफुल्लित हो रहा हो। श्रीराधाष्टमी महोत्सवके

कारण सुदूर स्थानोंसे आये भक्तगणोंसे समाधिस्थल खचाखच भर जाता था। भीड़ अत्यधिक होनेपर भी महिलाएँ एक ओर एवं पुरुष एक ओर सुव्यवस्थित बैठते थे। श्रीराधाष्टमीके अवसरपर जब ब्रजवासी संकीर्तनकार आजाते थे तो कीर्तनका संचालन श्रीहरिवल्लभजी कीर्तनिया अपने सुमधुर स्वरमें ब्रजरसके भिन्न-भिन्न पदोंके गायनसे करते थे। साधारण दिनोंमें तो काष्ठमौनके कारण पू. गुरुदेव अपने भावको दबाकर परिक्रमा करते थे परन्तु इन ब्रजवासी भक्तोंके आनेपर उनका भाव अत्यधिक उद्रिक्त हो उठता था और यदा-कदा वे आलापचारी करने लगते थे। जब उनका मौन शिथिल हो गया तब तो उनके उच्छलितोल्लासकी मनोहारिणी छवि ऐसी देखनेको मिलती थी कि मन न्यौछावर हो उठता था। श्रीराधाष्टमी महोत्सवके अवसरपर परिक्रमामें वृन्दावनकी रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजी एवं फतेहकृष्णजी भी श्रीहरिवल्लभजीके साथ ब्रजसे आ जाते थे और पद-गायनमें इन सभीका अभूतपूर्व रसवर्षी योगदान हुआ करता था। यह सत्य है कि इन ब्रजवासियोंके आजानेसे परिक्रमाका उमंग-उल्लास अत्यधिक उद्दीपित हो उठता था।

कभी कभी पू.गुरुदेव उद्दीप्त भावोंकी प्रबलतावश बहुत ही गंभीर रहते थे। उस समय पू. गुरुदेवके चरण यन्त्रवत् परिक्रमा करते थे। ब्रजवासी संकीर्तनकार श्रीराधा-प्राकट्यके एवं बधाईके पद गाते। रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजी एवं फतेहकृष्णजी मुख्य संकीर्त्तनकार श्रीहरिवल्लभजीको सहयोग करते थे।

पू.गुरुदेव अधिकांशतः प्रत्यक्ष लीलादर्शी सन्तोंके ही पद सुनते थे। पद-संकलनोंमें उन्हें वे पद सर्वथा रुचिकर नहीं लगते थे, जो लीला-प्रकाश करनेमें समर्थ नहीं होते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि ब्रजभूमिके इन प्रत्यक्ष लीलादर्शी सन्तोंकी बलिहारी है, जिन्होंने कृपा करके लीलाओंको गायनयुक्त छन्दबद्ध सरल भाषामें वर्णित करके इनको बीज रूपमें स्थापित कर दिया है। यही बीज किसी भी लीला-चिन्तन करनेवाले साधकमें पल्लवित होकर इन लीलाओंको विलक्षण रीतिसे ज्यों-का-त्यों प्रकाशित कर देता है, जैसी कि ये लीलाएँ मूलरूपमें घटित हुई हैं।

———

श्रीपोद्दार महाराजका सत्संग

परिक्रमाके तुरन्त पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजका पण्डालमें सत्संग होता था। श्रीपोद्दार महाराजके सत्संगकी यह महिमा थी कि उनके सत्संगमें अन्तर्जगत्के उच्चकोटिके अनेक सिद्ध सन्त भी सूक्ष्मदेहसे सम्मिलित होते थे। श्रीराधाजन्म-महोत्सवके अवसरपर उनके अत्यन्त सारगर्भित दो प्रवचन होते थे। प्रातःकाल तो वे मौखिक ही सत्संग कराते थे किन्तु उत्सवके समापनपर उनका लिखित व्याख्यान प्रायः प्रकाशित हो जाता था। उनके ये सत्संग आध्यात्मिक जगत्की अमूल्य निधि होते थे। इन दिनों श्रीपोद्दार महाराज श्रीराधातत्वपर बहुत ही सरस प्रवचन किया करते थे। उनके प्रवचनका सार-संक्षेप यही होता था कि श्रीराधा ब्रजरसके प्राण श्रीकृष्णकी आत्मा हैं–***'आत्मा तु राधिका तस्य'*** वे श्रीकृष्णकी आराधिका-उपासिका भी हैं, दूसरे रूपमें वे उनकी आराध्या-उपास्या भी हैं ***'आराध्यते असौ इति राधा'***। शक्ति और शक्तिमान्में वस्तुतः कोई भेद नहीं होनेपर भी भगवान्के सविशेष रूपोंमें शक्तिकी प्रधानता रहती है। शक्तिमान्की सत्ता ही शक्तिके आधारपर है। शक्ति नहीं तो शक्तिमान् कैसे ? ***'रस्यते असौ इति रसः'*** इसी व्युत्पत्तिके अनुसार रसकी सत्ता ही आस्वादके लिये है। अपने-आपको अपना आस्वादन करानेके लिये ही स्वयं रसरूप श्रीकृष्ण (**रसो वै सः**) राधा बन जाते हैं। इसीलिये ब्रजरसमें श्रीराधाकी विशेष महिमा है। श्रीकृष्ण प्रेमके पुजारी हैं, इसीलिये वे अपनी पुजारिनकी पूजा करते हैं, उन्हें अपने हाथों सजाते-सँवारते हैं, एवं उनके रूठ जानेपर उन्हें अपने प्राणोंके निर्मञ्छन द्वारा प्रसन्न करते हैं।

'चाँपत चरण मोहनलाल', 'देख्यौ दुर्‌यौ वह कुंजकुटीरमें बैठ्यौ पलोटत राधिका-पायन' आदि उक्तियोंका श्रीपोद्दार महाराज इनके रसकी रक्षा करते हुए इस रीतिसे तात्विक विश्लेषण करते थे कि श्रीराधाका दिव्यातिदिव्य स्वरूप, उनके प्रेमकी अलौकिक महिमा, श्रीकृष्णके साथ उनका पवित्रतम सम्बन्ध आदि गूढ़ विषयोंका अति सरल स्पष्टीकरण साधकोंके सम्मुख प्रकट हो जाता था। इन प्रवचनोंमें श्रीराधाकृष्णके प्रेम-सम्बन्धमें उठायी गयी सभी विविध शंकाओंका समाधान पू.पोद्दार महाराज अति सरल भाषामें बड़े ही सुन्दर ढंगसे कर देते थे।

इस प्रकार श्रीराधाष्टमी-जन्म-महोत्सवमें जो लोग भी सम्मिलित होते,

उन्हें श्रीराधा-कृष्णके स्वरूप, उनके परस्पर पवित्र सम्बन्ध, उनकी विविध मधुर लीलाओंको जिनमें प्रणय, मान एवं विरह आदिके प्रसंग होते थे, ठीकसे समझनेका अवसर प्राप्त होता था। मनुष्योंकी अनेकों भ्रान्त धारणायें जो श्रीराधाकृष्णके परस्पर सम्बन्धोंको लेकर नासमझीके कारण खड़ी हो जाया करती हैं, श्रीपोद्दार महाराजके प्रवचन सुननेसे मूलतः दूर हो जाती थीं।

यह सत्य है कि रीतिकालीन कविगण बहुत-कुछ अपना पथ भूलकर काव्य-रचनाएँ कर गये हैं, तथा इन कवियोंकी राधाकृष्ण सम्बन्धी भोग-प्रधान वैषयिक रचनाओंको पढनेसे लोगोंने अपनी हानि ही की है।

श्रीपोद्दार महाराजके प्रवचनके पूर्व स्वयं उनके द्वारा रचित ही गीतिकाओंका सुस्वर सरस गायन होता। श्रीपोद्दार महाराजने श्रीराधा-कृष्ण युगलके परस्पर पूर्ण समर्पणमय, पवित्रतम स्वरूप एवं सम्बन्धको प्रकाशित करनेवाला ऐसा सात्विक काव्य- साहित्य निर्माण किया है, जो भक्तिक्षेत्रकी अमूल्य निधि तो है ही, साथ ही समाजके पतनोन्मुख नैतिकस्तरको भी उन्नत करनेमें सक्षम है। इन काव्यगीतिकाओंका गायन या तो श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, सम्पादक कल्याण-कल्पतरु द्वारा किया जाता था अथवा स्वयं लेखक द्वारा, जो उन दिनों गृहस्थवेषमें था। श्रीपोद्दार महाराज द्वारा रचित इन गीतोंमें इसी सत्यका प्रकाश होता कि श्रीराधाकृष्णके प्रेमका आधार निजेन्द्रिय-तृप्ति न होकर, ज्ञानकी सीमाके पार पहुँचा प्रेमास्पद-सुखैक-लालसा भाव है। इन गीतोंमें जो श्रीपोद्दार महाराजके प्रवचनोंके पूर्व गाये जाते, प्रेमकी सर्वोच्च अभिव्यक्ति ही प्रकट होती थी, साथ ही त्याग एवं समर्पणकी सर्वोच्च भावनाको छन्दोंमें व्यक्त किया गया होता था।

इस प्रकार गीतावाटिका, गोरखपुरका यह श्रीराधा-जन्माष्टमी महोत्सव ब्रजरस – मधुररसका एक पवित्रतम प्रकाश-स्तम्भ ही होता था। इन पंक्तियोंके लेखककी धारणानुसार ऐसा सर्वांगपूर्ण सरस और शास्त्र-विधिपूर्वक पूर्ण सात्विकतासे मनाया जानेवाला उत्सव भारतवर्षमें अन्यत्र कहीं देखनेको नहीं मिलता। इस उत्सवमें जो लोग भी सम्मिलित होते थे, उन्हें भक्तिरसके मर्मकी एवं ब्रज-गोपीके जीवनकी एक ऐसी झाँकी प्राप्त हो जाती थी, जिसे कराना पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा किंवा श्रीपोद्दार महाराज जैसे रस-सिद्ध सन्तोंका ही कार्य था। श्रीराधाकृष्णके उपासकोंके लिये यह राधा-जन्म-महोत्सव अनुपम पथ-प्रदर्शकका कार्य करता था। कोई भी प्रेम-साधक यदि यहाँ इस उत्सवमें

सम्मिलित हो जाता तो वह उस राहको पा जाता था, जिसपर कदम बढ़ानेसे साधकगण दुर्लभ मोक्षको भी लघु बना देने वाले भगवत्प्रेमके मार्गमें अनायास अग्रसर हो सकें।

आजकल उत्सवोंके नामपर समाजमें दुर्गापूजा, जन्माष्टमी, गणेशपूजा आदिके जो आयोजन होते हैं, उनमें समष्टि रूपसे बहुत गन्दगीका ही प्रचार होता है। उस अवस्थामें गोरखपुरमें मनाया जानेवाला यह जन्म-महोत्सव एक ऐसा दीपस्तंभ था, जो मधुर भावकी उपासना करनेवालोंको सांसारिक भोगोंके दलदलसे निकालकर विशुद्ध प्रेमराज्यकी दीक्षा देनेवाला था।

राधा-जन्म-महोत्सव

प्रातः साढे नौ बजेसे श्रीराधाजन्म-महोत्सवकी पूजा-अर्चना विशाल पण्डालमें प्रारम्भ हो जाती थी। पण्डालके आठवें हिस्सेमें लगभग तीन फुट ऊँचा मंच बनाया जाता था। इस मंचके सामनेके अंशमें पीछेकी ओर प्रसूतिगृहकी स्थापना होती थी। पू.गुरुदेवने कीर्त्तिदा मैयाकी मुखछवि एवं सद्योजात बालिका राधाकी मुखछवि श्रीजगन्नाथजी चित्रकारसे बनवायी थीं, ये दोनों छवियाँ ऊँची शय्या निर्माणकर प्रसूतिगृहमें उसी प्रकार सजा दी जाती थीं, जिससे देखनेवालोंको यही अनुभव हो मानो सद्यःप्रसूता माता कीर्तिदा लेटी हैं और उनके बगलमें बालिका राधा सो रही है। साड़ियोंसे एवं वस्त्रोंसे शय्याका शेष भाग भी इस प्रकार आवृत कर दिया जाता था, जिससे इस प्रकार स्वाभाविक लगता था मानो कीर्त्तिदा मैयाकी कमर एवं पैर ढँके हुए हैं। इस छविके दाहिनी ओर एक काष्ठका मंच बनाया जाता था जिसमें वाटिकावासी सभी लोगोंके आराध्य ठाकुरोंकी मूर्त्तियाँ और चित्र रहते थे। बायीं ओरके सारे भागमें यमुना नदी, बरसाना गाँव, ग्रामके किनारे बहते गिरिस्रोत और वन खचित रहते थे। सूतिकागृहके ठीक आगे, मंचके छोरपर यमुना घूमकर जाती थी और वहाँ गोकुल, नन्दग्राम बनाया जाता था। वनमें वृक्षों, सरोवरों आदिकी लघु आकृतियाँ इस प्रकार निर्माण की जाती थीं कि समग्र वन स्पष्ट ऐसा प्रतीत होता मानो सचमुच ही ब्रजके वनोंका विहंगमावलोकन किया जा रहा हो। इस वनको सर्पिणीसी लहराती घूमती हुई नीली यमुना घेरे रहती थी।

इसमें बृषभानुकी पहाड़ियाँ – ब्रह्मगिरि एवं विष्णुगिरिकी भी जीवन्त अनुकृतियाँ निर्मित की जाती थीं।

इस मंचपर सूतिकागृह एवं वनभागके मध्य कुछ जगह पूजा करनेवालोंके लिये अवशिष्ट रहती थी, जिसमें लोग रेशमी कटियाके वस्त्र पहनकर पूजा-अर्चना किया करते थे।

इस मंच और मुख्य पण्डालके मध्य एक ऊँचा लम्बा परदा रहता था जो पूजनके समय खींच दिया जाता था। इस प्रकार पूजन-मंच और पण्डाल दो भागोंमें विभक्त हो जाते थे। ठीक साढ़े नौ बजेके आसपास पण्डालके आगेके भागमें कीर्त्तनकारोंका दल बैठ जाता था। इन कीर्त्तनकारोंके दलके बैठनेके पंडालके पीछे पुरुषवर्ग बैठा करता था। पंडालके पिछले भागमें स्त्रियोंके बैठनेके लिये फिर किञ्चित् ऊँचा मंच बना दिया जाता था ताकि पीछे बैठनेवाली स्त्रियोंको सभी कीर्त्तनकारोंके एवं पूजामञ्चपर बैठे पू.राधाबाबा एवं श्रीपोद्दार महाराजके स्पष्ट दर्शन हो सकें एवं वे सारी झाँकीका दर्शन पा सकें।

———

पूजनक्रम

ठीक साढे नौ बजे परदेके पीछे पूजन-मंचमें पूजा प्रारंभ हो जाती थी एवं पण्डालमें कीर्त्तनकारोंका दल संकीर्त्तन प्रारंभ कर देता था। पूजनमंचमें श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, श्रीरामजीलालजी शास्त्री, श्रीइन्द्रजी महर्षि, श्रीसाँवरमलजी जोशी, श्रीमोतीजी पारीक आदि ब्राह्मणवर्ग रहता था, साथ ही श्रीविष्णुहरि डालमिया, श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला आदि यजमानवर्ग होता था। सहयोग करनेके लिये श्रीरामप्रसादजी दीक्षित, श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल, श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव आदि लोग रहते थे। पहले यजमानों द्वारा मानसिक गणेशपूजन कराया जाता था; उसके पश्चात् कर्मकाण्डी ब्राह्मण लोग वैदिक स्वस्तिवाचन करते थे। इसके पश्चात् मुख्य यजमान श्रीविष्णुहरि डालमिया श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीको मुख्य आचार्यके रूपमें वरण करते थे। फिर उनके ही द्वारा पूजनका संकल्प लिया जाता था। तत्पश्चात् श्रीमोतीजी पारीक, गणेशादि श्रीविग्रहोंका पंचोपचार पूजन किया

करते थे।

पू.गुरुदेव द्वारा रजतके दो यंत्र बनवाकर श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगलाको इसी दिवसकी पूजाके लिये प्रदान किये गये थे। बड़े यंत्रजीमें मध्यदेशकी कर्णिकामें तो श्रीराधाकृष्ण प्रिया-प्रियतमकी भावना की जाती थी और कर्णिकाके चतुर्दिक् विरचित एक सौ आठ कमलदलोंमें एक सौ आठ सखियोंकी भावना की जाती थी। इसी प्रकार छोटे यंत्रजीके मध्यमें कर्णिकापर तो श्रीप्रिया-प्रियतम विराजित माने जाते थे एवं चतुर्दिक् षोडशदल कमलपर षोडश सखियोंकी भावना की गयी थी। इन दोनों यंत्रोंका आजके दिवस सविधि पंचोपचारसे पूजन होता था।

सर्वप्रथम बड़े यंत्रजीमें विराजित एक सौ आठ सखियोंका चन्दन-पुष्पसे पूजन होता था। एक व्यक्ति एक सौ आठ सखियोंकी नामावलीका उच्चारण करता एवं मुख्य यजमान उनपर चन्दन-पुष्प चढाते जाते थे। एक सौ आठ सखियोंकी नामावली निम्न है:–

(१) श्रीललितायै नमः
(२) श्रीविशाखायै नमः
(३) श्रीचित्रायै नमः
(४) श्रीइन्दुलेखायै नमः
(५) श्रीचम्पकलतायै नमः
(६) श्रीरंगदेव्यै नमः
(७) श्रीतुंगविद्यायै नमः
(८) श्रीसुदेव्यै नमः
(९) श्रीअनंगमञ्जर्यै नमः
(१०) श्रीमधुमतीमञ्जर्यै नमः
(११) श्रीविमलामञ्जर्यै नमः
(१२) श्रीश्यामलामञ्जर्यै नमः
(१३) श्रीपालिकामञ्जर्यै नमः
(१४) श्रीमंगलामञ्जर्यै नमः
(१५) श्रीधन्यामञ्जर्यै नमः
(१६) श्रीतारकामञ्जर्यै नमः
(१७) श्रीरत्नप्रभायै नमः
(१८) श्रीरतिकलायै नमः
(१९) श्रीसुभद्रायै नमः
(२०) श्रीभद्ररेखिकायै नमः
(२१) श्रीसुमुख्यै नमः
(२२) श्रीनागर्यै नमः
(२३) श्रीकलहंस्यै नमः
(२४) श्रीकलापिन्यै नमः
(२५) श्रीमाधव्यै नमः
(२६) श्रीमालत्यै नमः
(२७) श्रीचन्द्ररेखिकायै नमः
(२८) श्रीकुञ्जर्यै नमः
(२९) श्रीहरिण्यै नमः
(३०) श्रीचपलायै नमः

(३१) श्रीसुरभ्यै नमः
(३२) श्रीशुभाननायै नमः
(३३) श्रीरसालिकायै नमः
(३४) श्रीतिलकिन्यै नमः
(३५) श्रीशौरसेन्यै नमः
(३६) श्रीसुगन्धिकायै नमः
(३७) श्रीरमिलायै नमः
(३८) श्रीकामनागर्यै नमः
(३९) श्रीनागर्यै नमः
(४०) श्रीनागवेल्लिकायै नमः
(४१) श्रीतुंगभद्रायै नमः
(४२) श्रीरसतुंगायै नमः
(४३) श्रीरंगवाट्यै नमः
(४४) श्रीसुमंगलायै नमः
(४५) श्रीचित्रलेखायै नमः
(४६) श्रीविचित्रांग्यै नमः
(४७) श्रीमोदिन्यै नमः
(४८) श्रीमदनालसायै नमः
(४९) श्रीकुरंगाक्ष्यै नमः
(५०) श्रीसुचरितायै नमः
(५१) श्रीमण्डल्यै नमः
(५२) श्रीमणिकुण्डलायै नमः
(५३) श्रीचन्द्रिकायै नमः
(५४) श्रीचन्द्रलतिकायै नमः
(५५) श्रीकुन्दकाक्ष्यै नमः
(५६) श्रीसुमन्दरायै नमः
(५७) श्रीकलकण्ठ्यै नमः
(५८) श्रीशशिकलायै नमः
(५९) श्रीकमलायै नमः
(६०) श्रीमधुरायै नमः
(६१) श्रीइन्दिरायै नमः
(६२) श्रीकन्दर्पसुन्दर्यै नमः
(६३) श्रीकामलतिकायै नमः
(६४) श्रीप्रेममञ्जर्यै नमः
(६५) श्रीमञ्जुमेधायै नमः
(६६) श्रीसुमधुरायै नमः
(६७) श्रीसुमध्यायै नमः
(६८) श्रीमधुरेक्षणायै नमः
(६९) श्रीतनुमध्यायै नमः
(७०) श्रीमधुस्यन्दायै नमः
(७१) श्रीगुणचूड़ायै नमः
(७२) श्रीवरांगनायै नमः
(७३) श्रीकावेर्यै नमः
(७४) श्रीचारुकबरायै नमः
(७५) श्रीसुकेश्यै नमः
(७६) श्रीमञ्जुकेशिकायै नमः
(७७) श्रीहारहीरायै नमः
(७८) श्रीमहाहीरायै नमः
(७९) श्रीहारकण्ठ्यै नमः
(८०) श्रीमनोहरायै नमः
(८१) श्रीलवंगमञ्जर्यै नमः
(८२) श्रीरूपमञ्जर्यै नमः
(८३) श्रीरसमञ्जर्यै नमः
(८४) श्रीगुणमञ्जर्यै नमः
(८५) श्रीरतिमञ्जर्यै नमः
(८६) श्रीभद्रमञ्जर्यै नमः
(८७) श्रीलीलामञ्जर्यै नमः
(८८) श्रीविलासमञ्जर्यै नमः(प्रथम)
(८९) श्रीविलासमञ्जर्यै नमः(द्वि)
(९०) श्रीकेलिमञ्जर्यै नमः

(९१) श्रीकुन्दमञ्जर्यै नमः
(९२) श्रीमदनमञ्जर्यै नमः
(९३) श्रीअशोकमञ्जर्यै नमः
(९४) श्रीमञ्जुलालीमञ्जर्यै नमः
(९५) श्रीसुधामुखीमञ्जर्यै नमः
(९६) श्रीपोस्त्रमञ्जर्यै नमः
(९७) श्रीकुन्दवल्ल्यै नमः
(९८) श्रीधनिष्ठायै नमः
(९९) श्रीश्रुतिपूर्वाभ्यो गोपीभ्यो नमः
(१००) श्रीऋषिपूर्वाभ्यो गोपीभ्यो नमः
(१०१) श्रीदेवीपूर्वाभ्यो गोपीभ्यो नमः
(१०२) श्रीवल्लवबालाभ्यो नमः
(१०३) श्रीयूथाधिपाभ्यो नमः
(१०४) श्रीबृन्दादेव्यै नमः
(१०५) श्रीभगवत्यै पौर्णमास्यै नमः
(१०६) श्रीचन्द्रावल्यै नमः
(१०७) श्रीनित्यकिशोर्यै राधायै नमः
(१०८) श्रीनित्यकिशोराय श्रीकृष्णचन्द्राय नमः

(इन यन्त्रोंकी स्थापना भी पू. गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज द्वारा बड़े समारोह पूर्वक आनुष्ठानिक विधिसे पूजनकरके की गयी थी।)

इसके पश्चात् बड़े यन्त्रजीमें कर्णिकापर विराजित श्रीप्रिया- प्रियतमका पूजन पंचोपचारसे होता था।

इसके पश्चात् छोटे यंत्रजीका पूजन होता था। छोटे यंत्रजीकी कर्णिकापर मध्यदेशमें सर्वप्रथम श्रीप्रिया-प्रियतमका पंचोपचार पूजन होता, तब सखियोंका पूजन चन्दन एवं पुष्पसे निम्नांकित नामावलीके अनुसार किया जाता था। (पश्चिमकी ओरसे)।

(१) श्रीललितायै नमः
(२) श्रीश्यामलायै नमः
(३) श्रीधन्यायै नमः
(४) श्रीहरिप्रियायै नमः
(५) श्रीविशाखायै नमः
(६) श्रीशैब्यायै नमः
(७) श्रीपोस्त्रायै नमः
(८) श्रीभद्रायै नमः
(९) श्रीचन्द्रावल्ल्यै नमः
(१०) श्रीचित्ररेखायै नमः
(११) श्रीचन्द्रायै नमः
(१२) श्रीमदनसुन्दर्यै नमः
(१३) श्रीप्रियायै नमः
(१४) श्रीमधुमत्यै नमः
(१५) श्रीशशिरेखायै नमः
(१६) श्रीरसप्रियायै नमः

(इस छोटे यंत्रजीकी स्थापना भी पू.पोद्दार महाराज एवं पू. गुरुदेव द्वारा की गयी थी)

इसके पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजके परिवारके एवं बाहरके बगीचे- वासियोंके श्रीविग्रहोंका पूजन यथाक्रम पंचोपचारसे किया जाता था।

अन्दर पूजामञ्चपर यह पूजा सम्पन्न होते-होते दोपहरके लगभग साढे ग्यारह बज जाते थे।

इधर श्रीपोद्दार महाराज भी पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाको लेकर पंडालमें आ जाते थे।

–संकीर्तन-महोत्सव

उधर पर्देके बाहर पण्डालमें कीर्त्तनकारोंका दल साजबाज, ढोलक, मृदंग, झाँझ, झालर, हारमोनियम एवं चंग आदि वाद्योंसे अति उमंगभरी रीतिसे संकीर्त्तनमें निरत रहता है। पद-रचनायें या तो स्वयं श्रीपोद्दार महाराज द्वारा रचित होती हैं अथवा अनुभूतिसम्पन्न सूरदासजी, स्वामी हरिदासजी, श्रीहितहरिवंशजी आदि महापुरुषोंकी रचित ही गायी जाती हैं। पू.गुरुदेव द्वारा हर किसीके रचित गीतोंको गाये जानेकी मनाई ही रहती थी।

जहाँ संकीर्त्तनदल बोलता था ***'बृन्दावनरानी'*** तो जनसमूह बोलता –***'श्रीराधा'*** इस प्रकार संकीर्त्तनकी ध्वनि पूरे उत्साहसे समग्र वातावरणको गुञ्जित-निनादित करती रहती थी। इसी रीतिसे जय-जयकारमय संकीर्त्तन भी चलते थे । इन दोनों प्रकारकी संकीर्तन- ध्वनियोंके दो नमूनोंके कुछ अंश नीचे दिये जारहे हैं:

(१) संकीर्त्तनदल	जनसमूह	(२)संकीर्त्तनदल	जनसमूह
बृन्दावनरानी	श्रीराधा	मोहनमनमानी	श्रीराधा
जय नित्यविहारिनि	श्रीराधा	ब्रज-सुख-विस्तारिनि	श्रीराधा
कीरतिकी कन्या	श्रीराधा	सब ही विधि धन्या	श्रीराधा
जय रास-विलासिनि	श्रीराधा	नित कुञ्ज-निवासिनि	श्रीराधा
हरि-उर-वनमाला	श्रीराधा	गुन-रूप-रसाला	श्रीराधा
श्रीदामा-अनुजा	श्रीराधा	बृष-दिनमणि-तनुजा	श्रीराधा
रसिकनिकी स्वामिनि	श्रीराधा	करुनानिधि नामिनि	श्रीराधा
वंशीवट वासिनि	श्रीराधा	संगीत प्रकासिनि	श्रीराधा
श्रीकृष्ण सिरोमनि	श्रीराधा	जय स्याम सँजीवनि	श्रीराधा
आनन्द रसायिनि	श्रीराधा	प्रीतम सुखदायिनि	श्रीराधा

(१) संकीर्त्तनदल	जनसमूह	(२)संकीर्त्तनदल	जनसमूह
बृषभानुदुलारी	जय राधे	श्रीकीर्त्तिकुमारी	जय राधे

ललितासखि-प्यारी	जय राधे	सर्वोत्तम नारी	जय राधे
श्रीमाधव-भामिनि	जय राधे	निष्कामा कामिनि	जय राधे
मदगजगति-गामिनि	जय राधे	पावन रस-धामिनि	जय राधे
मृदु ईषत् हासिनि	जय राधे	नव कुञ्ज-निवासिनि	जय राधे
शुचि प्रेम-प्रकासिनि	जय राधे	रति दिव्य-विकासिनि	जय राधे
प्रिय-हृदय-विहारिणि	जय राधे	मोहन-मन-हारिणि	जय राधे
प्रिय-ताप-निवारिणि	जय राधे	प्रिय-सुख-विस्तारिणि	जय राधे
नित शुद्धाचारिणि	जय राधे	प्रियतम-उर-धारिणि	जय राधे
प्रिय-पद-अनुरागिणि	जय राधे	सब बिधि बड़भागिनि	जय राधे

इन संकीर्त्तनोंके अतिरिक्त एकल पद-गायन भी संकीर्त्तनदल द्वारा किया जाता था। ऐसे पदगायनोंमें जनसमूह शान्त होकर श्रवण-आनन्द लेता था और गायकदल भाव-विभोर होकर गायन-रत रहता था। उदाहरणार्थ एक पद उद्धृत किया जा रहा है –

जग उठे भाग्य अग-जगके परम आनन्द है छाया।
श्यामकी ह्लादिनी राधा-प्रकटका काल शुभ आया।।

गायकदल जब इन पंक्तियोंको गजलकी तर्जमें कहरवा तालमें गाता था तब ऐसा अनुभव होता था मानो हम सभीके भाग्य जग उठे हैं, क्योंकि भगवान्‌की ह्लादिनीशक्ति श्रीराधा प्रकट होने ही वाली हैं। इधर तो पदगायन होते थे, उधर लोग देखते पू.गुरुदेव अर्ध-समाधिस्थ अवस्थामें ध्यानस्थ, निस्पन्द विराजित हैं। पू.गुरुदेवके समीप ही विराजित श्रीपोद्दार महाराजकी नेत्रमुँदी ध्यानस्थ मूर्त्ति भी हृदयको दर्शनमात्रसे भावाह्लादसे भर देती थी।

गायकदलको जब यह आभास होता था कि हमारे गायनरसने हमारे आराध्यद्वय संतशिरोमणि पोद्दार महाप्रभु एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको भावविभोर कर दिया है तो वे और भी उत्साहसे गान कर उठते थे–

बज उठीं देव-दुन्दुभियाँ, गान करने लगे किन्नर
सुर लगे पुष्प बरसाने, अमित आनन्द उरमें भर।
ग्वालिनी-वेष धारणकर सुन्दरीं चलीं सुर-जाया।
श्यामकी ह्लादिनी राधा-प्रकटका काल शुभ आया।।१।।
चले सब ग्वाल नर-नारी, बृद्ध-बालक सुसज्जित हो।
देख शोभा परम, सहमे देव-दम्पति सुलज्जित हो।।
प्रेमके राज्य पावनमें हुआ जो आज मनभाया।
श्यामकी ह्लादिनी राधा-प्रकटका काल शुभ आया।।२।।

यशोदा-नन्द परमानन्द पा अति हो उठे विह्वल।
चले ले भेंट अति अनुपम, खिल उठे हृदय-पंकजदल।।
लला थे गोद जननीके, प्रफुल्लित थी कलित काया।
श्यामकी ह्लादिनी राधा-प्रकटका काल शुभ आया।।३।।
ऋषी-मुनि हुए हर्षित, जो बने थे ब्रज मधुर गोपी।
फलित होता मनोरथ जान उनकी देह है ओपी।।
हुआ सब ओर जयकारा, मिट गयी सब मलिन माया।
श्यामकी ह्लादिनी राधा-प्रकटका काल शुभ आया।।४।।

सचमुच ही इन गीतोंसे ऐसा समा बँधता था कि इनमें वर्णित समग्र दृश्य जीवन्त हो उठता था। जब गायक लोग गाते—*'सुर लगे पुष्प बरसाने'* तो उस समय गायक लोग अपने पास रखी पुष्प-पंखुड़ियोंकी सर्वत्र ऐसी वर्षा करते कि सारा मंच पुष्पाच्छादित हो उठता था। गायकदल जब झूम-झूमकर गाता —*'मिट गयी सब मलिन माया'*, उस समय सचमुच ही सबको यही अनुभव होता था कि आज जब श्रीराधा-जन्मसमयमें श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके पावनतम अन्तःकरणोंमें श्रीराधारानीका जो प्राकट्य होगा तो निश्चय, निश्चय ही उत्सवमें सम्मिलित सभी साधकोंकी काममूला मलिना मायाका सदा-सदाके लिये नाश हो ही जायेगा। हम सभी कृतकृत्य हो उठेंगे। आज श्रीराधा-जन्म होते ही हम सबकी आँखोंमें सहसा नन्दनन्दनकी छवि भर ही जायगी और उसके पश्चात् सबको श्रीराधारानी दर्शन देकर कृतार्थ कर ही देंगी। आज तो सबकी मनभायी होने ही वाली है। इस भावनामें समग्र दर्शकसमाज इस प्रकार भावाभिभूत हो उठता था कि सभीको समग्र दृश्य ही राधा-कृष्णमय दिखने लगता था।

मन इन मधुरातिमधुर कल्पनाओंमें प्रवाहित होते-होते तभी विराम लेता जब सहसा उद्घोषणा होती थी – 'समय होगया है, अब सभी लोग शान्त होकर बारह मिनटतक श्रीराधाकुमारीके जन्मकी प्रतीक्षा करेंगे।'

सभी स्त्री-पुरुष यह सुनते ही शान्तचित्त होकर नेत्र मूँदकर अपने अन्तःकरणमें किसी अनिर्वचनीय सत्ताके होनेवाले प्रकाशकी प्रतीक्षा करने लगते थे।

ठीक मध्यान्ह होते ही लगभग ११-५२ पर विलक्षण उत्साहसे झालर, घण्टा एवं जिसके हाथमें जो भी वाद्य होता, सभीका समवेत निनाद हो उठता

था । ११-५५ पर श्रीराधाकुमारीके जन्मकी आरती गायी जाती थी। यह आरती भी श्रीपोद्दार महाराज द्वारा ही रचित थी। माइकपर इस आरतीको आगे-आगे श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी अपने परम मधुर एवं बुलन्द कण्ठसे प्रारम्भ करते एवं पीछे-पीछे सभी जन-समुदाय बोला करता था। यहाँ यह आरती दी जा रही है।

आरति श्रीबृषभानुसुताकी।
मंजु मूर्त्ति मोहन-ममताकी।।
त्रिविध तापयुत संसृति-नासिनि
विमल विवेक-विराग-विकासिनि।।
पावन प्रभु-पद-प्रीति-प्रकासिनि।
सुन्दरतम छवि सुन्दरताकी।।१।।
मुनिमनमोहन मोहन-मोहिनि।
मधुर मनोहर मूरति सोहनि।।
अविरल प्रेम-अमियरस-दोहिनि।
प्रिय अति सदा सखीललिताकी।।२।।
सन्तत सेव्य संत मुनिजनकी।
आकर अमित दिव्य गुन गनकी।।
आकर्षिणी-कृष्णा-तन-मनकी।
अति अमूल्य सम्पति समताकी।।३।।
कृष्णात्मिका कृष्ण-सहचारिणि।
चिन्मय बृन्दाविपिन-विहारिणि।।
जगज्जननि जग-दुःख-निवारिणि।
आदि अनादि सक्ति विभुताकी।।४।।
आरति श्रीबृषभानुसुताकी।।

श्रीराधारानीकी जन्म-आरती श्रीपोद्दार महाराज स्वयं अपने हाथों किया करते थे। पू.गुरुदेव तो भाव-समाधिमें ऐसे डूबे रहते थे मानो मात्र उनका देह ही गोरखपुरमें हो और वे उस लोकमें जीवन्त पहुँच गये हों जहाँ वस्तुतः श्रीराधारानीका श्रीकीर्त्तिदा मैयाकी कोखसे जन्म हो रहा है। वस्तुतः सत्य तो यही है, यही है कि वे स्वयं श्रीराधा बने अपने प्राणाधार प्राणसर्वस्व नीलसुन्दरके साथ अपने चिन्मय जन्मोत्सवका दर्शन करने सच्चिन्मय लीलालोकमें प्रवेश कर जाते थे। पुष्पाञ्जलि अर्पणका समय आनेपर ब्राह्मण लोग वेदपाठ करते,

किन्तु श्रीपोद्दार महाराज अपनी ही रचित पुष्पाञ्जलि बोलते थे –

समुद सुगन्धित सुमन लै, सुमन सुभक्ति सुधार।
पुष्पाञ्जलि अर्पण करूँ, देवि ! करो स्वीकार ।।

श्रीपोद्दार महाराज तो अपना सुष्ठु भक्तिपूर्ण सुन्दरतम श्रीकृष्णरूप मन ही प्रियाके चरणोंमें निवेदित करते हैं, किन्तु हम सब तो अपना विषय-कीचसे सना, देहाध्यासरूप मलिन पापवासनाओंकी दुर्गन्धसे भरा मन ही श्रीराधारानीके चरणोंमें निवेदित करते थे। परन्तु ओह ! अपूर्व समतामयी श्रीकृष्णप्रियाकी जय हो ! वह उसे भी स्वीकारते हुए अपना मुख तनिक भी तिक्त नहीं करती थीं। वही रस एवं प्रेमसे भरी मन्द मुसकान उनके मुख-मण्डलको सदैव उद्भासित करती रहती थी।

इसके पश्चात् स्वयं श्रीपोद्दार महाराजके द्वारा इधर तो श्रीराधाका पूजन प्रारंभ होता था और उधर पण्डाल जो बीच-बीचमें जय-जयकारसे गुञ्जायमान होता रहता था, गायकोंके सुस्वर पद-गायनसे मुखर होने लगता।

सर्वप्रथम तो श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी अपने परम सुमधुर कण्ठसे श्रीराधासुधानिधिके पाँच श्लोक पाठ करते थे।

यस्याः कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी।
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि।।१।।
यो ब्रह्मरुद्रशुकनारद भीष्ममुख्यैरालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य।
सद्योवशीकरणचूर्णमनन्तशक्तिं तं राधिकाचरणरेणुमनुस्मरामि।।२।।
राधाकरावचितपल्लववल्लरीके राधापदांकविलसन्मधुरस्थलीके
राधायशोमुखरमत्तखगावलीके राधाविहारविपिने रमतां मनो मे।।३।।
वैदग्ध्यसिन्धुरनुरागरसैकसिन्धुर्वात्सल्यसिन्धुरतिसान्द्रकृपैकसिन्धुः।
लावण्यसिन्धुरमृतच्छविरूपसिन्धुः श्रीराधिका स्फुरतु मे हृदि केलिसिन्धुः।।४।।
राधानामसुधारसं रसयितुं जिह्वास्तुमे विह्वला पादौ तत्पदकांकितासु चरतां वृन्दाटवी वीथिषु
तत्कर्मैव करः करोतु हृदयं तस्याः पदं ध्यायतात् तद्भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रतिः।।५।।

भावार्थ

(पाठकोंके रसास्वादनार्थ इन पाँचों श्लोकोंका भावार्थ नीचे दिया जा रहा है)

(१)

सच्चिदानन्दघन दिव्यरस-सुधा-सिन्धु ब्रजेन्द्रनन्दन राधावल्लभ श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रका प्रेम-धाम ब्रजमें ही नित्य निवास है, और उनका चलना-फिरना भी ब्रजके मार्गोंमें ही है। यह ब्रजमार्ग चित्त-वृत्ति-निरोध-सिद्ध महाज्ञानी

योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके लिये भी अत्यन्त दुर्गम है। ब्रजका मार्ग तो उन्हींके लिये प्रकट होता है, जिनकी चित्तवृत्ति प्रेमघन-रस-सुधा-सागर आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंकी ओर नित्य निर्बाध प्रवाहित होती रहती है। जहाँ न निरोध है और न उन्मेष ही, अपितु दोनोंकी चरम सीमाका अपूर्व मिलन है। इस पथपर अबाध विहरण करती हुई, बृषभानुनन्दिनी रासेश्वरी श्रीराधारानीका दिव्य वसनाञ्चल विश्वकी विशिष्ट चिन्मय सत्ताको कृतकृत्य करता हुआ नित्य खेलता रहता है। किसी समय उस वसनाञ्चलके द्वारा स्पर्शित धन्यातिधन्य पवन-लहरियोंका अपने श्रीअंगसे स्पर्श पाकर योगीन्द्र-मुनीन्द्र-दुर्लभ-गति श्रीमधुसूदन अपनेको परम कृतार्थ मानते हैं, उन श्रीराधारानीके प्रति हमारे मन, प्राण, आत्मा – सबका नमस्कार है।

(२)

जो सबके हृदयान्तरालमें नित्य-निरन्तर साक्षी और नियन्तारूपसे विराजमान रहनेपर भी सबसे पृथक् गोप-वधूटी-विट रूपमें वर्त्तमान रहते हैं, जो समस्त बन्धनोंको तोड़कर सर्वथा उच्छ्रंखलताको प्राप्त हैं, जिनके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान ब्रह्मा, शंकर, शुक, नारद एवं भीष्मादि *'महतो महीयान्'* पुरुषोंको भी नहीं है, अतएव वे हारकर मौन हो जाते हैं, उन सर्वनियमातीत, सर्वबन्धनविनिर्मुक्त, नित्य स्ववश, परात्पर, परम पुरुषोत्तमको भी जो श्रीराधिका-चरण-रेणु इसी क्षण वशमें करनेकी अनन्त शक्ति रखती है, उस अनन्त शक्ति श्रीराधिका- चरण-रेणुका हम अपने अन्तस्तलमें बारंबार भक्तिपूर्वक स्मरण करते हैं।

(३)

श्रीराधाजीका तो जीवन ही प्रियतम-सुखमय है, अतः जिन पल्लव-वल्लरियोंके फूल वे अपने केशोंमें गूँथती हैं, उन पल्लव-वल्लरियोंके रूपमें स्वयं प्रियतम श्यामसुन्दर ही अपनेको उनकी केश-सज्जाके लिये समुपस्थित कर देते हे। प्रियतम श्यामसुन्दरका मन ही सुमन बनकर श्रीराधानीको सुख देने बृन्दावनमें स्फुटित रहता है। श्रीराधाके गुण-सौन्दर्यसे नित्यमुग्ध प्रियतम उन्हीं वीथियोंमें डोलते रहते हैं, जहाँ श्रीराधारानीके चरण घूमते हैं। बृन्दावनके पक्षियोंका यह एक ही कार्य शेष रहता है कि वे इन वीथियोंमें श्रीराधाकी चरणरेणुसे अपने अंगोंका सम्मार्जन करते-फिरते नित्यमुग्ध प्रियतम श्यामसुन्दरको उनकी प्रिया श्रीराधारानीके गुण-गायन सुनावें। कहीं हमारा भी ऐसा सौभाग्य

हो जाता कि हमारा मन भी इस राधा-विहार-विपिनमें श्रीप्रिया-प्रियतमका अनुगमन करता हुआ भ्रमण करने लगता।

(४)

विश्व-प्रकृतिके प्रत्येक स्पन्दनमें विन्दुरूपसे जो विदग्धभाव, अनुराग, वात्सल्य, कृपा, लावण्य, रूप(सौन्दर्य) और केलिरस(माधुर्य) वर्त्तमान है – रासेश्वरी, नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीबृषभानुनन्दिनी उन्हीं सातों रसोंकी अनन्त अगाध उदधि हैं। इस प्रकार नित्यानन्दरसमय सप्तसमुद्रवती श्रीराधिका श्यामसुन्दर आनन्दकन्दके नित्य दिव्य रमणानन्दमें अनादिकालसे ही उन्मादिनी हैं। इन्हींके छविरूप सुन्दर मधुर इक्षुरससे और इन्हींके केलि-विलास-विन्यासरूप क्षारतत्वसे समस्त अनन्त विश्व-ब्रह्माण्ड नित्य अनुरञ्जित, अनुप्राणित और ओतप्रोत हैं। ऐसी अनन्त विचित्र सुधारसमयी, प्राणमयी, विश्वरहस्यकी चरम तथा सार्थक मीमांसामूर्त्ति श्रीबृषभानुनन्दिनीका दिव्य स्फुरण जिसके जीवनमें नहीं हो पाया, उसका सभी कुछ व्यर्थ अनर्थ है। देवी राधिके ! अपने ऐसे दिव्य स्फुरणसे मेरे हृदयको कृतार्थ कर दो।

(५)

श्रीराधिके ! वह शुभ सौभाग्यक्षण कब होगा, जब तुम्हारे नाम-सुधा-रसका आस्वादन करनेके लिये मेरी जिह्वा विह्वल हो जायेगी। जब तुम्हारे चरणचिह्नोंसे अंकित बृन्दारण्यकी वीथियोंमें मेरे पैर भ्रमण करेंगे – मेरे सारे अंग उसमें लोट-लोटकर कृतार्थ होंगे, जब मेरे हाथ केवल तुम्हारी ही सेवामें नियुक्त रहेंगे, मेरा हृदय तुम्हारे चरण- पोस्रोंके ध्यानमें लगा रहेगा और तुम्हारे इन भावोत्सवोंके परिणामस्वरूप मुझे तुम्हारे प्राणनाथके चरणोंकी रति प्राप्त होगी – मैं तुम्हारे ही सुख-साधनके लिये तुम्हारे प्राणनाथकी प्रणयिनी बननेका अधिकार प्राप्त करूँगा।

इधर श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी द्वारा यह स्तवन समाप्त होता है, उधर श्रीपोद्दार महाराज रजतपात्रमें पावभर जलमें दूर्वा, कमल एवं अपराजिता डालकर सद्योजात किशोरीके शिशुवत् परम चिन्मय सुकोमलतम चरणोंमें तीन बार पाद्य देते हैं। उसके पश्चात् हाथ स्वच्छकर वे उनके नन्हे-नन्हे हाथोंका भावरूपमें ध्यान करते हुए एक अर्घ्यपात्रमें एक पाव जलमें गंध, पुष्प, अक्षत, यव, दूर्वा, चार तिल, कुशका अग्रभाग तथा सरसोंके कुछ दाने डालकर

श्रीराधाकुमारीके लाल-लाल हाथोंमें अर्घ्य देते हैं।

श्रीमोतीजी पारीक उनके हाथ धुलाकर पुनः उन्हें आचमनीय पात्र देते हैं। उस पात्रमें डेढ़ पाव जलमें जायफल, लौंग और कंकोलका चूर्ण डालते हैं एवं उससे श्रीपोद्दार महाराज श्रीराधारानीका भावाचमन कराते हैं।

श्रीपोद्दार महाराजको एक कटोरीमें सुगन्धित ब्राह्मी आँवलेका तेल दिया जाता है। वे उससे श्रीराधारानीके शिशु अंगोंमें अपने चिन्मय भाव-शरीरके अति सुकोमल हाथोंसे मर्दन करते हैं। परम स्वच्छ एवं शुद्ध समशीतोष्ण जलसे श्रीराधाकुमारीको स्नान कराते हैं। पश्चात् श्रीराधाकुमारीका पंचामृतस्नान होता है। पंचामृतकी पृथक्-पृथक् दूध, दधि, घृत, मधु एवं शर्करा आदि सामग्री भिन्न-भिन्न रजत पात्रोंमें सज्जित रख दी जाती है। श्रीमोतीजी पारीक एक-एक सामग्री श्रीपोद्दार महाराजको सौंपते हैं जिससे वे भावसे श्रीराधांगोंमें स्नानार्थ समर्पित करते जाते हैं। श्रीपोद्दार महाराज कर्पूर एवं चन्दनमिश्रित गुलाबजलसे श्रीराधारानीका शुद्धोदक स्नान सम्पादित करते हैं । एक सुकोमलतम रेशमी रूमाल द्वारा श्रीराधाकुमारीके अंगोंका सम्मार्जन किया जाता है। इसके पश्चात् लघु रेशमी नीली जरीकी झगुली समर्पित की जाती है। श्रीपोद्दार महाराज कंघी अर्पण करते हैं । श्रीराधाकुमारीके ललाटपर बिन्दी लगाते हैं, छोटे-छोटे शिशु हाथोंमें रत्नचूड़ी पहनाते हैं। उन्हें परम सुगन्धित इत्र समर्पित किया जाता है। फिर उन्हें दर्पण दिखाया जाता है। श्रीपोद्दार महाराज अपने भावमें दर्पणमें श्रीराधा- रानीके मुखका अति सुकोमल प्रतिबिम्ब देखकर चकित हो उठते हैं। उन्हें दर्पणमें श्रीराधाके मुखके स्थानपर श्रीकृष्णकी मुखछवि दृष्टिगोचर होती है। सत्य ही तो है, श्रीराधारानीके अति सुकोमल प्रतिबिम्ब श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्णकी अति सुकोमल प्रतिबिम्ब श्रीराधा हैं। ये दोनों ही तो बिम्ब हैं और यही दोनों परस्पर अति सुकोमल प्रतिबिम्ब भी हैं, अतः अति सुकोमल प्रतिबिम्बरूपमें श्रीपोद्दार महाराजको जो कुछ दिख रहा है, वही सत्यका सत्य– परम सत्य है।

श्रीपोद्दार महाराज आरसीमें उस प्रतिबिम्बको देखकर एक क्षण तो श्रीराधाबाबाको यह छवि दिखाना चाहते हैं, किन्तु श्रीराधाबाबाको ध्यानस्थ देखकर वे मुसकाकर उस छविको हृदयमें लगा लेते हैं। इसके पश्चात् वे श्रीराधारानीके सुकुमार अंगोंमें कस्तूरी एवं केसर- सुवासित चन्दन अर्पण करते

हैं।

श्रीपोद्दार महाराज इसके पश्चात् श्रीराधारानीको सौभाग्यद्रव्य अर्पण करते हैं; सौभाग्यद्रव्योंमें कुंकुम, सच्चे मोती, हरिद्रा, अबीर-गुलाल एवं सिन्दूर होता है। वे श्रीराधारानीको सुन्दर पुष्पोंसे गुँथी माला समर्पित करते हैं। श्रीराधारानीको तब कमल-पुष्प अर्पण किया जाता है। इसके पश्चात् श्रीराधारानीको धूप अर्पण किया जाता है। धूपाघ्राणके पश्चात् दीप दिखाया जाता है और तब एक पट्टेको स्वच्छकर रजतकी थालीमें सुस्वादु षड्रस नैवेद्य (भोजन) अर्पण किया जाता है।

इस नैवेद्यमें मिठाई, नमकीन, कटु, तिक्त, अम्ल और कषाय – छहों रसोंसे युक्त चर्व्य, चोष्य, लेह्य, एवं पेय चारों प्रकारके पदार्थ होते हैं।

चर्व्य (चबाकर खाये जानेवाले) नैवेद्यमें मिष्ठान्न, नमकीन, पूरी-कचौरी आदि भोजन होते हैं। नमकीन नैवेद्यमें अनेकों प्रकारके साग, बड़े, दहीबड़े, काँजीबड़े, समोसे, कचौरी आदि होते हैं। मिष्ठान्नमें सभी मिठाइयाँ यथाश्रद्धा भोग लगायी जाती हैं। चोष्य नैवेद्योंमें आम, मौसम्बी, आदि चूसे जानेवाले फल होते हैं। लेह्य नैवेद्यमें हरी मिर्चकी चटनी, नींबू, पुदीनाकी चटनी आदि सभी चटनियाँ सम्मिलित होती हैं। पेय नैवेद्यमें श्रीखण्ड, खीर, रबड़ी, आदि पी सकने योग्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार कटु रसमें करैलेकी, मेथीकी सब्जी होती हैं। तिक्त रसमें अदरखकी बूजी, अम्लरसमें नीबूके टुकड़े, कषायरसमें आँवलेकी लौंजी आदि वस्तुएँ होती हैं।

श्रीपोद्दार महाराज अन्तर्पट करके श्रीराधाकुमारीको नैवेद्य अर्पण करते हैं। नैवेद्य अर्पण करके वे श्रीराधाकुमारीको अमृतोपस्तरण एवं अमृतोपिधान कराते हैं। इसके पश्चात् उन्हें आचमनीय कराया जाता है। केसर एवं कर्पूर मिले चन्दनसे करोद्वर्तन कराया जाता है। मुखशुद्धिके लिये ताम्बूल, लौंग एवं इलायची अर्पण की जाती है। इसके पश्चात् वे स्वयं श्रीराधारानीकी स्तुति श्रीराधासुधानिधि ग्रन्थसे करते हैं। एक रजत गिलाससे उन्हें जल समर्पण करते हैं। पाँच ऋतुफल समर्पित करते हैं। फिर श्रीमोतीजी आदि ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी जाती है। इसके पश्चात् श्रीराधारानीका दीपसे, जलसे, वस्त्रसे एवं पुष्पोंसे नीराजन होता है। इस प्रकार सभी पूजामें बैठे लोग श्रीराधारानीको साष्टांग नमस्कार करते हैं एवं तब पुष्पाञ्जलि दी जाती है।

इधर जबतक यह पूजन भीतरके अर्चा-मण्डपमें चलता है, बाहर संकीर्त्तन होता रहता है। श्रीपोद्दार महाराज जब यह अर्चन करके बाहर आ जाते थे तो संकीर्त्तन करनेवाले गायकदलका उत्साह अनेकगुणा बढ़ जाता था।बधाईके पदोंसे पूरा-का-पूरा पण्डाल निनादित हो उठता था। लोग झूम-झूमकर गाने लगते थे —

हृदय आनन्दभर बोलो, बधाई है, बधाई है।
हमारे भाग्य हैं जागे, जो लाली घरमें आई है।।हृदय०।।
धन्य बृषभानुपुर सुन्दर, धन्य बृषभानुनृपमन्दिर,
धन्य वह कक्ष मंगलकर अजन्मा जहाँ जाई है ।।हृदय०।।
शुभ सित पक्ष भादौं मास, शुभ अति अष्टमी सुखरास,
शुभ नक्षत्र अभिजित खास जिसमें राधा आई है।।हृदय०।।
कामकी कालिमा हरकर, प्रेमकी छवि प्रकाशित कर,
रस सुधासे विषय विष हर प्रेमकी बाढ़ छायी है।।हृदय०।।
खोलकर नेहके झरने, सुखी निज श्यामको करने,
हृदय आनन्दसे भरने, स्वयं श्यामाजू आयी हैं।।हृदय०।।
हृदय है यह कन्हैयाकी, प्राण है यह कन्हैयाकी,
आत्मा यह कन्हैयाकी सुधा बरसाती आयी है।।हृदय०।।
एक ही दो बने हैं जो, दो रहकर एक ही हैं सो,
रसास्वादन करानेको रसकी सरिता आयी है।।हृदय०।।
पुकारो भानुनृपकी जय, मैया कीर्तिकी जय जय.
हुआ दम्पतिका भाग्योदय जिनकी कन्या कहाई है।।हृदय०।।

पदोंके अन्तमें 'जय-जय श्रीराधे'का जयनाद इतने उच्च स्वरोंमें किया जाता था कि निश्चय ही वह ध्वनि ऊपरलोकोंको भी हर्षसे भर देती।

इन पदोंके पश्चात् सामूहिक उद्दाम नाम-संकीर्त्तन इतने तुमुल स्वरोंमें किया जाता कि सब जन-समुदाय राधानाम-गायनकर पागल हो उठता । वस्तुतः सन् १९५७ ईके पूर्व जबतक पू.गुरुदेव श्रीराधा- बाबाने काष्ठमौन ग्रहण नहीं किया था, इस उद्दाम नाम-संकीर्त्तनका संचालन वे स्वयं ही अपने हाथमें बड़ा घण्ट और बजानेकी लकड़ीकी हथौड़ी लेकर किया करते थे। उनके मौन लेनेके पश्चात् यह घण्ट श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला (श्रीपोद्दार महाराजके जामाता) लिया करते। यह उद्दाम नाम-संकीर्त्तन इतना तुमुल होता कि इसमें सभी लोगोंकी वृत्तियाँ राधा-नाममय हो उठतीं। लगभग चार बजे सायंकालतक

यह कार्यक्रम चलता और तत्पश्चात् प्रसाद-वितरण होकर प्रथम दिवसका उत्सव समापन हो जाता था।

अन्तमें मैं श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें जो-जो आवश्यक सामग्री लगती है उसकी भी तालिका दे देता हूँ। यह सब इसीलिये लिखा जा रहा है जिससे पाठकगण गोरखपुरमें पू.पोद्दार महाराजके सान्निध्यमें मनाये जानेवाले इस उत्सवकी तरह ही अपने घरोंमें भी श्रीराधा -जन्म-महोत्सव अवश्य मनावें। जो भी भक्तगण इस रीतिसे यह उत्सव अपने घरोंमें, ग्रामोंमें, नगरोंमें, सार्वजनिक मन्दिरोंमें मनावेंगे, उनपर श्रीराधारानीकी निश्चय-निश्चय कृपा बरसेगी। पू. गुरुदेव एवं पू.पोद्दार महाराजकी सन्निधि भी उन्हें इन उत्सवोंमें अवश्यमेव अनुभवमें आवेगी।

राधाष्टमी-महोत्सवकी सामग्री

(१) जौ २०–३० दाना,
(२) बिना टूटा अक्षत चावल १ छटाँक
(३) तिल २०–३० दाना
(४) सरसों २०–३० दाना
(५) जायफल १ फल
(६) कंकोल ८–१० मात्र
(७) सुगन्धित तैल – एक शीशी
(८) धुले रूमाल ३ दर्जन
(९) श्रीराधाजीके लिये साड़ी-कब्जा
(१०) कुमारी राधाके लिये नीली झगुली एवं काछनी
(११) राधाजीके सिंहासनके लिये गद्दा-तकिया
(१२) शुद्ध रबड़के कंघे २ नग
(१३) सुन्दर चूड़ियाँ १६ नग
(१४) दर्पण २ नग
(१५) स्वर्णबेंदी
(१६) चन्दन-धूप १ पेकट

(१७) अबीर-गुलाल थोड़ासा

(१८) सिन्दूर थोड़ासा

(१९) सौभाग्यसूत्र २ नग

(२०) तिलकके लिये सच्चे मोती – थोड़ेसे

(२१) खूब सुगन्धि वाली अगरबत्ती २ पेकेट

(२२) घीमें भीगी रूईकी बत्तियाँ १०० नग

(२३) छोटी इलायचीके दाने

(२४) लौंग थोड़ीसी

(२५) पंचामृतके लिये दूध यथाश्रद्धा

(२६) दही – दूधकी मात्रासे आधा

(२७) गायका शुद्ध घी १ किलो

(२८) शुद्ध शहद १-२ सेर

(२९) देसी बूरा(चीनी) पंचामृतके लिये लगभग १५ किलो

(३०) मट्टीकी परई ३०० नग

(३१) दीपक १०० नग

(३२) पंचामृतके लिये नाँद १ नग

(३३) हाँडी ४–५ नग

(३४) दूर्वादल, कुश, तुलसीदल, बिल्वपत्र, पुष्पादि, माता कीर्त्तिदाके लिये बड़ी पुष्पमाला तथा श्रीराधा-कुमारीके लिये छोटी पुष्पमाला

(३५) घिसा हुआ चन्दन

(३६) दियासलाई

(३७) दक्षिणाद्रव्य २ स्थानपर यथाश्रद्धा

(३८) अखण्ड ऋतुफल ५ फल २ वार समर्पित होंगे

(३९) गंगाजलमें शुद्धतापूर्वक बना हुआ षड्रस नैवेद्य

(४०) मेवा यथाश्रद्धा

(४१) लगाये हुए ताम्बूल

(४२) (मुखशुद्धिके लिये) इलायची-लौंग ।

निशाजागरण एवं दधिकर्दमोत्सव

(सायंकालीन कार्यक्रम)

इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं माननी चाहिये कि भाद्रपद शुक्ल पक्षकी षष्ठीसे नवमीतक गीतावाटिका (श्रीपोद्दार महाराजकी निवासस्थली)में साक्षात् चिन्मय लीलाधाम – गोलोकका ही प्रतिबिम्ब अवतरित हो आता था । राधाष्टमीके सम्पूर्ण दिवस तो रस-धूम ही मची रहती; सायंकाल भी श्रीपोद्दार महाराजकी ओरसे सभी समागत अतिथियों, गोरखपुर नगरके आसपासके ग्रामोंसे आये दर्शनार्थियों और उत्सवमें सम्मिलित शहरके सभी जन-समुदायको भरपेट प्रसाद वितरण किया जाता था। इस प्रसादका ऐसा सात्विक दिव्य स्वाद होता था कि खानेवालोंको अनुभव होता मानो सचमुच ही हम बृषभानुपुरके राजप्रासादका ही भोग पा रहे हैं। चावल, कढ़ी, मूँग, पूड़ी, प्रसादी साग, बुँदिया, भुजिया सभीमें शुद्ध घी और तैलका ही प्रयोग किया जाता था। दुपहरीमें चढ़ा पंचामृत प्रसाद, पँजीरी, केला आदि फलोंके टुकड़े भी इस प्रसादमें सम्मिलित होते थे। भोजन समापन होते-होते ही सायंकाल हो जाता, एवं सायंकालीन उत्सवका प्रारंभ हो जाता था।

श्रीपोद्दार महाराजका रात्रिकालीन प्रवचन

सायंकालीन उत्सवमें पहले तो नाम-संकीर्त्तन होता, उसके पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजका अति सारगर्भित प्रवचन हुआ करता ।

श्रीराधाजन्माष्टमी महोत्सवके रात्रिकालीन उत्सव एवं श्रीपोद्दार महाराजके प्रवचनका सार-संक्षेप देनेके पूर्व मैं हिन्दू समाजमें व्याप्त उन परिस्थितियोंपर भी किंचित् प्रकाश डाल देना आवश्यक समझता हूँ, जिनसे प्रेरित होकर अन्तर्जगत्ने पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा एवं श्रीपोद्दार महाराजके द्वारा एक आन्दोलनके रूपमें इस श्रीराधाजन्माष्टमी महोत्सवको प्रारंभ करवाया; उसे इतना बृहद् रूप दिलाया और उसी अन्तर्जगत्की महाइच्छाकी पूर्त्तिके लिये एक यंत्रके रूपमें श्रीपोद्दार महाराज अपने जीवनके पूरे पचास वर्ष इस आन्दोलनके प्रणेता बने कार्य करते रहे। अपने लेखों, प्रवचनों, कविताओं और पत्राचारोंके द्वारा ही नहीं, अपनी अनवरत प्रगाढ रस-साधना एवं विलक्षण सहज भाव-समाधि द्वारा

श्रीपोद्दार महाराजने अन्तर्जगत्की जिस महाइच्छाकी पूर्त्तिमें अपनी समग्र क्रियाशक्ति और चिच्छक्तिको एकाकार, एकात्म कर दिया, अन्तर्जगत्की जिस महाइच्छाशक्तिने ही श्रीपोद्दार महाराज रूप वृक्षमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा जैसे अतिशय सुरभित गुलाबके फूलको प्रस्फुटित किया, उसे सहस्रों सुरभित पंखुड़ियोंसे समन्विताकर उसका चरम एवं परम विकास किया, उसका मकरन्दपान करने एवं उससे अशेष कल्याणभाजन होनेके लिये हजारों ग्राहकोंके रूपमें, दीन-हीन विषयलोलुपतामें बँधे जीवोंके वेषमें स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन भिक्षापात्र लेकर समुपस्थित हुए, उस महाइच्छाके कारणोंका भी कुछ परिचय करा देना मैं परमावश्यक समझ रहा हूँ।

गीतावाटिका, गोरखपुरमें मनाया जानेवाला श्रीराधाजन्माष्टमी-महोत्सव एक साधारण कौतुक अथवा मनोविलास मात्र नहीं था, इसके पीछे रसजगत्के महासिद्ध सन्तोंका विलक्षण उत्साह था, और पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाने पू.पोद्दार महाराजका परमातिपरम गुप्त संकेत और उत्साह-समन्वित अनुमोदन पाकर ही इसे मूर्त्त किया था। यहाँ इसकी पृष्ठभूमिपर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है।

घोर कलिकालका प्रवाह ही इसका हेतु संभव है। ऐसा युग आया, जिसमें भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णने ब्रजमें प्रकट होकर रसकी मधुराति-मधुर जो त्रिवेणी बहायी थी, उसके प्रति हिन्दू समाजमें घोर भ्रान्तियाँ फैलती गयीं और विकृत होते-होते उसका स्वरूप पापके प्रचारमें निमित्त हो गया।

विदेशी विद्वान् शोधकर्त्ता बन बैठे और श्रीफर्कुहरने लिख दिया कि श्रीराधाकी उपासना ईसवी सन ११००के आसपास बृन्दावनमें प्रारंभ हुई होगी, और यहांसे बंगाल आदि स्थानोंमें पहुँची होगी।

डाक्टर शशिभूषण दासगुप्ताके द्वारा रचित 'श्रीराधाका क्रम-विकास' नामक पुस्तकमें श्रीराधाकी कब, कैसे कल्पना हुई, कैसे-कैसे उसमें विकास होता गया – इस विषयपर अनर्गल कल्पनाओंको लिपिबद्ध किया गया। ऐसे ही विचार या ग्रन्थ नवीन-नवीन शोधकर्त्ताओंके लिये उनके शोधका आधार बनते गये। शोधग्रन्थोंमें यह प्रतिपादित किया गया कि श्रीराधा मात्र कवि-कल्पना-प्रसूत नायिका हैं। वे एक विलासप्रिय स्वच्छन्द रमणी हैं। रीतिकालीन कवियोंने भी श्रीराधाकृष्णकी दिव्य चिन्मय लीलाओंमें अपनी जड़ देहगत धारणाओं एवं प्रच्छन्न वासनाओंको आरोपितकर इतना कामोद्दीपक, श्रृंगारी बना दिया कि इन्हींसे इन विद्वानोंने अपने शोधग्रन्थोंकी पृष्ठभूमि

निर्मित की। आधुनिक सम्प्रदायाचार्योंने जिनकी उपासना ही श्रीराधाकृष्ण युगल दम्पतिकी रसकेलि थी, अपने स्वार्थोंकी पूर्त्तिहेतु विकृत रासलीलाओंके ग्रन्थोंका सृजनकर इन परम गोपनीय एवं तत्वमयी लीलाओंको, जो मात्र अधिकारी साधकोंके लिये साधनाकी वस्तु थीं, इतना सार्वजनिक बना डाला कि राधाकृष्णको मात्र कामी नायक-नायिकाके रूपमें ही पहचाना जाने लगा।

परम रसिक सिद्ध सन्त स्वामी हरिदासाचार्यजीकी उक्ति – ***'पाँचें भूले देह, छठे भावना रासकी'*** को तो दर-किनार कर दिया गया तथा वैष्णव समाजमें भोगवासनाकी पूर्त्तिको ही गोपीभावकी संज्ञा दी जाने लगी।

अलौकिक प्रीतिराज्यका लेशाभास मात्र पानेके लिये जड़ शरीरके विषयाध्यासकी तो बात ही क्या, सूक्ष्म शरीरसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग और कैवल्य ही नहीं अपितु मोक्षतकको त्याग देना जहाँ अनिवार्य शर्त्त रहती है उस प्रेमराज्यको मलिन मायिक शारीरिक अंग-संगका पर्याय मात्र बना दिया गया।

खद्योतोंके समान यत्र-तत्र फैले तुकबन्दी करनेवाले कवियोंने चीरहरण, दानलीला, मानलीला एवं रासलीला विषयक नये-नये काव्य तथा गीत रचे जिनमें स्त्री-पुरुषोंकी कामलीलाका ही चित्रण कर दिया गया। इससे समाजमें गोपियोंके प्रति, भगवान् श्रीकृष्णके प्रति तथा पारमार्थिक सत्यके प्रति ऐसी भ्रान्ति फैली कि उसका निराकरण ही कठिन हो गया।

महात्मा गाँधी, स्वामी दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक सरीखे समाज-सुधारकों एवं अन्य नेताओंकी जमातोंने भी इसी दृष्टिको अपनाया कि हिन्दू शास्त्रों एवं पुराणोंमें वर्णित राधा-कृष्ण विषयक ये सभी प्रसंग प्रक्षिप्त हैं, तथा अन्य धर्मावलम्बियों द्वारा हिन्दू धर्मकी निन्दाके उद्देश्यसे इन्हें बादमें जोड़ा गया है। इन्हें पुराणों एवं धर्मग्रन्थोंसे काटकर पृथक् कर देनेमें ही हिन्दू धर्मकी सेवा और हित है।

श्रीमद्भागवतादि पुराणोंके वेदान्ती टीकाकारोंने भी अपनी मनमानी करनेमें कोई कोर-कसर नहीं रखी। उन्होंने रासलीलादि प्रसंगोंके विशुद्ध प्रेम-रहस्यको बिना जाने-समझे ही गोपियोंको असंख्य वृत्तियोंका रूप दे दिया और भगवान् श्रीकृष्णको द्रष्टा, साक्षी, आत्मा मानकर रासप्रसंगको 'वृत्तियोंका विलास-रमण' ही सिद्ध कर दिया । इसी प्रकार चीरहरण उनके लिये आवरण-भंग मात्र हो गया।

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(पञ्चम खण्ड)

पृष्ठ संख्या
301-400
तक

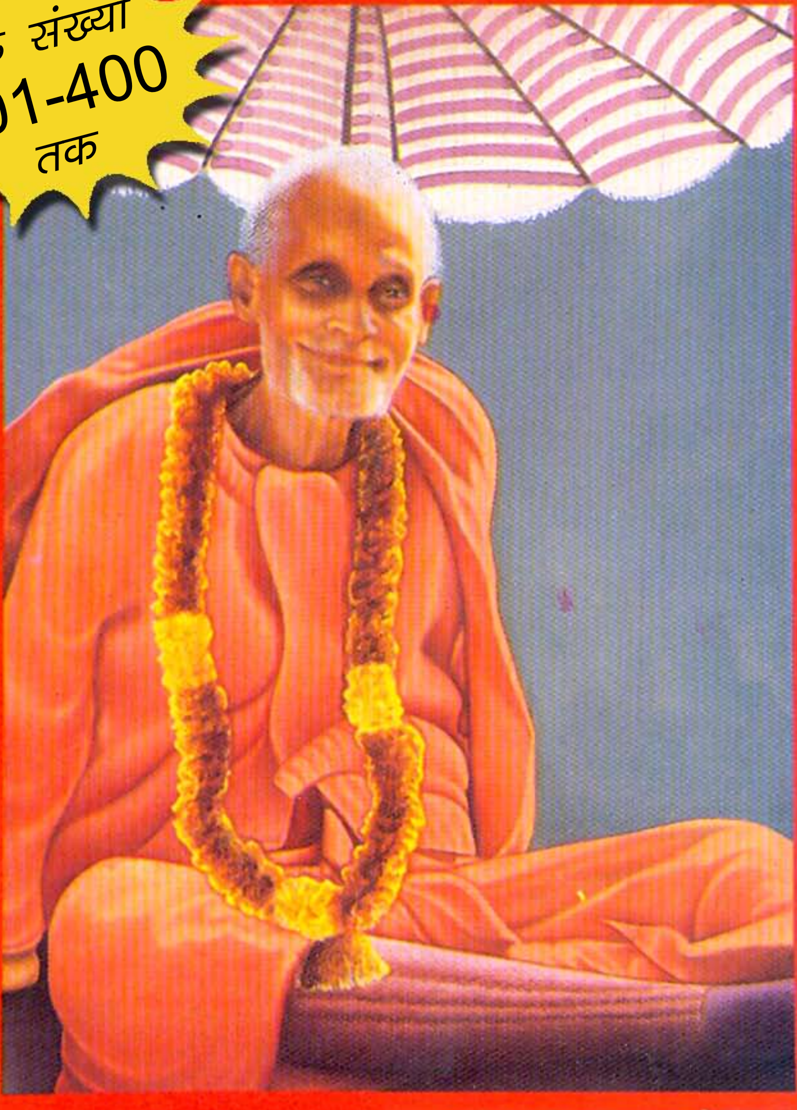

साधु कृष्णप्रेम

श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाने भी गीताप्रेससे 'कल्याण' मासिक पत्रके विशेषांकोंके रूपमें जब पुराणोंका प्रकाशन प्रारंभ किया तो समाजमें व्याप्त इस भ्रान्तिसे प्रभावित होकर स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण आदिके श्रीराधाकृष्णलीला विषयक प्रसंगोंको हटाकर उन्हें संक्षिप्त करके ही प्रकाशित किया।

उन दिनों हिन्दू समाजके आस्तिक वर्गने 'कल्याण' मासिक पत्रको धर्मके प्रतिनिधि प्रवक्ताकी ही मान्यता दे रखी थी, अतः कल्याणके विशेषांकोंमें श्रीराधाकृष्णलीलाके प्रसंगोंको न देखकर आस्तिक, जागरूक समाजकी यह भ्रान्त धारणा पूर्णतया परिपुष्ट हो गयी कि श्रीराधाकृष्ण एवं गोपियोंकी ये लीलाएँ सचमुच ही पारमार्थिक साधकोंके लिये कल्याणकारी नहीं हैं। 'कल्याण'का पाठकवर्ग एवं श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाके सत्संगोंसे जुड़ा सत्संगी समुदाय तो श्रीमद्भागवत जैसे परम पुनीत एवं वैष्णव भक्तिके धुरीण ग्रन्थको भी रासलीला, चीरहरण, माखनचोरी आदि प्रसंगोंके अंश छोड़कर ही पढ़ने लगा। अनेक साधक तो यहाँतक कहने लगे कि ध्यान तो भगवान् नारायणका ही ग्राह्य है, चरित्र श्रीरामजीका ही स्तुत्य है और भगवान् श्रीकृष्णका तो मात्र उपदेश ही स्वीकार करने योग्य है।

श्रीपोद्दार महाराज तो भगवान् नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण एवं नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रिया श्रीराधाको ही अपना आराध्य मानते थे। अपनी भावदेहसे तो वे स्वयं प्रिया श्रीराधा ही थे। महारासादि प्रसंगोंके सच्चिदानन्दमय लोकोत्तर परम मंगलकारी सत्यके तो वे प्रत्यक्ष अनुभवकर्त्ता ही थे। अपने अप्रतिम सहिष्णु स्वभाववश एवं आत्मगोपनकी चरम भावनासे सदैव ग्रहीतमानस रहनेके कारण वे कुछ काल तो शान्त रहे, किन्तु कालान्तरमें जब श्रीमद्भागवत जैसे सर्वमान्य परम पावन ग्रन्थसे भी रासलीला, चीरहरण एवं माखनचोरी आदि लीलाओंको हटाकर संक्षिप्त करके छापनेकी सुगबुगाहट उनके कानोंमें पड़ी तो उनकी सहनशक्तिकी इतिश्री हो गयी। वे आपाततः ही हिल गये और उन्होंने ऐसे प्रकाशनमें अपना सहयोग देना सर्वथा अस्वीकार कर दिया।

उन्होंने अपने उत्कट एवं सक्रिय आग्रहसे सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको बाध्य कर दिया कि वे श्रीमद्भागवतको संक्षिप्त करके प्रकाशित कदापि नहीं करें। अन्ततः श्रीगोयन्दकाजीको श्रीपोद्दार महाराजकी बात माननी

ही पड़ी ।

पू.श्रीपोद्दार महाराज तो मानव मात्रके कल्याणके लिये श्रीमद्भागवतमें वर्णित श्रीराधाकृष्णके परमातिपरम मधुर आत्ममिलनकी इन लीलाओंको सर्वोपरि श्रेष्ठ समझते ही थे; वे तो इन्हें पूर्ण मंगलकारी ही मानते थे, अतः उन्होंने 'कल्याण' मासिक पत्रके 'श्रीमद्भागवतांक' नामक विशेषांकमें अतिशय सारगर्भित अपने तीन लेख प्रकाशित किये। ये विशिष्ट लेख थे – १. माखनचोरीका रहस्य, २. चीरहरण रहस्य, तथा ३. रासलीला रहस्य । ज्योंही 'कल्याण' पत्रके माध्यमसे ये लेख आस्तिक वर्गने पढ़े, भ्रान्त समाजकी आँखें खुल गईं और समाजको श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-प्रसंगोंके सर्वोच्च विशुद्ध भक्तितत्त्व एवं रहस्यका परिचय प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् तो श्रीपोद्दार महाराजको अन्तर्जगत् द्वारा ऐसी प्रेरणा प्राप्त हुई कि अबतक जिस गोपीभाव-साधनाको वे परम गोपनीय एवं अपने अन्तर्हृदयकी एकमात्र लोभनीय वस्तु मान करके उसका एकान्तिक आस्वादन कर रहे थे, उसे अपने सत्संगों, प्रवचनों एवं 'कल्याण' पत्रिकामें लिखे अपने लेखोंके माध्यमसे भ्रान्त हिन्दू समाजके सम्मुख रखनेका मानो बीड़ा ही उठा लिया।

इस युगमें यह श्रेय श्रीपोद्दार महाराजको निःसंशय रूपसे दिया जाना चाहिये कि जो अद्भुत प्रीतिरस ऋषि-मुनियोंके लिये भी अगोचर है, जिसे प्राप्त करनेके लिये शिव-ब्रह्मादि देवगण भी समुत्सुक रहते हैं, भगवान् नारायणकी वक्षोविलासिनी रमादेवी जिसे प्राप्त करनेको लालायित रहती हैं, स्वयं ब्रह्मविद्या जिसकी प्राप्तिके लिये युगोंतक तपस्या करती हैं, साथ ही जिसे हिन्दू समाजने अपने ही सुधारकों, नेताओंकी अज्ञता, अपने सम्प्रदायाचार्योंकी भोगलिप्सा और साहित्य-शोधकोंकी मनमानी कल्पनाओंसे कामकेलि मान लिया, चीरहरण-जैसे परमोज्वल प्रसंगोंको नग्न स्त्रीदर्शन समझ लिया गया, समाजकी उस घोर भ्रान्तिका समूल उच्छेदनकर उन्होंने ब्रज-प्रीतिके माधुर्यको अनुपमेय सिद्ध कर दिया।

श्रीपोद्दार महाराजके हृदयमें इस परम चिन्मय दिव्य रसका प्रादुर्भाव तो उसी समय हो गया था, जब उन्होंने सर्वप्रथम अपने नजरबन्दी कालमें शिमलापाल (बंगाल)में नारदभक्तिसूत्रकी टीका लिखी थी; किन्तु श्रीमद्भागवतांकके प्रकाशनके पश्चात् तो वे इस भ्रान्ति-निवारणके रसान्दोलनमें पूरी शक्तिसे जूझ

पड़े। इन्हीं दिनों पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा भी श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकालेखनका अपना पूर्वकृत संकल्प पूरा करके श्रीपोद्दार महाराजके पूर्ण शरणापन्न हो गये थे और श्रीराधाजन्माष्टमी महोत्सव भी शिशुरूपमें जन्मग्रहण कर ही चुका था।

मुझे इसे कहनेमें किसी भी प्रकारका कोई संकोच नहीं है कि मेरे पूज्य गुरुदेव श्रीराधाबाबाको 'राधाप्रीतिदान'का श्रीपोद्दार महाराजका संकल्प इसी हेतुसे हुआ था कि वे एक-से-दो होकर शाखा-प्रशाखा रूपमें इस रस-वृक्षका प्रसार कर सकें।

श्रीराधाजन्माष्टमी महोत्सव, श्रीराधाजन्माष्टमी महोत्सवमें प्रतिवर्ष दिये जानेवाले उनके रसतत्त्व रहस्योंको प्रकाशित करने वाले प्रवचन, उनकी विलक्षण रसमयी पद-रचनाएँ, पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाका काष्ठमौन, श्रीपोद्दार महाराजकी उच्चतम सहज भावसमाधि – इन सबको हम यदि इसी महा-महामंगलमयी अन्तर्जगत्की योजनाके रूपमें देखेंगे तभी हमें इसका सही दिग्दर्शन हो पावेगा।

श्रीपोद्दार महाराजके जिस रात्रिकालीन प्रवचनका यहाँ सन्दर्भ है, उस प्रवचनके पूर्व कुछ कालतक पण्डालमें जन-समुदाय द्वारा भगवन्नाम-संकीर्त्तन किया जाता था। रात्रिके प्रथम प्रहरसे ही गोरखपुर विश्वविद्यालयके विद्वान् प्राचार्यगण, नगरके सम्मान्य साहित्यप्रेमी, कवि, लेखक, पत्रकार, उत्तर-पूर्वी रेलवेके वरिष्ठ पदाधिकारी, सम्मान्य नागरिक, गीताप्रेसके पदाधिकारी, सन्त-महात्मा और देशके सुदूर भागोंसे समागत अतिथिगण, अनेक संगीतज्ञ, विशिष्ट प्रवचनकर्त्ता, अनेक कथावाचक, संस्कृत विद्यालयोंके आचार्य और शिक्षक आदि सभी जन-समुदाय एकत्रित होने लगता था। लगभग नौ बजेतक श्रीपोद्दार महाराज पूज्य गुरुदेव श्रीराधाबाबाको साथ लेकर उत्सव-पण्डालमें प्रवेश कर जाते थे। श्रीपोद्दार महाराजका प्रवचन तो लगभग एक-डेढ़ घण्टे ही होता था, प्रवचनके पश्चात् कुछ काल शंका-समाधानमें भी लग जाता था, तत्पश्चात् सम्पूर्ण निशापर्यन्त भिन्न-भिन्न स्थानोंसे समागत कलाकारों, कवियों, गायकों, प्रवचनकर्त्ताओंके द्वारा कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता था। इस प्रकार प्रातःकाल पर्यन्त यह उत्सव चलता रहता था। श्रीपोद्दार महाराज एवं पूज्य गुरुदेव अवश्य ही मध्यरात्रिके लगभग पण्डालसे अपने विश्रामकक्षोंको चले जाते थे।

काम एवं प्रेम

जिस प्रवचनका उल्लेख यहाँ किया गया है उस प्रवचनमें श्रीपोद्दार महाराजने काम एवं प्रेमके मध्यका अन्तर सुस्पष्ट किया था। उनके कथनका सारांश था कि साधारण नायक-नायिकाओंकी तो बात ही नहीं करनी चाहिये, पातिव्रतधर्मकी उच्चतम पूर्णताको प्राप्त हुईं अनुसूयादि पतिव्रता-शिरामणि स्त्रियाँ भी कामना करती हैं कि उन्हें गोपियों एवं राधाका-सा सतीत्व प्राप्त हो जाय। पतिव्रता-शिरामणि स्त्रियाँ चाहे जो भी हों, हम सभीकी परम वन्दनीया हैं, परन्तु ये सभी दाम्पत्यप्रेमकी सर्वोच्च आदर्श ही हैं। दाम्पत्यप्रेम चाहे वह अत्रि-अनुसूयाका हो, चाहे कर्दम-देवहूतिका हो, शिव-सतीका हो, चाहे सीता-राम, लक्ष्मी-नारायण, रुक्मिणी, सत्यभामादि श्रीकृष्ण-पटरानियोंका हो, है वह अहंकारमूलक ही; चाहे अतिशय शुद्ध हो, है काम-प्रेरित ही। दाम्पत्य-प्रेममें स्वार्थका लेश, निज सुखकी कामना रहती ही है। इसीलिये द्वारका-महिषियोंके प्रेमसे गोपांगनाओंके प्रेमकी कोई तुलना नहीं हो सकती। इनमें इतना अन्तर है जितना प्रकाश और अन्धकारमें होता है। गोपांगनाओंका प्रेम विशुद्ध प्रेम है और अन्य महिषियोंका प्रेम, भले ही कितना ही आदर्श त्यागमय हो, है काम ही। काम एवं प्रेमके भेदको श्रीराधामाधवकी कृपासे उनके बिरले प्रेमी ही समझ पाते हैं। जैसे काच और असली हीरेके अन्तरको पहचानना अनुभवी रत्न-व्यापारी, जौहरीका ही काम है, वैसे ही बिरले प्रेमी ही काम तथा प्रेमके अन्तरके पारखी होते हैं।

गोपांगनाओंमें लौकिक दृष्टि, भौतिक अंग-प्रत्यंगोंकी स्मृति, अपने सुख-साधनकी परिकल्पना थी ही नहीं। उनमें कामजगत्‌के सम्बन्ध-लेशकी कल्पना उसी प्रकार नहीं थी जैसे सूर्यके प्रचण्ड प्रकाशमें अन्धकार कल्पित ही नहीं किया जा सकता। जिन लोगोंमें भी इन्द्रियभोगोंमें सुखभावना है, उन्हें गोपियोंके श्रृंगाररसके अनुशीलनका अधिकार ही नहीं है। ब्रजभाव तो वस्तुतः सर्वोच्च भूमिके उन्हीं साधकोंका मार्ग है जिनमें अनिर्वचनीय परम दुर्लभ, विलक्षण दिव्य चिदानन्दमय रस-उपलब्धि करनेकी चाह है। जिनका समस्त विषय-व्यामोह तो सदा-सदाके लिये मिट ही गया है, दुर्लभ-से-दुर्लभ दिव्य देवभोगोंके

आनन्दसे ही नहीं, अपितु परम तथा चरम वाञ्छनीय ब्रह्मानन्दसे भी जिनकी अरुचि हो गयी है, वे ही गोपी एवं राधाकी बात कहने-सुननेके अधिकारी होते हैं। रसराज रसिकशेखर ब्रजेन्द्रनन्दन ही जिनके हृदयमें सर्वस्व होकर बस गये हैं और जिन महाभाग्यवानोंको उन्होंने अपना स्वेच्छा-संचालित लीला-यंत्र बनाकर धन्य कर दिया है, वे ही गोपी एवं राधाभावके साधक होनेकी योग्यता रखते हैं। श्रीकृष्ण-प्रेमकी साधनामें परिपक्व ब्रजरसके साधकोंके हृदयसे सभी भुक्ति-मुक्तिके राग और काम उसी प्रकार जल जाते हैं, जैसे बार-बार अग्निमें डालकर जलानेसे स्वर्णमें मिली हुई सभी दूसरी स्वर्णेतर धातुएँ जल जाती हैं। जब कुन्दनके सदृश वह साधक भुक्ति-मुक्तिकी पिशाची स्पृहासे शून्य हो जाता है, तभी वह श्रीराधा एवं गोपियोंके मात्र प्रियतमसुखमय प्रेमका पथिक होता है।

चीरहरण रहस्य

श्रीपोद्दार महाराजके कथनानुसार उपरोक्त साधक ही कात्यायनी देवीकी साधना करके ब्रजाराध्य श्रीकृष्णको प्राणनाथ रूपमें प्राप्त करना चाहता है। वह साधक देहसे स्त्री ही हो, यह आवश्यक नहीं। उसका भावदेह मात्र ही गोपी होता है। ऐसे सर्वोच्च साधकके ही वस्त्रहरण उसके परमाराध्य श्रीकृष्ण करते हैं। वह साधक(गोपी) विषयोंके आपातरमणीय नरकराज्यसे तो निकल ही चुका होता है; विषय-मोहसे आवृत लौकिक देह और उसके अंगोंकी तो उसमें स्मृति भी नहीं रहती; अतः भगवान्‌की इस वस्त्रापहरण लीलामें उसे दोष दिखनेका तो प्रश्न ही नहीं रहता। उसके सम्मुख तो श्रीकृष्ण – उसके प्रियतम भी छः वर्षके छोटे-से बालक होकर ही प्रकट होते हैं, अतः उसे उनमें भी किसी बुरी नीयतकी कल्पना नहीं होती।

उस साधकको तो भगवान् सर्वत्यागका पाठ सिखानेके लिये ही यह लीला करते हैं। उस उच्च स्थितिप्राप्त साधकमें जड़ देहाध्यास रूप मल तो रहता ही नहीं, अपने प्रेमाराध्य प्रियतमसे एकान्त मिलनकी उसकी तीव्रतम इच्छा उसके विक्षेपको भी पूर्णतया नष्ट कर देती है। बस, उसमें अपने प्रियतमसे बेपर्द, निरावरित होकर मिलनेकी झिझक मात्र ही शेष रहती है। इस झिझकका नाश ही भगवान् चीरहरणलीलामें करते हैं। वस्त्रहरणकी लीलामें

उस सर्वोच्च स्थितिसम्पन्न साधकके बाह्य एवं आभ्यन्तर – दोनों प्रकारके आवरण नष्ट कर देनेका ही विशुद्ध भगवत्संकल्प निहित है। लोक-वेदकी सभी मर्यादाओंकी बेड़ी तोड़ देनेको कटिबद्ध हुए सर्वोच्च साधन-स्थितिसम्पन्न उस भाग्यवान् जीवको भगवान् छः वर्षके पौगण्ड रूपमें भी अपने आनन्द-सौन्दर्य-सुधानिधि चिदानन्द रसमय रूपकी ऐसी झाँकी दिखाते हैं कि वह गोपीभावापन्न साधक सब प्रकारसे बेसुध हो जाता है। उसका यह अध्यास ही समाप्त हो जाता है कि वह रमणीभावरूपमें है तथा उसकी इच्छा अपने प्रियतमको रमण रूपमें प्राप्त करनेकी है। जबतक रमणी एवं रमणका भेद समाप्त नहीं होता, निरावरण मिलन भला कहाँ संभव है ?

श्रीपोद्दार महाराजके कथनानुसार ब्रजलीलामें गोपियोंके भी दो भेद थे। प्रथम राधामुख्या गोपियाँ तो भगवान् श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता ही थीं, वे तो मात्र प्रेमराज्यकी मार्गदर्शिका होकर ही इस लीलामें सम्मिलित हुई थीं। उनका उद्देश्य तो अधिकारी भक्तोंको प्रेमराज्यकी माधुरी चखाना मात्र था। श्रीराधा तो श्रीकृष्णार्धांगसंभूता होनेसे श्रीकृष्ण स्वरूपा ही हैं और नित्यसिद्धा गोपियाँ, श्रीराधाकी ही कायव्यूहरूपा होनेसे उनकी ही प्रकाश-किरणें मात्र हैं। वे तो सभी सच्चिदानन्द भगवद्विग्रह ही हैं। उनमें तो केवल लीला-विलास है। अतः इन राधामुख्या गोपियोंमें कोई बाह्याभ्यंतर आवरण था, यह बात नहीं है। इन गोपियोंमें तो अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे किसी आवरणकी कल्पना करना ही भगवदपराध है। किन्तु प्रेममार्गी उच्च स्थितिसम्पन्न साधकोंके लिये आदर्श मार्गदर्शिका होनेके लिये ही उन्होंने यह लीला की है। इन्होंने प्रेमसाधकोंके सम्मुख यह अपना सर्वोच्च आदर्श ही प्रदर्शित किया है कि प्रेमके प्राकट्यके प्रारंभकालमें ही तन-मनकी सुधि रहना संभव नहीं है। प्रेमके दिव्य प्राकट्यपर अपने प्रेमास्पद एवं प्रेमीके मध्य प्रेममें कलंक रूप कोई भी तन-मनका आवरण, व्यवधान रहे, यह तो होना ही नहीं चाहिये।

श्रीपोद्दार महाराजका स्पष्टीकरण था कि जब लौकिक प्रेममें भी प्रेमी एवं प्रेमास्पदके मध्य किसी आवरणकी गुंजाइश नहीं रहती, फिर अणु-अणुमें व्यापक विभु प्रियतम प्रेमाराध्य श्रीकृष्णके सामने अपना कोई भी अंग छिपाकर कैसे रखा जा सकता है ? प्रेम साम्राज्यके सम्राट, प्रेमतत्वके मूलाधार, दिव्य प्रेमविग्रह और समस्त जीवोंके आत्मारूप श्रीकृष्णके सामने किसी भी प्रेमसाधकका कैसा पर्दा ? छिपने-छिपानेकी क्रिया तो मात्र मोहग्रस्त जीवोंमें

ही अज्ञानवश होती है। भक्तको तो अपने आपेको उन्हींकी वस्तु मानकर उनके सामने खोलकर रख ही देनी चाहिये। जहाँ भक्त होकर भी कोई इस आपेको खोलनेमें किसी भी कारणवश संकोच करे, वहाँ भक्तवत्सल भगवान् यदि स्वयं उसे निरावरित करदें, और अपने एवं उसके मध्यके व्यवधानको पूर्णतया उन्मुक्त करके उसे अपने आनन्दमय रससिन्धुमें डुबानेका उपक्रमकर, उसे पूर्ण रसमय बनानेके उद्देश्यसे बलपूर्वक भी यदि उसका आवरणभंग – वस्त्रापहरण करलें, तो इसमें कोई भी भद्र पुरुष क्या आपत्ति कर सकता है ?

श्रीपोद्दार महाराजकी दृष्टिमें यही चीरहरणलीलाका रहस्य था। परन्तु वे सदा सावधान भी करते जाते थे कि यह चीरहरण लौकिक विषय-वासनासे विमुक्त आप्राकृत प्रेमराज्य ब्रजमें ही संभव है।

रासलीला रहस्य

इसी प्रकार महारासके सम्बन्धमें भी श्रीपोद्दार महाराजका विवेचन था कि सच्चिदानन्दघन परात्पर परब्रह्म भगवान्में ह्लादिनी आनन्द-शक्ति प्रधान है। भगवान्की यही प्रकृति सन्धिनीरूपा होकर उनका बृन्दावनधाम बन जाती है एवं वही उनकी आत्ममाया – योगमाया चिच्छक्ति लीलामहाशक्ति है और अनन्त लीलाविधान करती है। वास्तवमें शक्ति एवं शक्तिमान्में स्वरूपतः कोई भेद संभव ही नहीं है। अप्राकृत दिव्य लीलामें भगवान् स्वयं ही अपने सौन्दर्य-माधुर्यका रसास्वादन करनेके लिये अपनी ही आत्मस्वरूपिणी ह्लादिनीशक्तिसे महाभावरूपिणी श्रीराधाके रूपमें प्रकट होते हैं एवं यह ह्लादिनी ही अपनी कायव्यूहरूपा अनन्त शक्तियोंके माध्यमसे अनन्त लीलाओंमें हेतु होती है। श्रीराधाकृष्ण प्रिया-प्रियतमके प्रेममिलनमें इन अनन्त शक्तिस्वरूपा राधा-सहचरियों–गोपियोंका सहयोग रहता है। भगवान् दिव्य वंशीध्वनिसे शारदीय पूर्णिमाकी रात्रिमें इन्हीं गोपियोंका आह्वान करते हैं। भगवान्में, जो उन सबके पतियोंके भी आत्मा – पति हैं, जारपनेकी कल्पना ही नहीं हो सकती। यद्यपि यहाँ गोपियोंके अपने पति हैं, उनका घर है, गृह-परिजन हैं, परन्तु फिर भी भगवान् श्रीकृष्णको ही वे अपना प्रियतम मानती हैं। इन गोपियोंमें विलक्षणता यही है कि उनमें भगवान् श्रीकृष्णसे अंग-संगकी या इन्द्रिय-सुखकी कोई आकांक्षा नहीं

है। उन्हें अपने घरमें रहते हुए भी अपने पति-पुत्रों, घर-द्वार, लोक-परलोक, पृथ्वी-आकाश – सर्वत्र अपने प्रियतम श्रीकृष्ण ही भरे दिखते हैं। अन्य गोपोंसे उनका विवाह अवश्य होता है, परन्तु विवाहके समय हस्तग्रहण-संस्कार श्रीकृष्णसे ही होता है; श्रीकृष्णसे ही अग्निकी साक्षीमें सात फेरे होते हैं। पतियोंके घरोंमें रहते हुए भी इन गोपियोंको उनके पति कभी संस्पर्श नहीं कर पाते। श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई जन इन गोपियोंकी छायाका भी संस्पर्श नहीं कर सकता । ये गोपियाँ निरन्तर रात-दिवस अपने प्रियतम श्रीकृष्णके ही चिन्तनमें अपना क्षण-क्षण व्यतीत करती हैं। इन गोपियोंमें अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलन करनेकी अत्यंत उत्कट अतृप्त उत्कण्ठा रहती है। इन्हें अपने प्रियतम श्रीकृष्णमें कभी दोष नहीं दिखता। इनमें अपने प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति दोषदृष्टिकी तो गन्ध भी नहीं है। प्रियतम श्रीकृष्ण मेरे हैं, और मैं उनकी हूँ, उनका सब-कुछ मेरा है, और मेरा तो एकमात्र प्रियतमको छोड़कर और कुछ है ही नहीं, इस भावमें ये गोपियाँ निरन्तर आकण्ठ निमग्न रहती हैं। ये गोपियाँ श्रीकृष्णके सुखके अतिरिक्त उनसे स्वयंके लिये कुछ भी नहीं चाहतीं, अतः इनमें परस्पर एक दूसरेके प्रति सौतिया डाह कभी उदय होता ही नहीं। इनका अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे मानसिक अमिलन कभी नहीं होता, पूर्ण भावमिलनका अभाव नहीं होनेपर भी इन गोपियोंको अपने प्रियतमसे क्षणभरका भी अदर्शन असह्य होता है। वे घरके सभी काम करती हैं, परन्तु प्रत्येक काम करते समय भी अपने प्रियतमके चिन्तनका उनका क्रम कभी खण्डित नहीं होता। निर्वात दीपकी तरह उनका चित्त क्षणभरके लिये भी हटाये नहीं हटता। अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी प्रत्येक क्रिया उन्हें सदैव दिव्य प्रेमगुणमयी ही दिखती है। परन्तु अपने प्रियतमके प्रति उनका प्रेमभाव लौकिक विषय-वासनाकी गन्धसे भी सर्वथा विमुक्त रहता है। उनमें न स्व है, न स्वसुखकी लेशगन्ध भी है। अतः इन श्रीकृष्ण-ग्रहीतमानसा गोपियोंको ही उनके प्रियतमके उस अनंगवर्धन वंशी-संगीत रूप आवाहनकी ध्वनि सुनायी पड़ती है, और वे उसे सुनकर, जो जिस अवस्थामें होती हैं, भाग निकलती हैं।

श्रीपोद्दार महाराज अपने प्रवचनमें पुनः स्पष्टीकरण करते हैं कि इन गोपियोंका भाग चलना स्थूल देह द्वारा सर्वथा नहीं होता। उनका स्थूल देह तो वहीं अपने परिवारमें ही रह जाता है, जिसको प्रत्येक गोप-गोपी अपने घरमें सोया हुआ अनुभव करता है, देखता है। श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट उल्लेख है –

मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् ब्रजौकसः।

(१० ।३३ ।३८)

अर्थात् ब्रजवासियोंने रासमें गयी हुईं अपनी पत्नियोंको अपने पास ही देखा।

ये सभी गोपियाँ भावदेहसे अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलने जाती हैं। यह इनका भावदेह स्थूल-सूक्ष्म एवं कारणदेहसे सर्वथा अलौकिक होता है। यह भावदेह प्रकट होता ही है, ब्रजकी प्रीति-सम्पादनार्थ। इसी दिव्य भावदेहको स्वीकारकर गोपियाँ प्रेमोन्मत्त हुईं अपने अभूतपूर्व प्रेमश्रृंगारसे सजी-धजी सच्चिदानन्दघन, योगेश्वरेश्वर, साक्षात् मन्मथ-मन्मथ, आप्तकाम, सत्यकाम, पूर्णकाम, चिदानन्दमय, महा-महामंगलविग्रह, अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँचती हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण इन गोपियोंका प्रेमोन्मत्त श्रृंगार देखकर ही कृतकृत्य, निहाल हो उठते हैं। तत्पश्चात् भगवान् एक ही साथ अनेक रूपोंमें प्रकट होकर इन्हीं भावदेहरूपा चिदानन्दमयी गोपियोंके साथ आत्मारूपसे रासक्रीडा – रमण करते हैं। इस रमणका स्वरूप भी श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेव मुनि वर्णन करते हैं –

रेमे रमेशो ब्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः।।

(१० ।३३ ।१७)

'जैसे बालक दर्पणमें अपने रूपको देखकर उसके साथ स्वच्छन्द खेलता है, उसी प्रकारसे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णने ब्रजसुन्दरियोंके साथ रमण किया।'

रासलीलाके सम्बन्धमें श्रीपोद्दार महाराजकी यही पावनतम दृष्टि थी कि रासलीला चिदानन्दमयी गोपियोंके साथ आत्माराम भगवान्का आत्मरमण मात्र है। उन्होंने कहा कि अवश्य ही कुछ विषयकामी पुरुषोंने इस दिव्य भगवत्प्रेममयी लीलाको लौकिकावेशमें रँगा देखा है और अब भी देख रहे हैं, परन्तु उनके ऐसा करनेसे न तो भगवान्के स्वरूपमें कोई अन्तर पड़ सकता है, न गोपियोंका ही कुछ बिगड़ सकता है।

श्रीपोद्दार महाराज यह कह ही रहे थे कि अचानक विश्वविद्यालयके किसी विद्वान्ने उनसे प्रश्न किया – 'अन्ततः भगवान् श्रीकृष्णको, जो महाज्ञानी थे, इतनी अपवित्र अनुकृति करनेकी आवश्यकता ही क्या थी ? आत्माराम भगवान्ने रासमें गोपियोके कामांगोंका संस्पर्श किया ! क्या इस प्रकारके

आचरणके बिना वे गोपियोंको आत्मरसानुभूति नहीं करा सकते थे ? आत्मरसानुभूति तो भगवान् कपिलने माता देवहूतिको भी करायी थी ?'

श्रीपोद्दार महाराजने उन प्रश्नकर्त्ता महोदयका समाधान जिन शब्दोंमें किया उसको यथास्मृति उल्लिखित कर रहा हूँ। वे कहने लगे – भगवान्के सम्बन्धमें आपने जो कहा कि उन्होंने गोपियोंके कामांगोंका संस्पर्श किया; यह आक्षेप आपने गोपियों एवं श्रीकृष्णके स्वरूपको न समझनेके कारण ही किया है। न तो भगवान् श्रीकृष्ण ही प्राकृत जीव शरीर हैं, और न ही गोपियाँ ही प्राकृत नारियाँ हैं। जब उनमें रज-वीर्यको निर्माण करनेवाला शरीर ही नहीं है, तो कामांगोंके होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। कामांग तो प्राकृत नारीमें ही होने संभव हैं। अप्राकृत शरीरोंके सभी अंग रक्त-मांसादि विकारी नहीं होनेसे सर्वथा विशुद्ध ही होते हैं। यद्यपि आपकी नीयत शुद्ध है, परन्तु श्रीकृष्णतत्वको जाने-समझे बिना ही उनके चरित्रपर आक्षेप करना एवं उसे अपवित्र बता देना ठीक नहीं। आज आपके जैसे और भी हजारों लोग हैं जो सच्चे ह्रदयसे भगवान्के चरित्रको अपनी कल्पनाके अनुसार उज्ज्वलताके साँचोंमें ढला हुआ देखना चाहते हैं। भगवान्को अपनी बाँधी हुई मर्यादामें बाँध रखनेकी उनकी यह माँग सचमुच हास्यास्पद ही है। वे श्रीकृष्ण-चरित्रपर ही दोषारोपण कर रहे हैं, सो बात नहीं, अनेक लोगोंका तार्किक मन मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामपर भी सीता-त्याग, अग्निपरीक्षादि प्रसंगोंको लेकर कीचड़ उछालतेहुए संयम नहीं बरतता। आपको मेरी विनीत रायमें, प्रथमतया भगवान्को सर्वलोकमहेश्वर एवं सर्वलोकविधाता माननेकी सीख ग्रहण करनी चाहिये। भगवान्, जिनके श्वासोंसे विश्वके सब धर्म-ज्ञान, वैराग्य एवं मर्यादाएँ निर्धारित होती हैं, उनकी लीलाओं, चरित्रोंको मायाच्छन्न बुद्धिसे उचित-अनुचित रूपसे रेखांकित नहीं किया जा सकता। भगवान् जगत्के जीवोंके समान मायाबद्ध प्राकृत हाड़-मांस-मल-मूत्रमय विकारी शरीरधारी नहीं हैं।

वस्तुतः भगवान्के लीलातत्वका रहस्य बिना श्रद्धायुक्त भजन- चिन्तनके प्रकट नहीं होता। अतः सर्वप्रथम भगवद्वाणी श्रीमद्भगवद्गीताका अध्ययन करना चाहिये। इस भगवद्वाणीमें वर्णित है कि भगवान्के जन्म-कर्म दिव्य होते हैं और इन्हें जो तत्व-रहस्यके ज्ञानसहित यथार्थ रूपसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।४।६।।

श्रीमद्भगवद्गीता ही समझाती है कि अश्रद्धालुका अध्ययन, मनन, निश्चय, कर्म – सब व्यर्थ ही होता है। अश्रद्धालुओंके तमसाच्छन्न संशयपूर्ण मानसमें जो कल्पनाएँ होती हैं, उन असत् कल्पनाओंको ही वे सत्यका चोला पहनानेकी चेष्टा करते हैं। वे कुछ ग्रन्थोंके उद्धरण भी देने लगते हैं और सन्त, महात्माओं द्वारा अनुभूत सत्यका खण्डन करने लगते हैं।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह ।।१७।२८।।

दैवी सम्पदासम्पन्न सत्यवादी सन्तों, महात्माओं, प्रेमियों तथा आचार्योंकी वाणीपर श्रद्धापूर्वक आस्था स्थापन करनी चाहिये। भगवान् श्रीराधामाधवकी कृपासे ही विश्वास आयेगा कि:

१. श्रीकृष्ण परात्पर ब्रह्म पूर्णपुरुषोत्तम साक्षात् भगवान् हैं। भगवान् किसी भी व्यक्तिका कोई भी अंग स्पर्शकरके अपना तत्व-रहस्य, ज्ञान-प्रेम दें इसमें उनकी पूर्ण स्वतंत्रता है। बालक ध्रुवको उन्होंने कपोलोंसे शंखस्पर्श कराके ज्ञान दिया। अब किसी कुतार्किकको तो समझाया नहीं जा सकता कि कपोल क्यों स्पर्श किये, मस्तकपर हाथ क्यों नहीं रखा ? भक्तराज प्र(ादको भगवान् नृसिंह वात्सल्यसे चाटने लगे थे । इसी प्रकार गोपियाँ जो भगवान्को कान्तभावसे प्रियतमरूपसे चाहती थीं, रासमिलनके समय भगवान्से प्रेमलाभ करती हैं, तो उनमें पापकी कल्पना मलिन बुद्धिका ही लक्षण है।
२. ब्रजकी गोपांगनाएँ श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा शक्तियाँ थीं, और श्रीराधा भगवान्‌की सच्चिदानन्दमयी नित्य अभिन्न नित्य शक्ति हैं।
३. श्रीराधा एवं गोपियाँ न तो प्राकृत नारियाँ हैं, न ही श्रीकृष्ण प्राकृत मल-मूत्रमय विकारी शरीरधारी पुरुष जीव। इनका जन्म गर्भद्वारसे साधारण जरायुज जीवोंकी तरह नहीं हुआ। उनमें रज-वीर्यादि मलिन धातुओंका अस्तित्व ही नहीं है। इनके सम्पूर्ण अंग-अवयव एवं शरीर यद्यपि नर-नारीकी आकृति लिये हैं, परन्तु हैं अप्राकृत तत्वोंसे निर्मित पूर्ण सच्चिदानन्दघन। सभी गोपियोंके मन परम पवित्र काम-गन्ध- लेशशून्य हैं।
४. श्रीकृष्ण, श्रीराधा, श्रीगोपांगनाओंकी लीला अवश्य ही लौकिक शब्दों

द्वारा लोकवत् लिखी गयी है, परन्तु वह सर्वथा अलौकिक, दिव्य, चिन्मयरससे भरी है।

५. भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुखसे कहते हैं –

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।

अजन्मा, अविनाशीस्वरूप और समस्त प्राणियोंके ईश्वर होते हुए भी भगवान् जन्म ग्रहण करते हैं। वे इसके द्वारा अपने विरुद्ध-धर्माश्रयत्व गुणका प्रकाश करते हैं। वे पूर्णतंत्रस्वतंत्र हैं। वे महान् भोगी होकर भी परम योगी हैं; वे रासनृत्यके समय असंख्य गोपियोंके साथ असंख्य रूप धारणकर नृत्य करते हैं। कोई साधारण भोगी पुरुष ऐसा योगवैभव दिखा सकता है ? सोलह हजार पत्नियोंके महलोंमें नारदजीने उन्हें एक ही समय प्रत्येक पत्नीके महलमें समुपस्थित पाया। क्या यह साधारण मनुष्यके लिये संभव है ? अतः उनके अलौकिक तेजस्वी चरित्रोंमें मलिनता कदापि आरोपित नहीं करनी चाहिये।

भगवान् अविभक्त, अखण्ड, सर्वव्यापी हैं, फिर भी अवतारकालमें वे विभक्त, खण्ड, देश-परिच्छिन्न, कालान्तर्गत दिखते हैं। वे अकर्त्ता होकर खाते-पीते, रोते-हँसते, गाय चराते हैं। वे अदृश्य होकर भी नेत्र-परिसीमामें दृश्य बनते हैं। वे सदा निरपेक्ष होकर भी दूध पीनेको मचलते हैं; क्रोध करनेकी, कामना करनेकी लीला करते हैं। अतः उनकी लीलाको आप अपनी इच्छानुसार बाँध नहीं सकते।

यह सदैव ध्यान रखें, भगवान् श्रीकृष्ण *'स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि'* हैं। भगवान् कर्मबन्धनवश पांचभौतिक देह धारण नहीं करते, स्वेच्छासे नित्य सच्चिदानन्दवपु रूपमें प्रकट हैं।

६. श्रीराधा एवं गोपियाँ भगवान्के आनन्दमय स्वरूपका मूर्त्त रूप हैं। वे उनकी स्वरूपाशक्ति हैं। रासलीला भगवान्के आनन्द एवं प्रेमकी अति दिव्य रसमयी लीला है। इसीलिये उसका नाम रास है। जिसमें विशुद्ध रस-ही-रस हो, वह रास है। *'रसो वै सः'* रसस्वरूप सच्चिदानन्दघन परात्पर परब्रह्म परमात्मा ही होता है। अतः जिसमें परमात्मा-ही-परमात्मा हो, आनन्द-ही-आनन्द हो, उसका नाम 'रास' है। महारासमें एक ही

रूपका अनन्त होकर आनन्दोच्छलन है। यहाँ निजेन्द्रियतृप्ति रूप वासना, कामका प्रवेश ही संभव नहीं है। जहाँ वासना है, वहाँ तो प्रेम है ही नहीं ।

यह सत्य है कि रासलीला आदिमें श्रृंगारका खुला वर्णन है और नायक-नायिकाओंकी भाँति चरित्र-चित्रण है, परन्तु इससे परिणाममें निश्चय ही कामनाश होता है। यह लीला निर्विवाद महा-मंगल-सुधा-सिन्धु है।

देखनेमें वह कड़वी तूँबी ही प्रतीत हो तो मात्र आकृति गढ़ लेनेसे मधुर मिश्री कड़वी थोड़े ही हो जाती है। अग्नि स्फुर्ल्लिगोंसे निर्मित यदि कोई विद्युन्मयी नारी-आकृति हो और कोई उससे श्रृंगार भावसे स्पर्श करले तो फलमें तो उसे ज्वाला ही मिलेगी। इसी प्रकार भगवान्‌के द्वारा श्रृंगार भावसे भी गोपियोंको स्पर्श करनेके उपरान्त उनसे प्रवाहित तो हुआ सच्चिदानन्द चिन्मय रस ही; एवं गोपियाँ भी जब सच्चिदानन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णकी ही आनन्द शक्तियाँ थीं, तो जो भी रस-विलासका उच्छलन हुआ, वह उच्छलन था तो महा-महा-आनन्द-रस-सिन्धुका ही। जब भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दकन्दविग्रह हैं, एवं गोपियाँ भी उनकी ही स्वरूपभूता दिव्य सच्चिदानन्दमयी शक्तियाँ हैं, तो वहाँ मलिना माया एवं मायासे उत्पन्न कामकी कल्पना ही कैसे की जा सकती है ?

अतः सबको चाहिये कि भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करनेकी साधनामें अग्रसर होवें; उनके प्रति भगवद्‌भाव, भगवद्‌बुद्धि, श्रद्धा, विश्वास बढ़ावें; और ऐसा न भी कर सकें, नहीं कर पावें तो कम-से-कम उनपर अपने मलिन मायान्धकारसे भरी, घोर तामसयुक्त कुतर्कों एवं कुत्सित वासनाओंको आरोपित करनेका महापाप तो कदापि नहीं करें। भगवत्तत्त्वकी ओर अगर हम कदम नहीं बढ़ा सकें तो अपनी मलिन बुद्धिसे उस परम विशुद्ध सच्चिदानन्द रस- विलासको दूषित करनेकी चेष्टा तो नहीं ही हो।

श्रीपोद्दार महाराजके प्रवचनके मध्यमें ही एक सज्जन पुनः खड़े हो गये। वे कहने लगे — 'भाईजी ! फिर भगवान् श्रीकृष्ण लोकसंग्रहके आदर्श कैसे हो सकते हैं ? लोक तो उनसे अपने लिये जो आदर्श आचार है, उसीकी

अपेक्षा करता है। उन्होंने भले ही सच्चिदानन्द रसप्रवाह ही प्रवाहित किया हो, शुकदेवादि परमोच्च स्थितिके संत भले ही विशुद्ध अनुभूतिमें उस रसका आस्वादन भी कर पाये हों, परन्तु परीक्षितजी जैसे साधारण मुमुक्षु तो उसपर शंका-क्षेपण कर ही बैठे ! फिर हम सब तो इतने घोर विषयी हैं कि परीक्षितजीकी तुलना भी नहीं कर पाते । जब यह भगवल्लीला परीक्षितजीके लिये भी आदर्श नहीं हो पायी तो हम साधारण संसारीजन उसमें अपने लिये आदर्श कैसे ढूँढें ?'

श्रीपोद्दार महाराज कहने लगे – 'हाँ, महोदय ! आपका यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है। इसका उत्तर यही है कि प्रथम तो ब्रजलीलामें यह गोपीलीला अत्यन्त गोपनीय है। इसका प्रकाश तो भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अन्तरंग शक्तियोंको ही होता है। अन्य किसीका इसमें प्रवेश ही नहीं है। यह लीला इतनी गोपनीय है कि नन्द-यशोदादि माता-पिताओं, सखाओं, बूढी-बड़ी गोपियों, गोपों – किसीको भी इस लीलाका ज्ञान नहीं होता है। इन्हें इसका रंचकमात्र अनुमान भी नहीं होता। किसी दास, गोपाल, सखा, सेवक, मातृवर्ग, दादा-दादी, नाना-नानीवर्ग, यहाँ तक कि सखाओंका भी इस लीलामें प्रवेश नहीं है। यह लीला न तो लोकालयमें होती है, न ही लोकसंग्रह इसका उद्देश्य है। यह तो बहुत ऊपर उठे हुए महात्माओंके मात्र अनुभव-राज्यमें होनेवाली अप्राकृत लीला है। इसका बाह्य लोकों एवं लोकसंग्रहसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। जहाँ लोक हो, वहाँ लोकसंग्रह होता है। ब्रजमें इस लीलाको प्रायः कोई नहीं जानते थे। बाहरवालोंकी तो बात ही क्या, जिन गोपोंकी पत्नियाँ रासमें सम्मिलित हुईं, उन्होंने भी अपनी-अपनी पत्नियोंको अपने पास ही सोये पाया था।

मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् ब्रजौकसः।

।।श्रीम 1०1० ।३३ ।३८ ।।

ब्रह्मादि देवतागण भी रासमण्डपके भीतरकी अन्तरंग लीलामें प्रवेश नहीं पा सके। वे सभी देव-देवांगनाएँ बाहरसे ही रासमण्डपको देखकर मुग्ध एवं चकित हो रहे थे। किसी एक कल्पमें भगवान् शंकर एवं अर्जुनको गोपीभावकी प्राप्ति होनेपर ही इस लीलाके दर्शन हुए हैं।

इसी कारण शिशुपालने भगवान्पर सब प्रकारकी गालियोंकी बौछार करते समय भी गोपीलीलाका संकेत कहीं भी नहीं किया है। अगर उसे इसकी किंचित् भी भनक होती तो वह इस विषयको भी अपनी गालियोंमें अवश्य लपेटता।

इसका यह अर्थ भी नहीं समझना चाहिये कि यह लीला हुई ही नहीं थी। महाभारतमें मात्र द्रौपदी ही श्रीकृष्णकी एक ऐसी अन्तरंग भक्त थी, जिसे इस लीलाके रहस्यका कुछ ज्ञान था। इसीलिये उसने अपनी आर्त्त पुकारमें भगवान्‌को 'गोपीजनप्रिय' कहकर पुकारा है। अतएव लोकसंग्रहसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो अन्तरंग साधकोंके मनोराज्यकी बात है, और उनके प्रेमलोक – भावलोकके लिये ही सर्वोच्च पवित्र आदर्श भी है।

पुनः किसीने उठकर प्रश्न किया कि 'श्रीमद्भागवतानुसार तो 'वंशी-ध्वनि' सुनकर गोपियोंमें कामकी वृद्धि हुई है और आप कहते हैं कि गोपियोंमें कामका लेश-गन्ध भी नहीं था । इस विसंगतिमें हेतु क्या है ?'

पू.पोद्दार महाराजने इसके समाधानके लिये उत्तर दिया कि गोपियोंके चित्तमें वंशीध्वनि सुनकर अनंग(प्रेम)की वृद्धि हुई थी; यह सचमुच ही श्रीमद्भागवतमें उल्लिखित है। परन्तु गोपियोंके अनंगको दूषित मलिन काम क्यों मानते हैं ? प्रेम भी तो अनंग ही होता है। गोपियोंका यह काम श्रीकृष्णविषयक तीव्र प्रेम ही था। यह उनका नित्यसिद्ध स्वरूपगत प्रेम था, जो वंशीध्वनि सुनते ही प्रबल हो उठा था और जिसने गोपीजनोंको प्रेममें उन्मत्त – पगली बनाकर श्रीकृष्णकी ओर आकृष्ट कर दिया था। भगवान्‌ने वंशीकी मोहिनी ध्वनिसे आवाहनकर गोपियोंका चित्त चुराकर उन्हें अपने निकट बुलाया। यह प्रेमी भक्तों और उनके प्रियतम भगवान्‌का रस-विलास है। इसमें कामकी गन्ध ही कहाँ है ?

समय पर्याप्त हो चुका था, अतः श्रीपोद्दार महाराजने अपना प्रवचन सम्पन्न किया।

रात्रिमें गायन, वादन एवं काव्यपाठ

श्रीपोद्दार महाराजके सायंकालीन प्रवचनके उपरान्त मध्यनिशामें बारह-साढे बारह बजेतक या तो कलाकारों द्वारा संगीत, सितारवाद्य, मृदंगवाद्यादिका स्वतंत्र गायन-वादन होता अथवा विद्वज्जनों द्वारा श्रीराधातत्वपर प्रवचन या काव्यपाठ आदि होते । मध्यनिशाके उपरान्त ब्रजवासी संकीर्त्तनकार आ जाते और उनके द्वारा रात्रिपर्यन्त जागरण सम्पन्न होता । मध्यरात्रितक इस उत्सवमें श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा भी सम्मिलित रहते, इसके पश्चात्

वे दोनों महापुरुष अपने-अपने साधन-कक्षोंमें पधारकर अपने-अपने हृदय-मन्दिरोंमें सम्पन्न होनेवाली लीला-भावनामें रम जाते थे। सभी समागत अतिथिगण संकीर्त्तनमें झूमते हुए जागरण करते थे।

शहनाई–वादन एवं प्रभातफेरी

दूसरे दिवस ब्राह्ममुहूर्त्तमें जागरण ज्योंही समाप्त होता, सम्पूर्ण वाटिकाक्षेत्र शहनाईवादनके निनादमें डूब जाता । श्रीराधाष्टमी महोत्सवके दिन प्रभातमें जैसे कार्यक्रम होते, उसी रीतिसे दूसरे दिन दधि- कर्दमोत्सवके दिन भी होते। यथासमय प्रभातफेरी षोडशगीत मन्दिरसे चल पड़ती। श्रीराधाबाबाके द्वारा समाधि अवस्थामें प्रकटित छन्द –

'राधिकारमण अम्बुजनयन नन्दनन्दन नाथ हे !
गोपिकाप्राण मन्मथमथन विश्वरञ्जन कृष्ण हे !!'

की सुमधुर संकीर्त्तन-ध्वनिसे समग्र वाटिकाक्षेत्र गुञ्जायमान हो उठता। यह संकीर्त्तन-ध्वनि प्रारंभमें मन्द्र तथा इसके अनन्तर मध्यम एवं तार सप्तकोंको स्पर्श करती हुई इतनी प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करती कि एक बार जिसके कानमें पड़ जाती, उसे संसारावेशसे बलात् बाहर खींचकर रसाविष्ट कर देती थी। रात्रि-जागरणके कारण यद्यपि लोग निद्राभिभूत होते, किन्तु इस रसमोहनी प्रभाती ध्वनिको सुननेके पश्चात् निद्रा जैसी घोर तमोगुणी स्थितिमें वे अपनेको रख ही नहीं पाते थे; प्रातःकृत्योंसे शीघ्र निवृत्त होकर वे अपने-अपने आवासोंसे निकल पड़ते और संकीर्त्तनदलमें सम्मिलित होते जाते । कुछ कालमें ही यह संकीर्त्तनसमूह विराट आकार ग्रहण कर लेता था।

सभीके हृदय भाव-मसृण, सभीके हाथ भावावेशमें ऊपर उठे हुए, सभीके नेत्र रससिक्त एवं सभीकी पलकोंमें भरी – उनके आराध्य राधिकारमण नन्दनन्दनकी पावन प्रेममूर्त्ति, सभी पैर थिरकते, रोम-रोम पुलकित, संकीर्त्तननिरत यह जनप्रवाह वाटिकाकी सभी दर्शनीय तीर्थस्थलियोंकी परिक्रमा करता हुआ पू. गुरुदेवकी कुटियाकी ओर अग्रसर हो जाता । यह संकीर्त्तनध्वनि इतना रसमय होती कि कपिदलतक उपद्रव करना स्थगितकर शान्त, श्रवणनिष्ठ प्रतीत होता था, पक्षीवृन्द भी अपना कलह-कलरव रोककर चुपचाप बैठा, इस

चिन्मयरसमें डूबा हुआ-सा लगता था। ऐसा लगता था मानो वाटिकाका पत्र-पत्र, वृक्ष-वृक्ष, भूमि एवं जड़ भवनतक *'नन्दनन्दन नाथ हे'* की पुकार लगाकर अपने स्वामीका आह्वान कर रहा हो।

इस जनसमुदायको पू.गुरुदेव इस भाँति विनीत, हाथ जोड़े खडे, स्वागत करते मिलते मानो यह समुदाय उनके अनुगत श्रद्धालु जनोंका नहीं है, अपितु स्वयं उनके प्राणाराध्य श्यामसुन्दर ही अनेकानेक प्राकृत मूर्त्तियोंको धारणकर इतने रूपोंमें उनसे मिलने आये हों। वैसे पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा प्रत्येक आगत व्यक्तिसे प्रणति स्वीकार करते जाते थे परन्तु उनकी आन्तरिक दृष्टि तो प्रत्येक व्यक्तिमें अपने प्राणाराध्यका ही साक्षात् दर्शन कर रही होती थी।

श्रीगुरुदेवके चरणोंमें विनयार्पणकर यह समुदाय उसी प्रकार संकीर्त्तन करता हुआ श्रीपोद्दार महाराजके द्वारपर कृपाभिक्षा माँगने पहुँच जाता था एवं उनसे आशीर्वाद पाकर पुनः पू.गुरुदेवकी गिरिराज परिक्रमामें भक्तिमय संगीतमें नहा उठता था। तत्पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजके सत्संगमें साक्षात् रसोर्मियाँ प्रवाहित हो उठती थीं। इस प्रकार षष्ठी महोत्सव (श्रीराधाकुमारीके जन्मके छठे दिन मनाये जानेवाले उत्सव) तक, अनवरत पाँच दिवस पर्यंत यह महाभावगंगा गोरखपुरकी गीतावाटिकामें उत्सवप्रेमीजनोंको आत्मसात् किये रहती थी।

श्रीपोद्दार महाराजका प्रभातकालीन सत्संग

श्रीराधाष्टमी महोत्सव एवं दधिकर्दमोत्सवके दिन श्रीपोद्दार महाराजकी रसमय प्रवचनगंगा भी इस भाँति प्रवाहित होती कि सभी सुननेवाले कृतकृत्य हो उठते थे। जिस उत्सवका इन पंक्तियोंमें विवरण दिया जा रहा है उस उत्सवमें श्रीपोद्दार महाराजके सत्संगके पूर्व श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीने एक भक्तिपद गाया था। श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीका कण्ठ इतना सुरीला, एवं प्रस्तुति इतनी भावमय थी कि उनके पद-गायनको सुनकर ऐसा कोई भावुक व्यक्ति नहीं था, जो भाव-विभोर नहीं हो उठा हो। लेखक उनके निकटमें ही बैठा उनका पद-गायन सुन रहा था। उनके गीतके बोल थे–

निरखि मुखचन्द्र तुम्हारो नाथ !
भयो जनम जीवन मेरो यह सार्थक धन्य सनाथ।।
भये प्रसन्न सकल मेरे ये जुगल नयन सब अंग।
उछलि रह्यौ मन आनन्दाम्बुधि विविध विचित्र तरंग।।
पाँच परान प्रेम-रस भीगे, आत्मा उमड्यौ नेह।
जरत विरह-पावक अति भीषण बरस्यौ अमिरतमेह।।

श्रीगोस्वामीजी नेत्र मूँदे गा रहे थे एवं उनकी भावधारा श्रीपोद्दार महाराजके रूपमें साक्षात् श्रीकृष्णको ही अपने सम्मुख विराजित देखकर उन्हींसे अपना हृदयस्थ प्रेमनिवेदन कर रही थी –

'हे नाथ ! तुम्हारा मुखचन्द्र देखकर मेरा अनादिकालीन जीवन और यह जन्म दोनों ही सफल हो गये। मैं सचमुच ही आपको पाकर सनाथ हो गया। मेरे युगल नयन और सारे अंग प्रसन्न तो हुए ही, साथ ही सफल भी हो गये। मेरे मनमें चिन्मय आनन्दका समुद्र उछलने लगा है और उसमें सात्विक भावोंकी एकके-बाद-एक विचित्र तरंगें उठ रही हैं। मेरे पाँचों प्राण – प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान – प्रेमरसमें भीग उठे हैं और आत्मामें आपका स्नेह उमड़ उठा है। अबतक जो विरह-अग्नि भीषण रूपमें दहक रही थी, वह अमृत-वर्षासे शान्त हो उठी है।'

डारि पियूष-वरषिनी दृष्टी मो तन, मेट्यौ ताप।
भर्‌यौ सुधा-सागर उर-अन्तर सीतल सुखद अमाप।
रहती तुम्हरे ढिंग यह मेरी सुन्दर देह पवित्र।
सोभा सुषमामयी रहत नित, सत्ति-सुरूप, विचित्र।
रहूँ सिवा, सिवदा, सिवबीजा, सिवस्वरूपा नित्य।
बनी रहूँ मैं प्रियतम ! तुम्हरे संग सुमतिमयि सत्य।।

श्रीगोस्वामीजीके पदगायनने विचित्र भावोद्दीपनका कार्य किया था। सम्पूर्ण जन-समुदाय श्रीपोद्दार महाराजके प्रति श्रीगोस्वामीजीकी श्रद्धासे भावोद्वेलित हो उठा था। यह रचना स्वयं श्रीपोद्दार महाराजकी ही थी। उन्होंने श्रीकृष्णके प्रति एक गोपीकी भावदशा वर्णित की थी। परन्तु यहाँ तो श्रीगोस्वामीजी जन-जनके प्रतिनिधि बने, श्रीपोद्दारजीको लक्षितकर अपने भावोंको प्रकट कर रहे थे।

जन-समुदाय जान रहा था कि श्रीगोस्वामीजी हम सभीके प्रतिनिधि बने, हमारी ही बात श्रीपोद्दार महाराजको सुना रहे हैं। श्रीगोस्वामीजी कह रहे थे – 'आपने मुझपर अपनी सुधामृतवर्षिणी दृष्टि डाली कि मेरे तनका सम्पूर्ण

भवताप ही निवृत्त हो गया। मेरे ह्रदयमें परम शीतल, सुखकारी, परिमाणरहित अमृतसागर भर गया। जबतक आप मेरे सम्मुख बने रहते हो, मेरी यह मलिन देह भी आपके सामीप्यसे सुन्दर और अति पवित्र बनी रहती है। वह नित्य सुषमामयी, शोभासम्पन्न एवं विचित्र शक्ति एवं सुरूपतासे युक्त हो उठती है। हे प्रियतम ! मैं तुम्हारे समीप सुमतिमयी, आपाततः सत्य, शिवस्वरूपा, कल्याणदात्री, कल्याणबीजा, शिवा ही बनी रहती हूँ।'

पलक एक तुम्हरे बिछुरत ही होय सकल सुभ नास।
सक्ति, सुमति, सुषमा, सुन्दरता, सुद्धि मधुर-आभास।।
बिनसत सकल तुरत मुर्दा ज्यौं धरनी पर्‌यौ सरीर ।
सिव-विहीन,अति दीन, दुःखमय, दारुन, विकल, अधीर।।
यह सब समुझि प्रानवल्लभ ! अब मति बिछुरौ पल एक।
परम उदार ! निबाहौ प्रियतम ! प्रीति रीतिकी टेक।।

'हे सन्त प्रभो ! मैं एक क्षण भी आपसे वियुक्त हो जाती हूँ, तो मेरा सकल शुभ नष्ट हो जाता है। मेरी सम्पूर्ण सात्विक शक्ति, सुबुद्धि, मेरी शोभा, सुन्दरता, मेरी पवित्रता और मुझमें आभासित सारा माधुर्य ही समाप्त हो जाता है। मेरा सर्वस्व विनष्ट हो जाता है और मेरा शरीर जीवनशून्य धराशायी शवके समान हो जाता है। मैं कल्याणगुणोंसे रहित, अत्यन्त दीन, दुखी, दारुण, विकल एवं अधीर हो उठती हूँ। हे प्राणवल्लभ ! यह सब जानकर अब एक पल भी मुझे मत छोड़िये। हे परम उदार ! अब मुझे निबाहिये। हे प्रियतम ! मेरी प्रीति-रीतिकी टेक निबाहिये ।'

श्रीगोस्वामीजीका पदगायन सुनकर श्रीभाईजीके नेत्रोंसे अनन्त माताओंके वात्सल्य-निर्झरकी भाँति स्नेहविन्दु झरने लगे। लोगोंके आनन्दकी सीमा नहीं रही। श्रीपोद्दार महाराजको सत्संग कराना ही दूभर होगया। वे बोल ही नहीं पा रहे थे। उनकी मुखमुद्राका ढंग ही कुछ और हो गया था। उनकी आँखें खुली थीं, परन्तु सब लोग यह स्पष्ट जान रहे थे कि उनकी आँखें जगत्‌में कुछ देख नहीं पा रही हैं। श्रीपोद्दार महाराज कुछ बोल नहीं पा रहे थे। उन्होंने संकेतसे लेखकको कोई दूसरा पद सुनानेका आदेश दिया। किन्तु लेखक चाहता था कि उसके पूर्वाश्रमके मातुल श्रीगोस्वामीजी ही पुनः दूसरा पद गायें। श्रीगोस्वामीजीके नेत्रोंसे भी अविरल अश्रु-धारा बह रही थी। उनका कण्ठ गदगदा गया था। इस ऊहापोहमें श्रीपोद्दार महाराज संवरित हो गये और

बोलने लगे। उस दिवस श्रीपोद्दार महाराजका प्रवचन अभूतपूर्व हुआ। उनके कथनका सार-संक्षेप था कि प्रेमीका एकान्तिक भाव सर्वेश्वरेश्वर सर्वशक्तिमान् कोटि-कोटि मन्मथ-मथन विश्वमोहन-मोहन भगवान्को भी सम्पूर्ण भगवत्ताका विस्मरण कराके अपने पवित्रतम, मधुरतम, आनन्द-चिन्मय प्रेम-रस-सुधा-पानमें प्रमत्त कर देता है। भक्त और भगवान्, प्रेमी और प्रेमास्पद, श्रीराधारानी और भगवान् श्रीकृष्ण नित्य एक ही परम प्रेमतत्त्वके दो नित्य रूप हैं। उनमें कोई भी भेद नहीं है। श्रीराधारानीका नित्यसिद्ध स्वभाव है कि वे नित्य-निरन्तर अपने प्राणप्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी भावमयी, सर्वात्मसमर्पणमयी, दिव्यतम, परम त्यागमयी आराधनामें लगी रहती हैं।

श्रीश्यामसुन्दरके लिये तो श्रीराधाजी अपनी आत्मा, अपने जीवनकी मूल रक्षानिधि ही हैं। फिर भी प्रेमी-प्रेमास्पदके कैसे भाव-व्यवहार होते हैं – इसका एक आदर्श दिग्दर्शन कराते हुए श्रीश्यामसुन्दर श्रीराधारानीसे कहते हैं। यह कहते हुए श्रीपोद्दार महाराज स्वयं गायन करने लगे। यद्यपि श्रीपोद्दार महाराजके गायनमें राग एवं स्वर नहीं था, परन्तु उनकी चिन्मय भावमयी मिठास उनके शब्द-शब्दसे ऐसे झर रही थी कि उनके उस गायनपर कोटि-कोटि गन्धर्वोंके कलात्मक गायनको न्यौछावर कर दिया जाय। वे अपने निर्मल भावोंको लावणी रागकी अपनी शैलीमें ही स्वर दे रहे थे–

प्रिये तुम्हारी मधुर मनोहर स्मृतिका होता नहीं विराम।
सदा तुम्हारी मूर्त्ति माधुरी रहती मुझमें मिली ललाम।।
मुझे बनानेको अपना अति तुमने किया अनोखा त्याग।
जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तुर्यमें रक्खा मुझमें ही अनुराग।।
नहीं लिया देनेपर भी कुछ जगका सुख-वैभव-सौभाग्य।
दिव्य लोक, कैवल्य-मुक्तिमें भी रक्खा अनुपम वैराग्य।।
फिर उस शुचि वैराग्य विलक्षणमें भी नहीं रखा कुछ राग।
उसकी भी परवाह न की,करके मुझमें विशुद्ध मधु राग।।
नहीं तुम्हारे मनमें भोगासक्ति, नहीं वैराग्यासक्ति।
भोग-त्याग कर सभी त्याग,की मुझमें ही अनन्य अनुरक्ति।।

उस सत्संगमें श्रीपोद्दार महाराजने श्रीराधारानीके दिव्य निर्मल प्रेमभावकी एक विलक्षण अलौकिक झाँकी प्रस्तुत की। गोरखपुर विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके विद्वान् प्राचार्य श्रीगोपीनाथजी तिवारी उस दिवस लेखकके पास ही बैठे थे। श्रीपोद्दार महाराजका अतिशय विद्वत्तापूर्ण प्रवचन सुनकर वे तो

न्यौछावर ही हो रहे थे।

श्रीपोद्दार महाराजके प्रवचनके पश्चात् समागत अतिथियोंके जलपानादिके लिये कार्यक्रममें कुछ कालके लिये विराम रहता था। इस अवधिमें उत्सव-पण्डालमें भाई श्रीराधेश्यामजी बंका द्वारा अल्पनाका निर्माण किया जाता था। यह अल्पना अतिशय भावमयी होती थी।

गीतावाटिका राधावाटिका हो जाती थी

वैसे तो विगत रात्रियोंमें जगकर उत्साही भक्तगण गीतावाटिकाको राधाष्टमीके पूर्व ही सजा दिया करते थे। ललिताषष्ठीके पूर्वसे ही यह सज्जा प्रायः प्रारंभ हो जाती थी, परन्तु राधाष्टमीके दिन तो जैसे ही दूर-सुदूर स्थानोंसे जनसमूह गीतावाटिकामें प्रवेश करता, उसे गीतावाटिका दुल्हनकी तरह सजी – राधावाटिका दृष्टिगोचर होती थी।

स्थान-स्थानपर आम्रपल्लवोंकी बन्दनवारें बाँध दी जातीं। वाटिकाके सभी वृक्षोंके तने शुभ पीले रंगसे रँग दिये जाते । प्रवेशपथके दोनों ओर बन्दनवारें बँधी होतीं । चतुष्पथों एवं पथोंके मिलनस्थलोंपर हल्दी, कुमकुम एवं अबीर-गुलालसे चौक पूरे जाते। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता आदिसे अल्पना मँगायी जातीं और वाटिकावासी युवक अष्टमीकी पूर्व रात्रियोंसे ही जगकर सभी पथोंपर शुभ अल्पनाओंसे कमलदल एवं अनेक प्रकारके उत्सवानुकूल चित्र निर्माण करते । स्थान-स्थानपर रंग-बिरंगे मंगलघट आम्रपल्लवोंसे आच्छादित हुए सजा-सजाकर रखे जाते । अल्पना-सज्जामें भाई राधेश्यामजी बंका एवं उनके सहयोगियोंका उत्साह विशेष रहता था।

इसी प्रकार मुख्य उत्सव पण्डाल-निर्माणका कार्य श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल अथक परिश्रमसे कराया करते थे। इस कार्यमें उन्हें पाँच-सात दिवस अनवरत लगाना पड़ता । इसी तरह पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी चिन्मय अनुभूतियोंके अनुसार इस पंडालको चित्रोंसे सजानेका उत्तरदायित्व अ.सौ.सावित्री बाई(पू. श्रीपोद्दार महाराजकी सुपुत्री) अपने सहयोगी श्रीकुञ्जबिहारी पालड़ीवालके साथ निर्वाह करती। इन सुदुर्लभ चित्रोंको श्रीजगन्नाथजी चित्रकार एवं उनके सहयोगियोंने अनवरत पन्द्रह-पन्द्रह दिवसोंतक पूर्ण परिश्रमकरके मनोयोगपूर्वक

निर्मित किया था। इन चित्रोंका अंकन इतना अभूतपूर्व कौशलसे हुआ था मानो गोलोकधामकी ही साक्षात् चिन्मय छवियाँ चित्रकारोंने अपनी तूलिकासे प्रकट कर दी हों। दर्शकगण इन भावभरे चित्रोंको देख-देखकर मुग्ध हो जाते थे। ये सभी चित्रकारगण वस्तुतः अतिशय वन्दनीय हैं जिन्होंने पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी चिन्मय भावराज्यकी छवियोंको प्राकृत चित्रोंमें उतारनेकी सफल चेष्टा की थी। श्री बी.के.मित्राजीने प्रसूतिगृहमें लेटी श्रीकीर्त्तिदा मैयाका मुखचित्र पू.गुरुदेवकी भावनाके हूबहू अनुरूप अंकन किया था। इसी प्रकार उन्होंने पू. गुरुदेवकी आराध्या श्रीराधारानी, श्रीललिताजी एवं श्रीमंजुश्यामाजी (श्रीराधारानीकी छोटी बहिन)की मुखछवि भी पू.गुरुदेवके द्वारा दिये गये संकेतोंसे अपने मनको एकात्मकरके यथासाध्य ठीक उनके मनोनुकूल बनानेकी चेष्टा की थी।

पण्डालके द्वारदेशमें बनी गोपों एवं दधिकी मटकी सिरपर धारण किये गोपियोंकी छवियाँ भी इतनी सजीव चित्रित की गयी थीं कि ठीक ऐसा अनुभव होता था मानो दिव्य गोलोकधाम ही इस गीतावाटिकामें इसे राधावाटिकाकी संज्ञा देने उतर आया है। अनवरत चौबीसों घण्टे ब्रजभावके संकीर्त्तनकी ध्वनि, ध्वनिविस्तार यंत्रोंसे गूँजती राधे-राधेकी नामध्वनि, पीतवस्त्रोंसे बनी बगलबन्दियाँ पहने ब्रजवासियोंकी-सी वेषभूषा धारण किये बालकोंकी केलिक्रीड़ा वातावरणको ऐसे विशुद्ध सत्त्वमय रंगमें रँग देती थी कि समागत प्राणी अपनेको गोलोकधाममें ही पहुँचा अनुभव करता था।

यह सब होता था इसीलिये क्योंकि श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दोनोंकी ही ऐसी चाह थी कि श्रीराधाष्टमी- महोत्सव साधनामय रीति और सात्विकता सहित इस प्रकार मनाया जावे ताकि भावग्राही साधकोंका सच्चा मार्गदर्शन हो सके तथा वे रसमय साधनामें आपाततः, नखशिख डूब जावें।

राधाष्टमीकी ऐतिहासिक परम्परा

सातवाँ अध्याय

श्रीराधाष्टमीका यह उत्सव बहुत ही सामान्यरूपसे पू.गुरुदेवकी व्यक्तिगत साधनाके एक अंगरूपमें मनाया जाना प्रारम्भ हुआ था।

सन् १९४०ई. में प्रथम वर्षकी श्रीराधाष्टमीके दिन पू.गुरुदेव दिल्लीमें श्रीमथुरानाथजी (एक वैष्णव सद्गृहस्थ)के घरपर ठहरे थे। श्रीपोद्दार महाराज दिल्ली आये थे, और उन्होने पू.गुरुदेवको इन्हीं गृहस्थके घर ठहरा दिया था। भिक्षाकी व्यवस्था करते समय श्रीमथुरानाथजीकी धर्मपत्नीने पू.गुरुदेवसे पुछवाया कि "आज राधा-जन्माष्टमी है, आप फलाहार लेंगे या अन्नाहार ?" इसी पवित्र क्षणमें उस गृहस्थके द्वारा दी हुई इस सूचनापर उदय हुए एक पावनतम संकल्पसे पू.गुरुदेवने श्रीमथुरानाथजीकी पत्नीसे मात्र ब्रजरज एवं दो तुलसीदलोंकी माँग की एवं फलाहार करनेका ही निर्णय किया। पू.गुरुदेवने उस दिन श्रीराधारानीका मानसिक पूजन सम्पन्न किया; ब्रजरज एवं तुलसीदलोंका भोग लगाकर प्रसाद रूपसे उसे स्वयं भी ग्रहण किया तथा उस ग्रहस्थको भी दिया एवं शाकाहारी भिक्षा कर ली। उनके द्वारा यह प्रथम राधाष्टमी-उत्सवका आयोजन था। इसी क्षण पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके मनमें अघटितघटनापटीयसी भगवती योगमायाकी ही कृपापूर्ण प्रेरणासे यह संकल्प उदय हुआ कि महाभावरूपा भगवती श्रीराधाका जन्माष्टमी-महामहोत्सव किसी साम्प्रदायिक निष्ठाके अनुसरणके रूपमें नहीं, वरं विशुद्ध श्रुति-स्मृतिपुराणोक्त शैलीसे भगवत्प्रीतिकी प्राप्तिके सामूहिक साधना-पर्वके रूपमें आयोजित किया जाय।

सन् १९४१ ई. तदनुसार वि.सं. १९९८में भाद्रपद शुक्ला अष्टमीके दिन पू.गुरुदेव रतनगढ़में ही थे। पू.गुरुदेवके लिये श्रीमोतीजी अपनी गायके दूधका शुद्ध मावा बनाकर भोगके लिये दो पेड़े अपने घरसे ले आये। श्रीमोतीजीने अपनी ही प्रेरणासे मावेमें केसर डालकर केसरिया पेड़े बना दिये *थे और उनपर पिश्ताचूर्ण जड़ दिया था। पेड़ोंपर आलूके संचेसे 'राधा राधा'* नाम भी अंकित कर दिया गया था। पू.गुरुदेवने इनका भोग लगाकर ठीक

मध्याह्नके समय पूजा सम्पन्न की। प्राकृत धरातलपर इस वर्ष पूजाका यही क्रम रहा।

इसी वर्ष श्रीपोद्दार महाराजके रूपमें पू. गुरुदेवको साक्षात् श्रीराधारानीके दर्शन हुए। इसका विस्तृत विवरण 'महाभावदिनमणि श्रीराधाबाबा' (प्रथम खण्ड) पुस्तकके पृष्ठ ३४०में 'राधाष्टमी उत्सव' नामक शीर्षक अध्यायमें दिया गया है। पू.गुरुदेव इस दिवस प्रथम बार श्रीराधारानीका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर कृतार्थ हुए। उन्हें इसी वर्ष चिन्मय लीलाजगत्में मनाये जानेवाले श्रीराधाष्टमी महोत्सवके भी दर्शन हुए।

इसके पश्चात् सं. १९९९ तथा २००० में दो वर्षोंतक राधाष्टमीका यह उत्सव रतनगढ़में ही मनाया गया। पू.दादीजी(श्रीपोद्दार महाराजकी माताजी) इन दिनों षोडश मंत्रसे प्रतिदिन एक लाख नामजप किया करती थीं। गिनतीके लिये वे प्रतिमंत्र एक गेहूँका दाना रख लेती थीं। वर्षभर जपकी गिनतीके लिये निकाले गये इन्हीं गेहूँके दानोंको उन्होंने स्वयं अपने हाथों पीसकर आटा बनाया था। इसी आटेको शुद्ध गोघृतमें सेंककर इस वर्ष प्रसादका हलुआ बनाया गया था। पू. श्रीपोद्दार महाराजने पू.गुरुदेवके अनुरोधसे स्वयं इस नैवेद्यको श्रीराधारानीको अर्पण किया। भक्तोंको इस प्रसादमें विशेष अलौकिक स्वादका अनुभव हुआ था।

अगले वर्ष सं. २००० में भी रतनगढ़में आटेका हलुआका प्रसाद बनाया गया और श्रीपोद्दार महाराजने बड़े उत्साहसे उसे श्रीराधारानीको अर्पित किया। इस उत्सवमें ब्राह्मणों द्वारा श्रीमद्भागवत एवं अन्य कतिपय चुने हुए स्तोत्रोंका पाठ किया गया। जिस स्थानपर पाठ एवं पूजा सम्पन्न हुई, वहीं सायंकालमें श्रीराधानाम-संकीर्त्तनका आयोजन किया गया। इस संकीर्त्तनमें पू. गुरुदेवके साथ मात्र दो अन्य व्यक्ति ही सम्मिलित थे। कुल तीन व्यक्तियोंने ही यह संकीर्त्तन किया था। इसमें सम्मिलित एक – श्रीमोतीजी पारीकको संकीर्त्तनके समय भावावेश हो गया और वे बड़ी देरतक भाव-विभोर हुए नाचते रहे थे।

पाँचवे वर्ष सं-२००१में श्रीपोद्दार महाराज रतनगढ़से गोरखपुर लौट आये। इस वर्ष गीतावाटिकामें ही यह उत्सव खूब धूमधामसे मनाया गया। श्रावणमाससे ही श्रीपोद्दार महाराजकी कोठीमें झूलन-उत्सवका आयोजन किया गया था और गीतावाटिकाकी कोठीके नीचे मध्यके बड़े हालमें श्रीयमुनाजी एवं

झूलेकी झाँकी निर्मित हुई। यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है कि लेखक द्वितीय वर्षके उत्सवसे ही प्रायः इन आयोजनोंमें सम्मिलित होता रहा। इस पाँचवे वर्ष पूरे श्रावण मास रात्रिको बहुत ही सुन्दर नाम-संकीर्त्तन होता था और लेखक उसमें ढोलक बजाया करता था। पू.गुरुदेव लेखकसे सायंकालमें पद-गायन भी सुना करते थे।

श्रावण माससे राधा-जन्माष्टमीतक खूब उत्साहपूर्वक उत्सव चलता रहा। इस वर्ष माता कीर्त्तिदाके, श्रीराधारानीके, उनकी छोटी बहिन मंजुश्यामा(अनंगमञ्जरी)के तथा सखी श्रीललितारानीके परम भावपूर्ण एवं चिन्मय छायाग्राही चित्र बनाये गये, जो पू. पोद्दार महाराजके घरमें अबतक विराजित हैं। इन चित्रोंसे ही प्रत्येक वर्ष श्रीराधा-जन्म-महोत्सवकी प्रसूतिगृहकी झाँकी सजायी जाती है। प्रसूतिगृहकी झाँकी सजाकर पूजा इसी वर्ष प्रारंभ हुई जो बावन वर्षोंसे निरन्तर अबतक इस उत्सवके अवसरपर होती है। इस वर्ष पूजाके समय पूजा करने वालोंके पहननेके लिये हथकरघेकी धोतियाँ पहलेसे मँगा ली गयीं थीं तथा पूर्व रात्रिमें ही उन्हें धोकर अस्पर्शित स्वच्छ सुखा दी गई थीं, जिन्हें दूसरे दिवस सचैल स्नानकर पूजामें सम्मिलित स्त्री-पुरुषोंने पहनी। इस वर्ष श्रीपोद्दार महाराजने स्वयं अपने हाथों आरती-पूजा की एवं अपने हाथों ही श्रीराधारानीको भोग लगाया। इस उत्सवमें ऐसा आनन्द आया कि लोग स्वयंको कृतकृत्य अनुभव करने लगे।

चौथे वर्षके रतनगढ़के श्रीराधाष्टमी महोत्सवसे ही राधा-नामके उद्दाम-नाम-संकीर्त्तनकी ऐसी परम्परा पड़ गयी जो इस वर्ष भी निभायी गयी। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके सान्निध्यमें इस वर्ष गीताप्रेसके श्रीरघुवरदयालजी एवं श्रीमुरलीधरजी दोनोंने मिलकर *'जय हरि गोविन्द राधे गोविन्द'*का संकीर्त्तन प्रारंभ कराया और यह उद्दाम रूप धारणकर लगभग दो-ढाई घण्टेतक चलता रहा। इस वर्ष श्रीराधारानीका चरणोदक जो स्वयं श्रीपोद्दार महाराजके द्वारा पूजन करनेके उपरान्त वितरित किया गया था, लोगोंने छोटी शीशियोंमें पैक करके गोरखपुरसे बाहर अपने सगे-सम्बन्धियोंको भेजा। इस चरणोदकका बड़ा ही चमत्कारिक प्रभाव प्रकट हुआ। कई भावुकजन यह चरणोदक श्रीबृन्दावन-धाम ले गये और वहाँ साम्प्रदायिक वैष्णवगणने भी इसे सादर ग्रहण किया।

श्रीमोहनलालजी आदि भक्तोंनें इस चरणोदकको अपने किसी मरणोन्मुख सत्संगी मित्रके मुखमें डाल दिया। इसका ऐसा प्रभाव प्रकट हुआ कि

मरणोन्मुख वह प्राणी दिव्योन्मादमें लीलाराज्यकी अपनी अनुभूतियाँ बखान करता हुआ मरा। इस आँखों देखी घटनाको किसी भावुकजनने ऋषिकेशमें सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्संगमें भी अपने ही दृष्टिकोणसे व्यक्त कर दी। वस्तुतः यह चमत्कार कोई श्रीपोद्दार महाराजकी क्रिया तो थी नहीं। यह तो भगवन्नाम-संकीर्त्तन और श्रीराधारानीके सात्विक पूजनका वस्तुगुण था; यह कब, कहाँ, किसे आप्यायित कर दे इसपर किसीका वश तो था ही नहीं। हाँ, उस सत्संगी भाई द्वारा उस चमत्कारको जिस ढंगसे प्रचारित किया गया एवं लोगोंने जिस प्रकार उसे श्रीसेठजीके सम्मुख व्यक्त किया, उससे श्रीसेठजीने श्रीपोद्दार महाराजको एक उपालंभभरा पत्र भेज दिया। श्रीपोद्दार महाराजने वह पत्र पू.गुरुदेवको सुनाया। वस्तुतः यह प्रसंग बिना किसी हेतुके ही विवादका कारण बन गया, जो सबके लिये अप्रिय हो गया।

इस वर्ष रासपूर्णिमाका महोत्सव भी खूब उत्साहसे मनाया गया, एवं चित्रकारोंसे रासनृत्यके तीन चित्र निर्माण कराये गये। इन चित्रोंमेंसे एक तो पू.गुरुदेव द्वारा श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको दिया गया था जो यावज्जीवन उनके पास उनकी पूजामें रहा। यह चित्र आजकल बाई विमलाके पास गोरखपुरमें है। एक चित्र पू.गुरुदेवसे श्रीसुखदेव बाबू माँगकर ले गये थे एवं यह चित्र अब उनकी मृत्युके पश्चात् गीताप्रेसके पुस्तक विभागमें विजड़ित है। तीसरा चित्र श्रीरघुवरदयालजीको पू.गुरुदेवने दिया था; यह चित्र कहाँ है – यह बात भी संभवतः बाई विमलाकी जानकारीमें ही होनी चाहिये।

छठे वर्ष श्रीसेठजी गोयन्दकाजीकी अरुचि देखकर यह उत्सव गीतावाटिकाके बाहर श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेयके निवासस्थानमें मनाया गया। इस उत्सवमें पाँचवे वर्षके उत्सवके लिये पूर्वमें बनी श्रीकीर्त्तिदा मैया, राधारानी एवं ललिताजीके चित्रोंकी हू-ब-हू अनुकृतियाँ बनवायी गयीं एवं उन अनुकृतियोंको ही विराजितकर भावसहित उनकी पूजा की गयी। गीताप्रेसके चित्रकार श्री बी.के.मित्राजीने ये अनुकृतियाँ भी ऐसे मनोयोगसे बनायीं कि सर्वसाधारण तो यह पहचान ही नहीं पाता कि ये मूलचित्र न होकर अनुकृतियाँ हैं। इस वर्षकी झाँकी एवं संकीर्त्तन दोनों ही अभूतपूर्व रहे। संकीर्त्तन तो उद्दामगतिसे अनवरत दो-ढाई घण्टेतक चलता रहा।

सातवें वर्षका उत्सव पुनः गीतावाटिकामें ही मनाया गया एवं यह उत्सव भी अभूतपूर्व ही रहा। इस उत्सवको इस वर्ष बगीचेके हालमें ही मनाया गया

और गोलोक, गिरिराज, यमुना एवं बृन्दावन आदिकी झाँकियोंका निर्माण हालके पार्श्वके दक्षिणी कमरेमें किया गया। इस वर्षसे श्रीराधाजन्मोत्सवके दूसरे दिवसका दधिकाँदौ उत्सव भी मनाया जाने लगा। आठवें वर्षसे चौदहवें वर्षतक यह उत्सव इसी प्रकार प्रतिवर्ष नये-नये बढ़े उत्साहको प्रदर्शित करता हुआ गोरखपुरमें ही सम्पन्न होता रहा। चौदहवें वर्ष राधाष्टमीके दिन एक नाटक भी अभिनीत किया गया था। इसमें गोस्वामीजी श्रीचिम्मनलालजी, श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव, श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी, श्रीरामनिवासजी ढंढारिया आदि अनेक महानुभावोंने भाग लिया।

अबतक इस उत्सवके आनन्द एवं महत्वका समाचार देशके कोने-कोनेमें फैल गया था। श्रीपोद्दार महाराजके प्रति विशेष लगाव रखनेवाले लोग अति दूरस्थ स्थानों – राजस्थान, गुजरात, बम्बई, हैदराबाद, कलकत्ता, बिहार आदिसे भी इसमें सम्मिलित होनेके लिये गोरखपुर आने लगे थे। श्रीराधाजन्म-महोत्सवके दूसरे दिवस का दधिकर्दमोत्सव सातवें वर्षकी राधाष्टमीसे मनाया जाने लगा था। श्रीराधाष्टमीको रात्रिजागरण भी सामूहिक रूपसे किया जाने लगा था। कलकत्ताके भाई श्रीरामनिवासजी ढंढारियाका उत्साह इस उत्सवमें अभूतपूर्व ही रहता था। वे खुले मनसे सिरपर पीला केसरिया साफा बाँधकर एवं कमरमें फेंट कसकर पूरे उत्साहसे दधि-हरिद्रा-गुलाबजल आदिका सम्मिश्रण उछाला करते थे।

इसी प्रकार सन् १९४५ ई.से ही, जबसे श्रीपोद्दार महाराज रतनगढसे गोरखपुर लौट आये थे, श्रीबजरंगलालजी बजाज अपनी कार्यस्थली जबलपुर (मध्यप्रदेश) से गोरखपुर आकर ढाढीके पद गाकर राधाजन्ममहोत्सवके दिन तथा दधिकर्दमोत्सवपर श्रीपोद्दार महाराज, उनकी धर्मपत्नी अ.सौ. रामदेईमाता एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबासे बधाई माँगा करते थे। इनके साथ ही साहबगंज मोहल्लेके एक-दो परिवार – जालान एवं बाजोरिया परिवारके युवक भी अ. सौ. माताजीसे बधाई माँगा करते थे। श्रीबजरंगलालजी बजाज पूर्वतः गीताप्रेसमें ही कार्य करते थे। बादमें व्यवसायकार्यसे जबलपुर रहने लगे थे। इनका श्रीपोद्दार महाराजसे घनिष्ठ सखाभाव था। श्रीपोद्दार महाराज जब कभी अतिशय गंभीर रहा करते थे, तब उनको प्रफुल्लित कर देनेकी चेष्टा ये किसी-न-किसी तरह सम्पन्न कर ही लेते थे।

सन् १९४५ ई.से ही लोगोंके द्वारा कान भरे जानेसे श्रीसेठजी

जयदयालजी गोयन्दकाका राधाष्टमी महोत्सवके प्रति अनुकूल रुख नहीं था। श्रीसेठजीके कतिपय पत्रोंसे प्रकट इस प्रतिकूल एवं उपरामताभरे रुखकी भनक श्रीपोद्दार महाराजके कानोंमें यदाकदा पहुँचती रहती थी। श्रीसेठजीके ऐसे पत्रोंके आनेसे श्रीपोद्दार महाराज बहुत गंभीर हो उठते थे। वे इस उत्सवके प्रति अपने स्वजनों, पारिवारिक जनों, साथ ही पू.गुरुदेवका उत्साह तो कम करना नहीं चाहते थे, परन्तु श्रीसेठजीके प्रति अपने भावके कारण यदाकदा अति गंभीर होकर इस उत्सवमें अपना व्यक्तिगत सहयोग देना बन्द कर देते थे। वे यह बहाना करके कि प्रेसको सामग्री देनी है, कामका आधिक्य है, यह जताकर उत्सवमें सम्मिलित होनेसे मना कर देते थे। ऐसे अवसरोंपर उनकी गंभीर मुद्रासे भीतरी कारण जानकर, फिर उसका समाधान करानेका दायित्व लेकर श्रीपोद्दार महाराजको उत्सवके आमोद-प्रमोदके बीच लाना श्रीबजरंगलालजी-जैसे व्यक्तिका ही काम था। श्रीसेठजीके मन-मानसमें भी झूठे भ्रमवश पैदा हुई राधाष्टमी-महोत्सवके प्रति असद्‌भावनाको दूर करनेकी चेष्टा भी वे उनसे मिलनेपर करते ही रहते थे। इस प्रकार श्रीबजरंगलालजी बजाज इसमें नियमित रूपसे सम्मिलित होकर इस उत्सवकी एक अत्यावश्यक कड़ी बन गये थे। दधिकर्दमोत्सवपर ढाढी बनकर बधाई पानेका सौभाग्य तो ये महानुभाव प्राप्त करते ही थे।

प्रारम्भिक वर्षोंमें तो दधिकर्दमोत्सवके दिन उद्दाम नाम-संकीर्त्तनमें सम्मिलित होनेवाले लोगोंके मस्तकोंपर दधि एवं हरिद्राका तिलक मात्र ही कर दिया जाता था, किन्तु बादमें तो दधिकीचके निर्माणमें सेरों केसर, गुलाबजल, इत्र, कपूर भी मिलाया जाने लगा तथा इससे उत्सवमें सम्मिलित जनोंको सराबोर किया जाने लगा। लोग बड़े ही आदर एवं ललकपूर्वक राधाजन्मके आनन्दानुभवमें अपनेको सम्मिलित करनेके भावसे अपने आत्मीय स्वजनोंको इस पवित्रतम रसपंकमें सिक्त करते तथा उनके द्वारा स्वयं भी सिक्त होकर धन्य अनुभव करते। उत्सवमें सम्मिलित जन-जनको इस पवित्रतम सुगन्धित शुभजलसे वस्त्रोंसहित पूरा ही भिगो दिया जाता था। अनेकों भावुक भक्त तो संकीर्त्तनके रसमें सुधबुध ही खो देते; छोटे-बड़ेका, ऊँच-नीचका, धनी-दरिद्रका, शिक्षित-अशिक्षितका सारा भेदभाव भुलाकर लोग इस रसकीचमें लोटने लगते थे।

अवश्य ही स्त्री-पुरुषकी मर्यादाका अति कठोरतापूर्वक ध्यान रखा जाता था। पण्डालके जिस भागमें स्त्रियाँ बैठा करती थीं, उस ओर ये छींटे

सर्वथा ही नहीं डाले जावें – इसकी सावधानी रखी जाती थी। हाँ कुछ भावुक स्त्रियाँ उत्सवके सम्पन्न हो जानेपर धरतीपर फैली इस पवित्रतम कीचको अपने मस्तकोंपर तिलक रूपमें लगाकर अपनेको अवश्य धन्य बना लेती थीं।

यह तो सर्वस्पष्ट ही था कि यह रसकीच वस्तुतः ही इतनी पवित्र थी और इसमें सिक्त होकर ऐसी विशुद्ध सात्विक शीतलता प्राप्त होती थी, जो स्वसंवेद्य ही थी। इसमें नहाये लोगोंको ऐसा अनुभव होता था मानो अब हमारी युगों-युगोंकी सम्पूर्ण अशान्ति, जलन, काम-कलुषता नष्ट हो गयी है। इस दधिकर्दमोत्सवके कारण पू.पोद्दार महाराजके निवासका हाल दधिकीचसे भरा एक पोखर सरीखा बन जाता था, जिसमें तैरते-से लोग इधर-उधर सब ओर राधे-राधेका उद्धोष करते घूमते दिखते थे। सभीके वस्त्र – उनकी पहनी धोतियाँ, कुर्ते एवं बनियान दधि-घृतसे भीगे, चिकने हुए, फूलसे जाते थे। लोग श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.श्रीराधाबाबाको भी इस परम पावन पंकमें मग्न कर ही देते थे। उनपर भी घडों दधिमिश्रित जल उँडेल दिया जाता था। इस उत्सवमें श्रीपोद्दार महाराजकी प्रसन्नता एवं पू गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी कृतकृत्यता देखते ही बनती थी। मक्खनकी मटकियोंसे मक्खनके लौंदे निकाल-निकालकर स्वयं श्रीपोद्दार महाराज अपने हाथों उत्सवमें नाचते भक्तजनोंपर फैंकते थे और लोग अपना सौभाग्य मानकर उस मक्खनको अपने मस्तक एवं हृदयमें चुपड़ लेते थे। इसी प्रकार अपने हाथमें काँसेका घंट एवं टकोरा लिये संकीर्त्तनमें मत्त पू.गुरुदेवको भी भक्तजन दधिकर्दमसे सराबोर कर देते थे। दीवानेसे हुए लोग अपने उच्चतम कण्ठस्वरसे राधे-राधे उच्चारण करते। बस, इसी राधा-नामध्वनिको ही अपने प्राणों और रोम-रोम, अणु-अणुमें भरते सैकड़ों भक्त लोग इस दधि-हल्दीके प्रवाहमें लथपथ हुए घण्टों नाचते रहते थे। न किसीको तनका होश रहता था, न ही कालका।

इस उत्सवमें प्रेम, त्याग एवं समर्पणके भावोंकी ऐसी त्रिवेणी बहती थी, जिसे जिन्होंने अनुभव किया है, वे ही जानते हैं। इन राधा-जन्म-महोत्सव एवं दधिकर्दमोत्सव – इन दो दिनोंमें कौन ऐसा था जिसे घर-द्वार, व्यापार-दुकान, रोग-शोककी चिन्ता होती ?

पन्द्रहवें वर्षके उत्सवसे पू. श्रीपोद्दार महाराजके द्वारा प्रवचनोंमें श्रीराधारानीके स्वरूपतत्व, प्रेमतत्वपर अतिशय सुन्दर व्याख्या की जाती तथा इन प्रवचनोंको लिपिबद्धकरके 'कल्याण' मासिकपत्रमें प्रकाशित किया जाने लगा।

सोलहवें वर्षका यह राधा-जन्ममहोत्सव पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा अतिशय समुल्लासपूर्वक मनाया जानेवाला अन्तिम उत्सव था। इसी वर्षकी अगली रासपूर्णिमापर वे जीवनव्यापी काष्ठमौन लेनेवाले थे। अतः इस उत्सवमें सम्मिलित होनेवाले सभी बन्धुओंका हृदय विरह-वेदनासे व्यथित था। इस वर्ष सैकड़ों ही लोग परिवारसहित पू.गुरुदेवसे अपना यह अन्तिम मिलन मानकर, भौतिक दृष्टिसे अनेक कठिनाइयोंका अनुभव करते हुए भी आये थे।

सोलहवें वर्षकी राधाष्टमीके पूर्व पू.गुरुदेवने ब्रजभावके पचपन पद छाँटे थे एवं उन्हें इस श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीने बंदिश सहित गाकर टेपरिकार्ड करवाया था। पू.गुरुदेवने इन पदोंका संकलन इस उद्देश्यसे किया था ताकि इसका पाठ मात्र करनेवाले साधकके चित्तमें श्रीराधामाधवकी अष्टयाम लीला प्रकट हो जाये। ये पचपन पद पू.गुरुदेवकी दृष्टिमें महासिद्ध रसांकुर हैं, जो किसीके भाव-ऊसर चित्तमें भी भावोन्मेष करानेमें समर्थ हैं। पू. गुरुदेवने ब्रजभावके सभी साधकोंको आदेश दिया था कि जो भी रस-साधक इन पदोंका आश्रय लेगा, उसमें भावराज्यका उदय स्वतः हो उठेगा।

आश्चर्य था कि इस वर्ष राधाष्टमी-उत्सवमें श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीकी प्रेरणासे महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी प्रवर्तित पुष्टिमार्ग सम्प्रदायके प्रथम पीठाधीश्वर पू.श्रीरणछोडाचार्यजी महाराज भी गोरखपुर पधारे थे। उनके साथ उनकी भगवत्सेवा भी पधारी थी। महाराजश्रीके साथ भारतके विख्यात मृदंगवादक काशीनिवासी श्रीजीवनजी मुखिया भी आये थे। इस उत्सवमें उनका एकल मृदंगवादन भी हुआ था। राधाजन्माष्टमीके निशाजागरणमें महाराजश्रीने स्वयं अपने मधुर कण्ठसे एक बहुत ही पवित्र पद गायन किया। इस पद गायनके बोल थे– *'तुम हो प्रभो ! चाँद मैं हूँ चकोरा। तुम हो कमल फूल मैं रसिक भौंरा'।* महाराजश्रीका कण्ठस्वर इतना मधुर एवं गायन शैली ऐसी शास्त्रीय थी कि सारा वातावरण भक्तिमय हो उठा। पू. गुरुदेवने पू. श्रीरणछोडाचार्यजीकी गायी हुई पंक्तिकी अपने मधुरतम कण्ठसे अनुकृति करते हुए उन्हें बदलेमें यों गाकर सुनाया था *'मैं हूँ कमल फूल, तुम रसिक भौंरा।'* पू. गुरुदेवकी इस अनुकृतिकी सारगर्भितापर सभी भक्तगण मुग्ध हो उठे थे तथा महाराजश्री भी उनके इस अर्थ-माधुर्यपर वाह-वाह कर उठे थे।

गीतावाटिकामें इस उत्सवमें पधारे हुए इतने सम्मान्य विशिष्ट महानुभावोंके ठहरने योग्य उचित आवास-व्यवस्थाका भी अभाव ही था, फिर

भी गीतावाटिकाके आसपास रहनेवाले लोगोंने अपने आवास खालीकरके उन्हें ठहरानेकी व्यवस्था की थी। सभी समागत अतिथिगण यही अनुभव करते थे कि हम सभी एक ही राधा-परिवारके अंग हैं। पू.पोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा रूपी विशाल वटवृक्षके तले सभी आगत अतिथिगण अपने-पराये, धनी-गरीब, ऊँच-नीचके भेद सर्वथा ही भूल जाते थे। सभी लोग उत्सवके दिनोंमें परस्पर इतने अभिन्न हो जाते थे मानो उनमें कभी कहीं कोई अपने-परायेका भेद रहा ही नहीं हो। सभीको यही लगता था, जैसे श्रीपोद्दार महाराज तो हम सबके पिता हैं और पू.राधाबाबा सबके सगे बन्धु अथवा स्नेहमयी माता। वस्तुतः पू.गुरुदेवके प्यारमें जननीका-सा निस्संकोच ममत्व, विशुद्ध वात्सल्य एवं उफनता हृदय था भी। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी रसदायिनी ज्योत्स्नाके तुल्य ही परम मधुर सुशीतल थे ।

इस वर्ष गीतावाटिकामें पू.पोद्दार महाराजके निवासके बायीं ओरके मैदानमें एक विशालकाय पण्डालका निर्माण किया गया था और वहीं श्रीरामनिरञ्जनजी रूँगटाके निरीक्षणमें दिव्य बृषभानुपुर एवं बृहद्वनकी झाँकियाँ सजायी गयी थीं।

श्रीरामनिरञ्जनजी रूँगटा बम्बई निवासी थे तथा श्रीबजरंगलालजी बजाजके समान प्रारंभसे ही राधाष्टमी महोत्सवके आधारस्तम्भ रहे थे। इनकी साधना पद्धति भी अति विचित्र थी। ये ग्राफपेपरपर भिन्न-भिन्न रंगोंसे अपनी कल्पनानुसार अयोध्या एवं बृन्दावनादि स्थलोंके नकशे बनाया करते थे। इनके नक्शोंका नाप एक इञ्च बराबर एक फर्लांग होता था। इनके नक्शोंमें सरयू एवं यमुना नदी होती थी, वन होते थे, सरोवर होते थे, पुलिन एवं ह्रद होते थे। साथ ही महल, निशा-विश्राम-निकुञ्ज, गोशालायें, रासमण्डल, पर्वत, झरने, सड़कें, गलियाँ, छोटी पगडंडियाँ, मुख्य पथ, गायोंके चरने जानेके रास्ते आदि अंकित होते थे। नक्शे बड़े भी होते थे एवं फिर इनके अन्तर्गत छोटे-छोटे अनेक नक्शे होते थे। ये जब भी गोरखपुर आते तो बम्बईसे महीनोंके लिये अवकाश लेकर आते थे। अपने निवासका कमरा बन्दकर ये अनवरत दस-दस घण्टे इन कुञ्जस्थलियोंके अंकनमें दत्तचित्त रहते थे। ये पहले व्यक्ति थे, जिनके सम्मुख पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने अपनी लीलाभावनाके सभी गुप्ततम कुञ्जोंके रहस्य स्पष्टतया खोलकर उद्घाटित कर दिये थे। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके काष्ठमौन ग्रहण करनेके वर्ष तो इन्होंने लगातार छः माहतक

गोरखपुरमें रहकर पू.गुरुदेवकी लीलाभावनाके सम्पूर्ण ब्रजमण्डलको ही अपने नक्शोंमें उतारकर रख दिया था।

श्रीरामनिरञ्जनजी रूँगटा पू.पोद्दार महाराजके प्रवचनोंको टेपरिकार्ड करनेकी सेवामें भी रत रहते थे। श्रीराधाष्टमीके कार्यक्रमों तथा उनमें हुए श्रीपोद्दार महाराजके प्रवचनोंको टेपरिकार्ड करके उनके स्पूल सुरक्षित रखना इनकी ही सेवा थी। इन स्पूलोंको बारंबार सुनते रहना, इनकी कापियाँ तैयार करना तथा इच्छुक सत्संगीजनोंके माँगनेपर उन्हें प्रदान करना इनकी दैनिक साधना थी।

सन् १९६० ई.की राधाष्टमीमें ये अन्तिम वार गोरखपुर आये। उसके पश्चात् ये रुग्ण हो गये। सन् १९६१ ई.के अगस्त मासमें इनका देहान्त हो गया। इनके देहावसानपर श्रीपोद्दार महाराजने गोरखपुरसे निम्न संदेश इनके परिवारजनोंको बम्बई भिजवाया था–

'श्रीरूँगटाजीके निधन-संवादसे यहाँ सभीको बड़ा दुःख हो रहा है। ऐसे विशेष प्रेमी जगत्में दुर्लभ हैं। श्रीराधाष्टमी उत्सव-प्रासादका तो एक आधारस्तम्भ ही टूट गया। तथापि इस बातसे बड़ा आनन्द है कि उनका श्रीकृष्णके दिव्य धाममें, उनके एक परम निकटस्थके रूपमें प्रवेश होगया, जो अत्यन्त दुर्लभ है। उनकी पत्नी और उनके पुत्र, पुत्रवधुओंसे मेरी हार्दिक सहानुभूति – हनुमान''

सन् १९६२ अर्थात् तेईसवें वर्षके उत्सवमें श्रीजगन्नाथजी चित्रकारने पन्द्रह-बीस दिवस रात-दिन परिश्रमकरके श्रीराधाष्टमी महोत्सवके पण्डालमें सजानेके लिये मानवीय परिमाणके, पाँच-सवा पाँच फुट लम्बे, पन्द्रह-बीस चित्र बनाये। उन्होंने इस वर्ष जैसा कार्य किया और जितनी चिन्मय सुन्दर आकृतियाँ परदेपर उतार दीं, वह सब एक साधारण मानवके सामर्थ्यके बाहरकी ही बात थी। उन दिनों रात-दिवस, बिना खाये-पिये, मात्र एक कप चायके सहारे, बिना नहाये- धोये- कपड़े बदले अनवरत उनकी तूलिका चलती रही थी। उसे देखकर कोई भी प्राणी यही अनुमान लगाता था मानो अन्तर्जगत्की कोई दिव्य शक्ति ही उनसे यह कार्य करवा रही है। उस वर्ष उन्होंने अभूतपूर्व चिन्मय सामर्थ्यका परिचय दिया था। वे ये चित्र बनाकर अपने घर पहुँच ही नहीं पाये थे कि राधाष्टमीके पूर्व ही उनका देहावसान हो गया। अवसान तो इस प्राकृत देहका हुआ था, सत्य तो यह है कि वे

श्रीराधारानीकी सेवामें ही पहुँच गये। राधाष्टमी पण्डालमें विराजित उनकी छविकृतियाँ आज भी उनकी स्मृतिको अक्षुण्ण किये हुए हैं।

इक्कीसवें वर्षकी राधाष्टमीमें दधिकर्दमोत्सवपर बीकानेरसे गोस्वामी परिवारके लोगोंके नेतृत्वमें डाँडियानृत्यका आयोजन किया गया था। इन लोगोंने बीकानेरमें एक माह पूर्वसे ही डाँडियानृत्यकी विभिन्न गतियोंका अभ्यास किया था। प्रथमतया यह डाँडियानृत्य गोलाकार मंडलमें प्रारंभ होता था, पश्चात् नृत्य करते-करते ही कलाकार अपनी चाल बदलकर दो गोलोंमें नृत्य करने लगते थे। इन सभीका नृत्य इतना रोचक एवं कलापूर्ण होता था कि सभी दर्शकगण झूम उठते थे। नृत्यके उपरान्त इन कलाकारोंने इसी वर्ष श्रीपोद्दार महाराज द्वारा रचित बधाईका पदगायन भी किया जिसे पू. पोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेवने बहुत ही सराहा था। पाठकोंके ज्ञानार्थ यह पद नीचे दिया जारहा है। इस पदकी बन्दिश राग माँडमें ठेठ राजस्थानी धुनमें निबद्ध हुई थी।

राधा जाई आनँद लाई नाचो रे नाचो सब ग्वाल।
दधि माखनकी नदी बहाओ आज सबै होगये निहाल।।१।।
अगनित भरे माट माखन-दधि-केसर-घोले लाये लोग।
मतवाले-से लगे छिड़कने खूब परस्पर शुभ-संयोग।।२।।
आय गयी इतनेमें नँदकी सेना लै माखन-दधि-हाट।
दधिकाँदौमें भई हरष-धुनि ढुरकन लगे माट पर माट।।३।।
माखन दधिकी सरिता उमड़ी, बही सुधा आनँदकी धार।
नाचन लगे भानु नृप, बाबा नन्द समुद सब लाज बिसार।।४।।
आय मिले बरसाना-रावलके लरकनि सँग तोक-सुदाम।
रैंदा-पैंदा, ग्वाल-बाल सब मधुमंगल, मनसुख, सुखराम।।५।।
कूद-कूद सब लगे नाचने माखन-दधि-सरिताके बीच।
लगे मारने माखन लौंदे हर्षोन्मत्त उलीच-उलीच।।६।।
मोदभरे बरसानेवाले बोले 'नँदबाबाकी जय'।
बोल उठे नन्दीसुरवाले 'जय बृषभानु राजकी जय'।।७।।

इस गीतकी ध्वनि एवं गायनपर श्रीपोद्दार महाराज तो ऐसे रीझे कि उन्होंने इस पदगायनको डाँडिया नृत्य सम्पन्न होजानेके पश्चात् भी पुनः दूसरी बार सुना।

इस डाँडियानृत्यकी ऐसी परम्परा चली कि फिर प्रत्येक वर्ष ही यह क्रम चलता रहा और आजतक चल रहा है।

इस वर्ष एक और विलक्षण चमत्कारिक घटना हुई।

श्रीबनवारीलालजी गोयन्दका पू.पोद्दार महाराजके अनन्य भक्त हैं। वे इस उत्सवमें अपने साथ एक बालक श्रीराधेश्याम अग्रवालको भी ले आये थे जो हड्डियोंके क्षयरोगसे आक्रान्त था। इस रोगसे ग्रस्त होनेके कारण यह बालक अपने शरीरको सम्हाल नहीं पाता था। इसकी रीढ़की हड्डी नाकाम हो चुकी थी। डाक्टरोंने लोहेके छडोंकी एक ऐसी बेल्ट बनवाकर लगा दी थी जिसका ऊपरी भाग गर्दनके साथ एवं नीचेका भाग कमरके पास बाँध दिया जाता था। यही इसके खड़े होनेका मात्र साधन था। इस वर्ष दधिकर्दमोत्सवपर यह बालक भी संकीर्त्तनमें सम्मिलित हो गया था। उस समय 'राधे-राधे,राधे-राधे'का उद्दाम नाम-संकीर्त्तन चल रहा था। संकीर्त्तनका रंग इस बालकपर ऐसा चढ़ा कि यह भी उछल-उछलकर नाचने लगा और कुछ ही देरमें बाह्य-ज्ञान-शून्य होकर भूमिपर गिर पड़ा। इसे होशमें लानेकी बहुत चेष्टा की गयी किन्तु यह होशमें नहीं आया। जैसे ही इस घटनाकी सूचना पू.पोद्दार महाराजको हुई उन्होंने इस बालकके मस्तकको अपनी गोदमें रख लिया एवं उसे 'राधे-राधे, राधे-राधे' कहने लगे। कोई पाँच-छः बार इस प्रकार उसे नाम सुनाकर पू.पोद्दार महाराजने उस बालकसे कहा– 'उठो, खड़े हो जाओ।' श्रीपोद्दार महाराजका इतना कहना था कि राधेश्याम उठकर बैठ गया। उसकी बेल्ट तो उसे आराम देनेके लिये पहलेसे ही हटा दी गयी थी। आश्चर्य था कि वह बालक बिना बेल्टके ही उठ खड़ा हुआ और पू.पोद्दार महाराजका हाथ पकड़कर पुनः मन्द स्वरमें राधे-राधे कीर्त्तन करने लगा। श्रीराधेश्याम अग्रवाल दो दिनोंतक अर्ध विक्षिप्त रहा परन्तु अब उसका रोग सदा-सर्वदाके लिये मिट गया था। इस प्रसंगने सभी जनसमूहको इस उत्सवके प्रति अपार श्रद्धासे अभिभूत कर दिया।

बाईसवें वर्षके उत्सवमें दधिकर्दमोत्सवमें कुछ विशेष ही उत्साह रहा। सन् १९६० ई.से ही श्रीराधाष्टमीमें नये-नये आयोजन होने प्रारंभ हो गये थे। श्रीजगन्नाथजीने पण्डालकी सज्जा अपने अलौकिक चित्रोंसे अभूतपूर्व कर ही दी थी; श्रीरामनिरंजनजी रूँगटाके द्वारा निर्मित ब्रजमण्डल, श्रीबरसाना ग्राम एवं बृहद्वनकी झाँकी अभूतपूर्व होती ही थी। बीकानेरके गोस्वामीगण पीले रंगकी बगलबन्दी एवं धोती पहने, केसरिया फेंट कसे दधिकाँदौमें जब डाँडियानृत्य करते तो जनसमूह झूमने लगता था। श्रीपोद्दार महाराजके रसमय तात्त्विक प्रवचनों और उनकी पूर्ण समर्पणमय ब्रजभावकी काव्यरचनाएँ और उनका

गायन भी बौद्धिक वर्गमें अपना अनूठा ही प्रभाव डाल रहा था। दिनमें तो उत्सव-गंगा उमड़ती ही थी, सायंकालीन कार्यक्रमोंमें श्रीपोद्दार महाराज द्वारा प्रतिवर्ष नये-नये ढंगसे राधातत्वके अभूतपूर्व प्रतिपादन, साथ ही श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी द्वारा उनकी काव्यरचनाको स्वरलिपि देकर मधुरातिमधुर कण्ठसे गायनको सुनने विश्वविद्यालय क्षेत्रके प्राचार्यगण और गोरखपुरका सम्पूर्ण बौद्धिक वर्ग ही उमड़ आता था। फिर मध्याह्नमें श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगलाकी घण्टाध्वनि, श्रीनटवर गोस्वामी की झालरध्वनि एवं श्रीगोकर्ण गोस्वामीके पदचापनृत्यसे नियंत्रित उद्दाम संकीर्त्तनका आनन्द तो वर्णनातीत ही होता था। इस सम्पूर्ण आनन्दोच्छलन-समारोहके सूत्रधार होते थे निस्संकल्प ध्यानस्थ देहा-ध्यास ही नहीं, देह-ज्ञानरहित निर्विकल्प अवस्थामें काष्ठवत् विराजित पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा और संचालनसूत्रको अपने हाथमें थामे मुखर श्रीपोद्दार महाराज।

इस सबके उपरान्त इस वर्ष श्रीपोद्दार महाराजके मनमें एक नवीन संकल्प उदय हुआ। उत्सवके एक दो दिन पहले उन्होंने श्रीघनश्याम ठाकुरको अपने पास बुलाया। ये श्रीघनश्याम ठाकुर अपनी बाल्यावस्थामें रासमण्डलीमें श्रीकृष्ण बनते थे एवं इन्होंने पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको सन् १९४९ ई.में अपने रासलीलाभिनयसे कृतकृत्य किया था। (देखें महाभाव दिनमणि श्रीराधाबाबा–चतुर्थ खण्डमें रासप्रसंग)

श्रीपोद्दार महाराजने इन्हें निर्देश दिया कि इस वर्ष दधिकर्दम उत्सवमें श्रीबजरंगलालजी बजाजको सचमुचके ही ढाढी वेषमें सजाना चाहिये और ढाढीलीलाका नाट्याभिनय सांगोपांग जीवन्त ही होना चाहिये।

श्रीपोद्दार महाराजका इतना संकेत पर्याप्त था। श्रीघनश्याम ठाकुर बाजार गये और ढाढी परिवारको सजानेके लिये सभी योग्य श्रृंगार-सामग्री खरीद लाये। इस वर्ष राधाष्टमीपर रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजी एवं कीर्त्तनिया श्रीहरिवल्लभजी शर्मा आये ही थे, अतः श्रीघनश्यामजीको पूरे ढाढी परिवारकी सज्जा करनेमें इनका भी सहयोग प्राप्त हो ही गया था। श्रीबजरंगलालजी बजाज बने मुख्य ढाढिन, श्रीहरिवल्लभजी बने ढाढी, श्रीरामजी बने ढाढीके छोटे भाई, श्रीघनश्यामजी स्वयं बने ढाढीबालक और बीकानेरके श्यामसुन्दर गोस्वामी बने ढाढीबालककी बहुरिया।

उत्सवमें ये सभी ढाढी-ढाढिन उचित श्रृंगार करके आये। वेष धारणकर उत्सवमें पण्डालमें अभिनय करनेका यह प्रथम अवसर था। जनसमूहने जैसे ही

इन सभीको वेष-सज्जामें सजे पदार्पण करते देखा सभी हर्षसे सराबोर हो गये। इन सभी पात्रोंकी सज्जा इतनी सजीव थी एवं इनका अभिनय भी इतना जीवन्त था कि पोद्दार महाराज तो इन सबको देखकर ही आनन्दसे भर गये। पू.गुरुदेव तो इस सारे बाह्योत्सवसे बेखबर अपने लीलाराज्यमें डूबे थे। उनके ध्यानपथमें तो भीतरी चिन्मय लीला व्यक्त हो रही थी।

इधर ढाढी बालक बना ठाकुर घनश्याम अपने चुलबुलेपन द्वारा पू. गुरुदेवको बाह्य जगतमें ले आकर यह लीला भी दिखाना चाहता था। उधर शेष ढाढीगण श्रीपोद्दार महाराज द्वारा नवरचित पदरचनाका गायन करने लगे थे :

अब तौ जागे भाग हमारे, हम पै टूठि गयौ भगवान।
हम पै टूठि गयौ भगवान, हम पै रीझ गयौ भगवान।।
कुँवरी जनम सुनत रति बाढ़ी, सजि सुठि साज, सँवारत दाढी,
नाचत गावत आयौ ढ़ाढी, करतौ जय जयकार।। अब तौ।।
बेटा-बेटी बहू लुगाई, रुके न घर आये हरषाई।
देत असीसें करत बड़ाई , जी भर बारम्बार।। अब तौ।।
जुग-जुग जीवौ कुँवरी प्यारी, अचल सुहाग मिलै सुखझारी।।
हो दोउन कुलकी उजियारी, कीरति बढै अपार।। अब तौ।।

इधर ढाढी बने अन्य पात्र एवं श्रोतागण तो इस कीर्त्तनके आनन्दमें झूम ही रहे थे, उधर ढाढी बालक बना घनश्यामठाकुर मञ्चपर बैठे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके निकट चला आया।

उसके अन्तरमें चैन नहीं था। वह सोच रहा था कि जबतक पू.राधाबाबा नेत्र बन्द किये ही बैठे रहेंगे, तबतक तो सम्पूर्ण आनन्द ही फीका रहेगा। आजके बाह्य रंगमंचपर श्रीपोद्दार महाराजकी प्रेरणासे जो कुछ जीवन्त अभिनय सज्जा हो रही है – इस दृश्यको जबतक राधाबाबा देख नहीं लें और देखकर भावमें बह न जावें, तबतक तो सारा सुख ही सर्वथा थोथा है। ढाढी बालकने सोचा कि आज वस्तुतः आनन्द तभी हो जब पू.राधाबाबाके व्यक्तिगत हाथसे बधाई मिले।

बस, ढाढी बालक बना घनश्याम झपटकर मंचपर चढ़ गया और पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको प्रणाम करके बोला 'बाबा ! ओ बाबा ! दण्डौत, बधाई है! बधाई है !!'

विश्वकी दृष्टिमें तो यह एक साधारण सी घटना थी किन्तु अन्तर्जगत्में तो इस घटनाके अपूर्व परिणाम हुए। संसारकी दृष्टिमें घनश्याम ठाकुर द्वारा पुकारे जानेवाले राधाबाबा मात्र एक संन्यासी वेषधारी मानव थे। उस अबोध ब्रजवासी बालकको परिकल्पना ही नहीं थी कि वह किसे दण्डौत कर रहा है।

उसकी परिकल्पना तो इतनी ही थी कि कोई उच्चकोटिके महात्माका वात्सल्य उसने प्राप्त कर लिया है । परन्तु अनजाने ही इस ब्रजवासी बालकने कृपासमुद्रका अभूतपूर्व उद्वेलन कर दिया था। वस्तुतः सत्य यही था कि श्रीराधाबाबाके रूपमें नेत्र मूँदे, इस राधाबाबा नामक जीवत्वके सम्पूर्ण अहंकारको अपनेमें विलीन किये, विराजित थीं स्वयं साक्षात् श्रीराधारानी – वे राधारानी जो समस्त लोकपालों सहित इस परिदृश्यमान जगत्को अपने एक रोमकूपमें बसाये हैं; जिनपर किसीका बन्धन, किसीका शासन नहीं – उन परम स्वतंत्र, अनन्तैश्वर्यनिकेतन श्रीकृष्णचन्द्रको भी जो अपनी प्रेमाधीनतामें बाँधे हैं। भाई घनश्याम ठाकुरने बधाई माँगनेकी क्रिया करके उन नित्यनिकुञ्जेश्वरीके कृपा-समुद्रमें एक आलोड़न उत्पन्न कर दिया।

राधाबाबाके सुदीर्घकालसे समाधिमें मुँदे नेत्र उन्मिषित हो उठे। काष्ठमौन लेनेके उपरान्त पाँच वर्षसे नीची हुई आँखोंका उठ जाना इस विश्वप्रपञ्चमें एक असाधारण घटना थी।

शास्त्र प्रमाण हैं – एक बार देवजगत् द्वारा प्रेरणा करके भेजे गये कामदेव द्वारा अपने शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध – ये पाँच पुष्पबाण छोड़े जानेपर भगवान् पशुपतिनाथने सुदीर्घकालीन समाधिके पश्चात् अपने नेत्र खोले थे। उन नेत्रोंके खुलने मात्रसे कारण-जगत्का सर्वाधिक शक्तिशाली अधिदेवता कामदेव अपनी सम्पूर्ण कामसेना सहित भस्म हो उठा था। अन्ततः भगवती कामेश्वरी योगमाया महाशक्तिको उस कामदेवकी भस्मको अपने नेत्रोंमें अञ्जनकी तरह आँजना पड़ा, तभी उसकी संरक्षा हो सकी थी।

ढाढी बालक द्वारा बार-बार झकझोरे जाने एवं 'बधाई है' बधाई है' की पुकार मचाते रहनेपर पू.गुरुदेवके नेत्र उन्मिषित हुए। अवश्य ही ये नेत्र किसी त्रिगुणात्मक रुद्रदेवके नहीं थे, ये नेत्र तो थे असमोर्ध्व प्रेम-वैभवकी स्वामिनी श्रीराधारानीके। यदि ये नेत्र कहीं संहारके अधिदेव रुद्रदेवके होते, तब तो बालक घनश्यामका देह ही भस्म हो जाता, परन्तु क्योंकि ये नेत्र महादेव रुद्रके न होकर आनन्द -चिन्मय रसरूप प्रेमकी परमसार महाभाव-स्वरूपा श्रीमती राधारानीके थे, तत्क्षण ही हाड़-मांस-मल-मूत्र-पुरीषागार घनश्याम नामधारी किसी ब्रजवासी बालकके नामरूपात्मक अस्तित्वको तो विलुप्त होना ही पड़ा। उसके रूपमें पू.गुरुदेवके नेत्रोंके सम्मुख व्यक्त होना पड़ा – उन श्रीकृष्णचन्द्रको, जिनके नख-चन्द्र-ज्योत्स्नाकी एक किरणकी महिमाका भी अन्त नहीं पाते

अनन्त ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश। राधा-प्रियतम श्रीकृष्ण तो अपनी ही ह्लादिनीशक्तिसे आप ही नित्य आह्लादित होते हैं और अपने आह्लादसे नित्य श्रीमती राधारानीको आह्लादित भी करते ही हैं। अतः जगत्‌की दृष्टिमें तो श्रीराधाबाबा, किन्तु आन्तरिक परम सत्यके रूपमें श्रीराधारानी कुछ विस्मय, कुछ जिज्ञासा, कुछ कौतूहलभरी दृष्टिसे देखने लगीं। उन्हें तो यही दिख रहा था कि उनके सम्मुख चरणोंमें झुके हैं उनके प्राणवल्लभ, प्राणप्रियतम जिनके मुखमण्डलपर कोटि-कोटि राकाचन्द्रोंकी द्युति झलमल-झलमल कर रही है। पीतवसन-भूषित अंग हैं, और चंचल कर्णकुण्डल, जिनके श्यामल परम सुन्दर कपोलोंको अपनी प्रभा-ज्योत्स्नासे दमका रहे हैं। दिव्यातिदिव्य मयूरपिच्छ-समन्वित रत्नमुकुटसे किरणें उद्भासित हो रही हैं और अंगोंके श्यामल तेजका तो कहना ही क्या? निर्मल श्यामल तेजसे सम्पूर्ण वातावरण ही आलोकित हो रहा था। श्रीराधारानीके रूपमें पू.गुरुदेव विस्मित थे कि आज उनके प्राणराध्य मूँछ लगाये क्यों उन्हें प्रणाम कर रहे हैं?

पू.गुरुदेवकी आन्तरिक अवस्था समझनेकी सामर्थ्य ब्रजवासी रासाभिनय करनेवाले घनश्याम शर्मामें तो होनेका प्रश्न ही नहीं था, हाँ, उनके पार्श्वमें विराजित श्रीपोद्दार महाराजसे यह सब पहेली स्पष्ट हो चुकी थी। वे ठीक अनुभव कर रहे थे कि इस समय श्रीराधाबाबा *'सर्वं कृष्णमयं जगत्'* की अनुभूतिमें लहरा रहे हैं। उन्होंने अपना बायाँ हाथ पू.गुरुदेवकी गोदमें कोई संकल्प करके रखा। बस, श्रीराधाबाबाका अवतरण मायाभूमिमें होने लगा। उन्हें स्वप्नवत् आभासित होने लगा कि वे एक देहमें अवस्थित किसी पण्डालमें उत्सवमें आसीन हैं। श्रीपोद्दार महाराजके मुखमण्डलपर दृष्टि जाते-जाते उन्हें स्मृति हो आयी कि वे गीतावाटिका एवं राधाष्टमी पण्डालमें हैं और जागतिक भूमिपर राधाष्टमी-महोत्सव मनाया जा रहा है।

इतनेमें ही श्रीपोद्दार महाराजकी कण्ठध्वनिमें उन्हें सुनायी पड़ा 'बाबा! यह अपना घनश्याम ढाढी बना है।'

पू.गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजकी वाणी सुन तो ली, किन्तु जिस अप्राकृत प्रेमराज्यका मद उनके नेत्रोंमें उतर आया था, वह नशा बारबार उनके नेत्रोंको इस प्राकृत दृश्यके प्रति अन्धा ही बनाता जा रहा था।

वे पुनः चले गये थे – नित्य चिन्मय बृन्दावनके अप्राकृत लीलाराज्यमें। उन्हें घनश्याम बालकके रूपमें पुनः दिखने लगते हैं – गोलोकविहारी

नित्यकैशोरमूर्त्ति श्रीकृष्णचन्द्र। और स्वयं तो वे थे ही नील वस्त्रावृता चञ्चल कर्णकुण्डलों तथा दिव्यातिदिव्य रत्न-चूड़ामणि-समलंकृता बृषभानुनन्दिनी श्रीराधा। अपने प्रियतमको अपना चरण पकड़े बैठे देखकर बृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका हृदय भर आता है। प्रेमावेशसे वे विह्वल हो जाती हैं। उनके भावजगत्में श्रीकृष्ण उन्हें कहने लगते हैं –'प्रिये ! गोलोककी बातें भूल गयीं क्या ? या वे सभी अभी भी तुम्हें पूरी स्मरण हैं ? मुझे जान रही हो कि भूल गयीं ? मेरे प्राणोंकी रानी ! तुमसे अधिक प्रिय मेरे पास तो कुछ है नहीं, फिर मैं कैसे तुम्हें भूलूँ ? तुम्हीं बताओ, भला कोई प्राणोंसे भी अधिक प्यारी वस्तुको कभी भूल सकता है ?'

पू.गुरुदेव अपने भावजगत्में श्रीकृष्णकी बात सुनकर उनके दैन्यभरे वक्तव्यपर मन-ही-मन ठठा पड़ते हैं और उनके कपोलोंपर अत्यधिक प्यारमें उमड़कर एक चपत लगा देते हैं।

ढाढी बालक समझता है श्रीराधाबाबाने मुझे पहचान लिया। वह बोल उठता है –'बाबा ! इस गालपर भी !' श्रीराधाबाबा दूसरे गालपर भी वैसी ही चपत जड़ देते हैं। दर्शकोंका हृदय भर आता है। ढाढी बालक तुरन्त मञ्चपरसे उतरकर अपने ढाढी परिवारमें सम्मिलित हो जाता है। वह और उत्साहसे नाचने लगता है।

श्रीराधाबाबाकी तो जगत्-दृष्टि ही विलुप्त हो चुकी थी। उन्हें तो पण्डालमें श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण भरे दृष्टिगोचर हो रहे थे। अपने प्रियतम श्रीकृष्णको अनेक वेष धारण किये आह्लादित होते देख वे भी आह्लादित हो उठे थे। आह्लादिनीका सार ही तो प्रेम है। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा मूर्त्तिमती प्रेमदेवी ही तो थे। अपने प्रियतमकी इच्छाको पूर्ण करना ही इनका स्वरूप-स्वभाव था। उन्हें न ढाढी बालक दिख रहा था, न ही ढाढी परिवार। उन्हें तो यही दिख रहा था कि पूर्ण परात्पर उनके प्रियतम श्रीकृष्ण सर्वथा इच्छारहित होनेपर भी उनके प्रेमवश इच्छावाले बनकर उनसे किसी कामनावश उन्हें रिझानेको नृत्य कर रहे हैं। वे देख रहे थे –'जो सर्वथा पूर्ण हैं वे उनके प्रियतम अभावग्रस्त बन गये हैं।' बस ! अपने प्रियतमको कामना-वशीभूत देखकर उनकी कामनाकी सद्यःपूर्त्ति करदेनेके उत्साहमें पू.गुरुदेव खड़े हो जाते हैं।

काष्ठमौनी पू.गुरुदेवको अपने आसनमें खड़ा पाकर ढाढी परिवार और उत्साहित हो उठता है। उल्लसित हुए सब झूम-झूमकर, नाच-नाच कर,

मटक-मटककर बधाईके पद गाने लगते हैं। अवश्य ही यह इन ब्रजवासी रासधारियोंका रजोगुणी उल्लास था, जिसमें कुछ भी असाधारण नहीं था। परन्तु पू. पोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेवकी पावन दृष्टि उसे विशुद्ध सत्वमय महाभावका संस्पर्शदान करवा रही थी, यही उस नृत्यकी विशेषता थी।

सभीकी दृष्टि पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराजके शरीरपर थी, इस सम्पूर्ण पण्डालमें एक भी सत्यदर्शी नहीं था, जो पू.गुरुदेवकी सत्य स्वरूप-अनुभूतिका प्रकाश पा सकता। आओ ! पू. गुरुदेवके सही स्वरूपके शब्दचित्रके आकलनकी चेष्टा करें।

पू.गुरुदेवके ही कथनानुसार आठ अप्रेल, १९५७ ई.के दिन एक ऐसा क्षण उपस्थित हुआ कि वे राधास्वरूपमें विलीन होगये। इस उत्सवके दिवस तो इस घटनाको हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो चुके थे। सन् १९५७ई.के उस पावन क्षणसे वे एक क्षणके लिये भी कभी देहमें अध्यस्त नहीं हुए। तबसे पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा कभी प्राकृत जलसे स्नान नहीं किये। विश्वकी प्राकृत दृष्टिमें भाई श्रीरामसनेहीजी, उनके सेवक उन्हें प्रत्येक बार स्नान कराते समय तीन कलश पानी उँडेलते थे। दुनिया समझती थी कि पू.गुरुदेवकी यह एक रहनी है कि वे तीन कलश पानी प्रत्येक वार स्नान करते समय डलवाते हैं, परन्तु यदि कोई सत्यदर्शी होता तो देख पाता कि उनका यह त्रिघट-स्नान – कारुण्यामृत, लावण्यामृत, एवं तारुण्यामृतसे स्नान था। लोग समझते थे कि पू. गुरुदेव गैरिक कोपीन एवं अधोवस्त्र पहन रहे हैं, परन्तु वस्तुतः सत्य यह था कि उनके वस्त्र स्वयं परात्पर परब्रह्म सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र थे। अधोवस्त्र एवं कोपीन पहननेके पश्चात् वे एक बड़ी चादर धोती पहनते एवं ओढ़ते थे, यह उनकी ओढ़नी साधारण मनुष्योंकी दृष्टिमें तो खादीका गैरिक वस्त्र था, परन्तु सत्य यही था कि यह ओढ़नी उनके चिन्मय अंगोंको लपेटनेवाली कृष्णनुरागकी चादर थी। लोग देखते थे, कि पू.गुरुदेव स्नान करके अपने गैरिक पट्टेपर विराज रहे हैं, किन्तु सत्य यही था कि इनका पट्टा था श्रीकृष्णकी गोद और उनका निजांग-सौरभ। लोग समझते थे कि पू.गुरुदेव लोगोंसे वार्तालाप कर रहे हैं, विनोद करते हैं, परन्तु सत्यका सत्य यही था कि मात्र अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे ही प्रेमालाप उनकी वार्त्ता थी। कोई सोचता था कि पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा मछहरीमें विश्राम कर रहे हैं, परन्तु सत्य यही था कि अपने प्रियतमके अंग-संगमें लिपटी रहना ही उनका विश्राम था।

यह पू.गुरुदेवकी स्थितिका एक छोटा-सा चित्र है। बृन्दावनके रासधारी तो लौकिकताका प्रदर्शन कर रहे थे। उन्हें शिक्षा ही इसीकी मिली थी। रासाभिनय करके श्रीकृष्णपरक लीलाओंसे रजोगुणी जनसमूहका मनोरंजन करनेमें ही वे पटु थे। उन्हें यदि कोई भावुक व्यक्ति सुना भी देता कि श्रीराधाबाबा अधिरूढ़ महाभावकी मूर्त्ति साक्षात् श्रीराधारानी हैं, फिर भी उनकी कल्पना उस तत्वके गहन गंभीर अर्थको कहाँ समझ पाती ? उन्हें तो रासके स्वामी जैसा लीलाभिनय सिखाकर श्रीराधारानीके बारेमें जो कुछ समझा देते हैं, उनकी बुद्धिकी परिधि वहीं तक थी।

अतः ढाढी बालक घनश्याम पुनः मटक-मटककर पू.गुरुदेवसे कहने लगा–'बाबा ! लाली जायी है न ! उसकी बधाई दो। केवल प्यारभरी चपतसे काम नहीं चलेगा।' पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा जिस राज्यमें लहरा रहे थे, उस राज्यमें तो कहीं किसीमें भी कोई कामनाका लेश नहीं था। वहाँ तो किसी भी व्यक्तिका कोई स्वतंत्र अहं था ही नहीं। इसीसे वहाँके लीलापात्रोंमें किसी अहंके परिणाम या मंगल-चिन्ताकी भी कोई कल्पना नहीं थी। पू.गुरुदेवके चतुर्दिक् जो लोक था, उसका प्रत्येक व्यक्ति तो श्रीकृष्णको आनन्द देनेके लिये ही सत्ता रखे था।

अब पू.गुरुदेव अपने प्रियतम श्रीकृष्णको जो ढाढी बालकके रूपमें कभी-कभी आभासकी तरह दिख जारहे थे, क्या बधाई देते ? उनके पास जो कुछ था, वह सब तो मात्र भावमय अप्राकृत अलौकिक था, उसकी अनुभूति तो इस बालक घनश्यामको वर्त्तमानमें होनी असंभव थी, अतः उन्होंने अपनी चिन्मयी दृष्टि मंचपर रचित ब्रजमंडलपर डाली। वे उस ब्रजमण्डलमें कहीं स्थित तुलसीकाननको खोज रहे थे। इधर उनके पार्श्वमें नीचे जनसमूहमें खड़ा था – भाई कुञ्जबिहारी पालड़ीवाल। उसे न जाने कैसे पू.गुरुदेवकी मनोभावना संस्पर्शित कर गयी। उसने तत्क्षण ही पू.गुरुदेवको पहले तो तुलसीवन दिखाया, फिर तोड़कर अनेक तुलसीदल उनके हाथमें रख दिये। पू. गुरुदेव तो तुलसी-काननमें ही खो जा रहे थे। उन्होंने हाथ बढ़ाकर तुलसीदल ले लिये। पू.गुरुदेव किसीको भी भला क्या दे सकते थे। उनकी एकमात्र निधि तो उनसे सर्वथा संलग्न, उनसे सर्वथा अविच्छिन्न उनके प्रियतम रसिकशेखर श्रीकृष्ण ही थे। तत्व, लीला और धाम – तीनों उनकी दृष्टिमें एक ही स्वरूपके तीन आयाम मात्र ही तो थे। तत्वमें जो अव्यक्त था वही लीलामें परिस्फुट

था और धाम उस सबको आधार दिये था। दूसरे शब्दोंमें बृन्दावनधामरूपा तुलसीमें पू.गुरुदेवको लीलामयके लीला-वृक्षका बीज दृष्टिगोचर हो रहा था। उन्होंने वही तुलसीदल ढाढी बालक घनश्यामको प्रदान करनेका संकल्प कर लिया।

अपने मनमें संकल्पकर कि तत्वकी समग्रता, लीलाकी अनन्तता, लीलानायक एवं लीलानायिकाके प्रेमरूप विशाल वटवृक्षका बीज जो इन तुलसीदलोंमें निहित है, एक तुलसीदल उन्होंने सर्वप्रथम ढाढी बालक बने घनश्याम ठाकुरके मुखमें डाल दिया। फिर शेष तुलसीदलोंको ढाढिनमाता बने श्रीबजरंगलालजी बजाज, ढाढी बने श्रीहरिवल्लभजी कीर्तनिया, ढाढीकी बहू बनी श्रीहरिवल्लभजीकी पत्नी एवं ढाढी-बालककी बहू बने श्रीश्यामसुन्दर गोस्वामीमें वितरित कर दिया।

पू.गुरुदेवके अमोघ संकल्पका चमत्कार तो होना ही था। तत्क्षण ही ढाढी बालक बने घनश्यामको भावावेश हो उठा। उसने प्रथम तो एक रजतथालीमें पू.गुरुदेवद्वारा प्रदत्त तुलसीदलोंको सबसे लेकर सजा लिये और तब वह उस थालीको हाथमें लेकर अतिशय भावपूर्ण नृत्य करने लगा। सभी दर्शकगण उसके इस भावभरे नृत्यको देखकर चकित हो उठे। बालकमें सच्चे भावकी छायाका संस्पर्श देखकर सभी दर्शकगण पू.गुरुदेवकी जय-जयकार करने लगे। यह तो सभीकी दृष्टिमें प्रत्यक्ष चमत्कार था ही कि मात्र तुलसीदल देकर पू.गुरुदेवने एक रासधारी ब्रजवासी बालकको भावाविष्ट कर दिया था।

वैसे तो भाव परम सूक्ष्म होता है, किन्तु जब वह प्रवाहित होता है तो विद्युत्तरंगके समान जहाँ-जहाँ संग्राहकता होती है, उसे आविष्ट करता ही है। श्रीरामसनेहीजी (पू.गुरुदेवकी शरीरसेवामें सदैव सजग रहनेवाले सेवक) का यह स्वभाव ही था कि वे उत्सवके मध्य चुपचाप सबके पीछे, गोपनीय रूपसे बैठे रहा करते थे। वे उत्सवको बाह्य नेत्रेन्द्रियोंसे तो बहुत ही कम देखते थे, अधिकांशतया उनके प्राण आन्तरिक दर्शनानन्दमें ही तन्मय हुए रहते थे। पू. गुरुदेव द्वारा दिये महाभावके छायादानने उनकी एकाग्रता हर ली। उनके भीतरकी अनुभूति क्या थी, यह तो वे ही जानें, किन्तु उनके प्राणोंमें भावालोड़न प्रारंभ हो गया। पू.गुरुदेवके द्वारा सम्पूर्ण विश्वप्रपंचमें उच्छालित महाभाव-सिन्धुकी उर्मियोंने श्रीरामसनेहीजीके हृदयमें अनादिकालसे पूरा डेरा जमाये बैठी मायाके तटबन्धको विध्वंस कर दिया। उनके नेत्रोंके सम्मुख सत्य चिन्मय लीला अभिव्यक्त हो उठी। उनकी दृष्टिमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा थे ही नहीं, वहाँ

तो विराजित थीं साक्षात् श्रीराधारानी जो अपनी पवित्र प्रेमाग्निमें विश्वप्रपंचकी भोग-मोक्ष सम्बन्धी सारी कामनाओंको, संसारकी अनादिकालसे चिपकी आसक्ति एवं ममताको, जलाकर भस्म कर रही थीं।

वे अपने आसनसे भावाविष्ट हुए उठ पड़े। उन्हें तो समग्र लीला-मण्डप ही चिन्मय बृषभानुपुरका दिव्य बधाई-मंच दिखने लगा। पू.गुरुदेवके रूपमें साक्षात् राधारानीको एवं श्रीपोद्दार महाराजके रूपमें ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको देखकर उनमें करुणाभाव उद्वेलित हो उठा। वे निस्संकोच पू. गुरुदेवके पास पहुँच गये, उन्होंने उनका करपल्लव थाम लिया। वे बारबार उनसे अति विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगे कि वे श्रीपोद्दार महाराज सहित रंगमंचसे नीचे उतरकर सभी जनसमूहको अपना पावनतम आशीश-संस्पर्श प्रदान करें। सबको अपने सत्य स्वरूपका दर्शन देकर कृतकृत्य करदें, सब जनसमूह ही ब्रजभावमें डूब जाय – ऐसी कृपा कर दें।

जनसमूहको श्रीरामसनेहीजीकी आन्तरिक अनुभूतिका तो ज्ञान था ही नहीं। अतः सभी लोग श्रीरामसनेहीजीके इस आग्रहको चकित दृष्टिसे देख रहे थे। पू.गुरुदेवको तो पता था कि श्रीरामसनेहीजी भावाविष्ट हैं। उन्होंने अतिशय प्यारसे उन्हें थपथपाकर अपने निकट बैठा लिया।

इधर पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा एवं पोद्दार महाराजके द्वारा उन्मुक्त हस्तसे वितरित कृपावैभवके दानसे सम्पूर्ण पण्डालमें दर्शक जनसमूह आनन्दमें झूम उठा था। यद्यपि पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने तुलसीदलके रूपमें अलभ्य परमोच्च पारमार्थिक निधि ढाढीगणको देदी थी, परन्तु मात्र तुलसीदलसे ब्रजवासी ब्राह्मणोंकी सन्तुष्टि होनी तो असंभव ही थी। उन्हें तो प्राकृत वस्तु भी मिले, उनकी यह भी तो आशा थी। हाँ, घनश्याम ठाकुर अवश्य भावावेशमें भरा संतुष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था। अतः इस बार ज्योंही ढाढीदलने पू.गुरुदेवके सम्मुख झोली पसारकर कहा–'बाबा ! बधाई है ! लाली जायी है ! बधाई है !!' उन्होंने पास ही बैठे श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगलाकी सोनेके झोलसे चमकती घड़ी उतरवायी और ढाढी बने श्रीहरिवल्लभजी कीर्त्तनियाको देदी। इसी प्रकार तुरन्त ही उन्होंने पू. माताजी (पू.पोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी अ.सौ. रामदेई मैया)से उनके हाथकी सोनेकी चूड़ी माँगी और वह श्रीहरिवल्लभजीकी धर्मपत्नी अ.सौ. कलावतीदेवीको देदी। चूड़ी एवं घड़ी पाकर श्रीहरिवल्लभजी एवं उनकी धर्मपत्नी विशेष संतुष्ट हुए। अब उनके प्राकृत मनको अनुभव हुआ कि कोई

अनमोल वस्तु उन्हें मिली है। अबतक मिले तुलसीदलको तो वे मात्र एक पत्ता ही समझ रहे थे, जो उनके घरके तुलसीकाननमें भी उपलब्ध हो सकता था।

इस घड़ीदान करते समय पू.गुरुदेवने एक संकल्प किया कि इस घडीको पानेवाला कीर्त्तनिया हरिवल्लभ अब भविष्यमें अपने जीवनका पल-पल भगवद्यशगानमें ही व्यतीत करे एवं अर्थोपार्जनरूप चाकचिक्यसे सर्वथा असंग एवं विरक्त हो जाय। जो कुछ प्रारब्धवश उसकी व्यवस्था हो जाय, उसमें ही उसे पूर्ण सन्तोष अनुभव हो।

पू.गुरुदेव जानते थे कि श्रीहरिवल्लभजीकी धर्मपत्नी कलावती, जो ढाढिन बनी है तथा जो वस्तुतः बहुत ही भाव एवं उत्साहपूर्वक नृत्य कर रही थी, उसकी अर्थासक्ति दूर होनी कठिन है। अतः उन्होंने उनकी दृष्टिमें मञ्चपर जगज्जननी योगमाया आदिशक्तिके रूपमें विराजित अ.सौ. माता रामदेईसे उनकी स्वर्णचूड़ी माँगी। माँने वह चूड़ी श्रीपोद्दार महाराजको दे दी और उन्होंने वह अ.सौ.कलावतीको दे दी, जिससे भविष्यमें उसे कभी अर्थाभाव नहीं हो।

श्रीबजरंगलालजी बजाज भी ढाढिनमाता बने बारबार श्रीपोद्दार महाराजसे बधाई माँग रहे थे। उनका श्रीपोद्दार महाराजके प्रति ही अधिक श्रद्धाभाव था। श्रीपोद्दार महाराजके पास बधाई देनेको अन्य तो कुछ था ही नहीं, उन्होंने तत्क्षण ही अपना अंगवस्त्र(बनियान) उतारा और उसे श्रीबजरंगलालजीको प्रदान कर दिया। श्रीबजरंगलालजीने जय-जयकार करते हुए उसे मस्तकपर चढाकर मस्तकपर टोपीकी तरह ओढ लिया।

भगवान् रसिकशेखर ब्रजेन्द्रनन्दनका पीताम्बर तो श्रीराधारानीका स्वरूप है, उनका उत्तरीय अंगवस्त्र उनके समग्र सख्यरसका प्रतिनिधि होता है। श्रीपोद्दार महाराजने वही परम दुर्लभ सख्यरस श्रीबजरंगलालजी बजाजको प्रदान कर दिया था।

इसी प्रकार ढाढी बालककी पत्नी बने श्यामसुन्दर गोस्वामीको श्रीपोद्दार महाराजने एक हरीतिमायुक्त मणियोंका हार प्रदान कर दिया। अब तो जय-जयकारका तुमुल नाद मण्डालमें चारों ओर फूट पड़ा।

उत्सवमें सम्मिलित व्यक्ति-व्यक्तिकी पू.पोद्दार महाराज एवं श्रीराधाबाबासे एक ही विनीत प्रार्थना हो रही थी–" हे सन्तस्वरूप प्रभो ! आप दोनोंके चरण-सरोजोंमें हमारा मन निरन्तर संलग्न रहे। जन्म-जन्ममें आप ही हमारे गुरुरूपमें मार्गदर्शक रहो। हमारे मनकी एकमात्र यही चाह है। हमारा चित्त

स्वप्न-जागरण सभी अवस्थाओंमें रात-दिवस केवल आप ही की स्मृति एवं गुणगानमें डूबा रहे।'

ढाढी परिवार अति उन्मत्त हुआ नाच रहा था। श्रीराधारानीकी जन्मबधाईके सवैया-पर-सवैया बोले जा रहे थे। श्रीहरिवल्लभजी कीर्त्तनियाने पू. पोद्दार महाराज द्वारा रचित श्रीराधारानीकी प्रार्थनाके कुछ दोहे बोले—

स्यामस्वामिनी राधिके ! करौ कृपाकौ दान।
सुनत रहूँ मुरली मधुर, मधुमय बानी कान।।
पद-पंकज-मकरन्द नित पियत रहैं दृग-भृंग।
करत रहै सेवा परम सतत सकल सुचि अंग।।
रसना नित पाती रहै , दुर्लभ भुक्त प्रसाद।
बानी नित लेती रहै, नाम गुननि रस-स्वाद।।
लगौ रहै मन अनवरत, तुममें आठौं जाम ।
अन्य स्मृति सब लोप हो, सुमिरत छवि अभिराम।।
बढत रहै नित पलहिं-पल दिव्य तुम्हारौ प्रेम।
सम होवै सब द्वन्द्व पुनि, बिसरैं जोगच्छेम ।।
भुक्ति-मुक्तिकी सुधि मिटै, उछलैं प्रेम तरंग।
राधा-माधव सरस सुधि करै तुरत भव भंग।।

इन दोहोंके बोलनेके पश्चात् सारा ढाढी परिवार पू.गुरुदेवसे –'बधाई है! बधाई है !!' की दुहाई देने लगा। पू.गुरुदेवके पास ही श्रीपोद्दार महाराज खड़े थे। पू.गुरुदेवने उनकी धोतीका अगला भाग अपने हाथमें ग्रहण कर लिया। उन्होंने श्रीहरिवल्लभजी कीर्त्तनियाको मानो उनकी प्रार्थनाके उत्तरमें उस धोतीके अगले भागको फाड़कर उसका दो तीन अंगुल चौड़ा छोर प्रसादीके रूपमें दे दिया। श्रीहरिवल्लभजीने तुरन्त ही उस छोरकी माला बनाकर उसे अपने गलेमें पहन लिया। ऐसी ही छोर प्रसादी पू.गुरुदेवने सभी ढाढियोंको दी।

अबतक घनश्याम ठाकुर चुपचाप बैठा था। अब उससे भी रहा नहीं गया। वह अर्धभावावेशमें तो था ही अतः बोल उठा –'बाबा ! ओ बाबा !! हम तो युगल-उपासक हैं। यह तो ब्रजराजकुमारका प्रसाद है। हमें तो राधारानीका भी अनुग्रह चाहिये। बधाई है ! बधाई है !!' घनश्याम ठाकुरकी उक्ति सुनते ही पू.गुरुदेवने अपने गैरिक वस्त्रको भी फाड़ा और उसकी भी छोर सबमें बाँट दी।

दधिकाँदौके पश्चात् पू.श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी हम सभी अन्तरंग

लोगोंके सामने कह रहे थे कि आज तो उनके नेत्रोंके सम्मुख श्रीपोद्दार महाराजने उनकी वह भावना मूर्त्त-चरितार्थ कर दी, जिसकी परिकल्पना वे आजके बीस वर्ष पूर्व किया करते थे। जिस उत्सवको उन्होंने बीस वर्ष पूर्व अपने भावजगत्में देखा था वह उत्सव एक अंशमें इस वर्ष उनके सम्मुख प्रत्यक्ष हो उठा था।'

उन्होंने तब अपने पास ही बैठे घनश्याम ठाकुरको सम्बोधित करके कहा कि श्रीपोद्दार महाराजकी धोतीका छोर जिन-जिनको प्राप्त हुआ है वे उसे साधारण वस्तु मान बैठनेकी भूल कदापि नहीं करें। वह परम दिव्य वस्तु है।

एक छन्द उनके मुखसे उस समय निकल पड़ा थाः

साँवर सुन्दरकी धोतीकी वह एक किनारी फाड़ी है।
तुम तुच्छ न वस्तु उसे समझो, उसमें ब्रजरसकी खाड़ी है।।
राधा-करसे खोदी, उसके कण-कणमें कृष्ण खिलाड़ी है।
अवगाहन-मत्त सहित उसके जो पहने नीली साड़ी है।।

बीकानेरसे आये गोस्वामी परिवारके गायक-दलमें श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी भी सम्मिलित थे। उन्होंने भी श्रीराधाजन्मोत्सवमें बधाईके पदोंका गायन किया था। श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव जब ढाढीगणको बधाई बाँट रहे थे तो श्रीपोद्दार महाराज उनकी ओर देखकर सारगर्भित रीतिसे मात्र मुसकाकर ही रह गये थे। श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीका श्रीचिम्मनलालजीके बहनोई होनेके नाते पू.पोद्दार महाराज अपने बहनोई की तरह ही आदर एवं आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करते थे। अतः उन्हें वे अपने वस्त्रकी लीर-प्रसादी तो दे नहीं सकते थे। इसी कारण वे मुसका भर दिये थे। श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीने उनके इसी आचरणका रसमय उपालंभ देते हुए ब्रजभक्तोंकी वाणीका एक पदांश बोलते हुए कहा–

औरनकौं धन घन ज्यौं बरसत मो देखत हँसि जात।

अर्थात् अन्य जनोंके लिये तो तुम मेघके समान उदार बने कृपाधनकी वर्षाकी झड़ी लगा रहे हो। परन्तु मेरी ओर देखकर मात्र मुसका दे रहे हो । यह तुम्हारी आज कैसी अनोखी रीति है ?

श्रीपोद्दार महाराज यह सुनकर कहाँ चूकने वाले थे ? वे तुरन्त माइक हाथमें लेकर बोले 'कृपाधनकी वर्षा तो अन्योंपर ही संभव है। आप तो हमारे अपने हो। मैं अपने आपपर क्या कृपा करूँ ? क्या घन स्वयं पर भी वर्षा करता

है ? धरा उससे भिन्न होती है। स्वयं तो वह वर्षाकरके रीता ही हो जाता है।

श्रीपोद्दार महाराजकी यह परम प्रेममयी उक्ति सुनकर श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी श्रीपोद्दार महाराजसे लिपट गये। दोनोंके नेत्र प्रेमरसकी वर्षा कर रहे थे।

षोडशगीतोंका प्रादुर्भाव

आठवाँ अध्याय

सन् १९६० ईके श्रीराधाष्टमी उत्सवकी तैयारी चल रही थी। श्रीराधाष्टमीके पूर्वकी बात है, संभवतया चतुर्थी तिथि थी। पू.पोद्दार महाराज आज विशेष भावाविष्ट थे। उन्हें क्या अनुभव हुआ उसे जाननेका साधन तो अन्य किसीके पास था नहीं, किन्तु यह सभीने प्रतिलक्षित किया कि आज प्रातःसे ही श्रीपोद्दार महाराज बहुत ही भाव-विभोर हैं। सायंकालमें जब यह भाव-विभोरता किञ्चित् शमित हुई, उन्होंने अपने ही स्वरचित पदोंमेंसे सोलह पद छाँटे। वैसे, इन पदोंका जो क्रम उन्होंने निर्धारित किया उस निर्धारित क्रमसे अनेक बार इन पदोंमेंसे एक-दो को छोड़कर सभी पदोंको लेखक इसी प्रकार क्रमानुसार गायनकर उन्हें उनके सायंकालीन रसमय सत्संगोंमें सुना चुका था। परन्तु आज उन्होंने इन पदोंमें आठ पद तो प्रेममूर्त्ति प्रियतम श्रीकृष्णके भावोद्गारोंके चयन कर लिये एवं आठ पद प्रेमप्रतिमा श्रीमती राधारानीके भावोद्गारोंके चयन किये। इन पदोंका उन्होंने इस प्रकार चयन किया कि पहले श्रीकृष्णके भावोद्गारका एक पद गाया जावे एवं तब श्रीप्रिया राधारानीके भावोद्गारका एक पदगायन हो। इसके उत्तरमें पुनः श्रीकृष्ण अपने भावोद्गार प्रकट करें और तब श्रीमती राधारानी उन्हें प्रत्युत्तर दें। इस क्रमसे इन सोलहों पदोंका गायन सम्पन्न हो और क्रमानुसार दोनों प्रेमी-प्रेमास्पद अपने-अपने प्रेमोद्गारोंका पारस्परिक आत्मनिवेदन व्यक्त करें। श्रीपोद्दार महाराजका इस प्रकार इन गीतोंको गवानेका उद्देश्य इतना ही था कि श्रोता-समुदाय इस प्रकार विशुद्ध काम-गन्ध-शून्य तत्सुखमयी प्रीतिके अनूठे रूपका कम-से-कम शब्द-परिचय तो प्राप्त कर सकें। पू.पोद्दार महाराज द्वारा समाधि-भाषामें रचित इन काव्यमय प्रेमोद्गारोंमें परस्पर प्रिया-प्रियतमके प्रेमभावका स्तर क्रमशः गहन-से-गहनतर एवं

गहनतर-से-गहनतम होते-होते परमोज्ज्वल प्रीतिके महाभावसे भी परे मोहन-मादनकी स्थितिका प्रकाश करता है। ये सोलह गीत महाभावमय प्रेमकी दुर्लभ अभिव्यक्तियाँ हैं।

पू. पोद्दार महाराजके निर्देशानुसार इन गीतोंका बीसवें वर्षके राधा-जन्म-महोत्सवपर एक विशिष्ट कार्यक्रम आयोजित हुआ। प्रेम-प्रतिमा श्रीराधाका एक अति विशाल चित्र एक स्थानपर खड़ा कर दिया गया तथा कुछ ही दूरीपर हटकर दूसरे स्थानपर प्रेममूर्त्ति श्रीकृष्णका भी वैसा ही एक अति विशाल चित्र खड़ा कर दिया गया।

श्रीराधाजन्माष्टमी महोत्सवपर ब्रजके रासधारी स्वामी श्रीरामजी शर्मा एवं कीर्त्तनिया श्रीहरिवल्लभजी शर्मा प्रायः आया ही करते थे। अतः श्रीरामजी शर्माको श्रीराधारानीके चित्रके पीछे एवं श्रीहरिवल्लभजीको श्रीकृष्णके चित्रके पीछे बैठा दिया गया। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा उन दिनों काष्ठमौनमें थे परन्तु श्रीपोद्दार महाराजने इन दोनों गायकोंका चयन उनके संकेतसे ही किया था। सोलह पदोंमें क्रमानुसार पहले पदका श्रीकृष्णके पीछे आसीन गायकको गायन करना था और तत्पश्चात् इस पदमें कथित प्रेम-निवेदनके प्रत्युत्तरमें श्रीराधारानीके चित्रके पीछे बैठे पार्श्वगायकको दूसरा पद गाकर प्रियतम श्रीकृष्णको प्रत्यत्तर देना था। इसी क्रमसे सोलहों पद गायन किये जाने थे।

निर्धारित समयपर श्रीपोद्दार महाराज पधारे। उनके साथ पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा थे ही। अन्य कार्यक्रम तो पूर्वतः ही प्रारंभ हो चुके थे। विशाल पण्डालमें पैर रखते ही सर्वत्र शान्ति छा गयी। पू.गुरुदेवके साथ पू.पोद्दार महाराजने अपने आसन ग्रहण किये। आश्चर्य था कि जिधर श्रीराधारानीका विशाल चित्र लगा था, उसके पार्श्वमें विराजित थे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा और श्रीपोद्दार महाराजका आसन उस ओर था, जहाँ श्रीकृष्ण भगवान्‌का चित्र लगा था। दोनोंके आसनोंपर बैठते ही कार्यक्रम प्रारंभ होगया। पूर्वप्रदत्त निर्देशोंका ठीक पालन करते हुए गायकोंने अपने-अपने भावानुसार सोलहों पद गायन किये। बेचारे श्रोता तो उस रसावगाहनका भला क्या आनन्द लेते। वे तो इन्हें साधारण पदगायनके समान ही सुन रहे थे। किन्तु पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा, श्रीपोद्दार महाराज एवं श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजी आदि रसिक जनोंके लिये वह झाँकी अभूतपूर्व थी। वैसे, पू.पोद्दार महाराजकी रसमयी पदरचनाका गायन तो लेखकके द्वारा प्रतिवर्ष ही एवं अनेक अवसरोंपर प्रतिदिन ही उनके

सायंकालीन सत्संगमें हुआ करता था, और श्रीपोद्दार महाराजका तन-मन इन गीतोंके लोकोत्तर माधुर्यमें प्रतिदिवस ही सराबोर होता था, परन्तु आजका आनन्द कुछ विशेष ही था।

आज पू.गुरुदेव ऊपरसे तो सर्वजनकी तरह ही बहिर्मुख होकर इन पदोंको सुनते रहे, गायकों द्वारा कोई शब्द अस्पष्ट उच्चारण होनेपर वे कानपर हाथ रख देते थे एवं श्रीपोद्दार महाराज़ तत्क्षण ही उस शब्दका उच्चारणकर उन्हें सही शब्द-पद समझा देते थे। किन्तु भीतरसे पू.गुरुदेव इन पदोंको सुनकर स्तम्भित रह गये थे। हीरेकी परख हीरेका जौहरी ही कर सकता है। पू.गुरुदेव समझ नहीं पा रहे थे कि केवल अनुभवगम्य महाभावराज्यकी अचिन्त्य एवं अनिर्वचनीय स्थितिको कोई कैसे इस प्रकार सरस रीतिसे हिन्दीकी साधारण बोलचालकी सरल भाषामें प्रस्तुत कर सकता है ?

सोलह गीतोंके गायनका कार्यक्रम पूर्ण होगया। अन्य कार्यक्रम भी यथाक्रम सम्पन्न होगये। श्रीराधाष्टमी महोत्सवके सानन्द सम्पन्न हो जानेपर पू. गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजसे कहा—'इन गीतोंके आरंभमें मंगलाचरण रूप युगल प्रिया-प्रियतमकी वन्दना और अन्तमें पुष्पिका सहित आप इसे छपवाकर मुझे सौंप दें।' साथ ही पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने श्रीपोद्दार महाराजसे पद सं. १०में भगवती श्रीराधाकी कथित एक गीतपंक्ति ***'आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान'***में कुछ रसमय परिवर्त्तन चाहा। क्योंकि पू.पोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दोनों ही श्रीराधामाधवके प्रत्यक्ष लीलादर्शी थे अतः पू.पोद्दार महाराजने इस पंक्तिके पाठान्तर के रूपमें पू. श्रीराधाबाबाकी सुझाई हुई पंक्ति —**'आठों पहर सरसते रहते तुम मन- सरवरमें रसवान'** भी षोडशगीत पदसंख्या १० में सम्मिलित करली।

श्रीपोद्दार महाराजने इन सोलह पदोंके प्रारम्भमें पाँच दोहोंकी रचनाकर वन्दनाके रूपमें एवं अन्तमें पाँच दोहे पुष्पिकाके रूपमें जोड़कर पू.गुरुदेवकी इच्छानुसार यह संरचना सम्पूर्ण कर दी। इस गीतरचनाका नाम रखा गया "श्रीराधा-माधव-रस-सुधा"। बादमें इसे गीताप्रेससे प्रकाशित करवा दिया गया। श्रीपोद्दार महाराजने इसका ब्रजभाषामें शब्दार्थ लिखकर इसका अर्थसहित संस्करण भी प्रकाशित करवा दिया ।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा चाहते थे कि इन षोड़श गीतोंका प्रचार घर-घर हो। पू.गुरुदेवकी दृष्टिमें ये सोलह गीत विशुद्ध प्रेमतत्वके प्रकाशक सर्वोत्तम

गीत थे। इन गीतोंमें वर्णित प्रेमके इस आदर्श रूपको अपने सम्मुख रखकर कोई भी प्रेम-पथिक निरापद अपनी साधनामें प्रवृत्त होकर दिव्य भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कर सकता था। अतः वे चाहते थे कि इन गीतोंका घर-घर अधिक-से-अधिक प्रचार हो जिससे जगत् जान सके कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी प्रीति कितनी शुचितम, अनुपम, दिव्य एवं समर्पणमय है।

आगे जाकर तो पू. गुरुदेवने ऐसे साधक निश्चित किये जो इन गीतोंको ही अपनी साधना बनावें और इनका प्रतिदिवस ही मध्य रात्रिमें दो-से-साढ़े चार बजेतक स्वर-ताल सहित गायन करें।

पू.गुरुदेवकी दृष्टिमें मध्यरात्रिके उपरान्त दो बजेसे लेकर ब्राह्म मुहूर्त्त साढ़े चार बजे तककी समयावधि दिव्य बेला होती थी। पू.गुरुदेव कहा करते थे कि इस बेलामें प्रायः महासिद्ध सन्त गुप्तरूपसे विचरण करते हैं और जिन्हें भी एकाग्रमनसे भगवत्स्मरण करता हुआ पाते हैं उन अधिकारी साधकोंपर अपनी समग्र अनुग्रहराशि उँडेल देते हैं।

पू.गुरुदेव चाहते थे कि इस बेलामें कोई उन्हें प्रतिदिवस ही षोडश गीत अथवा ब्रजरसके पद सुनाया करे। उन्होंने इस पावनकार्यके लिये लेखकका चयन किया और उसे उसकी रहनीके कुछ नियम निर्धारित करके दिये। पू.गुरुदेवने इन नियमोंको सोरठा छन्दमें विरचितकर लेखकको काव्यमें निर्देश दिया कि वह इन नियमोंका पालन करता हुआ अन्य सभी कार्य त्यागकर प्रतिदिन इन सोलह गीतोंका गायन करे तथा जो कुछ अयाचित भावसे भगवान् दे दें उससे ही अपनी गृहस्थाश्रमकी नौकाको खेते हुए जीवनयापन करे।

पू.गुरुदेवने लेखकको जो उनकी ही रचित छन्दबद्ध आदेशावलि प्रदान की, वह निम्नांकित है:

प्रस्तुत नटवरलाल यदि जीवनपर्यन्त हों,*
तो तन-मनमें माल महादीनतामय धरें ।।१।।
जगचर्चाको जान मलिन अघासुरसे अधिक,
उसके गरल बयान-गन्धवाहतकसे बचें।।२।।
और पधारें नित्य ठीक दो बजे रातमें।
बाहर ही नैऋत्य कोनेमें इस बाड़के।।३।।

**लेखकका पूर्वाश्रमका नाम*

लीचीतरुकी डालः
ब्रजवनतरुकी डालः
किसी वृक्षकी डालः
नभका तारकजालः छाया दे बैठें वहीं।
छेड़ें तान रसाल फिर केवल ब्रजभावकी।।४।।
सदा धरें यह रीति षोड़शपद हों एक दिन।
तथा यथारुचिप्रीति पद दूसरे दिवस रहें।।५।।
किन्तु रखें यह ख्याल पास न कोई भी रहे।
बैठें भले दयाल-रघुवर बनकर नन्दसुत।।६।।
आयेगा निर्बाध 'यह' तन प्रतिदिन ही वहाँ।
लेकर ऐसी साध नटवरप्रभु व्रत लें नहीं।।७।।
गीत लाडिली रास-विलसित सच है सुनरही।
हो यह दृढ़ विश्वास तो इस पथमें पग धरें ।।८।।
नटवरप्रभुमें एक और सावधानी रहे।
ऊर्मि भावकी फैंक देगी तटपर अन्यथा।।९।।
रखें नहीं दुर्भाव किसी व्यक्तिके प्रति कभी।
सपनेमें भी राव-रंक सभी श्रीकृष्ण हैं।।१०।।
उनका सरस विलास सभी रूपमें व्यक्त है।
क्रन्दन एवं हास टन-बम ढोलक-शब्द हैं।।११।।
स्वरकारी कर वाम-दक्षिण हैं उस एकके।
धरकर अगणित नाम-रूप बजाता है वही।।१२।।

सन् १९६४ ई.से लेकर लगभग सात वर्षोंतक लेखक (साधु कृष्णप्रेम) पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके पास छायावत् रहा एवं बिना किसी व्यवधानके नित्य-निरन्तर सर्दी-गर्मी-वर्षा सभी ऋतुओंमें लीची तरुके नीचे निष्ठापूर्वक अकेले बैठकर निशान्तबेलामें पू.गुरुदेवको षोडशगीत सुनाता रहा। तदुपरान्त लेखकने संन्यास ग्रहण कर लिया। लेखककी निष्ठासे प्रेरणा लेकर अनेक स्थानोंमें आज भी इस दिव्य बेलामें कुछ साधकगण अढाई घण्टे षोडशगीतोंका गायन अथवा पाठ करते हैं।

षोडश गीतोंका प्रचार

षोडश गीतोंके प्रचारके लिये 'षोडश-गीत-प्रचार-समिति' नामक एक संस्था विधिवत् स्थापित की गयी। इस समितिका प्रयास था कि अधिक- से-अधिक संख्यामें लोग षोडश गीतोंके नित्य पाठका नियम लें। इन्हें अपनी नित्य साधनाकी वस्तु बनावें। पाठ चाहे सम्पूर्ण पदोंका हो अथवा मात्र दो पदोंका ही हो, किन्तु रस-साधनाके प्रेमी साधकोंको नित्य पाठका नियम दिलाना ही समितिका लक्ष्य था। अनेक भक्त बादमें श्रीपोद्दार महाराजके दिवंगत होनेके पश्चात् उनकी समाधि (चितास्थली) के पास प्रतिदिवस सायंकाल साढ़े पाँच बजेसे सवा छः बजेतक एक साथ बैठकर समवेत स्वरमें इन सम्पूर्ण गीतोंका पाठ करते थे।

षोडश गीतोंके प्रचारके लिये पू.गुरुदेवने अनेक कार्यक्रम अपनाये। भारतके कोने-कोनेमें षोड़श गीत पहुँच जावें इसके लिये पू.गुरुदेवने अनेक विद्वानों द्वारा इन गीतोंका अनेक भाषाओंमें अनुवाद कराया। संस्कृत, उड़िया, तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, सिन्धी, उर्दू आदि अनेक भाषाओंमें षोडश गीतोंका अनुवाद तो हुआ ही, साथ ही अनेक विदेशी भाषाओं जैसे अँग्रेजी, जर्मन, फ्रेन्च तथा रशियन भाषाओंमें भी इन गीतोंका अनुवाद कराया गया। इस प्रकार पू.गुरुदेव द्वारा भारतकी सीमाके बाहर भी ये गीत प्रचारित हों – इसकी व्यवस्था की गयी। इन गीतोंका संस्कृत भाषामें पद्यात्मक अनुवाद भी किया गया, जिससे हिन्दी भाषाभाषी जो संस्कृत सभझते हैं, वे इन गीतोंका गायनकर अपनेको प्रीतिरसकी मधुधारामें बहा सकें।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी इस परम निष्काम एवं पवित्र भावनाका भारतके अन्दर एवं बाहर पर्याप्त सम्मान हुआ। श्रीजगन्नाथपुरीके मुख्य मन्दिरमें मुख्यद्वारके पास ही इन गीतोंको एक दीवारमें संगमरमरमें अंकितकर जड़ित कराया गया। बृन्दावनधाममें भी श्रीराधारमण मन्दिरमें इनका अंकन संगमरमरमें होकर इन्हें विजड़ित किया गया।

विदेशी भाषाओंमें हुए अनुवादका भारतके बाहर भी सम्मान हुआ। अमेरिकामें कैलिफोर्नियाके दि फ्री कम्यूनियन चर्चके ईसाई मतावलम्बी बन्धु स्वयं प्रेरणासे षोडशगीतोंके अंग्रेजी अनुवादको अपनी उपासनामें प्रयोग करने लगे। इन ईसाई बन्धुओंने षोडशगीतके रचयिताके जीवनके बारेमें जिज्ञासा व्यक्त की एवं श्रीपोद्दार महाराजके 'गोपीप्रेम' नामक पुस्तकके अंग्रेजी अनुवादकी अमेरिकामें मुद्रणकी अनुमति भी चाही। इसी प्रकार जर्मनीके एक प्रकाशकने अपने देश जर्मनीमें ही षोडश गीतके जर्मन अनुवादको पुनः मुद्रित किया।

पू.गुरुदेवरचित अनुपम लीला--नाटिकाएँ

नौवाँ अध्याय

तात्पर्य-प्रकाशिका भूमिका

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा लिखित उनकी अनुभूतिकी ये लीलाएँ— . अनुराग-परीक्षा लीला, कुन्दवल्ली भावलीला एवं श्रीराधा-मनोरथकी लीलाएँ (दो से छः तक) जो यहाँ प्रेमसाधकोंके मार्ग-दर्शनके लिये प्रस्तुत की जारही हैं, वस्तुतः अप्राकृत क्षेत्रमें, अप्राकृत मन-बुद्धि एवं शरीरसे अप्राकृत पात्रोंमें हुई हैं।

ये लीलाएँ पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने सार्वजनिक की भी नहीं थीं। ये परम दिव्य लीलाएँ तो वस्तुतः उन्होंने, इन लीलाओंको अपना जीवन बनानेवाली पू. श्रीपोद्दार महाराजकी आहूत-कामकी सन्तान, सन्तोपम निर्मल चरित्रवाली अ. सौ. सावित्रीबाईको ही प्रदान की थीं और ये अबतक उनकी ही निजी साधन-सम्पत्ति मात्र रही हैं। पू.पोद्दार महाराज अपनी गुणातीत, मायातीत वस्तुस्थितिको सदैव गोपन ही रखते रहे; उनमें जो चिन्मय अप्राकृत भावदेहका प्रकाश हुआ, वह उन्होंने मायिक बहिर्जगत्में तो अप्रकाशित रखा ही, सर्वोच्च आत्मज्ञान-स्थितिसम्पन्न महासिद्ध श्रीजयदयालजी गोयन्दका जैसे सन्तों एवं उनके अनुयायी-प्रमुख स्वामी रामसुखदासजी महाराज एवं अन्य सहयोगियोंको भी उसकी झलक अपनी स्वजन-मनोमोहिनी मायासे ढँके रखकर नहीं देखने दी। मैंने अपने पूर्वाश्रमके मामा श्रद्धास्पद श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके मुखसे अनेक बार सुना है कि श्रीपोद्दार महाराजके यावज्जीवन सहचर एवं दाहिने हाथकी तरह सहयोगी रहते हुए भी वे उन्हें यथार्थरूपमें पहचाननेमें असमर्थ ही रहे।

हाँ, पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा अवश्य पू.पोद्दार महाराजके एकमेव ऐसे सर्वोच्च सुयोग्य शिष्य रहे, जो उनकी मायातीत वस्तुस्थितिसे सदैव अपरोक्ष रहे, उन्होंने ही अपना दीपक धू-धूकर जलती उस महाभावाग्निसे प्रज्ज्वलित कर लिया, और उस अभूतपूर्व पारसका निरावरण संस्पर्श पाकर स्वयं पारस होगये। श्रीपोद्दार महाराज तो अनेकों बार उनपर भी अपनी स्वजन-मनोमोहिनी मायाका प्रहार करते नहीं चूकते थे, अनेकों बार उन्होंने उनके सम्मुख ऐसा निर्लज्ज प्रदर्शन किया भी, जिससे उन्हें ऐसा निश्चय हो जावे कि वे

मोह-लोभसे भरे मायासक्त जीव मात्र हैं। परन्तु एकमेव पू. गुरुदेव ही ऐसे थे जो श्रीपोद्दार महाराजके इन मायिक वस्त्रोंका हरण कर लेते थे, और उन्हें अपने इस एकमेव शिष्यके सम्मुख निरावरित, विवस्त्र अपने विशुद्ध गोपीजनवल्लभ स्वरूपमें प्रकट होना ही पड़ता था। पू.गुरुदेवके सम्मुख इन चतुर्भुज नारायणके सायुध चारों हाथ बिना चाहे ही विलीन हो जाते थे, और उनका परम रसमय वंशीविभूषित, गोपी-चितचोर, द्विभुज रूप साक्षात् प्रकट हो उठता था।

अ.सौ. सावित्रीबाईको भी अपने सुयोग्य पिताश्रीकी यह आत्मगोपन स्वभाव-निधि दायभाक् रूपमें मिली है। वह संसारके सम्मुख अपनेको जिस मायामय रूपमें रख रही है, वस्तुतः वह उसकी सच्ची स्वरूपावस्था है नहीं। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा मुझ हीनमति, अश्रद्धालु, अपने कृपापात्रके सामने यदा-कदा जैसे श्रीपोद्दार महाराजका स्वरूप प्रकाश कर बैठते थे, और मैं उन प्रीति-महाकाशचारी वैनतेयकी उच्चतम उडानका अनुमान लगाकर चकित, विस्फारितनेत्र हो उठता था, इसी भाँति वे अनेकों बार मेरी इस धर्मभगिनी – अ.सौ.सावित्रीबाईके निर्मलतम तत्सुखभावापन्न आन्तरिक चरित्रका भी प्रकाश कर देते थे, जिसे सुनकर मैं इस देवीके आत्म-बलिदानपर मुग्ध हो उठता था।

सत्यांशमें यह गोपीचरित्र बड़ा विलक्षण है। यहाँ त्यागकी पराकाष्ठा – त्यागका भी त्याग है। त्यागके भी त्यागको तो सामान्य जन भोग ही समझेंगे। त्यागका त्याग स्वभोगके लिये ही होता है, परन्तु गोपीका स्वभोग निजेन्द्रियतृप्तिके लिये नहीं होकर, अपने प्रियतमके सुखके लिये होता है। इसे पहचानना साधारण जनके लिये असंभव है।

इसीलिये यह निवेदन करना पड़ रहा है कि ये तीनों लीलाएँ अवश्य तर्कशील व्यक्तियोंको भ्रमित कर देनेवाली हो सकती हैं। मैं तो सर्वथा विषयभोगासक्त, पामर प्राणी हूँ, किन्तु मेरे श्रद्धालु मनने इन लीलाओंके सम्बन्ध में, इनकी दिव्य मंगलमयताके पक्षमें मात्र इतना ही सम्बल सँजो रखा है कि यदि ये लीलाएँ काम-प्रतिपादक, इन्द्रियभोगजन्य काम-संवर्धक होतीं तो सदा मायातीत अवस्थामें विहार करनेवाले, अपने प्राण-शरीर-मन-बुद्धिको सहज प्रेमसमाधिमें डुबोये रखनेवाले श्रीकृष्णाराम-मुनि – मेरे पू.गुरुदेवके द्वारा ये कदापि रचित नहीं होतीं। किसी तार्किक अश्रद्धालुका मुख बन्द करना तो मेरे वशकी बात नहीं है, परन्तु पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा अपनी मूर्धन्य कृपापात्रा पू.पोद्दार महाराजकी पुत्रीको इन लीलाओंका प्रदान यही प्रमाणित कर रहा है

कि ये लीलाएँ परम पारमार्थिक सत्य हैं, एवं भगवान्‌के अप्राकृत लीला-विग्रहोंके मध्य घटी चिन्मय रसमंत्रमयी श्रुतियाँ हैं। ये लीलाएँ काम-रोगनाशकी अमोघ औषधियाँ हैं।

इन लीलाओंको पढ़नेके पूर्व यह ठीक समझ रखनी चाहिये कि परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण अपने निजानन्दको परिस्फुट करनेके लिये, साथ ही उसका नवीन-नवीन रूपमें आस्वादन करने-करानेके लिये ही स्वयं प्रेम-विग्रहोंके रूपमें प्रकट होते हैं। वे स्वयं ही इन प्रेमविग्रहोंसे आनन्दका आस्वादन करते हैं। परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्णके आनन्दकी प्रतिमूर्त्ति जैसे प्रेमविग्रहरूपा मैया यशोदा, मैया कीर्त्तिदा एवं स्वयं श्रीराधारानी हैं, वैसे ही उनके ही आनन्दकी प्रतिमूर्त्ति वृद्धा – श्रीराधारानीकी सास जटिला भी हैं, उनकी ननद कुटिला भी हैं। इस वृद्धाके पुत्रयुगल – रायण एवं दुर्मद गोप भी अन्य कोई नहीं, श्रीकृष्णके कायव्यूहरूप ही हैं। इन रायण एवं दुर्मद गोपकी सत्ता परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्णसे भिन्न कहीं कुछ भी नहीं है। श्रीराधा एवं राधानुजा मंजुश्यामाको तो वे अधिकांशतया दिखते ही नहीं, उनके स्थानपर ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही दिखते हैं।

ब्रह्मा-मोहनलीलाकी एक वर्षकी अवधिमें जब श्रीकृष्ण स्वयं ही समग्र गोप सखाओंके रूपमें परिणत हुए थे, उस समय उनकी ही परिणति रायण एवं दुर्मद गोपके रूपमें भी हुई थी, और इसी एक वर्षके कालमें ही राधा एवं राधानुजाका विवाह भी इनके साथ सम्पन्न हुआ था।

कोई यहाँ यह प्रश्न कर सकता है कि नित्य आनन्दमय, नित्य तृप्त, नित्य एकरस, पूर्णब्रह्म परमात्मामेंसे इस प्रकारकी प्राकृत संसारकी तरहकी रागद्वेषमयी, काममयी वृत्तियाँ एवं सीमित सुखेच्छा कैसे व्यक्त हो सकती हैं ? यह प्रश्न युक्तिसंगत प्रतीत होने पर भी इसे सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। भाव और प्रेम परमात्मासे पृथक् कदापि नहीं हैं। प्रेमिका-आश्रयालंबनका भाव प्रेमी-विषयालम्बनमें और प्रेमी-विषयालम्बनका भाव प्रेमिका-आश्रयालम्बनमें प्रतिबिम्बित होता ही है। जब ये राधादि गोपांगनाएँ जो कोटि-कोटि कन्दर्प-कमनीय-सुन्दर भगवान् श्रीकृष्णकी स्वरूपाशक्तियाँ हैं, अपने प्रियतमको कोटि-कोटि आत्माओंसे भी अधिक प्रिय मानकर कान्तवत् सेवा-उपासना करती हैं, तो माधुर्य-सौन्दर्य-सुधा-रस-समुद्र, अनन्त परमानन्दोदधि, चित्-स्वरूप, भगवान्

श्रीकृष्णको यह उनकी स्वरूपा शक्तियोंका प्रेम, रसानन्दमय विहार, अपने स्वरूपानन्दसे भी बढ़कर लगे, और उन्हें इस परिच्छिन्न रसमें डूबनेको बाध्य कर दे, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? राधा एवं राधानुजा मंजुश्यामाके प्रति श्रीकृष्णका रमणवत् आकर्षण उनकी स्वरूपभूता, चिच्छक्ति, अघटनघटनापटीयसी योगमाया द्वारा उनके अनन्तानन्त ज्ञानैश्वर्यको आवृत करनेपर ही संभव होता है। ये राधामुख्या गोपांगनाएँ, एवं चन्द्रावली आदि विपक्षगत यूथेश्वरियाँ इस श्रीकृष्ण-लीला-विटपकी शाखा स्वरूपा हैं। इन सबके प्रेमानुरूप नित्य-नव-असमोर्ध्व सौन्दर्य-माधुर्य-लीला-विलासका वर्णन, जो इन नाटिकाओंमें है, इसका उद्गम, अभ्युदय एवं विस्तार – सभी हानि-ग्लानिको भूलकर प्रियतम श्रीकृष्णके द्वारा ही होता है।

यहाँ यह प्रश्न भी उठता है कि नित्य परिपूर्णतम, ज्ञानस्वरूप, भगवान् श्रीकृष्णको भी क्या कोई उनकी स्वरूपभूता ईश्वरता, असमोर्ध्व, आनन्दपूर्ण संतृप्तिसे आवृतकर, साधारण नरकी तरह नारी-रूप-तृष्णातुर बना सकता है? और बना सकता है तो वह ईश्वरसे बड़ा, भगवान्से भी महान् कौन है ? और यदि श्रीकृष्णका ऐश्वर्य-ज्ञान, आनन्द भी छिन्न किया जा सकता है तो वे श्रीकृष्ण क्या वस्तुतः पूर्णज्ञान-ऐश्वर्य-शक्तिरूप भगवान् हैं ? इसका उत्तर यही है कि भगवान्के परम ज्ञानस्वरूप ऐश्वर्यको, उनकी भगवत्ताको कोई भी आवृत नहीं कर सकता; परन्तु मायावृत्ति अविद्या जैसे जीवको संसार-बन्धनमें फँसाकर दुःखका, कामका, पराधीनताका एवं बन्धनका अनुभव करानेके लिये जीवके ज्ञानको आवृत कर लेती है, और जैसे त्रिगुणातीत-दशाप्राप्त भक्त-शिरोमणि नन्द-यशोदा, श्रीबृषभानु-कीर्त्तिदा आदि ब्रज-परिकरोंको श्रीकृष्ण एवं राधाकी वात्सल्य-रसभावित बाललीलाका आस्वादन करानेके लिये चित् शक्तिकी वृत्ति– योगमाया उनके ज्ञानको आवृत कर रखती है, ठीक वैसे ही स्वयं श्रीकृष्णको भी उनके स्वरूपानन्दसे बहुत बढ़े हुए उच्छलित आनन्दातिशय प्रेमरसका अनुभव करानेके लिये उन्हींकी स्वरूपभूत इच्छासे, उन्हींकी अपनी चिच्छक्तिकी सारवृत्ति – प्रीति उनके ऐश्वर्य-ज्ञान एवं अपरिच्छिन्न आनन्द-स्वरूपताको आवृत कर लेती है। जैसे जीवका 'काम' उसके देहसे ही बननेवाले विकार – रज -वीर्यादि धातुओंकी उत्पत्तिके कारण होता है, वह जीव-देहका स्वरूप-विकार है, ठीक इसी प्रकार 'प्रेम' भी श्रीकृष्णकी अपनी ही स्वरूपाशक्ति – आनन्द,

आह्लादिनीशक्तिका सार है। श्रीमञ्जुश्यामा, श्रीराधा, श्रीचन्द्रावली, श्रीकुन्दवल्ली आदि सभी सखियाँ जिनका इन लीलाओंमें उल्लेख है, वे परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी अपनी ही लीलामयी परम अन्तरंगा स्वरूपाशक्तियाँ हैं, अतएव उनके प्रति प्रकट श्रीकृष्णका प्रेमाकर्षण चाहे वह दुर्मदका रूप रखकर ही हो, अथवा स्वयंके द्वारा हो, न तो दोषरूप ही है और न ही इससे उनकी भगवत्तामें ही कहीं कोई बाधा आती है। यह उनकी अपनी प्रेमलीला है और भगवल्लीला उन लीला-पुरुषोत्तम भगवान्से भिन्न कदापि नहीं हो सकती। लीला एवं लीलामयमें स्वरूपतः विशुद्ध अभेद ही दार्शनिक मत है।

यहाँ एक प्रश्न और उठता है। भगवान् श्रीकृष्णमें यह बहुनायकत्व क्यों ? जब यह कहा जाता है कि स्वसुख-वाञ्छाहीन, काम-गन्धरहित, विशुद्ध राधा-प्रेम ही अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण माधुरीको पूर्णरूपेण आस्वादन करता है, फिर परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्णमें अन्य नायिकाओंके प्रति सुखेच्छा क्यों ? जिन श्रीराधामें श्रीकृष्ण-प्रेयसी-जनोचित सम्पूर्ण गुणोंका उद्भव एवं सर्वोच्च विकास है; जिन श्रीराधाकी दिव्य गुणावली ही समस्त विशुद्ध प्रेममयी श्रीकृष्ण-प्रेयसियोंके मधुर निर्मल सद्गुणोंकी मूल है, जिनकी छायारूपा शक्तियाँ ही वैकुण्ठमें लक्ष्मी, कैलासमें पार्वती, ब्रह्मलोकमें ब्रह्माणी, एवं साकेतमें सीताजी हैं; और इन सब छायारूपा शक्तियोंकी भी चरणधूलि प्राप्त करनेके लिये भगवत्स्वरूप महान् देवता, ज्ञानी-विज्ञानी, ऋषि-मुनि नित्य लालायित रहते हैं; जो इतनी सुन्दरी हैं कि महालक्ष्मी, पार्वती एवं ब्रह्माणी भी जिनके सौन्दर्यको देखकर ललचाती हैं; उन रसरूप प्रेमकी परम सार श्रीराधारानीकी उपेक्षाकर, उनके हृदयको बेधकर, उन्हें मानवती करके, श्रीकृष्ण अन्य नायिकाओंके साथ क्यों रमण करते हैं ? अन्य नायिकाओंके प्रति उनके आकर्षणका हेतु क्या है? श्रीकृष्णकी यह बहुनायकवृत्ति **'श्रीराधामनोरथकी दूसरी लीला'**में तो इतनी अभिवृद्ध दिखाई देती है कि वे श्रीराधारानीकी उपस्थितिमें ही, उनके साथ शयन करते-करते ही उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामाके प्रति आकृष्ट होते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके विशुद्ध चिन्मय आनन्दरसमें यह प्रेम-वैचित्र्य क्यों ?

वैसे ये प्रश्न स्वाभाविक हैं और अनेक प्रेम-साधकोंके चित्तको मथित भी करते हैं, किन्तु ऐसे सभी प्रश्न मात्र श्रीराधारानीके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नहीं होनेसे ही उठते हैं। हम प्राकृत प्राणियोंमें प्राकृत भाव इतना प्रबल है कि

हम रसिक सिद्ध सन्तों द्वारा बहुत तत्त्वमयी वार्त्ताएँ सुनकर भी एवं श्रद्धासहित उस तत्त्वको स्वीकारकरके भी फिर प्रवाहमें पडकर उसे अमान्य कर बैठते हैं।

हम तनिक विचार करें – हमारे शास्त्र बताते हैं कि परिपूर्णतम परमात्मा, परात्पर, परब्रह्म सच्चिदानन्दघन, निखिल ऐश्वर्य-सौन्दर्य-माधुर्यके सागर, आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराममें कोई भेद नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण ही राम हैं, विष्णु हैं, नारायण हैं, शिव है, सम्पूर्ण अवतार भी हैं और अवतारी भी हैं। फिर जहाँ राम पूर्णतया एकपत्नीव्रती रहे, भगवान् नारायणने मात्र एक लक्ष्मीजीको ही अपने चरणोंमें स्थान दिया तो श्रीकृष्ण बहुनायक, लम्पट, सर्वत्र मन डिगानेवाले हो ही कैसे सकते हैं ? जो राम सीताजीका वेष धारणकर छलनेके लिये खड़ी भगवती सतीको भी पहचानकर उन्हें –'हे माते !' कहकर सम्बोधित करते हैं, वे राम ही जब श्रीकृष्ण हैं तो वे ब्रजकी प्रत्येक गोपीके प्रति इतने आसक्त क्यों हो उठते हैं ? इसकी पृष्ठभूमिमें जो तत्त्व है, उसपर तनिक विचार करें ।

प्रस्तुत नाटकोंमें तो मात्र राधा, राधानुजा मञ्जुश्यामा, चन्द्रावली एवं कुन्दवल्ली आदि कतिपय गोपियोंके प्रति ही श्रीकृष्णके आकर्षित होनेकी कथा आयी है, किन्तु वस्तुतः सत्य यह है कि ह्लादिनीशक्ति श्रीमती राधारानीकी लाखों ही नहीं, अनन्त कोटि अनुगामिनी शक्तियाँ हैं जो मूर्त्तिमती होकर प्रतिक्षण सखी, मञ्जरी, सहचरी, दूती, यूथेश्वरियों आदि रूपोंमें श्रीकृष्णको समाकर्षित करती हैं, और अपने-अपने प्रेमके उच्च भावसे पूर्णकाम, रसराज श्रीकृष्णमें कामना, नित्यतृप्त परात्पर परब्रह्ममें अतृप्ति सुखस्वरूपमें सुखेच्छाकी तृष्णा, क्रियाहीन निष्क्रियमें रीझनेकी क्रिया और स्वरूपतः घन आनन्द, मात्र आनन्द, केवल आनन्द, आनन्द-ही-आनन्दमें आनन्द-भोगकी वासना जाग्रत् कर देती है। हमारी भूल यही है कि हम श्रीकृष्णको इन्द्रियजन्य वासनाभिभूत मान ले रहे हैं। किन्तु हमें यह सदैव ध्यान रखना चाहिये कि न तो यह प्रेमराज्य मर्त्य जगत् ही है, एवं न ही श्रीकृष्ण मायामय पंचभूतात्मक मलिन मल-मांस-रक्तसे निर्मित विकारी मानव ही हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने अपना यह सिद्धान्त घोषित किया है– ***'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'*** (जो मुझको जैसे भजता है, उसे मैं वैसे ही भजता हूँ।) किन्तु यहाँ कठिनाई यही है कि न तो यहाँ राधामें कोई कामना है, न

राधानुजा मञ्जुश्यामामें, न चन्द्रावलीमें, न ही कुन्दवल्लीमें। इन सभीको एक ही कामना है कि श्रीकृष्ण किसी भी प्रकार इनके द्वारा सुखी हों। अब श्रीकृष्ण जब इस कामनाकी पूर्त्ति करने चलते हैं तो उन्हें अपने स्वरूपानन्द, आत्म-संतृप्ति, घन निष्काम आत्मस्वरूपतासे हटना ही पड़ता है। इन सभी राधामुख्या गोपीजनोंने अपना सर्वस्व, लोक, धर्म, वेद, कुलमर्यादा त्यागकर, श्रीकृष्णको ही अपना प्रियतम मानकर, अपना तन, मन, चित्त, आत्मा एवं सर्वेन्द्रियाँ ही उन्हें अर्पित कर दी हैं, तो उन्हें अपना चित्त अनेक गोपियोंमें प्रेमयुक्त होकर बाँटना ही पड़ता है।

कठिनाई यही है कि श्रीराधारानीका प्रेम तो चिच्छक्तिकी वृत्ति होनेसे पूर्ण एवं अनन्त है। उनका प्रेम अनन्त होनेसे वे अनन्तभावा, अनन्त कायव्यूहरूपा गोपियोंके रूपमें अपनेको विभक्त करके अपने एकमेव प्रियतमके सुखदान करने हेतु उमड़ती हैं, समुत्सुक होती हैं। श्रीराधारानी तो अनन्त नाम-रूपोंमें अपनेको अभिव्यक्त करके, अनन्य भावसे इन प्रियतमकी सुख-उपासना कर लेती हैं, परन्तु प्रियतम श्रीकृष्णको तो अनन्त राधा-कायव्यूहरूपा गोपियोंसे सुख लेना होता है। श्रीराधा जहाँ भोग्या हैं, एकमेव श्रीकृष्णके प्रति ही प्रेमयुक्त एवं अखण्ड भावमयी हैं, वहाँ श्रीकृष्णको तो अपनी एकमेव प्रिया राधाके ही अनन्त नाम-रूप--भाव धारण किये अनन्त कायव्यूहस्वरूपोंको प्रेमदान करना होता है; उनको सुखी करनेके लिये उनके प्रति अपनी पूर्ण प्रेमासक्ति प्रकट करनी ही होती है। उनकी सर्वेन्द्रिय सेवा भी स्वीकार करनी होती है, अतः उन्हें खण्ड-खण्ड विभक्त होकर उन सबके प्रति अपनी प्रेमकामना, अपनी सुख-लालसा व्यक्त करनेके सिवा अन्य कोई उपाय ही नहीं रहता।

वस्तुतः जैसे श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण अभिन्न हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण एवं राधानुजा मञ्जुश्यामा भी तो अभिन्न हैं। श्रीराधा एवं राधानुजा तो मात्र एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। स्वयं श्रीकृष्ण ही तो छायारूपमें गोष्ठमें अपनी प्रियाकी सेवा करनेके लिये मञ्जुश्यामा रूपमें कीर्त्तिदाकी कोखसे जन्म ग्रहण करते हैं। अतः श्रीकृष्ण यदि अपने ही नारीस्वरूपपर मुग्ध होकर अपने आपका ही सौन्दर्यास्वादन करनेको आतुर हो उठते हैं तो इसमें कौनसा कालुष्य है ?

देख रूप निज हुए चमत्कृत मोहन मन्मथ-मन्मथ श्याम।
जाग उठा तुरन्त ही मनमें निज सौन्दर्यास्वादन-काम।।

यहाँ यह ध्यान रखनेकी वस्तु है कि काम सदैव परायेसे होता है,

जबकि प्रेम तो अपने आपसे ही होना संभव है। प्रेममें परत्व संभव ही नहीं। श्रीकृष्णमें कामाकर्षण तो संभव ही नहीं, क्योंकि उनसे पर, अन्य, भिन्न कोई है नहीं, हुआ नहीं, एवं होगा भी नहीं। उनमें तो मात्र प्रेमाकर्षण ही संभव है, और वह प्रेमाकर्षण उनका उनकी स्वयंकी स्वरूपाशक्तियों–आह्लादिनीप्रधान राधाकी कायव्यूहरूपा गोपांगनाओंके प्रति हो तो इससे एकपत्नीव्रती होनेमें कहाँ कमी होती है ? यह भला, प्रेम कालुष्य है या प्रेमवैशिष्ट्य है ?

भगवत्स्वरूपा श्रीराधिकाजी एवं इन गोपियोंकी महिमा तथा उनके स्वरूपको बतानेवाला ऋग्वेदका एक 'राधिकोपनिषद्' है उसका भावार्थ नीचे दिया जा रहा है –

'ऊर्ध्वरेता सनकादि ऋषियोंने भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना करके उनसे पूछा – हे प्रभो ! हमारी जिज्ञासा है कि परम देवता कौन है ? उन परम देवताकी शक्तियाँ कितनी हैं और इनमें सर्वश्रेष्ठ शक्ति कौनसी है ? इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने कहा –" भगवान् श्रीकृष्ण ही परम देव हैं। इसीलिये उन्हें भगवान्, छहों ऐश्वर्यों – ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, ज्ञान एवं वैराग्यसे परिपूर्ण माना जाता है। गोप-गोपियाँ उनका सेवन करती हैं, बृन्दावनके वे स्वामी हैं, वे ही एकमात्र परमेश्वर हैं। उन श्रीकृष्णकी ह्लादिनी, संधिनी, ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि अनेकों शक्तियाँ हैं। इनमें ह्लादिनीशक्ति राधा सर्वश्रेष्ठ हैं। ब्रजकी समस्त गोपियाँ, द्वारकालीलामें श्रीकृष्णकी पटरानियाँ और लक्ष्मीजी इन्हीं श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा हैं। श्रीराधा अपनी अनन्त कायव्यूहरूपा शक्तियों सहित अनन्त नाम एवं रूपोंमें रससागर श्रीकृष्णसे एकशरीर होकर रहती हैं और उनकी प्रेमाराधना करती हैं। ये लीलामात्रके लिये ही दो एवं अनेक होते हैं। ये श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी ईश्वरी हैं, उनके प्राणोंकी अधिष्ठातृ हैं। इन श्रीकृष्णकी संधिनीशक्ति लीलाजगत् बृन्दावनरूपा हैं और उनकी ज्ञान, क्रिया एवं इच्छाशक्ति ही अघटनघटनापटीयसी योगमाया हैं।'

कहनेका इतना ही अर्थ है कि श्रीकृष्णके राधा एवं गोपियोंके प्रति इस प्रणयभावको समझनेके लिये इनके सभीके स्वरूपतत्वपर विचार करना चाहिये। हमें यह सदैव ध्यान रखना चाहिये कि यहाँ ब्रजमें प्राकृत नर-नारीका कामाकर्षण प्रवेश ही नहीं कर सकता है, यह तो परात्पर परतत्व भगवान् श्रीकृष्णका गोपीरूपमें स्वयंसे ही रस-विलास है, रसास्वादन है।

श्रीकृष्ण चाहे राधानुजा मञ्जुश्यामाके प्रति आकर्षित हों, चाहे चन्द्रावली, शैव्या – किसीके भी रूपपर रीझें, वह आसक्ति उनके स्वयंके ही रूपपर उनकी स्वयंकी आसक्ति है। ब्रजलीलाका कोई भी पात्र श्रीकृष्णसे पर है ही नहीं, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णसे ब्रजमें कहीं कोई पर हो ही नहीं सकता। सम्पूर्ण परत्व तो प्राकृत मायाराज्यमें ही उपलब्ध होता है। इस लीलाराज्यके शब्दकोशमें 'परत्व' शब्द प्रवेश ही नहीं कर सकता।

परकीयाभावका रहस्य

यही स्पष्टीकरण परकीयाभावके सम्बन्धमें भी है। गोपीभावका उद्गम ही प्रेम है। प्रेम भिन्नसे हो ही नहीं सकता, वह तो मात्र स्वरूप-रस-विलास, स्वरूप-रस-वितरण, स्वरूप-रमण, स्वरूप-प्रेमनर्त्तन मात्र है।

प्रेमका मूल मंत्र है –

आवयोर्बुद्धिभेदं च यः करोति नराधमः।
तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।

जो नराधम श्रीकृष्ण एवं गोपियोंमें भिन्नता एवं भेद देखता है, अथवा समझता है, वह अज्ञानी है और जबतक सूर्य, चन्द्र रहेंगे, वह दुष्ट कालचक्रमें आवागमन करता रहेगा। वस्तुतः यह भेदबुद्धि ही कालसूत्र नामक नरक है।

हमारी घोर तमोमयी भेददृष्टि ही हमें कालसूत्रमें डालनेवाली, काल-प्रवाहमें बहानेवाली है। हमारी भेद देखनेकी आँख इतनी प्रबल है कि हम प्राकृत जगत्में तो सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, आकाशादि पंचतत्वोंसे उत्पन्न होनेपर भी उनसे स्वयंको भिन्न मानते ही हैं, परमात्मासे भी, जो हमारा आत्मीय-से-आत्मीय – अपना आपा ही है, उससे भी अपनेको अपरिचित, पृथक्, दूर, अनजाना अनुभव करते हैं।

परमात्मीयता परमात्माका स्वरूपभूत स्वभाव है। जैसे परमात्मासे उसके ऐश्वर्यको दूर किया ही नहीं जा सकता, वैसे ही उसकी आत्मीयता, प्रेम, आनन्दको भी उससे दूर नहीं किया जा सकता। आनन्द एवं प्रेम परमात्माकी स्वरूपभूत शक्तियाँ हैं। आनन्द एवं प्रेम ही मूर्त्तिमान् हुआ श्रीराधाका विग्रह है। प्रेम ही, आनन्द ही अपनी अनन्त भावशक्तियोंमें लहराता हुआ गोपीरूपमें प्रकट हुआ है। गोपियाँ श्रीकृष्णसे भिन्न कैसे हो सकती हैं ? गोपी श्रीकृष्णकी परकीय हो ही नहीं सकतीं। किरण सूर्यसे, शब्द आकाशसे, स्पर्श वायुसे, रस जलसे, गन्ध पृथ्वीसे भले ही पृथक् हो जाय, परमात्मा अपनी आनन्द

शक्तियोंसे कैसे पृथक् होंगे ? यह आनन्द तत्व ही परमात्माका अनन्त माधुर्य है।

भगवल्लीला विलक्षण है। यह लीलाकी विलक्षणता ही है कि लीलावतारोंमें, किन्हींमें ऐश्वर्य प्रधानभाव हो जाता है और अन्य सौन्दर्य, माधुर्य आदि गौण हो जाते हैं। इन ऐश्वर्यविशिष्ट अवतारोंमें धर्म-ज्ञान-वैराग्यादि सभी पूर्णतया विद्यमान रहते हुए भी छिपे, अप्रकट रहते हैं। ये सभी गुण यद्यपि भगवान्के स्वरूपगत हैं, भगवान् इनसे शून्य कभी नहीं होते, फिर भी इन लीलावतारोंमें लीलानुसार किसीमें एककी प्रधानता हो जाती है एवं अन्य अप्रकाशित – छिप जाते हैं।

जैसे भगवान् कपिलके अवतारके समय ज्ञान, धर्म एवं वैराग्यकी प्रधानता रही, किन्तु बल, ऐश्वर्यादि गुण उनमें नित्य वर्त्तमान होते हुए भी अप्रकाशित रहे। इसी प्रकार परशुराम अवतारके समय केवल बलकी प्रधानता रही, सौन्दर्यादि गुण छिपे रहे। मत्स्यावतारके समय मात्र भगवान्की अनन्त धारणाशक्ति ही प्रधान रही, उनके शेष ज्ञान-वैराग्यादि स्वरूपगत गुण छिपे रहे। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामें यद्यपि भगवान्के सभी स्वरूपगत गुण समय-समयपर प्रकाशित होते रहते हैं, फिर भी कभी ऐश्वर्य व्यक्त होता है तथा उसके साथ माधुर्य भी रहता है, कभी माधुर्य प्रधानभाव हो जाता है तो ऐश्वर्य लुप्त हो जाता है; कहीं कहीं केवल माधुर्य-ही-माधुर्य पूरा छाया रहता है। वहाँ ऐश्वर्य, ज्ञान, धर्म आदि सभी गुण ढूँढे भी नहीं मिलते। बृन्दावनकी मधुर लीलामें बृन्दावनके विविध भावसम्पन्न प्रेमीजनोंको श्रीकृष्णके विविध रूपोंमें केवल अनन्त माधुर्यका ही अनुभव होता है, उनके सम्मुख ऐश्वर्य, ज्ञान, धर्मादि तत्व झाँक भी नहीं सकते।

बृन्दावनलीलामें भी भगवान्का ऐश्वर्य है, समय-समयपर उसका प्राकट्य भी होता है, परन्तु यहाँके प्रेमी जनोंको उसका पता ही नहीं चलता। मात्र छः दिनके शिशु श्रीकृष्णने अपार बलवती राक्षसी पूतनाके स्तन चूसनेके साथ-साथ उसके प्राणोंको भी चूस लिया, वर्षभरके श्रीकृष्णने तृणावर्त्त द्वारा उड़ाकर ले जानेपर उसे मात्र एक घूँसा मारकर परलोक भेज दिया, अपने अत्यन्त लघु शिशुचरण मात्र उछालकर व्योमासुरका वध कर डाला, किन्तु वात्सल्य-प्रेम-रसमयी यशोदा मैयाके मनको भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे चमत्कार प्रत्यक्ष देखते रहनेपर भी कभी ऐश्वर्यभाव संस्पर्श ही नहीं कर सका। वे तो इन सब चमत्कारिक घटनाओंमें अपने शिशुपर भगवान् नारायणकी ही अनन्त

कृपा निहारती रहीं। शिशुत्वके मुग्धतावेशमें शिशु श्रीकृष्ण भी सरल कोमल दृष्टिसे अपनी माताके मुखकी ओर ऐसी ललकसे निहारते रहे, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

कहनेका इतना ही तात्पर्य है कि बृन्दावनलीलामें भगवान्‌का महामहिम माधुर्य अपना एकछत्र राज्य बनाये रखता है और धर्म, श्री, ऐश्वर्य, बल, ज्ञान, वैराग्य – किसीको भी प्रवेश नहीं करने देता। ये सब गुण मात्र दूर खड़े झाँकते ही रहते हैं। ब्रजलीलामें लोकधर्म, वेदधर्म, आचार, कुल-शील, मर्यादादि सभी भागवती स्वरूपभूत गुण इस असमोर्ध्व माधुर्यके सम्मुख अस्त ही रहते हैं।

बृन्दावनकी रागात्मिका प्रीतिके इस माधुर्य-सिन्धुकी परमोच्च उत्ताल तरंगें ही गोपियोंमें परकीया प्रीतिके उद्भवमें हेतु होती हैं। ये माधुर्य-सिन्धुकी उर्मियाँ ही श्रीकृष्णको गोपियोंका प्रियतम बना देती हैं। वे घर-गृहस्थीकी, मोह-ममता, लोकधर्म, स्त्रीधर्म, वेदधर्मकी सब मर्यादाएँ तोड़नेको विवश हो उठती हैं। इस माधुर्यके द्वारा उनमें अपने प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति ऐसी प्रगाढ़तम तृष्णाका उदय होता है कि उनके पैर अपने गृहधर्म-बन्धनमें रह ही नहीं पाते। परम आविष्ट हुईं वे वंशीवादन द्वारा किये गये अपने प्रियतमके प्रेमाह्वानपर उनकी सुखतात्पर्यमयी विशुद्ध सेवाके लिये उमग चलती हैं। गोपियोंके तन-मन-धन-यौवन-धर्म-ज्ञान-कुल-वेद सभी अपने प्रियतम *'माधुर्यपतेरखिलं मधुरं'* को सहज समर्पित हो जाते हैं। यहाँ ध्यान रहे कि धर्मको किसी अधर्म-मोहसे छोड़ना पाप है, गर्हित है, परन्तु जहाँ धर्म स्वतः ही किसी निराविल भगवत्प्रीति-धर्ममें स्वयं समर्पित होकर विसर्जित हो जाता है, वहाँ धर्मका त्याग नहीं होता, धर्म वहाँ भगवत्प्रेम-धर्ममें डूबकर कृतकृत्यता-लाभ करता है। यह भगवत्प्रेम भगवान्‌के नित्य संयोगमें तो हेतु बनता ही है, यह भगवान्‌को अपनी भगवत्ताको भी भूलनेके लिये विवश कर देता है। भगवान् अपनी भगवत्ताको भूलकर गोपीप्रेममें आत्म-विस्मृत हुए उनके 'जार-शिरोमणि' हो जाते हैं।

जैसे बालक दर्पणमें अपने रूपको देखकर उसके साथ स्वच्छन्द खेलता है, उसी प्रकार गोपियाँ अपने प्रियतम हृदयविहारी नीलसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दनसे भावविहार करती हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन इनका वस्त्र चुराते हैं, मन-प्राण चुराते हैं, और इनका तन-मन-धन, धर्म-यश-कीर्त्ति, कर्म-लोक-वेद, परलोक- गति-मोक्ष,

यहाँतक कि इनकी आत्मातक सभी-कुछ चुरा लेते हैं।

इसमें उनका भला दोष ही क्या है ? इनके प्रियतम श्रीकृष्णका यह परात्पर परतत्त्व परब्रह्म अवतार ही इसी हेतुको लेकर हुआ है, एवं उन्होंने अपने अविजेय माधुर्यका इस अवतारकालमें ऐसा असमोर्ध्व विस्तार किया है कि यह माधुर्य निर्ग्रन्थ ऋषि-मुनियोंतकको अपने धर्मसे विचलित कर देता है; विष्णु-ब्रह्मादि देवताओं, समस्त लक्ष्मियों, यहाँतक कि भगवत्स्वरूपोंको भी आकर्षित किये बिना नहीं रहता, फिर इन बिचारी ब्रजकी ग्राम्य ग्वालिनोंकी तो बिसात ही क्या है ?

अपरिकल्पितपूर्वः कश्चमत्कारकारी
स्फुरति मम गरीयानेव माधुर्यपूरः।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकैव।।

'किसी मणिकी दीवालमें या दर्पणमें प्रतिबिम्बित अपनी रूपमाधुरीको देखकर श्रीकृष्ण आश्चर्यके साथ कहते हैं – 'अहो ! इस माधुरीका तो इससे पहले मैंने कभी अनुभव किया ही नहीं। मेरी यह माधुर्यराशि सचमुच ही चमत्कारजनक, महान् श्रेष्ठ एवं निरतिशय मधुर है। इसे देखकर मेरा चित्त लुब्ध हो रहा है। श्रीराधिका इसे देखते-देखते कभी थकती ही नहीं, निर्निमेष नेत्रोंसे देखती रहती हैं, इससे अनुभव होता है कि वे ही इस रूपमाधुरीका पूरा रसास्वादन करती हैं।'

ईसाई भक्त माइकेल मधुसूदनकी उक्ति देखिये :

जिसने देखा कभी नयनभर मोहन-रूप बिना बाधा ।
वही जान सकता है क्योंकर कुल-कलंकिनी है राधा।।

श्रीकृष्णके इस माधुर्यके दो प्रकार हैं – (१) स्वकीया भाव (२) परकीया भाव । स्वकीया भावका प्राधान्य द्वारका लीलामें है। ब्रजराज्यमें तो परकीया भावका ही सूर्य चमकता रहता है।

लौकिक प्रेममें इन्द्रियसुखकी प्रधानता होनेके कारण परकीयाभाव पाप है, घृणित है, नरकका कारण है। लौकिक परकीयाभावमें अंग-संगकी घृणित कामना है। परन्तु भगवत्प्रेममें परकीयाभाव स्वकीयाभावसे परमातिपरम उत्कृष्ट माना गया है। क्योंकि इसमें अंग-संगकी, इन्द्रिय-सुखकी कोई आकांक्षा ही नहीं। यहाँ प्रियतम प्रेमास्पद परपुरुष नहीं, वरं पति-पुत्रोंके, स्वयंके भी, एवं

समग्र विश्वके आत्मा भगवान् हैं। पतिव्रता-शिरोमणि स्वकीया द्वारकाकी महिषियाँ अपने पति श्रीकृष्णको सर्वस्वार्पण करके अपने जीवनका प्रत्येक क्षण पतिकी सेवामें बिताती हैं, परन्तु प्रेमके उत्कर्षमें ब्रजगोपियोंसे वे चार बातोंमें न्यून ही ठहरती हैं।

(१) गोपियोंका श्रीकृष्णके प्रति जो भाव था, उसमें पतिके प्रति पत्नीका जैसा अधिकार होता है, वैसा अधिकार नहीं था। गोपियाँ सर्वतोभावेन अपने प्रियतमकी थीं। उनमें स्वसुखभावनाका आत्यन्तिक अभाव था। श्रीकृष्ण भले ही हजारों विवाह करलें, वे गोपियोंके प्रति अनन्त कालतक अपना किंचित् भी बाह्य प्रेम प्रकट नहीं करें, गोपियोंके निरपेक्ष एकान्त प्रेममें कोई खरौंच ही नहीं आती थी।

(२) गोपियाँ श्रीकृष्णपर अपना देहगत अधिकार तो सर्वथा ही छोड़ चुकी थीं, किन्तु भावगत उनके हृदयसे उनके प्रियतम एक पलके करोड़वें हिस्सेके लिये भी नहीं हट सकते थे। उनकी इतनी प्रगाढ़ एवं प्रमत्त प्रियतम-स्मृति थी।

(३) उनकी अपने प्रियतमसे अपने लिये कुछ भी चाह नहीं थी। साथ ही उनमें दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव था।

(४) स्मृति-मिलनकी उत्कट इच्छा थी, भले ही देह-मिलन अनन्त कालतक नहीं हो।

ब्रजगोपियोंमें अपने दूरदेशगामी प्रियतम श्रीकृष्णका चिन्तन इतना प्रगाढ़ होता है जितना द्वारका-महिषियोंका नहीं हो पाता। क्योंकि वे अपने पुत्रों, अपने सास-ससुर एवं अन्य गृहस्थ कार्यों, सम्बन्धियोंसे भी आसक्त रहती हैं। श्रीराधा मुख्या गोपियोंका चित्त तो अपने प्रियतममें इतना प्रगाढ़ आविष्ट रहता है कि उनके हृदयमें साक्षात् श्रीकृष्णको मूर्त्त रहना ही पड़ता है। गोपियोंका जीवन श्रीकृष्णमय है, श्रीकृष्णका मन गोपियोंका मन है। भगवान् श्रीकृष्णने श्रीउद्धवजीसे गोपियोंके सम्बन्धमें अपने मुखसे कहा है :

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।

'गोपियाँ मेरे मनवाली हैं, मेरे प्राणवाली हैं, वे मेरी स्मृतिकी प्रगाढ़तामें अपने दैहिक कार्योंका भी सर्वथा परित्याग कर चुकी हैं।'

श्रीराधा-हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णका प्रत्यक्ष निवास है, इस सम्बन्धमें यह उदाहरण अपूर्व है।

एक बार श्रीराधाजी सिद्धाश्रम नामक तीर्थमें स्नान करने जाती हैं। उस तीर्थमें भगवान् श्रीकृष्ण भी अपनी सोलह हजार रानियां, रुक्मिणी,सत्यभामा आदि पटरानियों सहित पधारते हैं। भगवान्‌की पटरानियाँ तो प्रायः देखा ही करती हैं कि अपने साथ पर्यंकमें सोते श्रीकृष्ण स्वप्नावस्थामें 'हा राधे, हा राधे ! उच्चारण करते हुए क्रन्दन करने लगते हैं। जब अन्य किसी भी प्रकार उनके प्रभु श्रीकृष्णका क्रन्दन नहीं रुकता, तब बाध्य होकर उन्हें अपने प्राणवल्लभको चरण-संवाहनपूर्वक जगाना पड़ता है। निद्राभंग होनेपर भगवान् किंचित् लज्जित हुए चतुराईसे अपना भावगोपन कर लेते हैं। यह प्रसंग प्रायः प्रति रात्रि ही घटित होता है।

आज उस कृष्ण-प्राणप्रियाको अपने निकट आई जानकर सभी द्वारका-महिषियाँ श्रीराधाजीसे मिलनेकी इच्छा प्रकट करती हैं और भगवान्‌की आज्ञा लेकर उनसे मिलने जाती हैं। श्रीराधा भी इनका हार्दिक स्वागत करती हैं। पटरानियाँ अपना परिचय देते हुए कहती हैं:

चन्द्रो यथैको बहवश्चकोराः सूर्यो यथैको बहवो दृशः स्युः।
श्रीकृष्णचन्द्रो भगवान्स्तथैको भक्ता भगिन्यो बहवो वयं च।।

'बहिन राधा ! चन्द्रमा तो एक होता है किन्तु चकोर असंख्य होते हैं; सूर्य भी एक होता है किन्तु उसे देखनेवाले नेत्र अनगिनत हैं। इसी प्रकार बहिन! प्रियतम श्रीकृष्ण एक हैं, किन्तु हम सभी उनकी सेविकाएँ, चरण-दासियाँ अनेक हैं।'

श्रीराधाके शील, सौन्दर्य, गुण एवं विनयी व्यवहारका सभी महिषियोंपर बड़ा ही सुन्दर प्रभाव पड़ता है। वे अतिशय आग्रहपूर्वक श्रीराधाको अपने डेरेपर भी लाती हैं। श्रीरुक्मिणीजी तो इतनी भावाभिभूत हो जाती हैं कि उन्हें केवल श्रीकृष्णचर्चा सुननेभरका ही होश रहता है । उनका देहज्ञान सर्वथा विलुप्त हो जाता है। श्रीराधाको पिलानेके लिये श्रीरुक्मिणीजी दूध लाती हैं किन्तु वह दूध कुछ अधिक ही उष्ण होता है। श्रीराधारानीके प्रेमभावको देखकर श्रीरुक्मिणी भी इतनी विह्वल हो जाती हैं कि दूधके अधिक उष्ण होनेका उन्हें भान ही नहीं रहता। श्रीराधा भी श्रीरुक्मिणीजीके आग्रहको आदर देते हुए दूधकी उष्णताकी ओर ध्यान न देते हुए उसे पी लेती हैं। अनेक प्रकारके स्वागत-सत्कारके पश्चात् श्रीराधा अपने डेरेपर लौट आती हैं।

इधर भगवान् श्रीकृष्ण अपने शयनागारमें लेटे हुए होते हैं। श्रीरुक्मिणीजी

नित्य-नियमानुसार भगवान्‌के चरण दबाने बैठती हैं। ज्योंही श्रीरुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके चरण स्पर्श करती हैं, वे अत्यन्त दुखी हो उठती हैं। वे भगवान्‌की पूरी चरणथली ही किसी उष्ण पदार्थसे जली, फफोलोंसे भरी देखती हैं । वे अपने पतिदेवसे इसका कारण पूछती हैं। भगवान् पहले तो बहाना बनाकर टालनेकी अनेक चेष्टाएँ करते हैं परन्तु रुक्मिणीजीके बहुत ही आग्रह करनेपर इतना ही कहते हैं – देखो ! श्रीराधाको तुमने जो दूध पिलाया था, वह अधिक गरम था। वह तो मेरे प्रेममें इतनी मतवाली रहती है कि उसे दूधकी उष्णताका पता ही नहीं चला, किन्तु मेरे चरण क्योंकि उसके हृदयमें सदैव बसे रहते हैं, वे जल गये, उनपर फफोले पड़ गये।

कहनेका यही तात्पर्य है कि श्रीराधा एवं गोपियोंके हृदयमें उनके प्रियतम नीलसुन्दर स्वयं अष्टयाम बसे रहते हैं। श्रीकृष्ण उनके प्रेमपाशमें इतने जकड़े हैं कि एक क्षण भी उस बन्धनसे छूटना उनके वशकी बात नहीं है।

जहाँ परस्पर इतना एकत्व एवं एकात्मता हो, वहाँ औपपत्य, जारबुद्धि, परकीया आदि शब्द निरर्थक ही होते हैं।

श्रीराधामुख्या गोपियोंके इसी भावको प्रकाशित करनेवाली पू. गुरुदेवकी ये उत्कृष्टतम प्रीति-नाटिकाएँ हैं, इन्हें पाठक इस भूमिकामें लिखित भावोंके प्रकाशमें ही पढ़नेकी चेष्टा करें, यही प्रीतिभरा निवेदन है। तभी पू.गुरुदेवकी इन कृतियोंका रस वैष्णव पाठक ले सकेंगे।

परकीयालीला वर्णन

(पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा सन् १९५१ ई.में लेखकको सुनाया गया वृत्तान्त)

जैसे महात्मा नन्दरायजीका राज्य ब्रजके अनेक जनपदोंमें, बृहद्वन (गोकुल)में था, वैसे ही यावटग्राम नाम एक ऐसा जनपद भी था जिसमें अभिमन्यु (रायाण) गोप राजा थे। ये सभी राज्य माथुर मण्डलके आधीन ब्रज चौरासी कोसकी भूमिमें ही थे। इन सभी राज्योंके प्रमुख शासक तो बृषभानुपुरनरेश बृषभानुबाबा थे, किन्तु उनके अधीन अनेक करद जागीरदार थे जो व्यवस्थाकी दृष्टिसे स्वतंत्र राजाकी तरह प्रजारक्षणका कार्य करते थे। यावट ग्रामके राजा अभिमन्यु गोप भी उन्हींमें से एक थे।

अभिमन्यु(रायाण) अभी किशोर वयके ही थे, अतः राज-काज उनकी विधवा माता जटिला ही सम्हालती थी, जो वृद्धा भी कहलाती थी। वृद्धा अपनी अतिशय धर्मनिष्ठा एवं कुलाचारके कारण ब्रजमें सर्वोत्कृष्ट सतीके रूपमें विख्यात थी। वृद्धाके पुत्र रायाणसे श्रीमती राधारानीका एवं दूसरे पुत्र दुर्मदसे राधानुजा मंजुश्यामाका विवाह हुआ था। वृद्धाकी एक सौभाग्यवती पुत्री थी जो कुटिला नामसे विख्यात थी।

पू. गुरुदेवको भी इस परकीया लीलाकी अनुभूति हुई है और उन्होंने अपनी रचनाओंमें इसका कहीं प्रच्छन्नरूपसे, और कहीं सांगोपांग वर्णन किया है। पू.गुरुदेवको इस लीलाकी अनुभूति श्रीराधारानीको हुए दिवा-स्वप्नके रूपमें ही हुई है। वे कहा करते थे कि ऐन्द्रजालिक जिस प्रकार अपनी इच्छानुसार दर्शकोंको मोहित करनेके लिये मनमानी घटनाएँ उन्हें दिखाता है, इसी प्रकार भगवती योगमाया द्वारा श्रीराधारानीके असमोर्ध्व प्रेमोत्कर्षको प्रकट करनेके हेतुसे ही इस प्रसंगका मात्र श्रीराधा एवं गोपियोंमें दिवास्वप्नवत् प्रकाश हुआ है।

इस लीलाका हेतु ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें इस प्रकार वर्णित है –

'कल्पका प्रारम्भ है। आदिपुरुष श्रीकृष्णचन्द्र गोलोकके सुरम्य रासमण्डलमें विराजित हैं। चिदानन्दमय कल्पवृक्षोंकी श्रेणी रासस्थलीकी परिक्रमा कर रही है। श्रीकृष्णचन्द्रके वामपार्श्वमें एक कम्पन-सा होता है, और जैसे अतीत, वर्त्तमान एवं भविष्यका समस्त सौन्दर्य पुञ्जीभूत होकर सामने आगया हो, एक किशोरी बालाका आविर्भाव होता है। ये अयोनिजा श्रीराधारानी हैं। रासमण्डलमें उत्पन्न होने एवं जन्मते ही पुष्प लेकर अपने प्रियतम गोलोकेश्वरकी प्रेमार्चनार्थ धावित होनेके कारण ही इनका नाम 'श्रीराधा' विख्यात हुआ है। भगवान् नित्यनिकुञ्जेश्वर इनकी समाराधना करते हैं, इसीलिये इनका नाम राधा है। इन्हीं श्रीराधाके कोटिशः लोमकूपोंसे लक्ष-कोटि गोपसुन्दरियाँ प्रकट होती हैं। इन श्रीराधाका अपने प्रियतमके साथ नित्य विहार, अनादिकालसे दो रूपोंमें प्रतिष्ठित रहकर चल रहा है, एवं अनन्त कालतक चलता रहेगा। प्रलयकी छाया उसे छू नहीं सकती एवं सृजन-कम्पन उसे उद्वेलित नहीं कर सकता।

यों नित्यविहारका क्रम चलता है। इसी मध्य एक दिवस श्रीकृष्ण गोलोकस्थ विरजानदीमें विहार कर बैठते हैं। यहाँ अप्राकृत राज्यमें नदियाँ भी सच्चिन्मयी होनेके कारण स्त्री-आकृति धारण कर लेती हैं। कालिन्दी यमुना तो

भगवान् श्रीकृष्णकी अष्ट पटरानियोंमें से एकके रूपमें प्रसिद्ध हैं ही। श्रीमद्भागवत महापुराणमें कालिन्दीके साथ श्रीकृष्णके विवाहका उल्लेख है। ज्योंही श्रीराधारानीको श्रीकृष्ण द्वारा अकेले ही विरजा-विहारकी सूचना पक्षीगणोंसे मिलती है, वे रोषकम्पित कण्ठसे गोलोकविहारीकी भर्त्सना करती हुईं दुर्जर 'मान' में आरूढ़ हो जाती हैं। मानसे निर्गत शत-सहस्र आनन्द- धाराओंमें अवगाहनकर गोलोकविहारी श्रीकृष्ण अपनी प्रिया रासेश्वरी श्रीराधाको मनाने चलते हैं।

श्रीकृष्णचन्द्रकी ह्लादिनीशक्ति, महाभावस्वरूपा श्रीराधाकी मानलीलाका रहस्य हम विषयी, पामर, प्राकृत जगत्के व्यक्तियोंके मनमें समा ही नहीं सकता। इसे तो प्रेमविभावित चित्त ही ग्रहण कर सकता है। अनन्त जन्मार्जित साधनाके फलस्वरूप चित्तमें जब ह्लादिनीप्रधान विशुद्ध सत्वका उदय होता है, तभी उसे प्रेम क्या वस्तु होती है, वह प्रगाढ़ होकर कैसे स्नेह एवं मानमें परिणत होता है, इसका आस्वादन मिलता है। बिना आस्वादनके गुड़का स्वाद जैसे बताया ही नहीं जा सकता , उसी प्रकार बिना अनुभव हुए श्रीराधारानीका 'मान' क्या होता है, इसका मात्र शब्दोंसे परिचय पा लेना असम्भव ही होता है। अस्तु,

गोलोकविहारी श्रीकृष्णचन्द्रके मनानेपर भी श्रीराधाका कोप आज शान्त नहीं होता। समीपमें अवस्थित सभी सखियोंपर एक आतंक-सा छा जाता है। उन्होंने भी श्रीराधारानीका यह मान-स्वरूप आज ही देखा है।

अघटनघटनापटीयसी, लीलामहाशक्ति योगमाया श्रीराधाका यह महाभाव देख रही हैं। प्रणयभावको संस्पर्शित करानेवाले विलक्षण महाभावको वे रस लेकर देख ही नहीं रही थीं, उन्हें तो भविष्यके महामंगलमय लीलामञ्चकी यवनिका भी उठानी है। उन्हें तो आसुरी शक्तियोंके द्वारा सृष्टिक्रमको भाराक्रान्त कर देना, धरादेवीका ब्रह्माजीको अपनी करुण कथा सुनाना, ब्रह्माजी द्वारा भगवान् शंकरको आगेकरके पुरुषोत्तम भगवान्से धराके भारहरणकी प्रार्थना करना, गोलोकविहारीका पृथ्वीपर अवतरणका आश्वासन दे देना – इस प्रकार लीलाका पूरा विवरण ही ज्ञात है। भूत-भविष्य सब-कुछ उनके दृष्टिपटलपर तो वर्त्तमानकी भाँति सदैव सुस्पष्ट रहते ही हैं। बस, वे पर्दा हटा देती हैं और सुदामा गोपका अभिनय प्रारम्भ हो जाता है।

श्रीराधाका यह मान सुदामा गोपको असह्य हो उठता है। वे कटु शब्दोंमें

श्रीराधाकी भर्त्सना करने लगते हैं। श्रीराधा भी और कुपित हो उठती हैं। कोप वाग्वज्रका रूप ग्रहण कर लेता है। रोषमें भरी श्रीराधा सुदामा गोपको श्राप दे देती हैं – 'सुदाम ! एक संतप्त अबलाको और संतप्त कर रहे हो ? यह तो आसुरी कार्य है ! जाओ ! सचमुच ही आसुरी योनिमें कुछ काल भ्रमण करो।' सुदाम काँप उठता है। उसके नेत्र आहत अग्निस्फुल्लिंगोंकी तरह जलने लगते हैं। वह कह उठता है – 'गोलोकेश्वरि ! तुमने मुझ निर्दोषको अकारण श्रीकृष्णसे वियुक्त कर दिया। जाओ, देवि ! तुम भी भारतवर्षमें अवतार लो और इन सखियोंके सहित श्रीकृष्णसे शत वर्षके वियोगका दुःख अनुभव कर लो। प्रियतम श्रीकृष्णका वियोग-दुःख कोटि-कोटि नरक-यंत्रणाओंसे भी अधिक भीषण होता है, इसका अभी तक तुम्हें अनुभव नहीं हुआ है, अतः इसे अनुभव कर लो।'

यों कहकर सुदामा गोप युगल दम्पतिको प्रणामकर चलनेको उद्यत हो उठता है। श्रीराधा सुदामाके स्नेहवश 'वत्स ! वत्स !' कहकर क्रन्दन करने लगती हैं। श्रीकृष्ण उन्हें ढाढ़स देकर आश्वस्त करते हुए कहते हैं – 'प्राणप्रिये ! यह तो तुम्हारा दिया हुआ विश्व-प्रपंचको वरदान होगा। इसी निमित्तसे तुम्हारा, हरिवल्लभा वृन्दाका, सम्पूर्ण ब्रजमण्डलका भारतवर्षमें अवतरण होगा और तुम्हारे द्वारा मधुर लीलारसकी सनातन स्रोतस्विनी प्रवाहित होगी, जिसमें अवगाहनकर प्रपञ्चके जीव अनन्त कालतक शीतल एवं कृतकृत्य होते रहेंगे। तुम्हारे 'मोहन' महाभावकी तरंगिणीमें डूबकर मैं भी कृतार्थ होऊँगा। यहाँ ध्यान रहे कि प्रेमकी चरम परिणति – महाभावकी दो अवस्थाएँ होती हैं – संयोग एवं वियोग। संयोगके समय महाभाव 'मोदन' अथवा 'मादन' नामसे जाना जाता है एवं वियोगके समय यही महाभाव 'मोहन' रूपमें व्यक्त होता है।

सुदाम गोपके श्रापवश ही श्रीराधाकी रायाण गोपके साथ एवं श्रीमञ्जुश्यामाकी उन्हींके अनुज भ्राता दुर्मद गोपके साथ विवाहकी लीला घटित होती है। यह ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें वर्णित है। गौडीय महासिद्ध सन्तोंकी अनुभूति भी इसी शास्त्रके आधारसे है। यों तो श्रीराधा अयोनिजा थीं, माताके गर्भसे उत्पन्न ही नहीं हुईं थीं; उनका तो रावल ग्रामके सूतिकागारमें स्वेच्छासे प्राकट्य मात्र हुआ था।

जब श्रीराधा पौगण्डसे कैशोरमें प्रविष्ट होने लगीं तब बृषभानुबाबा एवं मैया कीर्त्तिदाको उनके विवाहकी चिन्ता हुई। भरपूर चेष्टा करनेपर भी जब

श्रीकृष्णने श्रीराधाके प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई तो विवाह आवश्यक मानकर भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी आज्ञा एवं भगवती पौर्णमासीजीके अनुमोदनसे यावट ग्रामके नृपति अभिमन्यु गोपके साथ विवाह निश्चित हुआ। राधानुजा मंजुश्यामाका विवाह भी रायाणके छोटे भाई दुर्मदसे निश्चित कर दिया गया। जब श्रीराधारानीको इसकी भनक मिली, उसी समय वे अपनी एवं अपनी बहनकी छायाको बृषभानुगृहमें स्थापित करके स्वयं अन्तर्धान होगयीं। उस छायाके साथ ही उक्त रायाण गोपका विवाह हुआ है। वास्तवी श्रीराधाका विवाह तो पुण्यमय बृन्दावनस्थलीमें श्रीकृष्णके साथ हुआ था जिसे स्वयं जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने विधानपूर्वक सम्पन्न कराया था। इसका विवरण आगेके पृष्ठोंमें वर्णित है।

श्रीराधाकी यह छाया कौन थी – इसका भी स्पष्टीकरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें दिया गया है। भगवान् श्रीकृष्णने केदार राजाकी कन्या वृन्दाके तप करनेपर उसको यह वरदान दिया था कि इस तपस्याके फलस्वरूप तुम मुझे प्राप्त होओगी। ब्रजमें जब श्रीराधा बृषभानुकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण होंगी, तब तुम उनकी छायाके रूपमें उत्पन्न होओगी। विवाहकालमें श्रीराधा अभिमन्यु (रायाण)गोपके हाथों अपनी छाया – तुमको अर्पण करके अन्तर्धान हो जावेंगी। अभिमन्यु गोपका विवाह तुम्हींसे होगा। मूढ गोकुलवासी गोप तुम्हींको अभिमन्युकी पत्नी राधा मानते रहेंगे। वास्तवी राधा तो मेरे पास निवास करेगी और छायारूपिणी तुम्हीं रायाणकी स्त्री बनकर जीवनयापन करोगी।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणोक्त यही वर्णन गौडीय आचार्योंकी अनुभूतिका आर्ष आधार है। उन्होंने इसी पुराणोक्त सत्यका आधार लेकर श्रीराधाकृष्ण-प्रीतिका जैसा विशुद्ध, असमोर्ध्व, रसोत्कर्ष अनुभव किया है वह अपने स्थानपर अद्वितीय, सर्वोच्च और अधिरूढ महाभावकी एक विलक्षण अनुभूति है – इसे कोई अमान्य नहीं कर सकता।

पू.गुरुदेवकी अनुभूतिमें तो श्रीराधा श्रीकृष्णकी नित्य अभिन्नस्वरूपा हैं। वे श्रीकृष्णकी परम आराधिका हैं, साथ ही परमाराध्या भी हैं। वे दूधमें धवलता, अग्निमें दाहिकाशक्तिकी भाँति श्रीकृष्णसे एकात्म हैं।

श्रीराधा श्रीकृष्णका जीवन हैं एवं श्रीकृष्ण श्रीराधाके जीवनाधार हैं। श्रीराधाकृष्णके विवाहकी प्रत्यक्ष लीलादर्शनजन्य अनुभूति पू.गुरुदेवको अपने रतनगढके साधनाकालमें ही हुई थी, और श्रीपोद्दार महाराजके आग्रहपर

'कल्याण' मासिकपत्रके वार्षिकांक 'नारी-अंक'के लिये पू.गुरुदेवने *'जगज्जननी श्रीराधा'* नामक श्रीराधाका संक्षिप्त चरित्र लिखा तो उसमें यह वर्णन भी दे दिया था। उसे शब्दशः यहाँ नीचे दिया जा रहा है।

'अचानक काली घटाएँ घिर आती हैं। भाण्डीरवनमें अन्धकार छा जाता है। वायु बड़े वेगसे बहने लगती है। तरुलताएँ काँप उठती हैं। कदम्ब, तमालपत्र छिन्न हो-होकर गिरने लगते हैं। ऐसे समय इसी वनके एक वटके नीचे ब्रजेश्वर नन्द श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये खड़े हैं। उन्हें चिन्ता हो रही है कि श्रीकृष्णकी रक्षा कैसे हो ?

गोपोंका गोचारण निरीक्षण करने वे आये थे। श्रीकृष्णचन्द्र साथ चलनेके लिये मचल गये; किसी प्रकार नहीं माने; रोने लगे। इसीलिये वे उन्हें साथ ले आये थे। यहाँ वनमें आनेपर गोरक्षकोंको तो उन्होंने दूसरे वनकी गायें एकत्रकर वहीं ले आनेको भेज दिया, स्वयं उन गायोंकी सम्हालके लिये खड़े रहे। इतनेमें वह झंझावात प्रारंभ हो गया। कोई गोरक्षक भी नहीं कि उसे गायें सम्हलाकर वे भवनकी ओर जायें । तथा गायोंको यों ही छोड़कर जायें भी कैसे ? बड़ी-बड़ी बूँदें आरम्भ हो गयी हैं। अतः कोई भी उपाय नहीं देखकर ब्रजेश्वर एकान्तमनसे नारायणका स्मरण करने लगते हैं।

मानो कोटि सूर्य एक साथ उदय हुए हों, इस प्रकार दिशाएँ उ ासित हो जाती हैं, तथा वह झंझावात तो न जाने कहाँ चला जाता है। नन्दराय आँखें खोलकर देखते हैं –सामने एक बालिका खड़ी है। हैं - हैं ! बृषभानुनन्दिनी ! तुम यहाँ इस समय कैसे आयी बेटी ? ब्रजेश्वरने अकचकाकर कहा। किन्तु दूसरे ही क्षण अन्तर्हृदयमें एक दिव्य ज्ञानका उन्मेष होने लगता है। मौन होकर वे बृषभानुनन्दिनीकी ओर देखने लगते हैं। कोटि चन्द्रोंकी द्युति मुखमण्डलपर झलमल-झलमल कर रही है। नीलवसन-भूषित अंग हैं। अंगोंपर काञ्ची, कंकण, हार, अंगद, अंगुलीयक, मञ्जीर यथास्थान सुशोभित हैं। चञ्चल कर्णकुण्डल तथा दिव्यातिदिव्य रत्नचूड़ामणिसे किरणें झर रही हैं। अंगोंके तेजका तो कहना ही क्या है ? भानुकुमारीकी अंगप्रभासे वन आलोकित हो रहा है। नन्दरायको गर्गकी वे बातें भी स्मरण हो आयीं। पुत्रके नाम-संस्कारके समय गर्गने बृषभानुपुत्रीकी महिमा, श्रीराधातत्वकी बातें बतलायी थीं। पर उस समय तो नन्दराय सुनरहे थे और साथ-ही-साथ भूलते भी जा रहे थे। इस समय उन सबकी स्मृति हो आयी, सबका रहस्य सामने आगया। अञ्जलि

बाँधकर नन्दरायने श्रीराधाको प्रणाम किया और बोले – 'देवि ! मैं तो जान गया, पुरुषोत्तम श्रीहरिकी तुम प्राणेश्वरी हो और मेरी गोदमें तुम्हारे प्राणनाथ स्वयं श्रीहरि ही विराजित हैं। लो देवि ! ले जाओ; अपने प्राणेश्वरको साथ ले जाओ। किन्तु ...... । नन्द कुछ रुक-से गये। श्रीकृष्णचन्द्रके भीति-विजड़ित नयनोंकी ओर उनकी दृष्टि चली गयी थी। क्षणभर बाद बोले – किन्तु देवि ! यह बालक तो अन्ततः मेरा पुत्र ही है न ! इसे मुझे ही लौटा देना।' श्रीराधाके हस्तकमलोंपर नन्दरायने श्रीकृष्णचन्द्रको रख दिया। श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये गहन वनमें प्रविष्ट हो गयीं।

बृन्दावनकी भूमिपर दिव्य रासमण्डल प्रकट होता है। श्रीराधा नन्दपुत्रको लिये उसी मण्डपमें चली आती हैं। सहसा नन्दपुत्र श्रीराधाकी गोदसे अन्तर्हित हो जाते हैं। बृषभानुनन्दिनी विस्मित होकर सोचने लगती हैं – नन्दरायने जिस बालकको सौंपा था, वह कहाँ चला गया ! इतनेमें गोलोकविहारी नित्यकैशोरमूर्त्ति श्रीकृष्णचन्द्र दीख पड़ते हैं। अपने प्रियतमको देखकर बृषभानुनन्दिनीका हृदय भर आता है। प्रेमावेशसे वे विह्वल हो जाती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगते हैं –'प्रिये ! गोलोककी बातें भूल गयी हैं क्या ? मैं तो तुम्हें नहीं भूला। तुम्हें भूल जाऊँ , यह मेरे लिये असम्भव है। मेरे प्राणोंकी रानी ! तुमसे अधिक प्रिय मेरे पास कुछ हो, तब तो तुम्हें भूलूँ ? तुम्हीं बताओ, प्राणोंसे अधिक प्यारी वस्तुको कोई कैसे भूल सकता है ? प्राणाधिके ! मेरे जीवनकी समस्त साध एकमात्र तुम्हीं हो। किन्तु यह भी कहना बनता नहीं है। क्योंकि वास्तवमें हम-तुम दो हैं ही नहीं। जो तुम हो, वही मैं हूँ। जो मैं हूँ, वही तुम हो। यह ध्रुव सत्य है – हम दोनोंमें भेद है ही नहीं। जिस प्रकार दुग्धमें धवलता है, अग्निमें दाहिकाशक्ति है, पृथ्वीमें गन्ध है, उस प्रकार हम दोनोंका अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

\+ + +

इस प्रकार रसिकेश्वर राधानाथ अपनी प्रियाको अतीतकी स्मृति दिलाकर श्रीराधाका आनन्दवर्धन करने लगते हैं। राधा-भाव-सिन्धुमें भी तरंगें उठने लगती हैं, आवर्त्त बन जाते हैं। आवर्त्त राधानाथको रसके अतल तलमें डूबाने ही जा रहे थे कि उसी समय माला-कमण्डलु धारण किये जगद्विधाता चतुर्मुख ब्रह्मा आकाशके नीचे उतर आते हैं; राधा-राधानाथके चरणोंमें ब्रह्माजी वन्दना करते हैं। पुष्कर तीर्थमें साठ हजार वर्षोंतक विधाताने श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना

की, तब उन्हें राधा-चरणारविन्दके दर्शनका वर प्राप्त हुआ था। उसी वरके फलस्वरूप योगमाया-प्रेरित वे राधानाथकी मनोहारिणी लीलामें एक छोटा-सा अभिनय करनेके लिये ठीक उपयुक्त समयपर आये हैं। अस्तु,

भक्ति-नतमस्तक, पुलकितांग, साश्रुनेत्र हुए विधाता बड़ी देरतक नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति करते रहे, फिर रासेश्वरीके समीप गये। अपने जटाजालसे श्रीराधाके युगल चरणोंकी रेणुका उतारी। रेणुकणसे अपने सिरका अभिषेक किया; पश्चात् कमण्डलु-जलसे चरण-प्रक्षालन करने लगे। अन्तमें राधा-मुखारविन्दसे अचला भक्तिका वर पानेपर उन्हें धैर्य हुआ। अब उस लीलाका कार्य सम्पन्न करने चले। श्रीराधा एवं श्रीराधानाथको प्रणामकर विधाताने दोनोंके मध्यमें अग्नि प्रज्वलित की। फिर स्वयंने उसमें विधिवत् हवन किया। फिर विधाता द्वारा बताये हुए विधानसे स्वयं रासेश्वरने हवन किया। फिर दोनों युगल रासेश्वर-रासेश्वरी अग्निको प्रणामकर हुताशनकी प्रदक्षिणा करके परस्पर समीप आसन ग्रहण कर लेते हैं। ब्रह्मा श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीराधाका पाणिग्रहण करनेके लिये कहते हैं तथा श्रीकृष्णचन्द्र राधा-हस्तकमलको अपने हस्तकमलपर धारण करते हैं। हस्तग्रहण होनेपर श्रीकृष्णचन्द्र सात वैदिक मंत्रोंका पाठ करते हैं। इसके पश्चात् श्रीराधा अपना हस्तकमल श्रीकृष्ण-वक्षस्थलपर एवं श्रीकृष्णचन्द्र अपना हस्तपद्म श्रीराधाके पृष्ठदेशपर रखते हैं। श्रीराधा मंत्रसमूहका पाठ करती हैं। आजानुलम्बित दिव्यातिदिव्य पारिजातनिर्मित कुसुममाला श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको पहनाती हैं एवं श्रीकृष्णचन्द्र सुन्दर मनोहर वनमाला श्रीराधाके गलेमें डालते हैं। यह हो जानेपर कमलोद्भव श्रीराधाको श्रीकृष्णचन्द्रके वाम पार्श्वमें विराजितकर, दोनोंसे अञ्जलि बाँधनेकी प्रार्थनाकर दोनोंके द्वारा पाँच वैदिक मंत्रोंका पाठ कराते हैं। अनन्तर श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करती हैं। जैसे पिता विधिवत् कन्यादान करे, वैसे सारी विधि सम्पन्न करते हुए विधाता श्रीराधाको श्रीकृष्ण-कर-कमलोंमें समर्पित कर देते है। आकाश दुन्दुभि, पटह, मुरज आदि देववाद्योंकी ध्वनिसे निनादित होने लगता है। आनन्दनिमग्न देववृन्द परिजात पुष्पोंकी वर्षा करते हैं। गन्धर्व मधुर गायन करते हैं, अप्सरायें मनोहर नृत्य करने लगती हैं। इस प्रकार बृषभानुनन्दिनी एवं नन्दनन्दनकी विवाह-लीला सम्पन्न हो जाती है।

\+ \+ \+

भाण्डीर वनके उन निकुञ्जोंमें रसकी तरंगिणी बह चली। रासेश्वरी

पद्मयोनि विधाता श्रीब्रह्माजी द्वारा
श्रीराधाकृष्णका विवाह

श्रीराधा, रासेश्वर श्रीकृष्ण – दोनों ही आनन्दविभोर उसमें बह चले। भावसन्धिका समय आया तो श्रीराधाको बाह्य ज्ञान हुआ। बृषभानुनन्दिनी देखती हैं – मेरी गोदमें नन्दरायने जिस पुत्रको सौंपा था, वह तो है, शेष सब स्मृति मात्र। श्रीकृष्णचन्द्रकी वह कैशोर मूर्त्ति भी अन्तर्हित होगयी है, पुनः वे बालक रूप हो गये हैं।

नन्दनन्दनको श्रीराधा यशोदारानीके पास ले जाती हैं – 'मैया ! वनमें झंझावात आरंभ हो गया था। बाबा बोले – तू इसे घर ले जा, घर पहुँचा दे। बड़ी वर्षा हुई है। देख, मेरी साड़ी सर्वथा भीग गयी है। मैं अब जाती हूँ। घरसे आये मुझे बहुत देर हो गयी है, मेरी मैया चिन्तित होगी। अपने पुत्र श्रीकृष्णको सँभाल लो।' – यह कहकर बृषभानुनन्दिनी श्रीकृष्णचन्द्रको यशोदारानीकी गोदमें रख देती हैं और प्रस्थान कर जाती हैं।

\+ \+ \+

यहाँ पुनः ध्यान रखनेकी बात है कि ये सभी लीलाएँ हमारे मायिक प्राकृत जगत्की नहीं हैं। अप्राकृत जगत्में अप्राकृत पात्रोंमें इनका ताना-बाना भगवती अघटनघटनापटीयसी योगमाया द्वारा बुना जाता है। भगवती योगमाया रसके अनेक द्वार खोलती हैं, और अनेक द्वार बन्द करती जाती हैं। यहाँ सब-कुछ अप्राकृत होनेके कारण लीलापात्रोंकी वय भी लीलाकी आवश्यकतानुसार बढ़ती-घटती रहती है। वैसे श्रीराधारानी श्रीकृष्णचन्द्रसे पन्द्रह दिवस छोटी हैं। किन्तु नन्दराय अपने बालक श्रीकृष्णको गोदमें लिये झंझावातसे त्रस्त जब श्रीराधाको देखते हैं तो उन्हें राधा किशोरवयकी दिखती हैं। तभी वे उनकी गोदमें अपने बालकको देते हैं। शिशु श्रीकृष्ण भी अपने पिताकी गोदसे अन्य किसी किशोरी बालिकाकी गोदमें जाते हुए भय-विजड़ित हो जाते हैं। अतः पाठकोंको इन लीलाओंमें यथासमय काल-देश-वय-स्थान-दूरी आदिमें असंगतता दिखाई देनेपर भी उन्हें अप्राकृत चिन्मय लीला मानकर शंका नहीं करनी चाहिये।

\+ \+ \+

योगमाया रसप्रवाहका एक नया द्वार खोलती है। बृषभानुनन्दिनी सर्वथा इस बातको भूल जाती हैं कि श्रीकृष्णचन्द्रसे कभी मेरा मिलन हुआ भी था। श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नित्य प्रियतम हैं और मैं उनकी नित्य प्राणेश्वरी हूँ – यह स्मृति भी सिन्धुके अतल तलमें जा छिपती है। यहाँ ध्यान रहे यह विस्मरण

प्राकृत जीवोंके स्वरूप-विस्मरण जैसा सर्वथा नहीं है। यह मुग्धता तो अखण्ड ज्ञान-स्वरूप भगवती श्रीराधा में रसपोषणके लिये रहती है, यथालीला, यथावसर प्रकट होती है और फिर छिप जाती है। भगवान्‌की यही भगवत्ता है कि भगवती श्रीराधामें अनेकों विरोधी भाव एकसाथ एक ही समयमें ही वर्त्तमान रहते हैं। इस विरोधी धर्म-गुणोंके कारण ही एक साथ एक समयमें ही उनमें सम्पूर्ण ज्ञान एवं रसमयी मुग्धता दोनोंका प्रकाश होता है।

श्रीबृषभानुदुलारी सात वर्ष वयकी हो गयी हैं। । उनके दिव्य श्रीअंगोंमें विश्व सृष्टिका समग्र सौन्दर्य ही मानो कृतकृत्यतालाभ करने आविर्भूत हो उठता है। दिव्य सौन्दर्यकी प्रतिमा बनी श्रीराधाको उनकी माँ कीर्त्तिदा, पिता बृषभानु एवं सभी बृषभानुपुर-निवासी देखते ही रह जाते हैं। 'ओह ! मात्र सात वर्षीया हमारी बालिका इतनी सुन्दर है ?'

श्रीबृषभानुदुलारी, उनकी अनुजा मंजुश्यामा एवं उनकी प्राणप्रेष्ठ अन्य सखियोंके श्रीअंगोंके दिव्यातिदिव्य सौन्दर्यसे भानुप्रासाद तो आलोकित रहता ही है, वे जिस पथसे सूर्यपूजार्थ वनमें पुष्पचयन करने जाती हैं, उसपर भी सौन्दर्यकी किरणें बिखर जाती हैं। श्रीमुखके उज्ज्वल स्मितसे पथ उद्भासित हो जाता है। किसीको अनुसन्धान लेना हो कि किशोरी इस समय किस वनमें है – तो सहज ही जान ले; श्रीअंगोंका दिव्य सुवास तत्क्षण ही टोह दे देगा कि भानुनन्दिनी अमुक वनमें है। इस गन्धका प्रवाह इतना मनोरम होता है कि वनके सभी भ्रमर गुंजार करते हुए उसी दिशाकी ओर धावित होने लगते हैं, जिधर किशोरी एवं उनकी सखियाँ अवस्थित होती हैं।

आज पुष्पित वृक्षोंकी शोभासे आकर्षित हुई किशोरीके मनमें आया कि बृषभानुपुरके उत्तरकी ओर जो बड़ा ही सुन्दर, मनोहर, विशाल, घना वनस्थल है, जिसकी शोभाकी सीमा नहीं है, उस श्रीसुन्दरीवनमें पुष्पचयन करने जाऊँ।

आश्चर्य था कि शरद और वसन्त ऋतुएँ सदैव ही इस वनमें निवास करती हैं। किशोरी अपनी माताके पास पहुँचती हैं और उस वनसे पुष्प बीन लानेकी अपनी रुचि उनपर प्रकट कर देती है। माताकी अनुमति लेकर किशोरी मन्द-मन्थर गतिसे अपनी छोटी बहिन और अपनी सभी प्रेष्ठ सखियोंके साथ उस वनस्थलके सामने आकर खड़ी हो जाती हैं। वह मनोहर हँसी हँस रही होती हैं। स्वर्णप्रतिमाके सदृश उसकी सहचरियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो जाती हैं। सब ओर सौन्दर्यका स्रोत प्रवाहित करती हुई किशोरी मानो

सरलताकी अप्रतिम मूर्त्ति ही हो।

उसके कपोलों तथा भालपर मोतीके समान श्रमकण व्यक्त होरहे होते हैं। झुर-झुर करती शीतल बयार उसके श्रीमुखका स्वेद पौंछनेमें व्यस्त रहती है। मखमल-सी हरी कोमल दूर्वा सामने लहराती है । उसका स्पन्दन देखकर ऐसा लगता है मानो वनस्थलकी धरा किशारीका मनुहार करके कह रही हो 'बेटी ! तनिक मेरी सुकोमलतम गोदमें विश्राम कर ले।'

फिर भी तितली-सी उड़ती वह शीघ्र-से-शीघ्र वनस्थलमें प्रविष्ट हो जाती है। मेंहदीकी झाड़ीके किनारे पथ निर्मित है। आगे वह ज्योंही अग्रसर होती है, उसे एक कीर मिलता है। उसके निर्दिष्ट पथसे आगे बढ़ती हुई किशोरी ऐसे स्थलपर पहुँच जाती है, जहाँ उसके ठीक सामने ही प्रतीचीकी ओर एक विचित्र सुन्दर उद्यान है। उस उद्यानमें पूर्वकी ओर लताओंसे मण्डित राशि-राशि तमालके वृक्ष हैं। दक्षिण, प्रतीची और उत्तरमें वह वन कदम्बसमूहसे आवृत है। किशोरीके ठीक सामने पुष्पोंसे आच्छादित एक क्यारी है, उसमें पद्मरागसे बनी एक वेदी है, उस पद्मरागकी वेदीपर पुष्पितलताजालोंके मध्य नीलमणि-निर्मित एक मूर्ति है। उसे देखकर ऐसा लगता है, मानो बस, वह बोल ही उठी हो। मूर्त्ति एक अभिनव सुन्दर किशोर बालककी है जो अपने हाथोंमें वेणु लिये है। उसकी मुद्रासे यही प्रतीत होता है, जैसे वह वेणुके छिद्रोंमें स्वर भरने ही जा रहा हो।

किशोरी उस प्रतिमाके अतिशय निकट पहुँच जाती है। उस समय उसकी सभी सहेलियाँ वनके दूसरे भागोंमें रुक गयी थीं। उसकी छोटी बहन मञ्जुश्यामा भी अलसायी एक वृक्षके आलवालपर सो गयी थी। किशोरीकी दृष्टि जैसे ही उस प्रतिमापर पडती है, प्रतिमाकी शोभा निहारते ही उसके हृदयमें भावोंकी एक ऐसी आँधी-सी चलती है जिसमें उसका चित्त ही उड़ जाता है। भोलेपनसे भरपूर उसके शिशुताके भाव अन्तर्हित हो जाते हैं, और प्राणोंको किसीके चरणोंमें न्यौछावर कर देनेवाले कैशोर रतिके भाव उमड़ चलते हैं।

किशोरी भावोंकी आँधीमें बहती हुई सोचने लगती है – 'फिर अब विलम्ब क्यों हो ? क्षणोंमें ही कहीं काल कुछ हेर-फेर कर दे तो ? स्वर्णिम वेला आधे पलमें ही चल देती है – यह नियम है।' एक पुष्पमाला, जो वहीं किसीने गूँथी रखी है, राजपुत्रीको मिल जाती है। वह उसे उठाकर चल पड़ती है, वहाँ

– जहाँ दो प्राणोंकी सरिताएँ मिलकर एक हो जाती हैं। एक होकर महाभाव-समुद्रमें अनन्तकालके लिये निमग्न हो जाती हैं। अस्तु,

किशोरी सोचने लगती है – वास्तवमें तो यह किसी व्यक्तिकी प्रतिकृति मात्र है। किन्तु कुछ भी हो, यह त्रिकाल सत्य है कि अब तो मैं एक मात्र इसीकी ही वस्तु हूँ। यह व्यक्ति मेरा है, और हम दोनोंका परस्पर एक-दूसरेपर एक-सा ही अधिकार है। यह व्यक्ति मुझे मिले अथवा नहीं मिले, इसकी क्या चिन्ता है ? निसर्गका अनादि नियम है – परस्पर प्राणोंका सौदा कुछ ऐसे ही क्षणोंमें हुआ करता है।

बस, किशोरी उस प्रतिमाके मनोहर कण्ठसे लिपट जाती है। वह अपनी भुजा फैलाकर उस प्रतिमाको अपनी बाहुओंमें भर लेती है।

अचानक किशोरीके नेत्रोंसे झर-झर करता अनर्गल अश्रुप्रवाह बह चलता है। सखियाँ उसे अतिशय भावावेशावस्थामें ही उसके महलमें लाती हैं और तबसे लगभग वर्षभरतक किशोरी भाव-विक्षिप्तावस्थामें ही रहती है।

विक्षिप्त-सी हुई किशोरीके पास चाहे कोई भी आवे, माता-पिता, सखियाँ, दास-दासी, मात्र क्षणभरके लिये ही किशोरीको वे व्यक्तिरूपमें दिखते हैं, फिर तो उनके रूपमें उसे वह नीली प्रतिमा ही दिखने लगती है। कोई उससे कुछ भी कहे, कुछ भी बोले – उसे ऐसा लगता है मानो नीली प्रतिमाके ही होठ हिल रहे हैं और उसके कानोंमें 'प्रियतमे ! वल्लभे ! प्राणेश्वरि !' – ये शब्द ही सुनाई देने लगते हैं। उसे अपनी हथेली, हाथ, पैर, जंघा, उरोज – सारे अंग-अवयव ही नारी-अंग-समूहवत् नहीं दिखते, अपितु नीली प्रतिमा-जैसे ही अनुभवमें आते हैं। उसका समग्र मैं-पना ही उस नीली रस-सत्तामें विलीन हो जाता है।

किशोरीकी माता कीर्त्तिदा उसके सिरपर स्नेहसे हाथ फेरकर पूछती है– 'मेरे हृदयकी लडैती री ! सचमुच बतला दे, तुझे क्या चाहिये ? तू जो भी वस्तु चाहेगी, वह मैं तुझे दे दूँगी।' किन्तु उत्तरमें भानुनन्दिनी पागलिनीकी भाँति हँसने लगती है। उसकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा एक दिवस उससे पूछती है – 'बहन ! तू तो मेरे प्राणोंसे एकाकार है। मुझे तो अपने दुःखका रहस्य बता दे। मैं ही तेरी कामनापूर्त्तिका कोई उपाय करूँ !' किशोरी हँसकर उत्तर देने लगती है – 'मंजू री ! सुनेगी ? अच्छा सुन ! महामरकतद्युति अंगोंसे शोभा झर रही थी। मस्तकपर मयूरपिच्छ सुशोभित था, नवकैशोरका आरम्भ

ही हुआ था। इस रूपमें वे उस नीलमणि मूर्त्तिसे निकले।' यह कहकर किशोरी मौन हो जाती है। छोटी बहिन पुनः पूछती है – 'बहन ! तूने कोई स्वप्न तो नहीं देखा था ?' यह सुनते ही किशोरी अपनी बहनसे लिपट जाती है और अविलम्ब ही बोल उठती है –'बहन ! स्वप्न था या जागरण, दिवस था या रात्रि– यह तो जान ही नहीं सकी। जाननेकी शक्ति भी नहीं रह गयी थी। क्योंकि उस समय वहाँ एक श्याम ज्योत्स्ना फैली थी। ज्योत्स्नामें वह नील सागर लहरा रहा था। लहरें मुझे भी बहा ले गयीं। चञ्चल लहरियोंपर नाचती हुई मैं भी चंचल हो उठी। अब जाननेका अवकाश ही कहाँ था ?' भानुकिशोरी इतना कहकर पुनः मौन हो जाती है।

इसके पश्चात् किशोरीके नयनोंसे जो अश्रुका स्रोत फूट चलता है, वह अविराम चालीस प्रहर और दो घड़ीतक चलता ही रहता है। लगता था मानो वह बृषभानुराजसदन उसमें निमग्न ही हो उठेगा।

इन अश्रुओंको विराम तभी मिलता है, जब नन्दग्रामसे यशोदारानी किशोरीको नित्य-नियमितरूपसे नन्दभवनमें रसोई बनाकर उनके पुत्र श्रीकृष्णको खिलानेका निमन्त्रण भिजवाती हैं। महर्षि दुर्वासा द्वारा किशोरीको बारह मास पूर्व यह वरदान मिला था कि जो भी किशोरीके हाथका पकाया भोजन करेगा, वह सदैव नीरोग रहेगा एवं अक्षय आयुका होगा। श्रीकृष्णको निरोग बनाये रखनेके हेतुसे ही नन्दरानी यशोदा भगवती पौर्णमासीजीके निर्देशानुसार बृषभानुपुरमें यह निमन्त्रण भिजवाती हैं। इस निमंत्रणके मिलते ही भानुनन्दिनीके अश्रु एक पल बीतते-न-बीतते थम जाते हैं। उनका मुरझाया आनन-सरोज हरा हो जाता है।

आजके एक वर्ष पूर्व ही तो दुर्वासा ऋषि बृषभानुपुर पधारे थे। ओह ! उन क्रोधभट्टारक महर्षिके सिरपर पिंगलाभ जटा बँधी थी और लम्बी दाढ़ी सुशोभित थी। उनके अंगों एवं लोचनोंमें मानो मूर्त्तिमान् अग्निदेव स्थित हों, इतने तेजस्वी ऋषि वे थे। महाराजा बृषभानु एवं कीर्त्तिदा महारानी तो उनके आगमनको देखकर ही काँप उठे थे। न जाने क्या भूल हो जाय और मुनि क्रोधित होकर श्राप दे डालें, तो सर्वनाश सुनिश्चित ही है। दम्पति तत्क्षण ही त्राहि माम्, त्राहि माम् करते हुए भगवती योगमायाकी शरणमें गये, और वहीं उन्हें भगवतीका आदेश मिला कि दुर्वासाकी सेवामें दोनों बालिकाओं – राधा एवं मञ्जुश्यामाकी नियुक्ति कर दो; ऋषिका आगमन महामंगलमय, परम

वरदायी हो जायगा।

और महान् आश्चर्य ! जैसे ही मुनिने दोनों बालिकाओंपर दृष्टिपात किया, उनके नेत्र अपलक स्थिर हो गये, उनकी अंजलि बँध गयी। रानी-राजा दोनों ही आश्चर्यमें थे कि मुनि यह क्या करने लगे ? किन्तु मुनिके सम्मुख तो वे दोनों कन्याएँ थी ही नहीं, उन्हें तो दोनोंके स्थानपर अपने इष्ट देवताके साक्षात् दर्शन हो रहे थे।

जो हो, दोनों नृपति-कन्याओंकी सेवासे सन्तुष्ट होकर जब मुनिवर सोलह पहर पश्चात् जाने लगे तो तपेधनका कण्ठ भरा हुआ था। उनके कर अभय मुद्रामें उठे हुए थे, वे अतिशय भाव-भावित थे। वे बारह-चौदह पलतक तो नेत्र मूँदे खड़े रहे, फिर आशीर्वादकी वाणी उनके मुखसे झरने लगी। वे कह रहे थे – हे नृपदम्पति ! इन कन्याओंने मेरी जैसी सेवा की है, वैसी सेवा अबतक न तो कोई कर सका है, न कर सकेगा। मैं मात्र दैवी इच्छासे यही वरदान इन्हें दे रहा हूँ कि इस बड़ी लाडिलीके करसे जो भी रसोई सामग्री बनेगी, वह परम सुस्वादु तो होगी ही, साथ ही समग्र रोगोंका नाश करनेवाली और भोजन करनेवालेकी आयु अक्षय बनानेवाली भी होगी। और यह साँवरी तो यही चाहती है कि इसका प्रेम अपनी बड़ी बहनके प्रति निरन्तर बढ़ता रहे, अतः मैं इसे यही वर दे रहा हूँ।

दुर्वासा ऋषिके इस वरदानकी बातसे भगवती पौर्णमासी सुपरिचित थीं। उन्हींने तो यह विधान किया था कि बृषभानुकिशोरी प्रति दिवस ही नन्दगृहमें प्रातः जाकर नन्दनन्दनको भोजन-द्रव्य बनाकर खिला दे।

विगत शरदसे ही नन्दनन्दनका आनन न जाने क्यों उदास रहा करता है। जननी उसे खिलाना चाहती है, ढेरों पक्वान्न उसके सम्मुख रखती भी है, परन्तु वह जितना पहले खाता था, उसका चौथाई भाग भी नहीं खाता। बृजनन्द्रनन्दनके सखाओंसे भी यह बात छिपी नहीं है कि एक दिन सरोवर-स्नान करती हुई भानुकिशोरी एवं सखियोंको उसने देखा है, और तभीसे उसकी यह दशा हुई है। वह वनमें वनभोजन(छाक) भी नाम मात्रको ही खा पाता है। मैयाने वैद्यवरको बुलाया, परन्तु उसकी औषधियाँ भी अकारथ ही सिद्ध हुई हैं।

हताश सखागण अपने मित्र कन्नूकी रुग्णताकी समग्र गाथा भगवती पौर्णमासीको उनकी पर्णकुटीमें जाकर सुना देते हैं। वे कुटीरवासिनी देवी सखाओंकी बात सुनकर हँस पड़ती हैं। उन्हें निश्चिन्त रहनेको कहकर वे

दोनों प्रमुख सखा – श्रीदाम एवं सुबलको लेकर तत्क्षण ही गोपराज नन्दके गृह पहुँच जाती हैं। यशोदा मैया भी पौणमासी देवीको आया देखकर दौड़कर उनके चरण पकड़ लेती है। साँवरकी रुग्णताके दुःखसे उनके लोचन तो वैसे ही बरसते रहते थे।

सभी ब्रजवासियोंके सम्मुख ही पौर्णमासी देवी यशोदाके सिरपर हाथ फेरती हुई मुसकाकर इतना ही कहती हैं – हे गोपराजपत्नी ! अपनी जेठानी उपनन्दजीकी पत्नी पीवरीसे कह दो कि वे बृषभानूपुर चली जावें और कीर्त्तिदाकी पुत्री राधाको भोजन बनानेके लिये मनुहार करके ले आवें। उसे दुर्वासा ऋषिका वरदान मिला है कि जो भी उसके हाथका भोजन करेगा, तत्क्षण ही वह नीरोग और अक्षय वयका हो जावेगा।

पौर्णमासीदेवीका परिचय

पौर्णमासीदेवी देवर्षि नारदजीकी शिष्या थीं। वे सान्दीपनि मुनिकी माता थीं और नारदजीसे भगवान् श्रीकृष्णके अवतारकी सूचना पाकर उज्जयिनी नगरीसे सीधे ब्रजमें पधारी थीं। वे महान् शक्तिमती थीं। उनके साथ उनका पौत्र बटुक मधुमंगल भी आया था जो महर्षि सान्दीपनिका पुत्र था।

भगवती पौर्णमासी ब्रजमें उस समय पधारी थीं जब महाराज नन्दरायके कोई सन्तान नहीं थी। सभी ब्रजवासी नन्दरायजीके पुत्र होनेकी कामनासे चिन्तित थे। इन दैवज्ञा ब्राह्मणीने ब्रजमें आते ही नन्दरायके महलमें समग्र ब्रजवासियोंके सम्मुख यह भविष्यवाणी की कि गोपराज नन्दके एक पुत्र होगा और वह पुत्र सम्पूर्ण ब्रजमण्डलको आनन्दसिन्धुमें निमग्न कर देगा।

पौर्णमासी देवीकी ऐसी वरदान-क्षमता देखकर समग्र ब्रजमण्डल ही उनके प्रति श्रद्धाभिभूत हो उठता है और ब्रजवासी इन्हें नन्दग्राममें ही यमुना नदीके किनारे एक पर्णशाला बनाकर रहनेका आग्रह करते हैं। पौर्णमासीजी हँसकर अपनी स्वीकृति दे देती हैं और कहती हैं – क्योंकि तुम सभीने मुझे कृष्णा (यमुना)के किनारे रखनेका निश्चय किया है अतः नन्दरायके भावी पुत्रका नाम भी कृष्ण ही होगा।

ये पौर्णमासी देवी महान् प्रभावशालिनी तपस्विनी हैं और भगवान्की शक्ति योगमाया ही इनके रूपमें ब्रजमें निवास करती हैं।

इनके आगमनके कुछ काल पश्चात् यशोदा अनुभव करती हैं कि उनके पति महामना नन्दरायके हृदयसे निकलकर एक घनश्याम वर्ण सुन्दर

बालक विद्युदाभा बालिकाके साथ ही उनके हृदयमें प्रवेश कर रहा है। बस, तभीसे यशोदाके दिव्य भगवद्भावमय गर्भ-लक्षण प्रकट होने लगते हैं। आठ महीनेके पश्चात् भाद्रमासकी कृष्णाष्टमीके मंगलमय दिन जब श्रीगोविन्दका प्राकट्य हो जाता है तो इन पौर्णमासी देवीका वचन शत-प्रतिशत सत्य हुआ मानकर ब्रजवासीजन इनके प्रति अप्रतिम श्रद्धाभिभूत हो उठते हैं। ब्रजके आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और तेज सभी परमानन्दरसमें निमग्न हुए झूम उठते हैं।

तभीसे ब्रजवासी इन करुणामयी अम्बाकी प्रत्येक आज्ञाको अनुल्लंघ्य समझकर उसका पालन करते हैं। सम्पूर्ण ब्रजमंडलमें यह सुदृढ़ निष्ठा है कि भगवती पौर्णमासीका निर्देश सर्वमंगलकारी है। अतः ब्रजमें जहाँ जिसके भी गृहमें किसी अमंगल, दुर्घटना, अथवा विपत्तिकी शंका होती है, इन्हीं वृद्धा तपस्विनीके पास लोग दौड़े जाते हैं, और ये ऊँच-नीचके सारे भेद भुलाकर सभी ब्रजवासियोंका समान भावसे मंगल करनेको सदैव उन्मुख रहती हैं। ब्रजके छोटे-से-छोटे बालकसे लेकर वयोवृद्ध तक, राजासे लेकर रंकतक – सबके लिये समान रूपसे इनका प्रेमद्वार सदैव खुला रहता है। सबके मंगल-सम्पादन हेतु ये सदैव सबको सुलभ रहती हैं।

यही कारण था कि दूसरे दिवस प्रातः ही किशोरी अपनी अनुजा मञ्जुश्यामा, सखी ललिता एवं विशाखाके साथ पाकरचनार्थ नन्दग्राममें यशुमतिगृह पधारती हैं। यशोदा मैया नन्दग्रामसे नान्दीमुखी एवं सुबलपत्नी कुन्दवल्लीको उन्हें बृषभानुपुरसे लिवा लाने भेजती हैं। भानुनन्दिनी यशुमतिगृहमें मैया रोहिणीके आदेशानुसार अनेकों प्रकारके पक्वान्न निर्माण करती हैं। भोजन कराते समय पुनः उनके नयन श्रीकृष्णसे मिलते हैं एवं जब श्रीकृष्ण गोचारणार्थ वनमें प्रस्थान कर जाते हैं, तब किशोरी बृषभानुपुरके लिये प्रस्थान करती हैं।

बृषभानुपुरकी दूरी पार करते-करते बाला किशोरी अतिशय श्रान्त हो उठती हैं। सखियाँ किशोरीके विश्रामके लिये कोई उपयुक्त स्थान अन्वेषण करने लगती हैं। पथके मध्यमें ही उन्हें एक परम रम्य पुराना अश्वत्थ दृष्टिगोचर होता है। आश्चर्य है कि इस अश्वत्थकी पत्रावलि पतझड़में भी नहीं गिरती है। वह सदैव हरीतिमाका पुंज ही बना रहता है। उसकी शत-शत सुन्दर शाखायें ललितादि सखियोंका मन आकर्षित कर लेती हैं। वह तरुराज सचमुच ही चतुर्दिक् पुष्पसौरभका संचार कर रहा होता है। सखियाँ दूरसे ही

उसका घ्राण पाकर हर्षित हुईं उसके समीप चली आती हैं। कैसा विलक्षण पादप है यह ! भोली बाला किशोरी सखियोंसे सस्मित यह जिज्ञासा कर बैठती है – 'पावस, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म – क्या यह वट अपना पुष्प-सौरभ निरन्तर बारहों मास बिखेरता ही रहता है ? क्या इसके अंग पुष्पभारसे सदैव ही नमित रहते हैं ? किन्तु, ऐसी असम्भावित घटना क्यों ?' कुन्दवल्ली राधासे वयमें लगभग पौने तीन वर्ष बड़ी हैं, अतः वात्सल्यसे उसके कपोलोंपर हलकी प्यारभरी चपत लगाकर कह बैठती हैं – 'इसीलिये कि इसके तलको बृषभानुनन्दिनीके श्रीचरणोंका संस्पर्श, इसकी छायामें उनका विश्राम, उनकी नासिका द्वारा इसके पुष्पोंका सौरभ-आघ्राण भविष्यमें होनेवाला जो था, इस अप्रतिम सौभाग्यसे विभूषित होनेके कारण ही सखि, यह इतना सुभग है।'

ब्रजके आसपासके गाँवोंमें ऐसी जनगाथा ही प्रचलित है कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी यहाँ व्यक्त होकर विश्राम करती हैं। इसीलिये इस तरुकी छायातले जो कोई कैसा भी मनोरथ करता है, उसका मनोरथ पूरा होता ही है।

सखियाँ किशोरीसे भी इसी अश्वत्थके तले विश्राम करनेका आग्रह कर बैठती हैं। किशोरीकी आँखें एक क्षणके लिये मुँदती भर हैं और उसे एक रहस्यमयी अनुभूति हो उठती है।

भगवती योगमाया एक नवीन रंगस्थलका उद्घाटन कर देती हैं। श्रीराधा रानी स्वप्न देखने लगती हैं। यद्यपि किशोरीका यह स्वप्न रसके एक अगाध समुद्रका सृजन कर देता है, किन्तु विश्व उस रस-समुद्रके आस्वादन करनेका अधिकारी नहीं है। बिना रसमर्मज्ञ हुए इस रसानुभवका मर्म हृदयंगम होता जो नहीं। यह रससिन्धु असीम है, अमाप है, यह कितना गहरा है, कोई भी नहीं बतला सकता। जो जितना भी डूबता है, उसे इस सिन्धुकी गहराई अनन्त ही प्रतीत होती है। वह उसीमें समाप्त हो जाता है। जो कहीं बाहर उछल आता है, वह गूँगा हो जाता है। गूँगा बहरा भी होता है, अतः कैसे निर्णय हो कि उसका संकेत कोई समझा या नहीं समझा। नियमतः डूबकर उछलनेवाले प्रायः विक्षिप्त ही होते हैं।

जो हो, नीलसुन्दरसे श्रीराधारानीका जो नित्य सम्बन्ध है, किशोरमूर्त्तिको देखते ही जो उन्होंने विवेक खोकर आत्मसमर्पण किया है, अपना तन-मन-प्राण

-जीवन-यौवन उस किशोरको ही वे समर्पित कर चुकी हैं, उस किशोरके साथ जो वे अपने प्राणोंका सौदा कर बैठी हैं, सब-कुछ विस्मृतिके अतल तलमें चला जाता है।

उन्हें तो ऐसा ही स्वप्न होता है मानो उनका द्विरागमन हो रहा है। अपनी अनुजा मञ्जुश्यामाके साथ ही वे गन्तव्य स्थानकी ओर जा रही हैं। उनका देवर दुर्मद आगे-से-आगे चलकर पथका प्रदर्शन करता जा रहा है। पथमें किशोरी अपने विवाहके वृत्तका चिन्तन करने लगती हैं, जो वस्तुतः उनके जीवनमें घटित ही नहीं हुआ।

रविमन्दिरकी ओर जानेके पथमें एक सेतु आता है। वे अत्यन्त विनयकी मुद्रामें दुर्मदको कुछ आदेश देती हैं। दुर्मद ज्यों-का-त्यों उस आदेशका पालन करता है। राधाकिशोरी रविमन्दिरकी ओर दर्शनार्थ अग्रसर होती हैं। किशोरी अपनी अनुजाके सम्मुख निज हृदयकी समस्त वेदना प्रकट कर देती है। अनुजा फूत्कारपूर्वक रोने लगती है। राधानुजा अपनी बड़ी बहनको और राधा अपनी अनुजा मंजुश्यामाको परस्पर ढाढ़स दिलाती हैं। राधाकिशोरी ग्राममें प्रवेश करती हैं; फिर उस विशाल गृहमें प्रवेश करती हैं। किशोरीके द्वारा भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी अर्चना करायी जाती है। राधाकिशोरी भगवतीकी अर्चना सम्पूर्ण होनेपर देवीको प्रणामकर अपनी वृद्धा सास जटिलाको प्रणाम करती हैं।

अचानक राधाकिशोरीको गहरी मूर्च्छा आ जाती है। वृद्धाके द्वारा विविध भाँतिके शीतल उपचारोंके फलस्वरूप किशोरीको बाह्यज्ञान होता है।

इसी समय अकस्मात् वह पर्णकुटीरवासिनी देवी आ पहुँचती हैं। उस समय किशोरी राधा केवल इतना-सा ही अनुभव करती हैं कि संसारमें उनकी रक्षा करनेवाली अब एकमात्र ये पर्णकुटीवासिनी अम्बा ही हैं। देवी अति गूढ़ वचनोंमें राधाको आश्वस्त करती हैं।

वे देवी राधाकी तथाकथित सास — वृद्धा जटिलासे भी मिलती हैं और श्रीराधाके लिये द्वादशवर्षीय सूर्यपूजनव्रतका नियम निर्धारित कर देती हैं। वृद्धा एवं उसके परिवारके सभी परिजन पौर्णमासी देवीकी प्रत्येक उक्तिका अनुमोदन करते चले जाते हैं।

किशोरी एवं उनकी अनुजाका दुस्सह परिताप मिट जाता है। अपना अभीष्ट पाकर दोनों ही बहिनें पर्णकुटीरवासिनी देवीके पदमें लोट पड़ती हैं।

दयामयी अम्बा उन दोनोंको अपनी छातीसे चिपटा लेती हैं। अम्बाके नेत्रोंसे झर-झर प्रेमाश्रु बहने लगते हैं। अन्तस्तल प्रेमकी सीमामें बद्ध नहीं रह पाता।

अस्तु, किशोरीके द्वारा सूर्यपूजा आरम्भ होती है। संध्याके समय सभी सहेलियाँ भी आकर मिलती हैं। दूसरे दिवस प्रभात हो जानेपर राधाकिशोरी सूर्यपूजनके लिये पुष्पचयन करने जाती हैं। सभी सखियाँ वनके पुष्पित वृक्षोंकी शोभा देख-देखकर चकित हो उठती हैं। भोली किशोरी अपनी सखि ललितासे पूछ बैठती हैं – ललिते, सखी ! क्या यही वृन्दाकानन है ? 'हाँ, बहिन ! कृष्ण-क्रीड़ा-कानन यही है।' ललिता उसे तत्क्षण यही उत्तर दे देती है।

बस, यह उत्तर सुनते ही किशोरी भावविभोर हो उठती हैं। उनके हाथसे पुष्पका दोना गिर जाता है। किशोरी बिना पुष्पचयन किये ही घरको लौट जाती हैं, वे अपने निवासकक्षके द्वार बन्द कर लेती हैं। किशोरीके श्रवणपुटोंमें एक अनिर्वचनीय तत्मयताका आविर्भाव हो उठता है। दिवसपर्यन्त वे अनाहार ही रहती हैं, सायंकाल भी कुछ नहीं खातीं। रात्रिमें उन्हें निद्रा भी नहीं आती। प्रभात होनेपर सहचरी ललिता उन्हें सम्हालने आती है।

ललिता देखती है –'किशोरीके नेत्र सजल हैं, अरुण हैं; सूचना दे रहे हैं कि निशापर्यन्त किशोरी सो नहीं पायी है। सहचरीके अत्यन्त आग्रह करनेपर राधाकिशोरी किंचित् मुखर होती हैं। किशोरी बतलाती हैं –'सखि ! न जाने तुमने 'कृष्ण' किसका नाम लिया ? इसने तो मेरे कानोंमें प्रवेश करते ही मेरे समग्र धैर्यका ही अपहरण कर लिया। बता, बहन, यह कृष्ण किसका नाम है ? यह कौन पुरुष है ?'

इसके पश्चात् वे पुनः मौन हो जाती हैं। दो घड़ीतक ललिताके शत-शत प्यारसे सान्त्वना दिये जानेपर किशोरी अपनी दशाका जो भी वर्णन करती है, उसे महात्मा नन्ददासजीने अपनी प्रत्यक्ष अनुभूतिमयी पदरचनामें यों व्यक्त किया है :

कृष्णनाम जबतें श्रवणन सुन्यौरी आली
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।
भरि-भरि आवैं नयन, चित हू न परै चैन
मुख तें न निकसें बैन,
तनकी दसा कछु और हू भई री।
जेतेक मैं नेम धर्म कीने री बहुत विधि
अंग-अंग भई हौं तो श्रवणमई री।

नन्ददास जाके श्रवणन सुनत यह गति भई
माधुरी मूरति कैधौं कैसी दई री!!

किशोरीके हृदयका मर्म सुनते-सुनते ही ललिताकी आँखें भर आती हैं। उल्लास एवं सहानुभूतिपूरित जलविन्दु ललिताकी आँखोंसे झरने लग जाते हैं। राधा और भी विह्वल हो उठती है। अनुजा मंजुश्यामा यह सब बड़े ध्यानसे देखती रहती है। अनुजा सामयिक सेवा सम्पन्नकर अपनी बहिनके शरीरकी रक्षामें लग जाती है।

इस प्रकार भावावेशमें ही सन्ध्या हो आती है। अचानक ही किशोरीके कर्णपुटोंमें मुरलीका रव झंकृत होने लग जाता है। वंशी रवका सृजन करनेवालेके प्रति भी किशोरी अपना सम्पूर्ण आत्मनिवेदन कर बैठती है। 'ओह ! यह अमृत-निर्झर ! सुधा-प्रवाह !! कहाँसे, किस ओरसे ? भानुकिशोरीका सम्पूर्ण शरीर इस प्रकार थर-थर काँपने लगता है जैसे शीतकालमें उनपर हिमकी वर्षा हो रही हो; साथ ही अंगोंसे प्रस्वेदकी धारा बह चलती है। यह धारा इतनी अधिक मात्रामें बहती है, मानो ग्रीष्मतापसे अंगका अणु-अणु उत्तप्त हो रहा हो। कानोंपर हाथ रखकर वे विस्फारितनेत्रोंसे वनकी ओर देखने लग जाती हैं। ललिता दूरसे किशोरीकी यह दशा देखती रहती है। वह दौड़कर समीप आ जाती है। तबतक तो किशोरी बाह्यज्ञान-शून्य ही हो जाती हैं। जब उपवनके वृक्षोंसे, पर्वत-कन्दराओंसे वंशीका प्रतिनाद आना बंद हो जाता है, तब कहीं किशोरी आँखें खोलकर देखती हैं। ललिता किशोरीको गोदमें लिटाकर अपने प्यारसे नहलाकर पूछती है – मेरी लाडिली ! सच बता, तुझे क्या हो गया था ? तेरे अंग सहसा इस प्रकार विवश क्यों हो जाते हैं ? लाडिली उत्तरमें इतना ही कह पाती है –

नादः कदम्बविटपान्तरतो विसर्पन्
को नाम कर्ण पदवीमविशन्त जाने।

'ओह ! उस कदम्ब वृक्षके अन्तरालसे न जाने कैसी एक ध्वनि आयी, मेरे कानोंमें प्रविष्ट हो गयी। आह ! कदाचित् उस अमृतनिर्झरके उद्गमको मैं देख पाती !' अतिशय शीघ्रतासे ललिता कहती है – 'बावरी ! वह तो वंशीध्वनि थी !' इस बार भानुनन्दिनी अत्यधिक उद्विग्न-सी हुई अस्पष्ट स्वरमें तुरन्त बोल उठती है – 'वह किसका वंशी-निनाद था ? फिर तो .... कहते-कहते लाडिली पुनः मूर्च्छित हो जाती है।

किशोरीको अपने देहकी आत्यन्तिक विस्मृति हो जाती है। उसका चित्त उस वंशीनादसे सर्वथा एकत्व स्थापित कर लेता है। किशोरीके चित्तका रूप ही वंशीनादमय बन जाता है।

अनुजा मंजुश्यामा बहुत-से उपायोंका आश्रय लेती है, तब कहीं राधाकिशोरीको बाह्य ज्ञान होता है। जैसे-तैसे प्रातःकृत्योंका अधूरा-सा निर्वाह हो पाता है। प्रतिपल अनुजा किशोरीको सम्हाल रही है, इसीलिये इस परिस्थितिका आभासतक वृद्धा सास एवं उसकी पुत्रीको नहीं हो पाता।

अपराह्णके समय सखी विशाखा किशोरीको एक चित्रपट लाकर देती है। यह चित्रपट उन्होंने स्वयं अंकित किया है। अंकितकर अपनी प्यारी सखी श्रीराधाके पास इस आशासे ले आयी थीं कि श्रीराधाकिशोरी उसे देखकर सान्त्वना पावेगी। जब कृष्ण-नामके श्रवण मात्रसे किशोरीका इतना समाकर्षण हो गया है, तो चित्र उन्हें निश्चय ही धैर्य प्रदान करेगा। किन्तु परिणाम उलटा होता है। भानुकिशोरीकी व्याकुलता चित्रपट देखकर सीमा ही त्याग देती है। चित्रका सौन्दर्य देखते-देखते ही वे चित्रमय हो उठती हैं। उस अखिल-रसामृत-मूर्त्ति बालकके प्रति किशोरी अपना सम्पूर्ण आत्मोत्सर्ग तो करती ही हैं, किशोरीकी बुद्धि भी तद्रूप हो जाती है। सर्वत्र उन्हें उस नील बालकके ही दर्शन होने लगते हैं। रजनीमें तो किशोरीका चित्त अद्भुत विकलतासे परिपूर्ण हो उठता है।

रात्रिभरमें ही किशोरीके चित्तकी दशा ऐसी हो जाती है जिसे देखते ही ललिता-विशाखा चिन्ताग्रस्त हो उठती हैं। उन्माद रोगके सभी लक्षण किशोरीमें परिपूर्ण प्रकट दिखते हैं। इतना भर अच्छा होता है कि किशोरी अपनी बहिन मञ्जुश्यामा एवं सखियोंको पहचानती हैं।

सहचरीका नाम लेकर किशोरी बड़े ही उच्च स्वरमें बोल उठती हैं 'मुझे स्पर्श मत करो, मुझे स्पर्श मत करो ।' इस प्रकार कहकर वे अपने कक्षसे बाहर भाग चलनेको आतुर हो उठती हैं। सहचरी ललिता द्वार रोककर खड़ी हो जाती हैं। किशोरी उच्च स्वरसे विलाप करने लगती हैं। ललिता-विशाखा दोनों उसे सान्त्ध्वना देनेका अथक प्रयास करती हैं। किशोरी धीरे-धीरे अपने हृदयके अनिवार्य परितापकी बात कहने लगती है – 'बहिन ! तू जानती नहीं कि मैं कितनी अधमा हूँ । अच्छा ! सुन ले । मृत्युसे पूर्व उसे प्रकट कर देना ही उत्तम है। उस दिवस मैंने तेरे मुखसे कृष्ण नाम ही सुना था। सुनते ही मेरा

विवेक जाता रहा। यह भी सोच नहीं पायी कि यह कृष्ण कौन है ? तत्क्षण ही मन-ही-मन अपना मन-प्राण-यौवन सब उसे समर्पित कर बैठी। ओह ! वह नाम नहीं, अमृत-निर्झर था। एक विलक्षण मधुर सुधा-प्रवाह था। ओह ! ललिताके अधरोंके माध्यमसे न जाने कैसी एक ध्वनि आयी, और मेरे कानोंमें प्रविष्ट हो गयी। उस नामने न जाने कितने अपूर्व प्यारसे मेरा रोम-रोम सिक्त कर दिया। बहिन ! मेरा मन विवश हो गया। अमृत-निर्झर सदृश उस नामवाले व्यक्तिको मैं अपना सर्वस्व समर्पण कर बैठी। सोचने लगी, यह व्यक्ति मुझे मिले, न मिले, इस 'कृष्ण' नामके सहारे ही मेरा जीवन व्यतीत कर दूँगी।'

'किन्तु उसी दिवस सायं कदम्बकुञ्जोंमें वंशी बज उठी। उस ध्वनिको सुनकर भी मेरा मन विक्षिप्त हो उठा। अभी दो पहर पूर्व 'कृष्ण' नामवाले व्यक्तिको आत्मसमर्पण किया था, परन्तु परम उन्मादिनी मुझे अपना पूर्व समर्पण स्मरण ही नहीं रहता। जब एक बार किसीकी हो चुकी तो कैसे इस मुरलीवादकने मुझे प्रेमकल्पनाओंमें बहा दिया। इतनेमें ही यह चित्रपट मेरे सम्मुख आया। चित्रकी छवि मात्र एक बार ही देख सकी, देखते ही वह मेघद्युति स्निग्ध पुरुष मेरे हृदय एवं प्राणोंसे एक हो गया। ओह ! धिक्कार है मुझे ! मैंने अनेक पुरुषोंको आत्मसमर्पण किया। ऐसे मलिन जीवनसे तो मृत्यु ही भली।'

भानुकिशोरी सुबक-सुबककर रोने लगती है। किन्तु अब तो सखी ललिता-विशाखाको पथ मिल जाता है। वे उल्लाससे भरकर बोल उठती हैं — बहिन ! तू भी अतिशय बावरी है ! अरी, कृष्णनाम, वंशीध्वनि एवं यह चित्र — तीन व्यक्तियोंके थोड़े ही हैं ? ये तीनों तो एक ही व्यक्तिके हैं !

किशोरीके उत्तप्त प्राणोंमें मानो ललिता अमृत उडेल देती है। उसके प्राण शीतल हो उठते हैं। शीतल प्राण सुखकी निद्रामें सो जाते हैं। इस प्रकार भानुनन्दिनी आनन्द-मूर्च्छित होकर ललिताकी गोदमें निश्चेष्ट पड़ जाती हैं।

अब इधर तो किशोरीकी प्रीतिका यह हाल है कि वे अपने सम्मुख मयूर देख लेती हैं तो उनका शरीर कम्पायमान हो उठता है। उनकी दृष्टि गुञ्जापर पड़ जाती है तो नयनोंसे निर्झरकी तरह अश्रु बह उठते हैं। आकाशमें श्याम मेघ उठते हैं तो उन्हें शत-शत श्रीकृष्ण गगनमें नाचते दिखने लगते हैं। किशोरी पक्षीवत् उड़नेका प्रयास करती हैं, परन्तु पंखोंके अभावमें विवश हो जाती हैं। विरहसे व्यथित श्रीकृष्णको भूलना चाहती हैं परन्तु भूल पाती नहीं।

वे अपना मन अन्य विषयोंमें लगाती हैं परन्तु किशोरीका मन विषयोंको भी श्रीकृष्णरूप देखता है अतः श्रीकृष्ण-स्मृतिमें और प्रगाढ़ रूपसे विलीन हो जाता है।

यस्य स्फूर्त्ति लवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते।
मुग्धेयं किल पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकांक्षति।।

(विदग्धमाधव)

'ओह ! जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी लवमात्र स्फूर्त्तिके लिये योगी उत्कण्ठित रहते हैं, यत्न करते हैं, फिर भी स्फूर्त्ति नहीं होती, उन्हीं श्रीकृष्णको अपने हृदयपटलसे हटानेके लिये लाडिली इच्छा कर रही है, फिर भी वे उसके हृदयसे लवमात्र हटते नहीं।' अस्तु,

इधर ब्रजमें शरद ऋतु आ जाती है। प्रातःकी बेला समाप्त हो जाती है। अभी-अभी संगवकाल प्रारंभ ही हुआ है। अनेक सुन्दर सखाओंको लेकर, जो प्रायः सभी समवयस्क हैं, नीलसुन्दर गोचारणके लिये वनस्थलकी ओर अग्रसर होते हैं। उनके आगे-पीछे शत-सहस्र गायें चल रही होती हैं। वे एक अतिशय सुरम्य वनमें पहुँच जाते हैं। इस वनके भीतर ही परम पवित्र रविमन्दिर है। श्रीराधाकिशोरी इस रविमन्दिरमें प्रतिदिवस द्वितीय प्रहर होते-होते चली आती हैं। वे पूजन करनेके पूर्व पार्श्वमें ही स्थित एक सुरम्य कासारमें स्नान करती हैं। यह कासार बिना पंकके ही कमलोंसे भरा रहता है। रविमन्दिरमें स्थित सूर्यदेवके विग्रहसे दिनकरकी किरणोंके समान तेज प्रतिक्षण आठों पहर निकलता रहता है ; उन किरणोंके प्रभावसे यहाँके कमल आठों पहर निशामें भी खिले रहते हैं। यहाँ राधाकिशोरी एवं उनकी सहचरियोंकी स्वच्छन्द क्रीड़ा निर्बाध रूपसे चल रही है। तटकी वृक्षावली उनके रत्नकंकणोंसे झंकृत हो रही है। श्रीराधारानी एवं उनकी सहचरियोंके अंग कटिसे ऊपर तो आवरणहीन हैं। उनके अप्रतिम रूपकी उन्मादी धाराको एवं पौगण्ड तथा कैशोरकी सन्धिपर जागकर झाँकनेवाले भावोंको, उनकी भीगी अलकोंका जाल मात्र रह-रहकर ढँक दे रहा है।

जो हो, उस जलविहारसे राधाकिशोरी एवं सहचरियोंके अरुणिम नयनोंकी सुषमासे एक अद्भुत सम्मोहिनी शक्ति बिखर रही थी। त्रिभुवनके स्थावर-जंगमकी बात तो दूर, आश्चर्यकी बात तो यह है कि वहाँ त्रिभुवन-मन-मोहिनीकी गति भी अचानक उसके प्रभावसे रुद्ध हो गयी थी।

नीलसुन्दर सचमुच विश्वविमोहन थे, किन्तु संयोगकी बात ! गायोंको लिये हुए जब वे आज उस सरोवरपर पहुँचते हैं और उनकी दृष्टि राधाकिशोरी, उनकी अनुजा मञ्जुश्यामा, उनकी सहचरियोंके आर्द्र कुन्तलोंसे मण्डित मुखपर पड़ती है, बस, उसी क्षण वंशीमें स्वर भरनेकी उनकी क्रिया, उनकी समग्र चपलता विरमित हो जाती है। उनकी चञ्चल आँखें अचानक अपलक हो जाती हैं। अस्तु,

जब दो रसमय हृदयोंके परस्पर जुड़नेका समय आता हैं, तब उसका संयोग कहाँ, कैसे लगता है – यह बात वे साँवरके सहचर – दुधमुँहे सरल शिशु क्या जानें ? इसीलिये वे अपने प्राणसखा नीलसुन्दरकी चादरको कर्षित करके तत्क्षण बोल उठते हैं –'अरे भैया ! अरे, ये तो श्रीभैयाकी बहनें और उनकी सहचरियाँ हैं, स्नान कर रही हैं, भाई, यदि तेरी भी नहानेकी रुचि हो तो स्पष्ट बतला, अन्यथा हम आगे बढें।'

नीलसुन्दर शिशुओंको तो कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं, तुरन्त ही अपने भावोंको संगोपितकर अपनी दृष्टि उधरसे हटा लेते हैं, वे चुपचाप आगे चल पड़ते हैं। किन्तु जो उल्लास उनके मुख-सरोजपर प्रतिदिन रहता था, उसकी छायातक अब नहीं रहती।

सखा देखते हैं कि उनके अथक प्रयास करनेपर भी नीलसुन्दर पूर्ववत् आज नहीं हँस रहे हैं। मध्याह्न होनेपर यशोदा मैयाकी भेजी हुई छाक आ जाती है, सभी सखा अपने प्रिय कन्नूको साथ लेकर भोजनके लिये बैठते हैं, किन्तु उनका कन्नू ही भरपेट नहीं खाता तो सखा भला कैसे खाते ? सम्पूर्ण सामग्री ज्यों-की-त्यों पड़ी रह जाती है।

सखा देखते हैं – आज कन्नूका समग्र व्यवहार ही कुछ परिवर्त्तित-सा हो गया है। जिस समय वनमें कुसुमोंसे विभूषित चम्पकलतापर कन्नूकी दृष्टि पड़ती है, उस समय उसके समग्र अंग ही काँपने लगते हैं। सिरसे कब मयूर-पिच्छ गिर गया है, उसे होश ही नहीं रहता। मधुमंगल वनमाला गूँथकर लाता है, पहनाता है, नीलसुन्दर पहन लेते हैं, किन्तु उन्हें ज्ञान नहीं है कि कौन सखा क्या, कैसा श्रृंगार करने जा रहा है। उसे तो मात्र कदम्बवनके नीरव कुञ्जोंमें नयन मूँदकर शान्त बैठे रहनेमें ही प्राणोंकी शीतलता मिलती है।

किसी भोले सखाके मनमें यह बात आती है कि अवश्य मेरे प्रिय सखाको नजर लग गयी है। बस, वह गायोंकी पूँछ अपने कन्नूके चारों ओर

फिराकर नजर उतारनेका प्रयत्न करने लगता है।

अवश्य ही सुबलको इस बातकी गन्ध मिल जाती है कि उसके मित्रकी यह दशा श्रीदाम भैयाकी बहनको देखनेसे ही हुई है। वह श्रीदामको संकेत भी कर देता है। श्रीदाम उसके सम्मुख स्वीकार कर लेता है कि उसकी बहन सुन्दरीवनमें स्थित कन्नूकी प्रतिमाको देखकर ही विक्षिप्त हो उठी थी। अवश्य कन्नू भी उसे देखकर ही इस उदासीनतामें डूबा है। उसकी सहोदरासे कन्नूकी आँखें मिलीं तो अवश्य ही हैं।

इतना सब होनेपर भी प्रेम-विवर्धन-चतुर श्रीकृष्णचन्द्र अपना भाव संगुप्त रखनेमें पूर्णतया सफल हो रहे हैं। ललिता-विशाखा किशोरीके प्रति इनके प्रेमकी थाह जाननेकी अथक चेष्टा करती हैं, किन्तु श्रीकृष्ण उनसे इस सम्बन्धमें इतना बेरुखा व्यवहार करते हैं मानो उनके मनमें किशोरीके प्रति किंचिन्मात्र भी स्थान नहीं है।

विरहसे व्याकुल किशोरी लज्जा बहा देती है। लज्जा छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्रको पत्र लिख भेजती है। किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र पत्रका उत्तर भी नहीं देते। अब तो निराशाकी सीमा ही आ जाती है। माता कीर्त्तिदा एवं बृषभानुजी भी श्रीकृष्णकी इस रुखाईसे परिचित हो जाते है। अतः यावट ग्राममें विवाहका निश्चय और सुदृढ़ हो जाता है।

किशोरीकी विचित्र दशा है। शरीर इतना कृश हो गया है, मानो वे एक पक्षसे निराहार रही हों। कुन्तलराशि पीठपर बिखरी पड़ी रहती है, किसीसे बात भी नहीं करतीं। सजल, अरुण नेत्र सूचना दे ही देते हैं कि किशोरीकी रातें जागते व्यतीत हो रही हैं। वाणी रुद्ध रहती है। मन-ही-मन 'कृष्ण 'कृष्ण' की आवृत्ति वह करती रहती है। थोड़े-थोड़े कालमें उसका बाह्य ज्ञान जाता रहता है। किशोरीका हृदय चूर-चूर हो गया है। जीनेकी साध समाप्त हो गयी है। प्रियतम श्रीकृष्ण मुझे इस शरीरसे अपनावेंगे, यह आशा शून्यमें विलीन हो गयी है।

श्रीकृष्ण इस जीवनमें नहीं मिले, कदाचित् जीवनके उस पार ....। युगल बहनें कलिन्दनन्दिनीका आश्रय लेने चल पड़ती हैं।

\+ + +

आज कलिन्दनन्दिनी भी मानो प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति रुष्ट होकर बृषभानुजाको अपनेमें विलीन करने आतुर हो उठी हों – उसका उफान चरम

सीमापर है।

अपने महाप्रयाणके पूर्व पाथेयके रूपमें किशोरीके मनमें उस नीलसुन्दर बालकके चित्रपटके दर्शनकी कामना जग उठती है। किन्तु हाय ! हतभाग्य ! किशोरीकी वह अन्तिम कामना भी पूर्ण नहीं हो पाती। क्योंकि वह चित्रपट वहाँ था जो नहीं ! सहचरी उसे अपने साथ नहीं लायी थी।

'हाय रे ! मैं मन्दभाग्यवाली इतना-सा सुख भी कैसे ले सकती हूँ ? इसीलिये मैं अपने आराध्य देवताका चित्रतक भी अन्तमें नहीं देख सकी। उस दिवस तो मेरी ऐसी दशा थी कि मेरे हृदयका कोना-कोना सर्वत्र उनकी छविसे परिपूरित था। देखूँ, कदाचित् हृदयके किसी कोनेमें ही उनका दर्शन हो जावे और मैं उनमें ही अपने प्राणोंको विलीन कर सकूँ।

यह कहती-कहती राधाकिशोरी अपनी आँखें बन्द कर लेती हैं। सहचरी राधाकिशोरीको अपने अंकमें लेकर उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगती है।

लताजालकी ओटसे श्रीकृष्णचन्द्र भानुनन्दिनीकी विकल चेष्टा देख रहे हैं। मञ्जुश्यामा एवं किशोरी – युगल बहनें ज्योंही एक दूसरेका हाथ पकड़े यमुनामें उतर पड़ती हैं, श्रीकृष्णचन्द्रके धैर्यकी सीमा समाप्त हो जाती है। लताजाल फाड़कर वे भी यमुनामें प्रवेश कर जाते हैं और दोनों बहिनोंको यमुनामें कूदकर बचा लेते है। 'प्राणेश्वरी ! प्राणवल्लभे !! नेत्र खोल री !!! देख, मैं आ गया हूँ।' भानुकिशोरी नेत्र खोलती है।

पू.गुरुदेव अपने 'प्रियतम काव्य'में इस लीलाका अन्तिम प्रसंग वर्णन करते हुए लिखते हैं – " कदाचित् नील-पोस्त्रोंकी संख्यामें मेरे मुखमें जिह्वाएँ होतीं, कालका बन्धन सर्वथा ही नहीं होता, तब उस रसनाकी तूलिका लेकर चित्र अंकित करती रह जाती .... किसका चित्र ? उसका – जो सुखद अनुभूति राधानुजा, सहचरी एवं श्रीराधाको नीलसुन्दरके वहाँ आ जानेसे हुई। किन्तु लगता है, इतना होनेपर भी यथोचित चित्र मैं अंकित नहीं ही कर पाती।"

"जैसे कोई कवि अपनी सरस कल्पनाओंको चुन-चुनकर उनको मालामें गुम्फित करके, अपने प्राणोंमें ही छिपाकर रख ले, सम्मान एवं गर्वके हाथों वह माला सर्वथा अस्पृष्ट रहे, उस मालामें जो एक उल्लास भरा होता है, वही उल्लास राधाकिशोरीमें तथा उस नील बालकमें सब ओर परिपूर्ण हो उठा।"

"जैसे अत्यन्त पवित्र-से-पवित्र अनुरागमयी दो धारायें दृगोंसे बह-बहकर

फिर इस देशकालकी सीमासे उस पार पहुँच करके संगमित हो जायें, उनमें जो नित्य शीतलता रहती है, वही शीतलता इस समय उन दोनों प्राणोंको आत्मसात् कर रही थी।"

"जहाँ यह अहंता नहीं है, बुद्धिकी वृत्ति भी नहीं है, न ये प्राकृत गुण ही हैं; और तो क्या, जहाँ यह प्रकृति भी नहीं है, तथा अहो ! बस, जहाँ केवल चित्त-ही-चित्त है, जहाँ अद्वयपनकी नित्य निरुपम गंभीरता परिपूरित रहती है, वही गम्भीरता राधाकिशोरी एवं नीलसुन्दरके प्राणोंमें उस समय व्यक्त हो रही थी, भला ।"

"इस कालमानसे उन दोनोंको अपने यथास्थित कलेवरमें लौट आनेमें कितना समय लगा, अहो ! शतवार चतुर्मुख जग-जगकर पुनः सो गये, इतना-सा केवल दो दण्ड मात्र ही समय लगा, इसे तो एकमात्र तुम्हीं जानते हो, मेरे नीलसुन्दर देवता !"

" जो हो, रजनीके अंचलमें बसनेवाली वह सुषमा उनके लोचनोंकी पलकोंको छू-छूकरके धीरे-से उस विशुद्ध रस-पद्धतिका जब संकेत करने लगी, वे तभी अपनी प्रकृतिको स्वीकार कर सके थे भला !"

"राधा, राधानुजा एवं सहचरीके मुख-सरोजसे कोई भी वाणी निःसृत नहीं हो सकी। केवल सहचरी ललिताकी आँखोंमें प्रणयकोपकी छाया-सी क्षणभरके लिये झाँक गयी थी। सहचरी उस समय चंचल-सी हो गयी थी। उसके मुखपर उसके हृदयगत भाव सुस्पष्ट रूपसे अंकित हो गये थे। किन्तु सहसा सहचरीकी आँखें राधाकिशोरी एवं नीलसुन्दरके मुख-सरोजपर नाच उठीं।"

" राधाकिशोरी एवं उस नीलसुन्दर बालकके कपोलोंपर जो अश्रुकी रेखा बन गयी थी, बनती ही जा रही थी, उसीके अन्तरालसे उनका हृदय बोल रहा था। ऐसे समयमें अब सहचरी भला उन लीलसुन्दर बालकको क्या उपालम्भ देती ? वह तो रसकी भाषाका ककहरा मात्र स्मरण करने लग गयी।"

"ऊपर नभमें वृक्षावलीसे तनिक उन्नत उठकर चन्द्रदेव साक्षी दे रहे थे। नीली प्रवाहिणी कल-कलरवके द्वारा मंगलमय शुभ गीतोंका गान कर रही थी। सहचरी अपने नयनोंके जलसे परिणयकी वेदीको प्रक्षालित कर रही थी, तथा विद्युल्लहरीका कर-सरोज धारण किये कृष्ण-जलधर सुशोभित था।"

"यह एक स्वप्न है। अहो ! किन्तु यह किञ्चित् अँधेरा, तमोगुणकी छाया भी लिये है। इसमें संकल्पकी कहीं कोई गंध भी नहीं है, फिर भी इसमें अद्भुत विक्षिप्तपना भरा है। यह संविद् रसमय है, तथापि हृत्तलकी आह लिये हुए है। राधाकिशोरीके लिये तो यह एक स्वप्न है, किन्तु सत्य पूछा जाय तो यह भूत, भविष्यत् एवं वर्त्तमानके संविन्मय रसका, संविन्मय जीवनका चित्र है।"

"महाभावमयी राधा ऐसे असंख्य स्वप्न प्रतिदिवस ही देखती रहती हैं। किशोरी तो अपने प्रियतमसे नित्य मिलित, नित्य परिरम्भित रहती ही हैं। परन्तु जैसे ही उनकी आँख झपकती है, एक विलक्षण रसकी उत्तुंग लहर उनके मानसमें उठती है और वे नित्य नयी-नयी लीलाप्रवाहमें बह उठती हैं।"

अनन्त लीलाप्रवाहकी एक झाँकी पू.गुरुदेव द्वारा लिखित 'अनुराग-परीक्षा लीला' है। इस लीलामें राधाकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामाके स्नेहकी इसी प्रकार परीक्षा है, जैसे उपरोक्त स्वप्नमें किशोरी अपनी स्वयंकी परीक्षा दे चुकी हैं।

अनुराग परीक्षा लीला

[कक्षमें वृद्धा विराजित है। समीप ही उसकी पुत्री बैठी है। वृद्धाके पुत्रका प्रवेश, मातृचरण-वन्दन]

वृद्धा – मेरे लाल ! चिरञ्जीव ! गोधन सम्पत्ति बढ़े, और द्वादश वर्षके अनन्तर मैं अपनी छोटी बहूकी गोदमें पौत्रका दर्शन करूँ। किन्तु (भयभीत-सी हुई मुद्रामें) इस समय तुम क्यों आये ?

पुत्र – जननि ! भगवती पौर्णमासीकी अनुमति लेकर आया हूँ।

[कहकर लज्जाकी मुद्रामें अवनत खड़ा रहता है]

वृद्धा – (उल्लास भरे स्वरमें) तब तो कोई चिन्ताकी बात नहीं। बोल !

पुत्र – (अतिशय लज्जामें भरा हुआ) शेष बातें मेरी बहिनसे पूछ ले।

[बाहर चला जाता है और पुत्री वृद्धाके कानमें कुछ पलतक फुस-फुस करती रहती है। यह सम्पूर्ण चर्चा कक्षकी पिछली दीवालसे सटी हुई मञ्जुश्यामा सुन लेती हैं]

वृद्धा – (उल्लासके स्वरमें) अरी बड़ी बहू !

[बड़ी बहूका प्रवेश]

वृद्धा – बेटी ! तेरा सुहाग अचल रहे। तू मेरे कानोंसे अपना मुख सटा दे। मुझे कुछ बात कहनी है।

[बहूका आज्ञापालन। वृद्धाका देरतक फुस-फुस करना]

– दूसरा दृश्य –

[वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा एक सुसज्जित कक्षमें अपनी बहिन मञ्जुश्यामाको अंकमें लिये फूट-फूटकर रो रही हैं। मञ्जुश्यामाकी आँखोंसे भी अश्रुधारा चल रही है।]

श्रीराधा– (सुबकी भरती हुई) बहिन ! अब क्या होगा ?

मञ्जुश्यामा– (आँखें पोंछती हुई) देख बहिन ! तू तो चली जा।

श्रीराधा – (बहिनको अंकसे चिपकाती हुई) असम्भव-असम्भव !

मञ्जुश्यामा – (भर्राये हुए स्वरमें) बहिन ! प्रियतम श्रीकृष्ण पथ जोह रहे होंगे।

श्रीराधा – (रोती हुई) बावरी हुई है तू ?

मञ्जुश्यामा – (कुछ धैर्य बटोरती हुई) बहिन ! अभी तो कुछ बिगड़ा नहीं है न ! देख ! कदाचित् मैं भी अक्षत निकल भागूँ।

श्रीराधा – तुझे छोड़कर मैं चली जाऊँ यह असम्भव है।

मञ्जुश्यामा – देख बहिन ! ऐसे अवसरपर बड़े धैर्यकी आवश्यकता होती है। यदि तू यहाँ रह जायगी तो फिर आज तुझे साथ लेकर मैं निकल भागूँ, यह तो होनेका ही नहीं। हाँ, तेरे चले जानेके अनन्तर किञ्चित् आशा तो मुझे अवश्य है कि मैं बाल-बाल बचकर निकलकर तेरे पास पहुँच जाऊँ।

श्रीराधा – (करुण कण्ठसे) तू कैसे निकलेगी, बहिन?

मञ्जुश्यामा – कौशल रचूँगी। कदाचित् सफल हो

जाऊँ।

श्रीराधा – और नहीं हुई तो ?

मञ्जुश्यामा – (रोकर) फिर तू अपनी छोटी बहिनको इस जन्ममें सर्वथा भूल जाना।

[दोनों फूट-फूटकर रोने लगती हैं]

मञ्जुश्यामा – (अपनेको सँभालकर) बहिन ! रोनेका स्वर बाहर जा सकता है। मुझे रोती हुई कोई सुने आपत्ति नहीं। (बहिनके गलेमें भुजा डालकर) तू देर मत कर, देर मत कर, एक बार कृत्रिम हँसी बड़े जोरसे हँस दे।

[श्रीराधा अत्यन्त घबरायी-सी हँस देती हैं]

मञ्जुश्यामा – तू समझ गयी न !(बहिनके कानमें कुछ कहती है)

श्रीराधा – (स्वीकृतिके स्वरमें) तू ठीक समयपर चेत गयी, बहिन !

मञ्जुश्यामा – किंतु अब विलम्बका अवसर नहीं है। एक क्षण भी तेरा रुकना हम दोनोंके ही जीवनको समाप्त करने वाला ही होगा।

श्रीराधा – मैं संकेतस्थलपर तो नहीं जाऊँगी।

मञ्जुश्यामा –(कुछ सोचकर) अच्छा ! उद्यानके बाहर उस वृक्षके नीचे जाकर खड़ी हो जा। मैं जैसे कहती हूँ, वैसे उच्चस्वरसे बोलकर।

[कानमें संकेत करती है]

श्रीराधा – (उच्चस्वरसे हँसती हुई) देख ! अब यदि तू रोयेगी तो मैं एक मासतक तुझसे बोलूँगी ही नहीं। मैं जा

रही हूँ, अपने कक्षका द्वार भीतरसे बन्द कर लूँगी। कदाचित् तू फिर भागकर मेरे पास आयी तो तुझे सत्य-सत्य निराश होना पड़ेगा। (फिर धीरेसे) देख ! मेरी प्राणोंसे भी अधिक प्यारी बहिन ! तू निश्चिन्त रह। मुझे भी अब आशा हो रही है। यदि मैं प्रियतम श्रीकृष्णके अतिरिक्त स्वप्नमें भी एक क्षणके लिये भी किसीके प्रति समर्पित नहीं हुई हूँ, तो यह सत्य है, सत्य है, सत्य है, अनन्तकालतक प्रियतम श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई अन्य पुरुष मधुरोचित भावसे तुझे स्पर्श नहीं कर सकता, नहीं कर सकता, नहीं कर सकता।

[श्रीराधाके नेत्र अश्रुपूरित हो जाते हैं। द्वारकी अर्गला भीतरसे बंद करनेका अभिनय करके बाहर चली जाती है, पीछेके द्वारसे।]

– *तीसरा दृश्य* –

[उसी रत्नोंकी ज्योतिसे उद्‌भासित कक्षमें मञ्जुश्यामा चिन्तामें पर्यंकपर बैठी है। कक्षका मुख्य द्वार अर्धरुद्ध है। सहसा द्वार उद्‌घाटित होकर एक श्यामवर्ण कैशोरवय-विभूषित अतिशय सुन्दर बालकका प्रवेश]

मञ्जुश्यामा– (पर्यंकसे उठकर) आर्यपुत्र ! स्वागत है।

[भूमिपर, दूरसे ही मस्तक टेककर वन्दना]

किशोर– (स्वगत) अहा ! अप्रतिम सौन्दर्य है ! धन्य हुई मेरी आँखें।

मञ्जुश्यामा– क्या सोच रहे हो आर्यपुत्र ?

किशोर– यही कि मैं कितना भाग्यशाली हूँ।

मञ्जुश्यामा – किस बातसे !

किशोर – तुम्हारा अनुपम रूप निहारकर।

मञ्जुश्यामा – (मुसकाकर) आर्यपुत्र ! तुम्हारी आँखें सुन्दर हैं। अन्यत्र सुन्दरताका अनुभव सुन्दरको ही होता है। मुझ-जैसी कुरूपा तुम्हें प्राप्त हुई, यह तुम्हारा – क्षमा करना – चरम दुर्भाग्य है।

किशोर – (आँखें भरकर) तुम कह क्या रही हो ?

मञ्जुश्यामा – सत्य, सत्य, सत्य कह रही हूँ। कहकर प्राणोंकी ज्वाला मिटा रही हूँ। प्रथम मिलनके अवसरपर लज्जाको भाड़में झोंककर क्षणिक शान्ति पाना चाहती हूँ। पता है तुम्हें ?

किशोर – क्या ?

मञ्जुश्यामा – जबसे आयी हूँ इस गृहमें, तबसे निरन्तर रोती रही हूँ ,जलती रही हूँ। तुमने तो मुझे आज प्रथम बार देखा है। मैं तो प्रतिदिन ही तुम्हारे मुखसरोजका दर्शन कर पाती हूँ। और फिर रोती हूँ – हाय रे ! विधिका विधान। कहाँ यह विश्वविमोहन रूप तुम्हारा और कहाँ मैं काली-कलूटी, सबकी आँखोंमें घृणा भरने वाली। (रोने लगती है)

किशोर – तुम मुझे व्यथा मत दो।

मञ्जुश्यामा – (सावधान होकर) हाय हाय ! स्वप्नकी बात सच्ची निकली क्या ? मेरा सुहाग लुट जायगा क्या ? (छाती पीटने लगती है)

किशोर – धीरे बोल, मेरी विधवा बहिन बाहर

तुम्हारा स्वर सुन सकती है। मुझे लज्जाका अनुभव होगा। वह भी घबड़ायेगी।

मञ्जुश्यामा – (रोकर) तो मैं क्या करूँ ? कैसे अपनेको सँभालूँ ?

किशोर – तू बात बता तो सही !

मञ्जुश्यामा – यही कि कल ही मैंने स्वप्न देखा था – तुम मुझे देख लोगे और प्रातःसे पहले मेरी माँग धुल सकती है। यदि मैं प्रायश्चित्त न कर लूँ तो।

किशोर – क्या प्रायश्चित्त ?

मञ्जुश्यामा – सात दिनतक निर्जल उपवास करके भगवान सूर्यदेवकी अखण्ड अर्चना।

किशोर – अरी ! मैं भगवती पौर्णमासीकी अनुमतिसे आया हूँ।

मञ्जुश्यामा – मुझे पता है । स्वप्नमें ही भगवान् अंशुमालीने मुझे यह बात भी कह दी थी।

किशोर –(हँसकर) अरी ! अधिक प्रभाव किसमें है ? शक्ति अधिक किसकी ? सूर्यदेवकी या भगवतीकी ?

मञ्जुश्यामा – सूर्यदेवकी, सूर्यदेवकी । मेरी दृष्टिमें सूर्यदेवका प्रभाव खण्डित करना असंभव है।

किशोर – भोली है तू।

मञ्जुश्यामा – आर्यपुत्र ! भ्रमित हो रहे हो तुम। मैं इसीलिये लज्जा छोड़ चुकी हूँ। सर्वथा परित्याग करके मुखरा हो गयी हूँ। आज प्रथम मिलनकी रातमें। (छाती पीटकर) आर्यपुत्र ! बचालो, बचालो मुझे ! कल तुम्हारे साथ

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(पञ्चम खण्ड)

पृष्ठ संख्या
401-488
तक

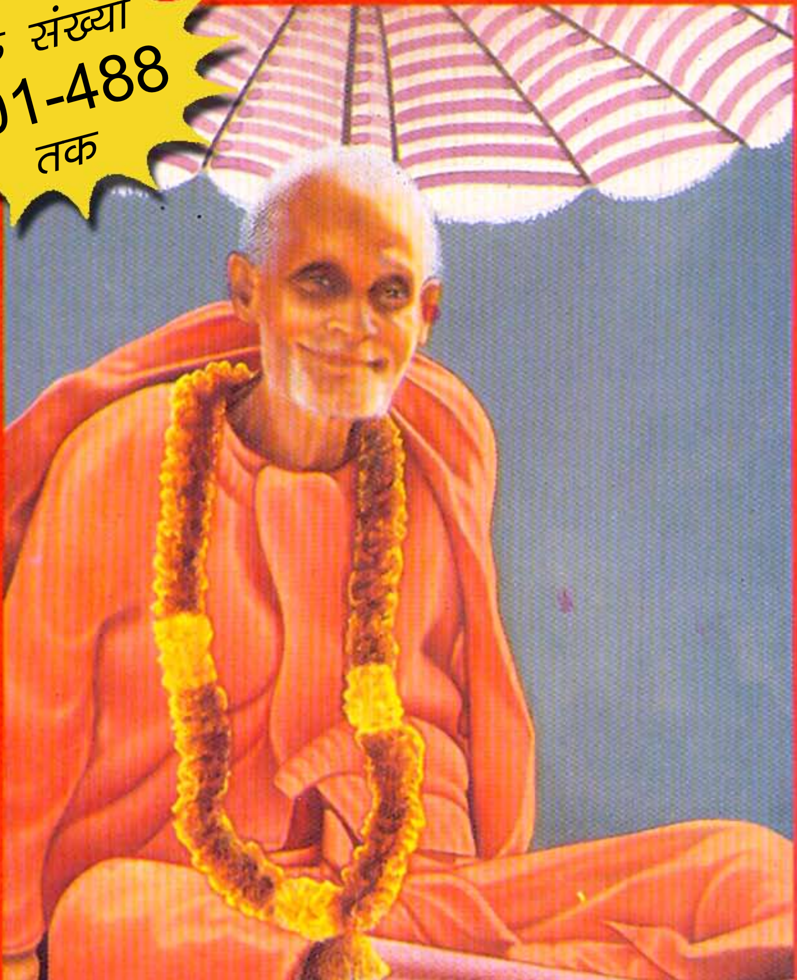

साधु कृष्णप्रेम

चितापर जलनेसे।

[किशोर हँसकर मञ्जुश्यामाको स्पर्श करने चलता है]

मञ्जुश्यामा – (तीन पद पीछे हटकर) त्राहि-त्राहि आर्यपुत्र ! अब भी समय है। चेतो-चेतो।

[किशोर हँसकर आगे बढकर मञ्जुश्यामाका हाथ पकड़ लेता है। मञ्जुश्यामा सचमुच मूर्छित हो जाती है। ढाई-तीन पलके अनन्तर उसे बाह्यज्ञान होता है। किंतु किशोरकी आँखोंमें रोष भरा है]

किशोर – (रोषमें भरकर) बहुत अभिनय हो चुका। मुझे वस्तुस्थितिका पता है। कल सन्ध्यासे पूर्व तुम्हारी बड़ी बहिनकी चिता तू मत जला।

मञ्जुश्यामा – (डरी हुई मुद्रामें) क्यों ? यह कैसे ?

किशोर – (अतिशय रोषके स्वरमें) चन्द्रावलीकी सखी पद्मा तुम दोनों बहिनोंका सम्पूर्ण चरित्र तिल-तिलकर सुना चुकी है। और एक घटना मुझे प्रत्यक्ष दिखला भी चुकी है।

[मञ्जुश्यामाके प्राणोंमें भय भर जाता है। पर अपनेको सँभाल लेती है]

किशोर – कहो ! कच्चा चिट्ठा सुना दूँ ?

मञ्जुश्यामा – (आँखें तरेरकर) ठीक है ! डाकिनी पद्माका चरित्र मैं भी सुन लूँ।

किशोर – (पहलेकी अपेक्षा भी अधिक रोषमें) एक शब्द भी बीचमें मत बोलना। और सुन लो। आज प्रातःकाल पद्मा मेरे पास आयी थी। एकान्तमें मुझे ले गयी। मुझसे भूल होगयी। परसोंकी बात है। मैं अत्यन्त क्रोधके आवेशमें हूँ।

इसलिये और भी भूलें मुझसे हो सकती हैं। अच्छा, तो सुनो, पद्माने मुझे बतलाया ठीक डेढ़ प्रहर रात बीतनेके अनन्तर तुम दोनों बहिनें कहाँ जाती हो ! प्रतिदिन ही। **(दाँत पीसकर)** केवल रातमें ही नहीं, डेढ़ पहर दिन उटनेके बाद भी प्रतिदिन। और वहाँ क्या-क्या होता है ? सुनो, तुम्हारी बहिन महामहिम ब्रजेन्द्रनन्दन महाराजके अंकमें विराजती हैं। कटिसे ऊपर कोई वस्त्र नहीं रहता। और तुम्हारे भी। दो पूर्ण विकसित और दो अर्धविकसित स्तनोंके दर्शन होते रहते हैं। किनको ? नन्दबाबाके उस बेटेको। और संलालन होता है . .. । तुम उत्फुल्ल आँखोंसे देखती रहती हो। तुम्हारी बड़ी बहिनने लज्जाका सर्वथा परित्याग कर दिया है। महानिर्लज्ज हो गयी हैं। तुमसे अब उनको कोई संकोच नहीं रहा। तुम सर्वथा सर्वांशमें प्रत्यक्ष वहीं बैठी रहकर उनके देवता व्रजेन्द्रनन्दनके साथ उनका सम्पूर्ण विहार देख सकती हो। देखनेतककी ही बात नहीं है – तुम्हें भी पर्याप्त शिक्षा मिल चुकी है। पर यह सत्य है कि तुम हो बड़ी भोली। आयु छोटी होनेके कारण तुम सब-कुछ निरन्तर देखते रहनेपर भी रसकी बात समझ नहीं पाती। **(दाँत पीसकर)** पर परसों तुम्हारी बड़ी बहिनका जादू तुमपर चल ही गया। और किञ्चित् तुम भी उनके साँचेमें ढल ही गयी। परसोंकी बात है। नीरव रात्रि थी। नही-नहीं ! पुनः क्रोधेके आवेशमें भूल होगयी। साफ-साफ दिन उगा हुआ था। तुम बैठी थी। तुम्हारी बड़ी बहिन द्वारके पास बाहर बैठी थीं। तुम्हारी आँखोंमें अश्रु अवश्य था। किंतु ....। देखते ही एक बार मेरे

मनमें आया तुम्हारी बहिनके पास जाकर खड़ा हो जाऊँ। और फिर तुम्हारे पास। किंतु भगवतीने दया की, बुद्धि आयी। कहीं क्रोधके आवेशमें कुछ ऐसा अनिष्ट न कर बैठूँ जिससे पीछे चलकर मुझे भी रोना पड़े। सत्य-सत्य मैं पद्माके साथ छिपकर कुञ्जके बाहर खड़ा-खड़ा प्रत्यक्ष सब कुछ देख रहा था। **(दाँत पीसकर)** और भी सुन ले। गत रात्रिकी घटना। नन्दबाबाके बेटा महाराज विराजित थे। और तुम्हें शृंगार धारण करा रहे थे। तथा तुम कितनी उत्फुल्ल आँखोंसे उनकी सेवा कर रही थी ....।

[किशोर अपना व्याख्यान समाप्त कर लाल-लाल आँखोंसे मञ्जुश्यामाकी ओर देखता है। साँस बड़ी तेज गतिसे चल रही है]

किशोर – **(बड़े कर्कश स्वरमें)** अब जो कुछ कहना है कह दो !

मञ्जुश्यामा – **(वैसे ही कर्कश स्वरमें)** ठीक है। तुम अभी मेरी हत्या कर दो। और उससे पहले किञ्चित् विष लाकर दो, मैं बहिनको दे दूँगी। वह भी तत्क्षण खा लेगी। **(दाँत पीसकर)** पर याद रखना, उस टोनेवाली डाकिनी पद्माके फेरमें तुम दोनों भाइयोंको अनन्त कालतक रोना पड़ेगा भला।

किशोर – **(कर्कश स्वरमें ही)** मैं अर्थ नहीं समझ सका।

मञ्जुश्यामा – **(उपेक्षाकी मुद्रामें)** समझना चाहो तो समझा दूँ।

किशोर – (उसी प्रकारके स्वरमें) बोलो।

मञ्जुश्यामा – (आँखें तरेरकर) पर तुम भी सावधान, बीचमें एक शब्द मत बोलना ।

किशोर – कह जाओ जो कुछ कहना है।

मञ्जुश्यामा – अच्छा, सुनो ! (क्रोधसे काँपती हुई) पद्माने जिस कलंकका आरोप किया है मुझपर, मेरी बहिनपर, उसका सर्वथा सर्वांशमें ही आश्रय वही है, और उसकी प्यारी बहिन चन्द्रावलीजी हैं। (दाँत पीसकर) कलंक नहीं, सत्य, सत्य, सत्य यह महाभ्रष्टाचार उन दोनोंके द्वारा ही प्रतिदिन प्रतिरात्रि संघटित होता है, और होता है ब्रजेन्द्रनन्दनजीके साथ ही। उनके दुर्दैववश यह बात गाँवमें फैली है। दुर्दैववश ही हम लोगोंने सुन ली। परसोंकी ही बात है। वे तुम्हें एकान्तमें ले गयी हैं, उससे दो-चार घड़ी पहलेकी बात होगी। हम दोनों बहिनें सूर्यपूजाके लिये पुष्पचयन कर रही थीं। अचानक पद्माजी पधारीं। मेरी बहिन तो गंभीर है। मेरा स्वभाव कुछ चपल है। सदासे ही पद्माजी मुझसे चिढ़ती हैं। मैंने स्वभावसे ही पूछ लिया – "कहो बहिनजी ! गाँवमें तो विचित्र चर्चा फैल रही है !" उनकी आँखें तन गयीं। बोलीं– "तुम दोनों बहिनोंका ही तो यह षड़यन्त्र है। यदि राजघरानेकी बहुओंका प्रश्रय न मिले तो किसीको जबान हिलानेका भी साहस न हो।"

बहिन मुझे रोकने लगी। पर मुझे अत्यन्त रोष आ गया। मैं बोली – "हम लोगोंने सुन तो अवश्य लिया है, किंतु उसकी उपेक्षा कर दी थी। पर आज जब तुम इतनी

तनी हुई हो तो अपने राज्यमें इस भ्रष्टाचारको मैं एक क्षण अब सह भी नहीं सकूँगी। और पद्माजी ! आपसे प्रार्थना है, तथा यही प्रार्थना आपकी प्यारी सखीजी चन्द्रावलीजीसे भी है कि आप दोनोंको आज इस क्षणसे नन्दबाबाके बेटे महाराजकी छायाका भी दर्शन नहीं करना चाहिये। यदि आप लोग अपने इस भ्रष्टाचारको एक बार भी इस क्षणके अनन्तर चालू रखेंगी तो कल ही आपको हमारा राज्य छोड़ देना पड़ेगा। बस, इतना ही दण्ड मैं दिलवाऊँगी।'' पद्माकी आँखें यह सुनकर ऐसी लाल हुईं जैसे वह मुझे जला देगी। बोली - ''अरी ! तू जानती नहीं किससे भिड़ रही है ? चौबीस प्रहरके भीतर यदि तुम दोनों बहिनें ही इस संसारसे विदा हो जाओ तो ? तुझे पता नहीं है मेरी शक्तिका।'' मैं भी सेरका पसेरी उत्तर दे बैठी – इस बातका। तेरी शक्ति मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकती। मुझमें सतीत्वका तेज है।

वह बोली – ''तो अब मुझे दोष मत देना। तुम्हें पता लग जायेगा चौबीस प्रहरके भीतर ही। महामायाकी मुझपर ऐसी कृपा है – कि तुम्हारे स्वामी महाराजको मैं जो चाहूँ माया रचकर दिखला सकती हूँ। दिखला सकती हूँ यही नहीं, दिखला दूँगी। और मेरे साथ भिड़नेका आनन्द शरीर-विसर्जनके बाद ही आयेगा।'' मेरे अन्दर रोष बढता जा रहा था। मैंने कहा – ''क्या दिखला दोगी मेरे देवताको, सुन तो लूँ ?'' वह बोली – ''यदि महामायाकी मेरे ऊपर स्वप्नमें भी एक क्षणके लिये कृपा हुई है तो मैं उन्हींके दिये मन्त्रबलसे यह दिखला दूँगी.....।'' मेरी बहिनने घबड़ाकर मेरे

मुँहपर अँगुली रख दी जिससे मैं आगे कुछ बोल न सकूँ। पर मुझे रोष चढ़ा हुआ था। मैंने बहिनकी अँगुली बरबस हटा दी और बोली – "पद्माजी ! यदि तुम अपने उसी पवित्र पिताकी जायी हुई हो, सचमुच जायी हुई हो तो करके दिखलादो। मैं सलट लूँगी। चौबीस पहरके बाद ही मैं तुमपर शासन करने जाऊँगी। (कुछ रुककर दाँत पीसकर) तो तुम भी सुन लो। किसी अज्ञात दुर्दैववश पद्माकी माया सफल हो गयी। और आज तुम मेरे सम्मुख इस रूपमें उपस्थित हुए हो। किंतु अब मैं जीना नहीं चाहती। पहले विष लाओ। मैं बहिनको दे आऊँ। और फिर तुम अपने हाथसे मेरी हत्या कर देना।

किशोर – (दाँत पीसकर) मैंने आजतक नारीपर शस्त्र नहीं उठाया है।

मञ्जुश्यामा – (क्रोध भरे स्वरमें) अपने हाथोंसे उठाकर कलिन्दनन्दिनीके प्रवाहमें फेंक देना।

किशोर – (विकट हँसी हँसकर) अरी ! तुम्हारी चतुराई अब न चलेगी। मुझे पद्माने पहले ही सावधान कर दिया है। तुम ठीक-ठीक ऐसी ही माया रचोगी। उसने प्रायः अक्षरशः मुझे बता दिया।

मञ्जुश्यामा – (दाँत पीसकर) ठीक है। हम दोनों बहिनोंके बिदा हो जानेके बाद माया किसने रची थी, यह अपने आप प्रगट हो जायगा।

किशोर – (कुछ क्षण उसकी ओर देखकर) एक बात अवश्य है। मैंने ही पद्मासे कही थी। (कहकर रुक जाता है)

मञ्जुश्यामा – (अत्यन्त उपेक्षाके स्वरमें) अब मुझे कुछ नहीं कहना है।

किशोर – (कुछ ढीली मुद्रामें) नहीं ! वह भी कह दे रहा हूँ। तुम सुन लो। बात यह हुई कि पद्माकी मुद्रा देखकर मुझे सन्देह हुआ। वह टोनेवाली है, बड़ी मायाविनी है – यह तो गाँवमें सभी जानते हैं। इसीसे मेरे मनमें आया कि कहीं वह मेरी आँखोंपर इन्द्रजाल तो नहीं रच रही है। तत्क्षण मैं उससे पूछ बैठा – "अरी ! यदि मञ्जुश्यामा सतीत्वका प्रमाण देना चाहे तो कौनसा प्रमाण मुझे स्वीकार करना चाहिये ? इसके उत्तरमें वह हँसी थी, और बोली थी- "................"

मञ्जुश्यामा – (उपेक्षाकी मुद्रामें) यह प्रमाण तो मैं अभी दे सकती हूँ। पर लाभ क्या है ?

किशोर – लाभ यह है कि मैं तो तुम्हारी हत्या नहीं करूँगा। केवल तुमपर शासनकी व्यवस्था कर दूँगा। जिससे तुम उससे मिल न सको। पर तुम्हारी बहिन भी इस संसारसे विदा होनेसे बच जायगी। तुम उनके विरहका दुःख नहीं देखोगी। यही परम लाभ है।

मञ्जुश्यामा – परीक्षा देनेके अनन्तर भी शासनकी आवश्यकता पड़ेगी न ?

किशोर – (बड़ी उतावलीमें) नहीं ! नहीं ! मैं भूल गया। क्रोधवश मुझे ज्ञान नहीं रहा है कि क्या कहना चाहिये। परीक्षाके अनन्तर तो तुम दोनों बहिनें ही मेरे लिये परदेवता, आराध्यदेवी बनोगी – अनन्तकालतकके लिये।

तुम्हारी रुचि ही मेरे जीवनकी रुचि होगी। शासन पद्मापर होगा और चन्द्रावलीजी भी जीवित बच जायेंगी। उनका वियोग–दुःख तुम दोनोंको नहीं देखना पड़ेगा।

मञ्जुश्यामा – (कुछ सोचकर) इसका अर्थ मैं नहीं समझी।

किशोर – (बड़ी सरस और शान्तिकी मुद्रामें) देखो, मुझे अनुभव हो रहा है कि तुम्हारे कण–कणमें सतीत्व भरा है, और ये सब पद्माकी ही माया है, जो मैंने आँखोंसे ऐसी बातें देख ली हैं। मुझे सत्य पता है कि तुम दोनों बहिनें चन्द्रावलीजीको, पद्माको भी प्राणोंके समान प्यार करती हो। किंतु बत्तीस पहरमें कोई ऐसी घटना होगयी जिसके कारण पद्माके मनमें द्वेषकी आग भड़क उठी है। वह परिणाम सोचे बिना ही प्रतिहिंसाकी भावनामें डूबी हुई है। पीछे पछतायेगी। किंतु साथ ही एक संशय रह–रहकर मेरे मनमें आ ही जाता है कि तुम्हारा इतना दुराग्रह क्यों है ....?

[मञ्जुश्यामाके कानमें बड़ी देरतक फुस–फुस करता रहता है । मञ्जुश्यामा भी बड़ी गंभीर मुद्रामें फुस–फुस करके ही उत्तर देती है। पाँच–सात बार परस्पर फुसफुसाहटके अन्तरालमें उत्तर–प्रत्युत्तरके अनन्तर]

मञ्जुश्यामा – (कुछ पल सोचकर) तुम प्रथम यह बतलाओ मेरी बातोंपर तुम्हें विश्वास हो गया ?

किशोर – शत–प्रतिशत तो नहीं (कुछ रुककर) हाय! हाय ! भूल हो गयी। शत–प्रतिशत, शत–प्रतिशत, शत–प्रतिशत।

मञ्जुश्यामा – ठीक है। तुम दूसरीका उत्तर सुनो।

बारह वर्षके पहले यदि कुछ भी हुआ तो तुम्हारे बड़े भाई जल जायेंगे। राज्य नष्ट हो जायगा। बहिन तो तत्क्षण प्राणविसर्जन कर देगी। और मेरे प्राण भी तत्क्षण अपने आप निकल जायेंगे। तुम्हारा सुखमय स्वप्न सदाके लिये टूट जायगा।

किशोर – क्या भगवती पौर्णमासीकी बात मिथ्या होगी ?

मञ्जुश्यामा – क्या पता पद्माने ही पौर्णमासीका रूप धारणकर तुम्हारी वञ्चना की हो !

[किशोर विचारमें पड़ जाता है]

मञ्जुश्यामा – खूब सोच लो।

[किशोर और भी गंभीर हो जाता है, किंतु उसके हाथकी चञ्चलता मिटती नहीं]

मञ्जुश्यामा – (दस बारह पल सोचती रहकर) खूब सोच लो। खूब सोच लो। खूब सोच लो।

किशोर – (सोचता हुआ-सा) यह संभव नहीं है, कैसे कह दूँ।

मञ्जुश्यामा – (आवेशके स्वरमें) तुम सत्य मानो, भगवती पौर्णमासी ऐसी चर्चा स्वप्नमें भी नहीं कर सकतीं। यह तो कोरा पद्माका रचा हुआ जाल है। जिसके फलस्वरूप मैं तो प्रातःसे पहले बिदा हो रही हूँ। मेरी बड़ी बहिनकी रक्षा तुम अब भी कर सकते हो।

[किशोर डर-सा जाता है पर उसके हाथकी चञ्चलता बढ़ती जाती है]

किशोर – अच्छा ! तू बतला, अब क्या करूँ ?

मञ्जुश्यामा – (क्रोधमें भरकर) मेरे जीवनसे तो तुम अब निराश हो जाओ। मेरी बहिनकी रक्षा तुम अवश्य कर सकते हो, और अनन्तकालतक सुखके भागी बन सकते हो।

किशोर –(भयभीत मुद्रामें) कैसे ?

मञ्जुश्यामा –(उपेक्षाकी मुद्रामें) पहले अपने मनकी शक्ति टटोलकर विश्वनियन्ताकी साक्षी देकर रक्षा करनेके लिये तैयार हो जाओ, तभी कह सकती हूँ।

किशोर –(अत्यन्त आवेशके स्वरमें) सूर्य-चन्द्र साक्षी हैं। भगवती पौर्णमासी साक्षी हैं। जगन्नियन्ता साक्षी हैं, आजसे इस क्षणसे जो तुम कह दोगी उसीके साँचेमें मेरा जीवन अनन्तकालतक ढलता रहेगा।

[मञ्जुश्यामा रोने लग जाती है]

किशोर – अब तुम बतलाओ।

मञ्जुश्यामा – (सुबकी भरकर) आजसे इस क्षणसे स्वप्नमें भी, भूलकर भी, मेरी बहिनके सतीत्वपर क्षणभरके लिये भी, तुम सन्देह मत करना। सदा ध्यान रखना कि अब पद्मा तुम्हारे बड़े भाईको बहका न दे। और अपने बड़े भाईसे पहले ही कह देना कि वे भी अब यदि मेरी बहिनपर कुछ भी सन्देह करेंगे, सन्देह करके उसपर प्रतिबन्ध लगायेंगे, तो उनके सहित उनके राज्यका सर्वनाश हो जायगा।

[रुककर फूट-फूटकर रोने लगती है]

किशोर – (अतिशय आवेशके स्वरमें मञ्जुश्यामाके चरण पकड़ कर) ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा। तुम

मुझे गत अपराधके लिये क्षमा कर दो। हाय रे ! मैंने तुमपर सन्देह क्यों किया ? **(रोने लग जाता है)**

मञ्जुश्यामा – (रोकर) मैं तुम्हें क्षमा कर चुकी हूँ। पर अब मुझे विदा दो।

किशोर – क्यों ?

मञ्जुश्यामा – अब मैं प्राणविसर्जन करने जा रही हूँ।

किशोर – (काँपकर) नहीं ! नहीं ! मैं ऐसा करने नहीं दूँगा।

मञ्जुश्यामा – (हाथ हटाकर) तुम्हारी शक्ति कुण्ठित हो जायगी। (रोकर) मैं अबला हूँ, पर प्राणत्यागका बल मुझमें अब भी है।

किशोर – (रोकर चरणोंमें सिर रखकर) बोलो ! बोलो! आखिर मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया जिसके लिये तुम इतना कठोर दण्ड देने जा रही हो ?

मञ्जुश्यामा – (रोषके स्वरमें) तुमने मेरे सतीत्वका नाश किया है।

किशोर – (अचरजमें भरकर) कैसे ?

मञ्जुश्यामा – (उपेक्षाकी मुद्रामें) मुझे स्पर्श करके।

किशोर – (विनतीके स्वरमें) क्या पतिका इतना-सा भी अधिकार नहीं ?

मञ्जुश्यामा – (जलती-सी वाणीमें) तुम मेरे पति नहीं हो, नहीं हो, नहीं हो। (कुछ रुककर) और मेरी बहिनके पति तुम्हारे बड़े भाई, नहीं हैं, नहीं हैं, नहीं हैं।

(किशोरके नीचेसे मानो जमीन खिसक जाती है। मूर्छित-सा होने लगता है।)

किशोर– (टूटे हुए स्वरमें) मैं क्या सुन रहा हूँ ?

मञ्जुश्यामा – सत्य, सत्य, सत्य सुन रहे हो। तुमसे मेरा ब्याह त्रिकालमें हुआ ही नहीं।

किशोर – तो क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ?

मञ्जुश्यामा – स्वप्नसे भी गयी-बीती कुछ देख रहे हो।

किशोर – (किंकर्तव्यविमूढ़की मुद्रामें रुक-रुककर) फिर तुम मेरे घर क्यों ?

मञ्जुश्यामा –(रोकर) मेरा दुर्दैव मुझे ले आया। बहिन दुर्दैववश यहाँ पड़ी हुई है।

किशोर – (घबड़ाकर) क्या मेरे द्वारा पाणिग्रहण नहीं हुआ ?

मञ्जुश्यामा – (खीझकर) अरे ! ब्याह हुआ होता तब तो ?

किशोर – (विनतीके स्वरमें) तो अभी जाकर मैं ही तो तुम दोनोंको ले आया था ?

मञ्जुश्यामा – (पागलनीकी हँसी हँसकर) अच्छा, सुनो। एक क्षणके लिये भी स्वप्नमें भी न मुझे, न मेरी बहिनको यह अनुभूति हुई है कि दुर्मद या रायाण नामके किन्हीं अहीर बालकने, अहीर युवराजने हमारे हाथ पकड़े हों। उस दिन मुझे एवं मेरी बहिनको इतना ही भान था कि मैया रो-रोकर हमें विदा कर रही है। सूर्यमन्दिरके समीप आनेपर यह भान

हुआ कि तुम मेरी बहिनके देवर लगते हो और यह अभिमान लिये बैठे हो कि मैं तुम्हारी अधिकृत पत्नी हूँ। उसके अनन्तर मेरी आँख झुक गयी और तुम मेरे नेत्र-पथमें तबसे आज दूसरी बार आये हो। और आये हो मुझे संसारसे विदा करने के लिये। **(रोने लग जाती है। फिर कुछ धीरज करके)** मुझे मरनेकी व्यथा नहीं है। केवल हाय रे ! इस जीवनमें अब मैं बहिन राधाका मुख नहीं देख सकूँगी।

[फूट-फूटकर रोने लगती है]

किशोर – (रोकर) कोई उपाय है ?

मञ्जुश्यामा – है ! किंतु प्राणविसर्जनके अनन्तर ही। फिर मैं उसकी, मेरी प्राणाधिका राधा बहिनकी सहोदरा बनकर अखण्ड भावसे उसके श्रीमुखका दर्शन करती हुई, उसकी सेवामें ही अनन्तकालतक निरत रहूँगी।

किशोर – (चिन्ताकी मुद्रामें) तुम बताओ, सबसे अधिक सामर्थ्यशाली विश्वमें कौन है ? मैं उसकी शरण लूँ ! वह तुम्हारे जीवनकी रक्षा कर दे !

मञ्जुश्यामा – मुझे बतलानेकी इच्छा नहीं है।

[किशोर चरणोंमें पड़कर रोने लग जाता है]

मञ्जुश्यामा – बतला दे रही हूँ। किंतु उनकी कृपाका उपयोग अब मैं मलिन शरीरके लिये करूँगी ही नहीं।

किशोर – **(बड़ी उतावलीके स्वरमें)** तुम नाम बताओ, नाम बताओ !

मञ्जुश्यामा – व्रजेन्द्रनन्दन हैं । भगवती पौर्णमासी

हैं।

किशोर — दोनोंमें भी अधिक ?

मञ्जुश्यामा — (उपेक्षाकी मुद्रामें) तुम समझोगे नहीं। दोनों एक हैं।

किशोर —(रोकर) मैं अभी जाऊँ उनके पास ?

मञ्जुश्यामा — कह चुकी। व्यर्थ है।

किशोर — (रोकर) अरी ! क्या तुम मुझे तनिक भी प्यार नहीं करती ?

मञ्जुश्यामा — प्यार तो एकके प्रति ही होता है।

किशोर — (बड़ी व्याकुलताके स्वरमें) अच्छा, यह कह दो तुम किसको प्यार करती हो।

मञ्जुश्यामा — कर नहीं सकी। करना चाहती हूँ।

किशोर — किसे ? नाम बतादो, मैं उसकी शरण लूँ !

मञ्जुश्यामा — (कुछ सोचकर) मैं अपनी राधा बहिनको प्यार करना चाहती हूँ पर .....(रोने लग जाती है)।

किशोर — (कुछ सोचकर) उनके अनन्तर किसको?

मञ्जुश्यामा — व्रजेन्द्रनन्दनको।

किशोर — (रोकर) मुझे आशा दीखती है, पर मैं प्यार-सम्बन्धकी गहरायी जान लूँ ? मुझे बतादो, कैसे आरंभ हुआ !

मञ्जुश्यामा — (उपेक्षाके स्वरमें) क्या करोगे सुनकर? (कुछ रुककर)पर सुन लो एक-दो बात ! जबसे मुझे विश्वका भान हुआ तबसे बहिन राधाके अतिरिक्त मैं किसीको जानती ही नहीं । उसीके अंकमें पली । उसने मुझे अपने प्राणोंका

सम्पूर्ण प्यार दिया है । निरन्तर मेरे कण-कणको सींचती रही है। और प्रतिक्षण मेरी वेदना भी बढ़ती रही है – हाय रे ! मैं राधा बहिनको प्यार न कर सकी। इस वेदनाका ही कदाचित् परिणाम हो। उस दिनकी बात है। मेरे कौमारका अवसान हो रहा था। अंगोंपर कैशोरका आधिपत्य दीखने लगा। राधा बहिन बड़ी चतुराईसे अपनी शपथ देकर पहले ही मुझे बचनबद्ध करके बोली - "मेरे लाड़की पुतली ! मैंने जिसके प्रति अपना सर्वस्वसमर्पण किया है उसपर ही तू भी न्यौछावर हो जा। मेरी एकमात्र इस अभिलाषाको तू पूरी कर दे।" मैं बहुत रोयी। किंतु यह सोचकर कि बहिनको जब सुख है तो इस अंशमें प्यारका ककहरा मैं सीखूँ, बहिनके प्रति ही। मैं बोली - "ठीक है। आज इस क्षणसे वे ही मेरे परमाराध्यदेव हुए। उनका ही – किंतु तेरी ही छत्रछायामें– मेरे सब-कुछपर सम्पूर्ण अधिकार हुआ। अनन्त कालतक। उस समय राधा बहिनको भी यह पता न था कि उसके प्राणसारसर्वस्व कौन हैं। वह केवल इतना ही अनुभव करती कि कोई श्यामवर्ण बालक है। अप्रतिम सुन्दर है। जिसके प्रति मैं न्योछावर हुई हूँ। मुझे भी यही अनुभूति रहती। जिस दिन प्रथम बार हम दोनोंको ब्रजेन्द्रनन्दनके दर्शन हुए तब यह भान हुआ कि अनादिकालसे ये ही हमारे वे देवता हैं। उन्होंने हमारी करुण प्रार्थना सुन ली और किसी बहाने वे हमें दर्शन-सुखका दान कर देते । **(रोने लगती है)**।

किशोर – (अत्यन्त खिन्न स्वरमें) अरी ! किसी भी

मूल्यमें क्या मैं तुम्हारे प्यारका अधिकारी बन सकता हूँ ?

मञ्जुश्यामा – (खिन्न-सी) क्या बताऊँ।

किशोर – (रोकर) नहीं ! नहीं ! बतला दो।

मञ्जुश्यामा – कर सकोगे ?

किशोर – (उल्लासके स्वरमें) अवश्य, अवश्य प्राणका मूल्य देकर भी।

मञ्जुश्यामा – मैं तो अब इस शरीरसे तुम्हें आदेश देनेसे रही। किंतु मेरे प्राणोंसे बढ़कर प्यारी बहिन राधा है। उसे मैं कह जाऊँगी। उसकी ही प्रत्येक रुचिकी रक्षामें अपना सम्पूर्ण स्वाहा करते हुए जीवन यापन करो। इसीके फलस्वरूप प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनसे एकत्व सायुज्य लाभ कर सकोगे। अपने आप फिर तो मेरे प्यारके पात्र बन जाओगे। पर ..... (रोने लगती है)

किशोर – (रोकर) पर क्या ?

मञ्जुश्यामा – अब विलम्ब हो गया। मुझे विदा दो। हाथ हटा लो।

किशोर – (करुण स्वरमें) क्या करोगी ?

मञ्जुश्यामा – कलिन्दनन्दिनीके प्रवाहमें इस मलिन, अपवित्र शरीरको विलीन।

किशोर – (हाथ हटाकर छाती पीटकर) हाय रे ! मैंने क्या किया ? (चरण पकड़कर) दया करो, दया करो, देवि !

मञ्जुश्यामा –(दयाकी मुद्रामें देखती हुई) बोलो ! क्या ?

किशोर – अपने इस शरीरको नष्ट मत करो !

मञ्जुश्यामा – (उपेक्षाके स्वरमें) यह तो अब असम्भव

है।

किशोर – (हाथ जोड़कर) क्यों ?

मञ्जुश्यामा – (भर्राये हुए स्वरमें) इस शरीरके दर्शन मात्रसे मेरी राधा बहिनका अनिष्ट होगा। प्रियतमका अमंगल होगा। मलिनाका अस्तित्व उन दोनोंके लिये नितान्त घातक है।

किशोर – (रोकर) नहीं ! नहीं ! मेरे भावी जीवनपर विचार करो !

मञ्जुश्यामा – (सूखी हँसी हँसकर) कर चुकी हूँ। एक सुन्दरी बालिकाको लेकर सुखसे रहना। वासनाका जाल टूटनेपर आगेकी बात।

किशोर – (पुनः छाती पीटकर) हाय रे ! धिक्कार है मुझे ! अरी ! बता, बता, मैं क्यों किस हेतुसे तुम्हें खोने जा रहा हूँ !

मञ्जुश्यामा – तुम्हारी यह वासना ही हेतु है।

किशोर – (आकुल कण्ठसे) कौनसी वासना ?

मञ्जुश्यामा – (नत दृष्टिसे) अब भी नहीं समझे ?

किशोर – नहीं ! नहीं ! स्पष्ट बतला दो।

मञ्जुश्यामा – (पागलनी-सी) इसका सुख लेनेकी.....।

किशोर – हाय रे ! यह तो अभी भी मुझे वैसी ही जला रही है – **(चंचल हो उठता है)**

मञ्जुश्यामा – (रोकर) अब दया करो। विदा दो।

किशोर – (कुछ संयत होकर हाथ जोड़कर) तुम बताओ

इस वासनाका क्या परिणाम होगा, यदि पूर्ण न हुई तो ?

मञ्जुश्यामा – मैं क्या बताऊँ।

किशोर – नहीं ! नहीं ! देवि ! तुम्हारी उक्ति ही सत्य है। तुम मुझे बतला दो !

मञ्जुश्यामा – (उदास-सी) कोई आयेगी इसे पोंछने।

किशोर – (आवेशमें) यह तो असम्भव है।

मञ्जुश्यामा – (रूखी हँसी हँसकर) क्यों ?

किशोर – (आवेशमें) तुम्हारे स्थानपर तो अनन्तकाल तक अब तुम ही रहोगी।

मञ्जुश्यामा – (धीमे स्वरमें) देखो, अब विलम्ब मत करो। मुझे जाने दो।

[किशोर चरणोंमें सिर रखकर रोने लग जाता है]

मञ्जुश्यामा – (उदासीके स्वरमें) जो होना था हो चुका, अब तुम तो सुखसे रहो, मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ।

किशोर – (हाथ जोड़कर) मेरा सुख तो एकमात्र तुम्हारी राधा बहिन और तुममें है ......।

मञ्जुश्यामा – (घृणाके स्वरमें) मेरी राधा बहिनका नाम तुमने क्यों लिया ?

[किशोर भयकी मुद्रामें मञ्जुश्यामाके कानमें कुछ फुस-फुस करने लगता है]

मञ्जुश्यामा – हाय रे ! तुम्हारे अन्दर लज्जा भी नहीं है ?

किशोर –(रोकर मञ्जुश्यामाके चरणोंको पकड़कर) देवि! मेरी रक्षा करो ! मेरी शुद्धि करो ! मैं तुम्हारी शरण हूँ। मुझे

अपनी दशाका पूरा-पूरा अनुभव है। किंतु मेरी शक्ति कुण्ठित हो रही है **(उसके हाथ आवेशमें चंचल हो उठते हैं)**

मञ्जुश्यामा – **(किंकर्तव्यविमूढ़की मुद्रामें)** मेरे निष्प्राण शरीरको भी तिल-तिलकर काटनेमें तुम्हें सुखका अनुभव हो रहा है ?

[किशोर चरणोंमें पड़कर फूट-फूटकर रोने लग जाता है। मञ्जुश्यामा सोचती रहती है - कैसे पिण्ड छुड़ाऊँ ?]

मञ्जुश्यामा – **(दयाकी मुद्रामें)** तुम बोलो ! चाहते क्या हो ?

[किशोर कानमें फुस-फुस करने लगता है और मञ्जुश्यामाकी आँखोंसे आँसूकी धारा चलने लगती है]

मञ्जुश्यामा – **(बैठकर)** देखो ! तुम एक बात सुनो। जीवनमें मनुष्यता भी कोई वस्तु है। उसका त्याग मत करो।

किशोर –**(वैसे ही चरण पकड़कर)** देवि ! मेरी रक्षा करो ! मेरी शुद्धि करो ।

मन्जुश्यामा – **(दयाकी मुद्रामें)** इससे शुद्धि नहीं होगी। रक्षा नहीं होगी।

किशोर – **(वैसे ही चरण पकड़े आवेशके स्वरमें)**देवि ! तुम असम्भवको संभव कर सकती हो। मेरा प्रश्न तो तुच्छातितुच्छ है, नगण्य है तुम्हारे लिये।

[मञ्जुश्यामा पाँच-छः पलतक अपनी हथेलीसे मुख ढँककर सोचती रहती है]

किशोर – (वैसे ही चरणोंमें सिर टेककर) देवि ! मेरी रक्षा करो ! शुद्धि करो ।

मञ्जुश्यामा – (अत्यन्त उदास स्वरमें) तुम तनिक मेरी स्थितिमें आकर देखो कि यह मेरे द्वारा स्वप्नमें भी संभव हो सकता है ?

किशोर – (आवेशमें) अवश्य, अवश्य तुम असंभवको संभव कर सकती हो।

[मञ्जुश्यामा फिर उसी प्रकार अपने हाथोंसे मुख ढककर सोचने लगती है]

किशोर – (वैसे ही चरण पकड़कर) देवि ! मेरी रक्षा करो ! शुद्धि करो ।

मञ्जुश्यामा – (बड़े करुण स्वरमें) तुम सोचो, मान लो .... । (कानमें फुस–फुस करके) पर उल्लास ?

किशोर – (आवेशके स्वरमें) देवि ! साक्षी भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हैं। भगवती पौर्णमासी हैं। भगवती पौर्णमासीके श्रीमुखका वाक्य है - तुम दोनों बहिनोंमें यह नित्य सामर्थ्य है कि जहाँ जिस वस्तुको देख लोगी वहाँ वही–वही वस्तु प्रगट हो जायगी। अनन्त कालतकके लिये। सत्यका भी सत्य बनकर।

मञ्जुश्यामा – (अचरजकी मुद्रामें) इसका अर्थ ?

किशोर – (चरण पकड़कर) देवि ! यदि तुम सचमुच चाह लो तो मेरे स्थानपर अभी इसी क्षण ब्रजेन्द्रनन्दनको ही प्रगट कर सकती हो।

[मञ्जुश्यामा विचारमें पड़ जाती है। आधे क्षणमें

उसकी आँखें बदलने लगती हैं । उसे अनुभव होता है कि मेरी बार्यी ओर मेरी बड़ी बहिन राधा बैठी हैं और सामने प्रियतम श्रीकृष्ण बैठे हैं, हँस रहे हैं । इसके अतिरिक्त अभी इस क्षणसे पहलेकी सम्पूर्ण घटनाओंकी पूर्ण विस्मृति हो जाती है उसे]

[मञ्जुश्यामाकी पवित्रतम सरसतम आँखोंमें यह अनुभूति है कि व्रजेन्द्रनन्दन उसके अंगोंपर शृंगार धारण करा रहे हैं। और उसकी प्राणोंसे अधिक प्यारी बहिन राधा उसके बामपार्श्वमें बैठी हँस रही हैं। एक घड़ीके अनन्तर मञ्जुश्यामाकी यह सरस पवित्र आँख बदलती है और वह अनुभव करती है कि वही पूर्वका किशोर हास्यकी मुद्रामें द्वार बंद करते हुए बाहर चला जा रहा है। मञ्जुश्यामा मूर्छित होकर गिर पड़ती है]

- चौथा दृश्य -

[मञ्जुश्यामा भूर्जपत्रपर एक पत्र लिख रही है । और उसकी आँखोंसे अनर्गल अश्रुप्रवाह चल रहा है। पत्र इस प्रकार है ।..........

बहिन राधा !

तुम्हारे जानेके अनन्तर जो घटनाएँ घटीं उसको ज्यों-की-त्यों ऊपर लिख चुकी हूँ। किंतु अब मेरे प्राणोंमें ऐसी व्यथा है जिसे मैं ठीक-ठीक तुझे समझा नहीं सकती। मेरी धारणा है तू मुझे सर्वथा निर्दोष, निष्पाप समझेगी ।

किंतु मुझे यह अनुभव हो रहा है कि अब मेरे इस शरीरका अस्तित्व तेरे लिये और प्रियतम श्रीकृष्णके लिये सर्वथा अनिष्टकारी होगा। बहिन ! मैं एक क्षणके लिये भी तुझे प्यार न कर सकी । तुझे कोई सुख न पहुँचा सकी । तेरा प्रतिक्षण बढ़ता हुआ प्यार पाकर मैं फूली–इतरायी फिरती थी। उस दिन सोचा तक नहीं था कि जीवनमें ऐसी घटना भी घट सकती है। पर वह घट गयी। तो यदि मैं सुख नहीं दे सकी तो कम–से–कम तेरे सुखमय जीवनको दुःखमय तो न बनाऊँ ! मुझ अधमाका मुखदर्शन करनेपर भी तेरा अब निश्चय–निश्चय अनिष्ट होगा। धर्मकी मर्यादापर ही सुख–दुःख अवलम्बित हैं। धर्मका अतिक्रमण जानमें हो, अनजानमें हो, भयसे हो, किसी भी हेतुसे हो, वह सर्वथा सर्वांशमें अमंगलकारी ही होता है । तू यह युक्ति दे सकती है कि ''ब्रजेन्द्रनन्दनने ही तो तुझे स्पर्श किया ?'' किन्तु वह दुर्मद ब्रजेन्द्रनन्दन बन गया उस क्षणके अनन्तर ही तो यह युक्ति मान्य होगी ? दुर्मदने ब्रजेन्द्रनन्दन बननेसे पूर्व ही मुझे स्पर्श कर लिया था । जिसका स्पष्ट संकेत ज्यों–का–त्यों मैं तुझे ऊपर कर चुकी हूँ । ऐसी स्थितिमें इस अपवित्र शरीरको तू देखे, स्पर्श करे, इसका महाअनिष्टकारी फल तेरे लिये होगा ही, यह मुझे ठीक–ठीक अनुभव हो रहा है । और बार–बार मेरे मनमें आ रहा है, इस हेतुसे तेरा जीवन दुःखमय बन जायगा । तू मेरे अभावमें रोकर जितना दुःख पायेगी, उसकी अपेक्षा बहुत अधिक दुःख तू पायेगी मुझ–जैसीको प्यार देकर, मुझे अंकसे लगाकर। मेरे प्रति प्यारके आवेशमें तू भले न समझे कि मेरा मनोभाव क्या है किंतु सत्य तो सत्य ही रहेगा। महामलिनके

स्पर्शसे, देखने मात्रसे मलिनता आयेगी ही। नहीं !नहीं ! बहिन ! जिस परम पवित्र प्यारकी खान शरीरको प्रियतम श्रीकृष्ण अपने अंकमें धारण करते हैं, जिसे देखकर प्रियतम श्रीकृष्णको प्रतिक्षण नव-नव सुखका भान होता है, उसे मैं मलिन नहीं बनाऊँगी, अपने स्पर्शसे । फिर प्रियतम श्रीकृष्णको तू वह सुखदान नहीं कर सकेगी, मेरे स्पर्शकी मलिनताका कण लेकर। तेरे जीवनका एकमात्र सुख है प्रियतम श्रीकृष्णको सुखदान, मैं तेरे इस सुखको ही नष्ट करनेवाली बन जाऊँगी, अपनी मलिनताके छींटे तुमपर डालकर । तू भले मान ले कि यह मेरी कोरी भावुकता है, किंतु मुझे स्पष्ट अनुभव हो रहा है, कि मेरा यह शरीर अब इस योग्य न रहा कि तू मुझे देख सके, स्पर्श कर सके। इसलिये बहिन ! मैं अपने मनके सामने तुझे रखकर अब तुझसे विदा ले रही हूँ । मेरी यह लालसा इसी शरीरसे पूर्ण न हुई कि मैं अनन्त कालतक इस शरीरसे ही तुझे प्रतिपल नवीन सुखका दान कर सकूँ। पर अब दूसरे शरीरसे जगन्नियन्ता मेरा मनोरथ अवश्य, अवश्य, अवश्य पूर्ण करेंगे। मेरी एकमात्र यही अभिलाषा है कि इस अन्तिम महाप्रयाणके अनन्तर मैं फिर तेरी ही सहोदरा छोटी बहिन बनूँ । इन्हीं पिता और इन्हीं जननीकी पुत्रीके रूपमें । और फिर अनन्त कालतक तुझसे मेरा वियोग न हो । क्षणभरके लिये भी । तू ही मेरे प्राणकी, मनकी, तनकी, मुझसे सम्बद्ध कण-कणकी स्वामिनी बने, अनन्त कालतक। मैं निरन्तर तेरा प्यार भरा मुख निहारती रहूँ, अनन्त कालतक। बहिन राधा ! तू इसका समर्थन कर देना, और प्रियतम

श्रीकृष्णके पदनखचन्द्रोंमें मेरी यह विनती भी पहुँचा देना कि वे भी इसका समर्थन कर दें। मैं जानती नहीं कि यह समाचार तेरे पास पहुँचेगा या नहीं, इस भूर्जपत्रके माध्यमसे। पर यह सत्य है कि मेरे प्राण समीरमें भर रहे हैं। प्राणोंके साथ मेरी यह लालसा और पत्रमें अंकित प्राणोंका एक-एक स्पन्दन भी समीरकी साँय-साँयमें ज्यों-का-त्यों परिपूरित होता जा रहा है। समीरकी यह साँय-साँय तेरे कानोंमें ज्यों-की-त्यों सब बातें कह देगी! और कदाचित् मुझपर सदय होकर यह इस भूर्जपत्रके खण्डको भी उड़ाकर तेरे पास पहुँचा दे। बहिन ! तू उदास मत होना, सत्य, सत्य मेरा वियोग बस आधे क्षणके लिये ही तुझे सहना है । मैं निश्चय, निश्चय ही आधे क्षणके अनन्तर मूर्त हो जाऊँगी, तेरी प्राण-प्रतिबिम्ब-स्वरूपिणी सहोदरा बहिनके रूपमें। यही विधाताका विधान था। और सम्भवतः यही अग्रिम विधान है। सम्भवतः की बात इसलिये कि कदाचित् तेरा मेरे प्रति अनादि, अपरिसीम, अनन्त, अहैतुक प्यार इस सम्पूर्ण घटनाको स्वप्नके रूपमें परिणत कर दे। किंतु बहिन ! इसकी आशा अब मैं क्यों करूँ ! मेरे रोम-रोमकी लालसा है, मैं न सही तू तो इसे अवश्य-अवश्य स्वप्नके रूपमें ही अनुभव कर ले । और मेरे इस करुण प्रसंगको स्वप्नकी व्यथा अनुभवकर दुःखिनी न हो । मेरे रोम-रोमका प्यार मैं तुझे देना चाहती थी, पर दे न सकी । तेरे रोम-रोमका अनन्त, अपरिसीम प्यार साथ लिये ही आधे क्षणके लिये तुझसे अलग होने जा रही हूँ।–

तुझे अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारी, तेरी छोटी सहोदरा बहिन – मञ्जुश्यामा

(उपर्युक्त पत्रको समाप्तकर भूर्जपत्रको अपनी कञ्चुकीमें रखकर कक्षसे बाहर निकल चलती है । सौ पद पश्चिमकी ओर, फिर सौ पद उत्तरकी ओर चलकर)

मञ्जुश्यामा – (पागलनी-जैसे स्वरमें)आयी ! आयी ! आयी ! बहिन ! आयी !

(ब्रजेन्द्रनन्दन मन्द-मन्द हँसते हुए उसका अनुसरण करते हैं)

मञ्जुश्यामा – (पागलनी जैसी चेष्टा करती हुई) भूर्जपत्र क्या हुआ ? कहाँ गया ? अच्छा, उड़ गया !

(हँसने लगती है । और दो पल लगभग नृत्यकी मुद्रामें एक अशोक वृक्षके नीचे आकर ओढ़नी गिरा देती है। कञ्चुकी फाड़ डालती है। भूर्जपत्र गिर जाता है। सहसा पवनके एक झोंकेमें वह उड़ जाता है)

श्रीकृष्ण – (स्वगत) प्यार इसे कहते हैं ।

मञ्जुश्यामा – (दौड़ती हुई) आयी ! आयी ! प्यारी बहिन ! आयी !

(कलिन्दनन्दिनीके प्रवाहके समीप पहुँच जाती है। उस ओर श्रीराधा सौ पदकी दूरीपर खड़ी हैं। और मञ्जुश्यामाको देख लेती हैं। इसी समय भूर्जपत्र उड़कर उनके हाथोंपर आ जाता है। कंकणके प्रकाशमें पढ़ती हैं। पहली पंक्ति, फिर बीचकी पंक्ति, फिर अन्तिम पंक्ति और)

श्रीराधा – (चीत्कारके स्वरमें) प्रियतम ! श्रीकृष्ण ! बचाओ, बचाओ मेरी बहिनको। (मूर्छित हो जाती हैं)

(उधर मञ्जुश्यामा कलिन्दनन्दिनीके प्रवाहमें कूदने

चलती है। प्रियतम श्रीकृष्ण उसे अंकमें भर लेते हैं)

श्रीराधा – (मूर्छासे जगकर) हैं ! हैं ! यह तो दुर्मद नहीं, प्रियतम श्रीकृष्ण ही उसके पीछे चल रहे थे। और यह क्या ? मञ्जुश्यामा तो उनके ही अंकमें है।

(दौड़कर वहीं पहुँच जाती हैं)

श्रीकृष्ण – (मूर्छित मञ्जुश्यामाको अंकमें लिये हुए हँसकर) प्राणेश्वरी ! चिन्ता मत करो। मैं ही दुर्मदका वेश धरे हुए था।

मञ्जुश्यामा – (मूर्छासे जगकर) छोड़ो ! छोड़ो ! कौन है ?

श्रीकृष्ण – (हँसकर) अरी मञ्जुश्यामे ! आदिसे अन्ततक दुर्मदके वेशमें मैं ही था री !

मञ्जुश्यामा – (आँखें खोलकर अतिशय अचरजकी दृष्टिमें अपनी राधा बहिनको, ब्रजेन्द्रनन्दनको तीन चार बार बारी-बारीसे देखकर) हैं ! तुम थे ? (बहिनसे जा चिपटती है)

श्रीकृष्ण – (कलिन्दनन्दिनीकी ओर देखकर) क्यों री ! तू क्यों हँस रही है ? (अपनी आँखें बंद कर लेते हैं)

श्रीराधा – (बहिनका मुख चूमकर) चल ! चल ! बड़ी देर हो गयी ।

(श्रीराधाकी, मञ्जुश्यामाकी दोनोंकी आँखें झँपने लगती हैं । ब्रजेन्द्रनन्दन प्रियतम श्रीकृष्ण उसी प्रकार अपनी आँखें मूँदे दोनोंको अपनी भुजाओंमें भर लेते हैं । यमुनाकी एक ऊँची लहर उठती है और तीनोंके ऊपर तीनोंको डुबाकर बहने लग जाती है)

-पाँचवाँ दृश्य-

(नित्यनिकुञ्जमें पुष्पोंकी शय्यापर एक ओर नित्यनिकुञ्जेश्वर ब्रजेन्द्रनन्दन प्रियतम श्रीकृष्ण विराजित हैं, दूसरी ओर अपनी प्राणप्रतिबिम्बस्वरूपिणी बहिन मञ्जुश्यामाको दाहिनी ओर लिये नित्यनिकुञ्जेश्वरी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा बैठी है । तीनोंके नेत्र निमीलित हैं। प्रियतम श्रीकृष्णके दोनों करकमल.... सहसा तीनोंकी आँखें एक साथ खुलकर)

श्रीराधा – (अत्यधिक आश्चर्यकी मुद्रामें) हैं ! यह क्या?

श्रीकृष्ण – (उसी प्रकार अचरजकी मुद्रामें) बड़ी विचित्र बात है ! **(हँसने लगते हैं)**

मञ्जुश्यामा – (उसी प्रकार अचरजकी मुद्रामें) अरे ! स्वप्नकी भी बलिहारी है। **(श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लेती है)**

श्रीराधा – (वैसे ही प्रियतम श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर) तुम्हें तो बस एक बात सूझती है। जरा ठहरो।

श्रीकृष्ण – (और भी चपल होकर) तुम बोलो ! कानसे सुन ही रहा हूँ।

श्रीराधा – प्रियतम ! बड़ा ही विचित्र स्वप्न मैंने देखा।

मञ्जुश्यामा – तू बता बहिन ! पहले । तब मैं बताऊँ कि तेरे और मेरे स्वप्नमें क्या अन्तर है।

श्रीकृष्ण – (हँसकर) स्वप्न तो मैंने भी देखा है। **(विनोदकी मुद्रामें प्राणेश्वरी श्रीराधाके प्रति कुछ चपलता करने लग जाते हैं)**

श्रीराधा – नहीं बहिन ! तू पहले कह जा।

(मञ्जुश्यामा अपना स्वप्न बतलाने लगती है।

उपर्युक्त सभी बातें ज्यों की त्यों क्रमशः। श्रीराधा बीचमें अत्यन्त भयकी मुद्रामें बोल उठती हैं – सर्वथा यही, सर्वथा यही मैंने भी देखा है। प्रियतम श्रीकृष्ण भी बीच-बीचमें बड़ी सरस मुद्रामें........ कह उठते हैं – सत्य, हम तीनोंका स्वप्न तो एक ही है। एक घड़ीतक स्वप्न-वर्णन चलता रहता है। और तदनुरूप नित्यनिकुञ्जेश्वर हँस-हँसकर किञ्चित् खेल भी करते रहते हैं। मञ्जुश्यामा बीच-बीचमें खीझ-सी जाती है और कहती है – नहीं सुनाऊँगी, जाओ। मञ्जुश्यामा अपना वर्णन समाप्त करके बहिनकी ओर देखने लगती है)

श्रीराधा – प्रियतम ! एक बात पूछूँ ?

श्रीकृष्ण– (बड़ी सरस मुद्रामें) अवश्य, अवश्य।

श्रीराधा– तुम जिस समय क्रन्दन करते हुए-से अपनेको अनुभव कर रहे थे उस समय तुम्हारे अन्तर्मनमें भी व्यथाका अनुभव था कि केवल अभिनय था ?

श्रीकृष्ण– मेरे प्राणों की रानी ! व्यथा तो सर्वथा नहीं थी।

श्रीराधा– तो उस समय क्या भावना थी ?

श्रीकृष्ण– (अतिशय संकोचकी मुद्रामें) क्या कहूँ !

श्रीराधा– (उत्कण्ठाकी मुद्रामें) नहीं ! नहीं ! अवश्य कहो ! और सत्य-सत्य कहना।

श्रीकृष्ण–(आँखों में जल भरकर) मेरे प्राणोंकी रानी ! तुम इसका उत्तर मत पूछो।

श्रीराधा– नहीं ! नहीं ! अवश्य बतलाओ और तुम मुझे स्पर्श कर रहे हो भला ! तनिक भी मेरी वञ्चना मत करना।

श्रीकृष्ण–(आँखें भरकर)प्राणेश्वरी ! शब्द उसके सौन्दर्यको

विकृत कर देंगे। कुछ-का-कुछ अर्थ हो जायगा। अतएव छोड़ दो।

श्रीराधा– नहीं ! नहीं ! आज तुम्हें कहना ही है कि उस समय तुम्हारे अन्तर्मनमें क्या अनुभूति थी।

श्रीकृष्ण– प्राणेश्वरी ! वाणी रुद्ध हो रही है।

श्रीराधा– नहीं ! नहीं ! बतलाओ !

श्री कृष्ण– (आँखोंसे अश्रुधारा बहाती हुई रुक-रुककर) प्राणेश्वरी ! आदिसे अन्ततक मेरे अन्तर्मनमें अखण्डरूपसे एक ही भावना काम कर रही थी, उस समय भी कि कदाचित् मैं अपने प्रयासमें सफल हो जाऊँ और अपनी प्रियतमा राधाको एक क्षणके लिये भी सुखदान कर सकूँ ।

श्रीराधा– (सजल नेत्रोंसे) प्रियतम ! मुझे इस उत्तरका पहलेसे ही अनुभव था।

(तीनोंकी आँखें एक अचिन्त्य, अनिर्वचनीय भाव-समाधिकी मुद्रामें निमीलित हो जाती हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण एक साथ दोनोंको अपनी भुजाओंमें भर लेते हैं। यन्त्रवत् ही। एक अनिर्वचनीय परमानन्दकी लहरोंसे निकुञ्जका कण-कण प्लावित होने लगता है। निकुञ्जके बाहर अगणित पक्षी नेत्र निमीलित किये हुए सुन रहे हैं। और सारिका अतिशय मधुर कण्ठसे गाने लगती है)

लै न सके सुख दै न सकै जो
खेलि नित्य रसहोरी ।
सोइ सुवादन देन सोइ पिय
भये साँवरी छोरी ।।

श्रीराधा

कुन्दवल्ली भावलीला

भूमिका

श्रीमद्भागवतमें एक अत्यन्त सुन्दर श्लोक है –

रेमे रमेशो ब्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः

(१० ।३३ ।१७)

जिस प्रकार बालक अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण इस ब्रज-प्रेम-जगत्में अपने स्वरूपभूत लीला-परिकरों – श्रीनन्द-यशोदा, माता-पिता उपनन्द-पीवरी, ताऊ-ताई बृषभानु-कीर्त्तिदा, सास-ससुर, श्रीदाम-सुबल-मधुमंगलादि सखा-बन्धुगणोंसे संभ्रम-संकोचरहित मनमानी स्वच्छन्द लीला करते हैं। यह ब्रजलीला-प्रेम-मण्डल विलक्षण देश है। यहाँ एक श्रीकृष्णसे भिन्न अनेक हैं, फिर भी सभी उनके सुखके लिये ही, उनकी रुचि-सम्पादनके लिये ही थिरक रहे हैं। यहाँ श्रीकृष्णकी रुचि ही लोक है, वेद है, धर्म है, आचार है, जाति है, परमार्थ है, स्वार्थ है, वासना है, त्याग है, भोग है, सुगति है, मोक्ष है। यहाँ गोपियोंका काम है – श्रीराधाकृष्ण प्रिया-प्रियतमके नित्य निर्बाध मिलनकी व्यवस्था करना, उसे पूर्ण करके पूर्णरूपमें देखना। यहाँ सखाओंकी चरम परितृप्ति है – अपने सखा श्रीकृष्णकी रुचिकी जय कराना। श्रीदाम बृषभानु गोपराजका पुत्र है और मधुमंगल अकिंचन भिक्षुक विदूषक ब्राह्मण है। परन्तु दोनों ही अपना सर्वस्व देकर भी अपने सखा कन्नूको प्रसन्न रखना चाहते हैं। श्रीदामका राजपाट श्रीकृष्णका, उसकी बहनें भी श्रीकृष्णकी, वह स्वयं श्रीकृष्णका – उसे श्रीकृष्णको अपना सर्वस्व दे देनेपर ही कृतकृत्यता है, संतुष्टि है, परितृप्ति है। यहाँ सुबल श्रीकृष्णका ताऊका पुत्र – बड़ा भाई है। उसे अपने वैवाहिक फेरे भी श्रीकृष्णके साथ लेनेमें ही पूर्ण कृतकृत्यता है।

इस ब्रजजगत्का मूल दर्शन है – ***"वेदानपि संन्यसति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते।"*** अर्थात् जो वेदोंका (वेदमूलक समस्त धर्म-मर्यादाओंका) भी भलीभाँति त्याग कर देता है, वही अखण्ड असीम भगवत्प्रेमको प्राप्त करता है।

यहाँ ब्रजजगत्में सभी पात्र चाहे नन्द-यशोदा हों, बृषभानु-कीर्त्तिदा हों, सुबल-श्रीदाम हों – इन सभीकी वृत्तियाँ सर्वथा श्रीकृष्णमें ही निमग्न हैं। श्रीकृष्ण चाहते हैं कि कुन्दवल्लीकी बारात दो वरोंके साथ बृषभानुपुर जायेगी।

कुन्दवल्ली श्रीकृष्णसे भी फेरे लेगी, उन्हें भी वरमाला पहनावेगी एवं सुबलको भी। लोकव्यवहारमें यह बात सर्वथा अनुचित है। परन्तु ब्रजभावकी, गोपीभावकी यही विशेषता है कि यहाँ सभी पुत्रवतियोंके एक ही पुत्र हैं – वे हैं श्रीकृष्ण। गोपीका अपना पुत्र गोपीके लिये कुछ अर्थ ही नहीं रखता। वह तो अपने पुत्र-पति, सब परिवार सहित पूर्णतया समर्पित है श्रीकृष्णको। उसका 'स्व' कुछ है ही नहीं। उसका न मान-सम्मान है, न लोक-परलोक, न धर्म-मोक्ष है, न ही स्वार्थ-परमार्थ है। सबको छोड़कर, सबका उल्लंघन करके वह एकमात्र परम धर्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी रुचि-सम्पादनके लिये ही ब्रजमें जीवित है। सर्व धर्मका त्याग ही गोपीजगत्का उनके स्तरके अनुरूप स्वधर्म है। ऐसा आचरण– जैसा इस नाटक – *'कुन्दवल्ली भावकी लीला'* में समुल्लिखित है, सुबल जैसे परमोच्च स्तरके श्रीकृष्णके सखा ही कर सकते हैं। सचमुच सुबल एवं कुन्दवल्ली दोनों ही परमातिपरम धन्य हैं जो वे ऐसे ऋषि-मुनि-देव-दुर्लभ श्रीकृष्ण-प्रीतिको प्राप्त कर चुके हैं।

यहाँ ध्यान रहे, सुबल विवाह करके भी 'सौभाग्य-निशा' में जो अपनी पत्नी कुन्दवल्लीके साथ सगे भ्राताकी तरह निष्पाप, निर्मल रहता है, यह उसका त्याग तृप्तिमूलक है। उसे श्रीकृष्ण-प्रीतिका वह परमोच्च आनन्द प्राप्त है, जिसके सम्मुख नारी-भोगका आकर्षण तुच्छ है। भगवत्प्रेमकी ऊँची स्थितिका यही स्वरूप है। हम मुखसे भले ही कह दें कि हमारा तो सब-कुछ परमात्माका है। किन्तु यदि हमारा पुत्र-परिवार, धन-सम्पत्ति, भगवान्को समर्पित हो, तो हमारा उसका भोक्ता होना कदापि संभव नहीं। वस्तुतः हम प्राकृत धरातलके कामी-कुक्कुर श्रीदाम-सुबल जैसे श्रीकृष्णके कृपापात्र सखाओंके नाम लेनेतकके पात्र नहीं। सूर्यका प्रखर प्रकाश हो जानेपर जैसे तैल-दीपक स्वतः तुच्छातितुच्छ हो जाता है, उसी प्रकार अपने सखा श्रीकृष्णके प्रखर प्रेममें श्रीदामका, सुबलका अपना अहं ही लुप्त हो चुका है। उनका अहंकार ही श्रीकृष्णके अहंसे एकाकार हो गया है।

भगवान् श्रीकृष्ण भी हैं बड़े लीलामय। उन्होंने अपनी ही स्वरूपभूता कुन्दवल्ली सरीखी गोपियोंसे कैसे विचित्र खेल किये हैं – वस्तुतः इसका रस महारससिद्ध सन्त ही जानते हैं। उनके ही अन्तःकरण रूप ब्रजमें ऐसी परम पावन सर्वमंगलमयी लीलाओंका प्रकाश श्रीकृष्ण करते हैं। जो भगवान् अखिल विश्वके विधाता, ब्रह्मा-शिवादिके भी वन्दनीय, निखिल जीवोंके प्रत्यगात्मा हैं, वे

ही सुबल-श्रीदामादि सखाओंको अपने इशारेपर नचा सकते हैं और इन नाचनेवालोंके आस्वादनार्थ स्वयं नाचते भी हैं।

यहाँ बार-बार सावधानी रखनेकी आवश्यकता है कि ये सभी लीलाएँ सच्चिदानन्दघन, सर्वान्तर्यामी, प्रेमरसस्वरूप, लीलारसमय, परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने अपने स्वरूपभूत आनन्द-चिन्मय रस-प्रतिभावित-मति अपनी ही प्रतिमूर्त्ति सुबलादि सखाओंके साथ की हैं और यह उनकी विशुद्ध सच्चिदानन्दमयी, विशुद्ध निराविल, रस-प्रवाहिनी अन्तरंग आत्मक्रीड़ा मात्र है। भगवान् पूर्ण ब्रह्म हैं, सनातन, रसस्वरूप, रसराज, रसिकशेखर, रस-परब्रह्म, अखिल-रसामृत-विग्रह हैं; वे सर्वतन्त्र-स्वतंत्र हैं, ब्रह्मा एवं शंकरादि देवगणोंको भी अपने संकल्पसे नचाते हैं, उनपर न धर्मका शासन है, न वेदका। वे स्वप्रकाश हैं, अतः सर्व-विलास करनेमें समर्थ हैं। उनके संकेतपर जब अनन्त ब्रह्माण्ड नृत्य कर रहे हैं, उनके इशारेपर सम्पूर्ण प्रकृति ही नटीकी तरह थिरक रही है, अतः उनकी रुचि-सम्पादनके लिये ब्रजके गोप-गोपी यदि सभी धर्म-मर्यादाओंका उल्लंघन करते हैं तो वे परमातिपरम धन्यभाग्य एवं स्तुत्य हैं।

इस भावमें पूर्णतया प्रतिष्ठित होकर ही वैष्णव रसिक जन इस लीलाका अवगाहन करें तभी इसमें निहित प्रीतिके परमोच्च आदर्शकी उन्हें कुछ झलक मिल पावेगी, और उनकी प्रेमसाधनामें यह लीला उपयोगी हो पायेगी।

कुन्दवल्ली-भावकी लीला

[बृषभानुपुरके महलकी सबसे ऊँची अटारीपर श्रीराधा बैठी हैं। दक्षिण पार्श्वमें सहोदरा बहिन मञ्जुश्यामा बैठी है। बायीं ओर मौसेरी बहिन जो श्रीराधासे आयुमें दो वर्ष एक महीना अट्ठाइस दिन बड़ी है - कुन्दवल्ली बैठी है। तीनोंका मुख अत्यन्त उदास है।]

श्रीराधा - (करुण स्वरमें) देख ! या तो कोई पथ निकल आयेगा। और नहीं तो हम तीनों कल सूर्योदयसे पहले एक साथ प्राणविसर्जन कर देंगी।

मञ्जुश्यामा - (कुछ आशाके स्वरमें) बहिन ! मुझे तो ऐसा लगता है कि भगवती पौर्णमासी ठीक समयपर हम लोगोंकी सहायता करेंगी ही।

कुन्दवल्ली - (कुछ उल्लासके स्वरमें) मञ्जुश्यामे ! अबतक तो तेरी एक बात भी झूठी हुई नहीं पर (गद्गद् कण्ठसे) अब समय जो नहीं रहा !

[दौड़ती हुई रूपमञ्जरीका प्रवेश]

रूपमंजरी - (हाँफती हुई) बहिन ! भगवती पौर्णमासी आ रही हैं, (रुककर) तुम लोगोंके पास ही।

श्रीराधा - (उल्लासके स्वरमें) तुझे कैसे पता ?

रूपमंजरी - वे मैयाके पास बैठी हैं। मैयासे धीरे-धीरे कुछ कह रही थीं। अत्यन्त धीमा स्वर था। किंतु मैंने इतना-सा सुन ही लिया – "इस समय तो मैं केवल छोरियोंसे मिलने आयी हूँ।" यह सुनते ही मैं दौड़ पड़ी।

[श्रीराधा रूपमञ्जरीको कण्ठसे लगा लेती हैं, सीढ़ियोंपर किसीके चढ़नेका स्वर सुन पड़ता है। दो-तीन पलोंमें ही भगवती पौर्णमासीका प्रवेश। चारों एक साथ उनसे चिपट जाती हैं।]

रूपमंजरी - माता ! हम लोगोंका कष्ट दूर करो ! मैं तो मैयाके पास जा रही हूँ। उसने मुझे एक काम सौंपा है। तुम सब कुछ जानती ही हो फिर भी राधाबहिन तुम्हें सब-कुछ बतला देंगी।

[भगवती पौर्णमासी रूपमञ्जरीके भालपर चुम्बन अंकित करती हैं। रूपमञ्जरीका प्रस्थान]

भगवती पौर्णमासी - (तीनोंको बैठाकर स्वयं बैठती हुई) पुत्री ! राधे ! तू निस्संकोच सब कुछ कह दे।

श्रीराधा - (आँखोंमें जल भरकर) माँ ! तुम सब जानती ही हो। तुम्हें क्या कहूँ।

पौर्णमासी - (हँसकर) तब फिर उदासी क्यों ?

मञ्जुश्यामा - (भगवतीसे चिपटकर) माँ ! तुमने मेरी जीत करा दी।

भगवती - कैसे ?

मञ्जुश्यामा - मैं अभी-अभी कह रही थी, तुम ठीक समयपर सँभालोगी ही।

भगवती - (उसका मुख चूमकर) तू तो भविष्यकी बात सदा बोलने वाली है ही !

[चारों हँस पड़ती हैं]

श्रीराधा - (अत्यन्त उल्लासके स्वरमें) माँ ! बता दो ! कैसे

क्या करोगी !

भगवती - (हँसकर) सब जान लेनेपर रस फीका हो जाता है। केवल इतना ही कह दे रही हूँ – तुम्हारी पवित्रता अनादिकालसे अक्षुण्ण है, अनन्तकालतक अक्षुण्ण रहेगी।

[कुन्दवल्ली भगवतीसे चिपटकर प्रेमावेशसे रोने लग जाती है]

मञ्जुश्यामा - (भगवतीसे चिपटकर) मुझे तो बता ही दो ! तुम क्या करोगी !

भगवती - (हँसकर) और फिर तू राधाको बता देगी !

मञ्जुश्यामा - (वैसे ही हँसकर) पूछेगी तो अवश्य बता दूँगी।

श्रीराधा - (बड़ी उतावलीके स्वरमें)नहीं ! नहीं ! बहिन ! मैं तो पूछूँगी ही नहीं।

मञ्जुश्यामा - नहीं पूछेगी तो नहीं बताऊँगी।

भगवती - (हँसकर) और कुन्दवल्लीको ?

मञ्जुश्यामा - अभी मना कर दे रही हूँ कि बहिन ! तू भी मत पूछना।

भगवती - (हँसकर) और तेरी बुढ़िया नानी तुझे फुसला ले तो ?

[मञ्जुश्यामा सोचने लगती है]

भगवती - (पुनः मुख चुम्बनकर) क्यों ! बोल ! मैं सब जानती हूँ ! (कुछ रुककर) और फिर तेरी नानी यदि इस बार कहीं जान गयी तो ढूँढ़ी पीटे बिना रहेगी ही नहीं।

मञ्जुश्यामा - (कुछ सोचकर) नानीके चकमेमें एक बार

आ गयी। बार-बार थोड़े ही आऊँगी।

भगवती - (हँसकर) हाँ ! इस बार यदि पूरी सावधानी रक्खेगी तभी कहूँगी।

मञ्जुश्यामा - (हँसकर) रक्खूँगी ! रक्खूँगी ! तुम बताओ तो सही !

[मञ्जुश्यामा भगवतीसे चिपट जाती है। भगवती उसके कानमें पाँच-सात पल फुस-फुस करती रहती है। मञ्जुश्यामाकी आँखोंमें उल्लास बढ़ता जाता है]

भगवती - (आसनसे उठकर) अच्छा ! तो अब मैं जा रही हूँ। (हँसकर)। मञ्जुश्यामे ! इस बार खूब सावधान रहना भला !

मञ्जुश्यामा - (हँसकर) और कदाचित् फिर भूल कर बैठूँ तो तुम सँभाल लेना।

[भगवती हँसती हुई तीनोंको हृदयसे लगाकर, तीनोंका मुख चुम्बनकर, सिर सूँघकर चली जाती हैं]

मञ्जुश्यामा - (कुन्दवल्लीकी ओर देखकर) तू तनिक भी घबड़ाना मत बहिन ! ठीक उस अन्तिम क्षणमें क्या होगा तू स्वयं देख लेगी।

[कुन्दवल्लीकी आँखोंसे दर-दर अश्रु झरने लगते हैं। तीनों परस्पर चिपट जाती हैं]

- दूसरा दृश्य -

[भगवती पौर्णमासीका आश्रम ! सुबल भगवतीके चरणोंमें सिर रखकर रो रहा है]

भगवती - (मुसकाकर) क्यों ! बोल !

सुबल - (सुबकी भरकर) तुम सब कुछ जानती हो ! [भगवती हँस पड़ती हैं। सुबलकी आँखोंसे आँख मिलाकर आधा क्षण देखती हैं । सुबल समाधिस्थ हो जाता है]

भगवती - (दो-तीन पलोंतक मुसकुराती हुई सुबलकी ओर देखकर) क्यों ! रे छोरा ! कितनी देर समाधिमें रहेगा ?

[सुबलकी आँखें खुल जाती हैं। अतिशय उत्फुल्ल मुद्रामें भगवतीके चरणोंमें लोट जाता है]

भगवती - (मुसकाकर) पर सावधान ! सुहागरातमें यह भेद केवल कुन्दवल्लीपर प्रगट हो ! उससे पूर्व ठीक-ठीक अभिनय करना है, भला !

[सुबल भगवतीसे चिपट जाता है। भगवती मुख चुम्बनकर हृदयसे लगाकर, सिर सूँघकर विदा देती हैं]

- तीसरा दृश्य -

[ब्रजेश्वरका प्रासाद ! महाराज नन्द विराजित हैं। उपनन्द उनके पास बैठे हँस रहे हैं। उपनन्दपत्नी प्रभावती बैठी हैं, नन्दरानीसे सटकर। नन्दरानी मुसकुरा रही हैं। मुँह फुलाये सुबल बैठा है। और हँसते हुए ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण विराजित हैं]

उपनन्द - (हँसकर) भैया नन्द ! इसका निर्णय तो मेरे द्वारा होनेसे रहा।

नन्द - (मुसकुराकर) भैया ! मेरी बुद्धि तो काम नहीं करती।

सुबल - (नन्दकी ओर देखकर आँखें तरेरकर) बाबा ! इसमें आपका बिगड़ता क्या है ?

नन्द - (हँसकर) बेटा ! कैसे समझाऊँ !

सुबल - (रोषमें भरा हुआ-सा) तो ठीक है ! रहने दो ! ब्याह नहीं होगा।

[सभी हँसने लगते हैं]

नन्दरानी - (उठकर सुबलको अपने अंकमें लेकर) बेटा ! बड़ोंकी बात माननी चाहिये।

सुबल - (वैसे ही रोषमें भरकर) अरी मैया ! तू भी इस समय मेरे विरुद्ध जा रही है।

[नन्दरानी हँसने लगती हैं]

श्रीकृष्ण - (हँसकर) सुबल दादा ! अड़े रहना !

[एक साथ सभी उच्चस्वरसे हँस पड़ते हैं]

उपनन्द - (कुछ विचारकर) तो महाराज वृषभानुके पास समाचार भेजें ?

सुबल - (बड़े जोशमें) हाँ ! यह समाचार भेजो, ताऊ ! कि ब्याह नहीं होगा।

[सभी हँसने लगते हैं]

श्रीकृष्ण - (हँसकर) दादा ! ब्याह तो होगा ही रे ! और जैसे हम दोनोंसे बात हो चुकी है, वैसे होकर ही।

[सभी हँसने लगते हैं]

नन्द - (पुत्रको गोदमें लेकर) मेरे नीलमणि ! लोग क्या सोचेंगे ! तू ही बता। जब कि इसबार कर्ता-धर्ता स्वयं मैं हूँ, तुम्हारे ताऊ नहीं।

श्रीकृष्ण - (**हँसकर**) सदाकी भाँति उन्हींको कर्ता-धर्ता बना दो ! सब कुछ तो वे ही करें मेरे घर, अपने घर, सम्पूर्ण ब्रजमें और सुबल दादाका ब्याह करो तुम !

[सभी हँस पड़ते हैं]

नन्द - (**हँसकर**) इसलिये, कि सुबल मेरा बेटा है।

श्रीकृष्ण - (**आँखें नचाकर**) तो बाबा ! मैं भी तो तुम्हारा ही बेटा हूँ !

[सभी हँसते हैं]

नन्द - (**उपनन्दकी ओर देखकर**) भैया ! इसका समाधान तो अब तुम्हीं कर सकते हो।

उपनन्द - (**मुसकुराकर**) महाराज वृषभानुसे केवल पूछना पड़ेगा। मुझे सोलहों आना विश्वास है, उनको कोई आपत्ति होगी ही नहीं, अपितु परम आनन्द होगा।

नन्द - मुझे भी सर्वथा ऐसा ही लग रहा है।

[उपनन्द कुछ सोचते रहते हैं। नन्द सुबलको गोदमें लेकर]

नन्द - बेटा ! तेरा मनोरथ मैं अवश्य पूर्ण करूँगा। तू प्रसन्न हो जा।

[श्रीकृष्ण उठकर नाचने लगते हैं। सभी विमुग्ध दृष्टिसे उनकी ओर देखते हैं]

श्रीकृष्ण - (**दो-तीन पलतक नाचकर**) खूब खेल हुआ। खूब खेल हुआ। इससे भी सुन्दर होगा। एक घोड़ेपर सुबलदादा दूल्हा बनकर चढ़ेगा, और दूसरे घोड़ेपर ठीक-ठीक सुबलदादाके समान ही दूल्हेका सम्पूर्ण श्रृंगार धारण करके मैं

चढ़ूँगा। बारात जायगी और महाराज वृषभानु एक ही दुलहिनके लिये दो वरोंका स्वागत करेंगे, करेंगे, करेंगे।

[सभी हँसने लगते हैं। इतनेमें मधुमंगलका प्रवेश]

मधुमंगल - **(मुँह बिचकाकर)** पर सारे ! दुलहिन तो सुबलदादाके घर जायगी।

श्रीकृष्ण - **(आवेशमें)** तू तो मूर्ख है। पहले उतरेगी तो मेरे ही घर।

[श्रीकृष्ण सुबलको एक हलकी थाप जमाते हैं]

मधुमंगल - **(मुँह टेढ़ा करके)** उतार लो ! मैयाका राज है ! पर सारे ! या तो तू रातमें सो जायगा, देखेगा ही नहीं, और कहीं जगा रहा तो मैं भी देख लूँगा कि मैया या और कोई दुलहिनके पास सुबलदादाको ले जाती है या तुझको!

श्रीकृष्ण - **(हँसकर)** सारे ! तुझे ज्ञान तो कुछ है नहीं और तू बड़-बड़ किये बिना मानता नहीं। पहले दुलहिनको आने तो दे ! तू बीचमें ही इस प्रकार क्यों विघ्न डाल रहा है। अब यदि कुछ भी बोला तो ऐसी मुक्की मारूँगा कि याद करेगा भला !

[सभी हँसने लगते हैं]

मधुमंगल - **(मुँह टेढ़ाकर)** जा रे मूर्ख ! रातभर जगा रहूँगा मैं ! और तुझे चौंटिया भर-भरकर जगाऊँगा भी कि देख ले तेरी मैयाने तुझे कैसा धोखा दिया। दूल्हा बनकर महाराज वृषभानुसे पूजा भले ही करवा ले।

[श्रीकृष्ण आँखें तरेरकर एक हलकी मुक्की मधुमंगलको मारते हैं। मधुमंगल झूठमूठ चिल्लाने लगता

है। नन्दरानी श्रीकृष्णको पकड़ लेती हैं।]

नन्दरानी - (गंभीर मुद्राका अभिनय करके) बेटा ! ब्याहके दिनोंमें ब्राह्मण बालकको पीटनेसे कंहीं कुछ अनिष्ट हो जाय तो ?

[नन्दरानी उसी गम्भीरताकी मुद्रामें मधुमंगलको पुचकारने लगती हैं]

श्रीकृष्ण - (हँसकर) अच्छा ! सारे ! तीन दिन तो मेरी मैयाने तुझे बचा दिया। चौथे दिन बात।

मधुमंगल - (मुँह फुलाकर अँगूठा दिखाता हुआ) चल, चल, चौथे दिन बृषभानु महाराजका लड्डू खा-खाकर पत्थर-जैसी मेरी पीठ हो जायगी। एक मुक्की तूने लगायी कि मैयाको तेरी अँगुली सेकनी पड़ेगी।

[सभी हँसने लगते हैं]

- चौथा दृश्य -

[वृषभानुपुरमें श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी भगवतीका मणिमय मन्दिर। अंजलिमें पुष्प लिये श्रीप्रतिमाके सन्मुख महाराज वृषभानु खड़े हैं। उनके पास ही महारानी कीर्तिदा खड़ी हैं]

महाराज - रानी ! जगदम्बा आदेश तो कर रही हैं। पर मैं ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ। तुम सुनो।

महारानी - (मुसकाकर) जान-बूझकर जगदम्बा तुम्हें ठीक-ठीक समझने दे नहीं रही हैं।

महाराज - (कुछ कातर स्वरमें) क्या कोई अपराध होगया?

महारानी -(हँसकर) नहीं ! नहीं ! किसी विशेष उद्देश्यसे।

महाराज - **(प्रसन्न होकर)** तो तुम मुझे उनकी बात बतला दो।

महारानी - जगदम्बाका आदेश है कि नये सरोवर-निर्माणकी आवश्यकता नहीं है। यहाँसे ठीक पूर्व उत्तरके कोनेपर सुन्दरीसरोवरका एक पहरके लिये आविर्भाव हो जायेगा। कुन्दवल्ली उसीमें स्नान कर लेगी।

महाराज - **(अतिशय प्रसन्न मुद्रामें)** जगदम्बाकी रुचिकी जय हो ! **(कुछ रुककर)** किंतु,

महारानी - क्या ?

महाराज - **(हँसकर)** मञ्जुश्यामा जिद कर बैठी तो?

महारानी - **(हँसकर)** भगवतीका संकेत है कि जिद नहीं करेगी।

महाराज - जगदम्बाकी रुचिकी जय हो !

[मधुमंगल और श्रीदामका प्रवेश]

श्रीदाम - बाबा ! मैं तो माताका दर्शन करने आया हूँ। किंतु भैया मधुमंगलने पूछा — **(रुक जाता है)**

महाराज - **(मधुमंगलके सिर पर हाथ फेरकर)** बेटा ! बोल!

मधुमंगल - बाबा ! ये तुम्हारा बेटा झूठेका सरदार है। नाम मेरा लगा रहा है और जानना चाहता है स्वयं।

श्रीदाम - **(हँसकर)** बाबा ! सत्यके अवतार मधुमंगलको तो तुम जानते ही हो !

[महारानी-महाराज दोनों हँसने लगते हैं]

महाराज - **(मधुमंगलसे)** बेटा ! संकोच मत कर ! तू पूछ ले !

मधुमंगल - (कुछ लजायी हुई मुद्रामें) ऊँ...ऊँ...ऊँ कुछ नहीं बाबा ! कुछ नहीं बाबा ऊँ...ऊँ. कुछ नहीं बाबा ! मुझे इच्छा हो गयी थी कि कुन्दवल्ली माताजी कब स्नान करने पधारेंगी और किस सरोवरपर।

महारानी - (हँसकर मधुमंगलसे) चल बेटा ! मैं तुझे बतला देती हूँ। (महाराज से) तुम विलम्ब मत करो। शीघ्र-से-शीघ्र नीराजन कर लो। देर हो चुकी है।

[महारानी मधुमंगल और श्रीदामको लेकर चली जाती हैं]

- पाँचवाँ दृश्य -

[सखाओंसे परिवेष्टित हुए व्रजेन्द्रनन्दन गायोंको आगे किये हुए वनकी ओर जा रहे हैं। उनकी एक ओर सुबल है, दूसरी ओर श्रीदाम। मधुमंगल ठीक सामने दो पग हटकर झूमता हुआ चला जा रहा है। और भी सखा श्रीकृष्णको घेरे चल रहे हैं। तीन घड़ी दिन उठ चुका है]

मधुमंगल - (पीछे मुड़कर) कनुआँ ! तुझे एक ऐसी बात आज मैं बता सकता हूँ जो सुनते ही तेरा मन, रोम-रोम आनन्दसे भर जायगा।

श्रीकृष्ण - (अतिशय प्रसन्न मुद्रामें) बता !

मधुमंगल - तू क्या देगा ?

श्रीकृष्ण - (उत्कण्ठाकी मुद्रामें) जो चाहेगा वही।

मधुमंगल - यह कौल भूल तो नहीं जायगा ?

श्रीकृष्ण - (पीठपर थपकी देते हुए) अरे ! नहीं रे ! तू बता

तो सही।

मधुमंगल - तू जानता है ? आज सुबलदादाकी दुलहिन किस सरोवरपर स्नान करेगी ?

सुबल - (आँखें तरेरकर) मधुमंगल ! तू मानेगा नहीं।

श्रीकृष्ण- (मधुमंगलसे चिपटकर) दादा, तू अभी बता दे।

मधुमंगल - (अतिशय भयभरी मुद्राका अभिनय करके) और सुबल दादा ! मुझे कच्चे फाड़कर खा गया तो ?

सुबल - (एक मुक्की मधुमंगलको लगाकर) कच्चे तो नहीं खाऊँगा पर इतनी मार मारूँगा कि बस। यदि तुमने कह दी तो !

श्रीकृष्ण - (मधुमंगलसे चिपटकर) मधुमंगल दादा ! तू झट-से कह दे ! एक मुक्की भी मैं मारने दूँगा नहीं सुबल दादाको।

[सुबल अपनी आँखें नीची कर लेता है। मधुमंगल श्रीकृष्णके कानमें **फुस-फुस करता है**]

श्रीकृष्ण - (अतिशय प्रसन्न मुद्रामें गायोंकी ओर संकेत करते हुए) हिः हिः हिः हिः हिः हिः सबली सीधे।

[गायोंमें सबसें आगे सबली ही थी। वह बायीं ओर मुड़ने ही जा रही थी। अपने रसमय चालकका स्वर सुनते ही उल्लासमें भरकर तत्क्षण सीधे कूदकर चलने लगी प्राचीकी ओर]

श्रीकृष्ण - (मधुमंगलकी ओर देखकर) भैया ! तुमने ठीक समयपर ही बात कही।

मधुमंगल - पर सारे ! तू गुण माने तब तो ?

श्रीकृष्ण - (हँसकर) नहीं ! नहीं ! रे ! मानूँगा। पर तू यह बता कि किधर चलनेसे ठीक-ठीक देख सकूँगा।

मधुमंगल - (मुँह बिचकाकर) सुबलदादासे पूछ !

[सुबल मुक्की मारने चलता है]

मधुमंगल - (चिल्लाकरके) अरी मैया री ! बाबा रे ! दौड़ो! दौड़ो !

श्रीदाम - (हँसकर) सारे ! चुप रह ! (फिर श्रीकृष्णकी ओर देखकर सलाह देनेकी मुद्रामें) भैया ! कुन्दबल्ली बहिनको ही तो देखना है ? मै जहाँ कहूँ, चलकर खड़ा हो जा।

मधुमंगल - (आँखें नचाकर) देख श्रीदाम ! महाअन्याय! भारी पाप होगा। यदि सुबलदादा और मुझे न ले गये तो।

श्रीदाम - (डपटकर) तू चुप रह ! नहीं तो तेरा मुँह बाँध दूँगा।

[चार-पाँच सखा तत्क्षण बोल उठते हैं]

– कनुआ ! हम लोग भी चलेंगे भला !

श्रीकृष्ण - (उल्लासके स्वरमें) अवश्य ! अवश्य ! हम सबको ले जायेंगे, भैया।

[श्रीदाम आगे-आगे चलता है। सभी सखा पीछे-पीछे चल रहे हैं ! सुन्दरीसरोवरके उत्तरतटके उस छोटे पर्वतपर चढ़ जाते हैं। एक वृक्षके नीचे लता गुल्मोंमें छिप-छिपकर बैठ जाते हैं। उधरसे शहनायी बजती हुई आ रही है। कीर्तिदा महारानी कुन्दवल्लीको लिये दक्षिणकी तरफसे आ रही है]

मधुमंगल - (धीरेसे) देख ! कीर्तिदा मैयाके दक्षिणकी

ओर कुन्दवल्ली है भला !

श्रीकृष्ण - (सिर हिलाकर) ठीक ! ठीक !

मधुमंगल - (और धीरेसे) और कुन्दवल्लीके पीछे सारे! भविष्यमें होनेवाली तेरी दो दुलहिन हैं।

[श्रीकृष्ण धीरेसे चपत जड़ देते हैं]

मधुमंगल - सारे ! इस बार तुमने चपत मारी कि शोर मचाऊँगा।

श्रीकृष्ण - (डरी हुई मुद्रामें) नहीं ! नहीं ! मारूँगा नहीं! तू चुपचाप बैठा रह।

[कीर्तिदा महारानी श्रीराधा, मञ्जुश्यामा आदि सबको पीछे लिये हुए और कुन्दवल्लीको आगे किये सरोवरमें प्रवेश करती हैं। कुन्दवल्लीके केश उन्मुक्त हैं। मैया उसकी कञ्चुकीको हटा देती हैं ! क्योंकि वहाँ कोई पुरुष उन्हें नहीं दीख रहा है। जलको प्रणाम करके मस्तकपर तीन बार जल छींटती हैं। फिर डुबकी लगाकर स्नान करनेका आदेश देती हैं। कुन्दवल्ली मैयाकी आज्ञाका पालन करती है]

मधुमंगल - (गीत गाते हुए-से स्वरमें) सुवलदादाकी दुलहिन नहा रही है। हो !

[मैयाकी आँखें तत्क्षण उस ओर चली जाती हैं और देख लेती हैं कि ब्रजेन्द्रनन्दन सखाओंके साथ छिपकर पहलेसे बैठे हैं। वे मुसकुराकर तत्क्षण अपनी ओढ़नीसे कुन्दबल्लीके वक्षस्थलको ढक देती हैं। कुन्दबल्लीकी आँखें भी एक बार उस स्वरको सुनकर उठी थीं और श्रीकृष्णसे मिल गयी थीं। सुवलसे नहीं मिलीं। दूसरे क्षण उसने

अपनी आँखें नीची कर ली थी]

मैया कीर्तिदा - (**हँसकर**) पुत्रों ! तुम सब छिपे क्यों? कोई बात नहीं। तुम सब देखो।

[श्रीकृष्ण मैयाकी बात सुनते ही तत्क्षण कूदकर नीचे उत्तरकी ओर भाग चलते हैं। उनके पीछे सभी सखा वैसे ही कूदकर चल पड़ते हैं। केवल मधुमंगल ऊपर लताके जालसे बाहर आकर चिल्लाकर नाचकर कहता है]

मधुमंगल - मैया ! दुलहिन-दूल्हेको परस्पर दर्शन करा देनेका पुरस्कार मुझे मिलना चाहिये भला !

[कहकर वह भी श्रीकृष्णके पीछे भाग जाता है]

- छठा दृश्य -

[गायें चली जा रही हैं। श्रीकृष्ण सखाओंसे परिवेष्टित चले जा रहे हैं। वैसे ही एक ओर सुबल और एक ओर श्रीदाम चल रहा है। मधुमंगल आगे नाचता-कूदता चल रहा है]

मधुमंगल - (**मुँह बिचकाकर सुबलसे**) क्यों सारे ! बाबाके सामने तो ब्याह ही नहीं करूँगा, ढ़ोंग रच रहे थे। और अभी आँखें फाड़कर कुन्दवल्लीको कैसे देख रहे थे ?

सुबल - (**सजल आँखोंसे**) भैया ! मेरे लिये बहिन राधा और बहिन कुन्दबल्लीमें क्या अन्तर है ? क्या ऐसे मंगलमय अवसरपर अपनी बहिनको देखकर उसके लिये मंगलकामना करना पाप है ?

मधुमंगल - (मुँह फुलाकर) हूँ.....हूँ.....हूँ

[आकाशमें तत्क्षण भगवती पौर्णमासी प्रगट हो जाती हैं और कोई नहीं सुन पाता कि सुबलसे वे क्या बोलीं। पर सबको उनका प्रत्यक्ष दर्शन होता है और उनके होठ हिलते दीखते हैं]

भगवती - मेरे लाल ! अभिनय बिगड़ रहा है भला!

सुबल - (हाथ जोड़कर प्रणाम करके) माँ ! अब नहीं होगी भूल।

{महाराज वृषभानु विराजित दो परम सुन्दर दूल्होंका नीराजन कर रहे है। फिर कीर्तिदा महारानी करती हैं। एक दूल्हा हैं ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण दूसरा है सुबल। उस समय ब्रजेन्द्रनन्दनकी आयु सबको बहुत छोटी दीखती है]

श्रीकृष्ण - (महाराज वृषभानुसे) बाबा ! तुम बताओ ! हम दोनोंमें सुन्दर दूल्हा कौन है ?

मधुमंगल - बाबा ! तुम बिलकुल मत बतलाना इसे! और यदि तुमने बतलाया तो यह फिर फेराके समय तुम्हें ऐसा तंग करेगा कि बस !

[सभी हँसने लगते हैं]

श्रीकृष्ण - बाबा ! मधुमंगल बड़ा झूठा है। मैं कुछ भी तंग नहीं करूँगा। पर तुम बता दो।

[महाराज वृषभानु हँसकर विचारमें पड़ जाते हैं । श्रीदाम पासमें ही खड़ा है]

श्रीदाम - भैया ! कृष्ण ! निर्णय तो नन्दगाँवमें ही हो चुका। मेरी बातको बाबा कभी नहीं काटेंगे। (महाराज वृषभानुकी

ओर देखकर) बाबा ! वहाँ उस समय मैं था। जिस समय ये दोनों घोड़े चढ़ रहे थे। मधुमंगलसे चिढ़कर कृष्ण भैयाने यही बात वहाँ भी पूछी थी। और मैंने यह कहा था कि भैया कृष्ण तुम्हारे समान सुन्दर दूल्हा न तो कभी हुआ है और न आगे कभी होगा। और तत्क्षण सुबलदादाने घोड़ेसे उतरकर मेरा समर्थन किया था मुझे हृदयसे लगाकर। और मेरी उक्तिको ज्यों-की-त्यों दुहराकर !

[सभी हँसने लगते हैं। वह घोड़ा भी आनन्दसे उछलने लगता है। श्रीकृष्ण डर जाते हैं। और महाराज वृषभानुकी गोदमें चढ़ जाते हैं। इसके अनन्तर यथोचित सबका सम्मान करके महाराज वृषभानु बारातको जनवासेमें ले जाते हैं।]

- आठवाँ दृश्य -

[विवाहमण्डपमें अपने स्थानपर कुन्दवल्ली बैठी है। उससे कुछ दूर हटकर सुबल बैठा है। सुबलके ठीक पार्श्वमें ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण विराजित हैं। महर्षि शाण्डिल्य और महर्षि भागुरि वैवाहिक कृत्य सम्पन्न करानेकी मुद्रामें विराजित हैं। आकाशमें सहसा भगवती पौर्णमासीका आविर्भाव]

श्रीकृष्ण - बाबा ! देखो ! आकाशमें भगवती पौर्णमासी खड़ी हैं।

[सभीको उनका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। सभी सिर टेककर वन्दना करते हैं]

भगवती - महाराज वृषभानु ! भगवती त्रिपुरसुन्दरीका

निर्माल्य पुष्प सबसे पहले सुबलके सिरपर रखकर उसके दुकूलमें बाँध दो।

[महाराज वैसे ही करते हैं तत्क्षण एक अद्‌भुत माया फैल जाती है। ब्रजेन्द्रनन्दन, सुबल और कुन्दवल्लीके अतिरिक्त सभी उससे मोहित हो जाते हैं। सुबल ब्रजेन्द्रनन्दनके स्थानपर आ बैठता है और ब्रजेन्द्रनन्दन सुबलके स्थान पर। वैवाहिक कृत्य आरंभ होता है। सबकी दृष्टिमें सुबलके साथ ही कुन्दवल्लीका सब विवाहकृत्य होता है, किन्तु कुन्दवल्ली और सुबलकी दृष्टिमें कैशोरवय-विभूषित बृजेन्द्रनन्दनके साथ ही कुन्दवल्लीका आदिसे अन्ततक विवाह सम्पन्न होता है। कुन्दवल्लीकी उत्फुल्ल आँखें बारम्बार ढूँढ रही हैं अपनी बहिन वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको ! किन्तु उसे श्रीराधाके दर्शन नहीं हो पा रहे हैं। सहसा कुन्दवल्लीको अनुभूति होती है कि श्रीराधा उसके दोनो पयोधरोंके अन्तरालमें विराजित हैं। और मन्द-मन्द मुसकुरा रही हैं। ढाई पल यह अनुभूति हो चुकनेके अनन्तर श्रीराधा हँसती हुई अपनी अनुजा मञ्जुश्यामाको लिये परिणय-वेदीके पास आती हुई दीख जाती हैं]

श्रीराधा - (ललितासे) तो बहिन ! अब कोहबरमें चलें?

[सखी परिवेष्टित ललिता आगे-आगे चलती हैं। श्रीराधा कुन्दवल्लीकी बायीं ओर मञ्जुश्यामा बृजेन्द्नन्दनकी दाहिनी ओर रहकर वर-वधूका हाथ पकड़े चलती हैं।]

महारानी - (महाराज वृषभानुसे) महाराज ! भगवतीका आदेश प्रतीत हो रहा है कि इस समय और कोई भी अग्रिम

कृत्य न करके सभी लोग तत्क्षण विश्राम करें।

[सभी 'जय जगदम्बे' कहकर यथास्थान चले जाते हैं। कुन्दवल्लीको वृषभानुनन्दिनी अपने शयनागारमें ले जाती हैं। बृजेन्द्रनन्दन और सुबल जनवासेके शयनागारमें कीर्तिदा, कीर्ति एवं उनकी बहिनोंके द्वारा संलालित होकर निद्रित हो जाते हैं। आश्चर्य यह है कि और किसीको भी न दीखनेपर कीर्तिदा एवं उनकी बहिनोंको यह प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है कि बृजेशगेहिनी भी रोहिणीके सहित वहीं विराजित हैं। बलराम भी वहीं सो रहे हैं। मानो नन्दगाँवकी सम्पूर्ण वात्सल्यवती गोपिकाएँ सचमुच बारातमें आयी हों - ऐसी अनुभूतिकर कीर्तिदा महारानी सबको अपने महलमें ले जाती हैं।]

- नवाँ दृश्य -

[*नन्दग्राममें* बृजेशगेहिनीसे संलालित होकर बृजेन्द्रनन्दन गहरी निद्रामें एक पर्यंकपर सो रहे हैं। आज दोपहरमें बारात लौटकर आ चुकी है। वर-वधूके नेगचारमें अतिशय उल्लासपूर्ण चित्तसे निरन्तर साथ रहनेके कारण बृजराजनन्दन थककर एक घड़ी रात जाते ही आज सो गये हैं। द्वारके पास छिपकर मधुमंगल खड़ा है। यशोदारानी उसे देख लेती हैं]

यशोदा - (हँसकर) बेटा ! इस समय इसे मत छेड़ना भला!

मधुमंगल - नहीं मैया ! मैं इतना मूर्ख थोड़े ही हूँ।

मैया - तू भी पासके पर्यंकपर सो जा। रात्रिमें तो वह

प्रायः कभी उठता ही नहीं। दैवयोगसे कदाचित् आज ही उठ जाय तो प्रातः होनेतक कुछ भी मत बोलना भला !

मधुमंगल - अरी मैया ! बिलकुल ऐसा ही करूँगा। पर एक बात की छूट दे दे। सवा पहर रात जानेके अनन्तर मैं एकबार उठकर उस कक्षके समीप जाऊँ जिसमें सुबलदादाके समीप कुन्दवल्ली आयेगी। और बाहरसे ही 'सुबलदादा हो !' कहकर तुरंत भागकर यहाँ आकर सो जाऊँ।

मैया - (हँसकर) अच्छा ! पर इतनेसे अधिक कुछ भी नहीं।

मधुमंगल - अरी ! बिलकुल नहीं री ! मैया मेरी ! कुछ नहीं।

[कहकर श्रीकृष्णके पार्श्ववर्ती पर्यंकपर चादर ओढकर लेट जाता है]

- दसवाँ दृश्य -

[एक परम सुन्दर पुष्पोंसे सज्जित कक्षमें पर्यंकपर सुबल विराजित है। प्राचीके द्वारसे अतिशय भयभीत मुद्रामें कुन्दवल्ली प्रवेश करती है। बाहरसे सुबलकी एक बहिन द्वार रुद्ध कर देती है।]

सुबल - (बड़ी मीठी बोलीमें) बहिन ! कुन्दवल्ली ! जैसे श्रीदाम तुम्हारा सहोदर भाई है सर्वथा मैं भी वैसा ही हूँ। अपने भाईके पास किसी विशेष उद्देश्यसे तुम इस समय आयी हो – ऐसा ही अनुभव करना भला !

कुन्दवल्ली - (आशाभरी मुद्रामें) भैया ! आशा तो तुमसे

ऐसी ही है कि मुझे सदा इस भाँति ही तुम अनुभव करने दोगे।

सुबल - देखो बहिन ! यह विधिका विचित्र विधान है कि हम दोनों मिलकर ऐसा अभिनय करें जो प्रायः सबकी आँखोंमें सत्य प्रतीत हो।

कुन्दवल्ली - मैं समझ नहीं पायी।

सुबल - क्या तुम्हें भगवतीने कुछ नहीं कहा ?

कुन्दवल्ली - उनके आश्वासन तो मुझे अवश्य मिले और इसीलिये साहस बटोरकर तुम्हारे पास आ सकी।

सुबल - मैं संक्षेपमें तुम्हें सुना दूँ। तुम्हारे ब्याहसे पूर्व मैं भगवतीके आश्रमपर गया था। उन्होंने समाधिमें मझको अनादि अनन्त एक परम सुन्दर खेलका चित्रपट दिखलाया। जिसमें मेरा तुम्हारा नित्य भाई-बहिनका पवित्रतम सम्बन्ध अक्षुण्ण रहकर भी बाह्यदृष्टिमें जनसाधारणको प्रतीति कुछ और ही होती आयी है अनन्त कालतक और ही होती रहेगी। हम दोनों एक शय्यापर सोकर भी भाई-बहिनके सम्बन्धको नित्य अक्षुण्ण बनाये रहेंगे। ऐसे बहुत-से अवसर आयेंगे जिसमें तुम्हारे कण्ठसे लगकर भी मेरे मन-बुद्धि-चित्त सब-कुछका भाव अग्निके समान, सूर्यके सदृश निर्मलतम पवित्रतम रहेगा । लोगोंकी दृष्टिमें इसका हेतु सदा अज्ञात रहेगा। भैया श्रीकृष्णकी ही वस्तु तुम थी, हो, और अनन्त कालतक रहोगी। तुम्हें पता है कि मैं राधा बहिनको श्रीदामके समान ही प्यार करता हूँ। और वह भी मुझे श्रीदामके सदृश ही प्यारदान करती है। ठीक तुम्हारा मेरा सम्बन्ध भी नित्य

ऐसा ही है। भैया श्रीकृष्णकी एक विशेष शैली है रसास्वादनकी। उसीके लिये बाह्यदृष्टिमें तुम्हारी गणना सुबलपत्नीके रूपमें ही रहेगी।

कुन्दवल्ली - (कुछ चिन्ताकी मुद्रामें) किंतु यौवनके प्रवाहमें भैया ! कहीं स्वप्नमें भी तुम्हारा भाव अन्यथा हुआ तो ?

सुबल - नहीं होगा बहिन ! अभी-अभी साक्षी दे देंगे अग्निदेव और भगवती पौर्णमासी।

[सुबल अपने पीछे-पीछे चलनेके लिये कुन्दवल्लीको संकेत करता है। एक सुगुप्त पथसे दोनों बलराम-बिहार-प्रासादके पीछेके उद्यानमें चले जाते हैं। वहाँ एक यज्ञकुण्डमें अत्यन्त प्रज्ज्वलित अग्नि है]

सुबल - (उस यज्ञकुण्डको प्रणाम करके) हुताशन ! यदि मेरी उक्ति कुन्दवल्लीके प्रति अक्षरशः और त्रिकालसत्य है तो तुम मेरे अंगोंके लिये हिमके समान शीतल बन जाना।

[सुबल कुण्डमें प्रवेश कर जाता है। लपटें उसे बिलकुल जला नहीं पातीं। आधे पलके अनन्तर सुबलको अंकमें लिये भगवती पौर्णमासीका उस अग्निकुण्डमें आविर्भाव]

भगवती - (कुण्डसे निकलकर दक्षिण करसे सुबलको पकड़े रहकर वाम कर कुन्दवल्लीके सिरपर स्थापित करके) बेटी ! कुन्दवल्ली! तू नित्य निश्चित रह। तुम दोनों ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण और वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके परस्पर रसास्वादनको निरन्तर परिवर्धित करते रहो। इस उद्देश्यसे ही यह मेरा परम रसमय विधान है। बेटी ! तू समयपर अपने आप सब-कुछ अनुभव कर लेगी। अभी तो मैं तुम दोनोंको एक वर दे रही

हूँ। तुम दोनों वाणीसे, अपने शरीरकी चेष्टाओंसे जिस समय, जिसको, जितनी देरके लिये, जो प्रतीति कराना चाहोगे उस समय, उसको उतनी देरके लिये वही अनुभूति होती रहेगी। एक मेरे अतिरिक्त सबके लिये यह अनिवार्य नियम हुआ अबसे अनन्त कालतकके लिये।

[भगवती अन्तर्धान हो जाती हैं, कुन्दवल्ली और सुबल दोनों वैसे ही सुगुप्त पथसे सुहागकक्षमें लौट आते हैं। ब्रजेन्द्रनन्दनका श्रीराधाको उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक प्रतिपल नवीन सुखदानकी योजना बनाते-बनाते उषा लग जाती है।]

श्रीराधा

राधा-मनोरथकी लीलाएँ

दूसरीसे छठी लीलातक

भूमिका

ये पाँच लीलाएँ जो पू.गुरुदेवने लिखी हैं, इनमें भी श्रीमञ्जुश्यामा, श्रीराधानुजाके ही निर्मलतम स्वभावकी झाँकियाँ हैं। वैष्णव रसिक पाठक यदि ध्यानपूर्वक देखेंगे तो उन्हें मिलेगा कि मञ्जुश्यामाके चित्तमें अपने सुखका, अपने कल्याणका, अपनी रुचिका कहीं कोई अनुसन्धान ही नहीं है। बस, जो भी उसकी बड़ी बहिनकी चाह है, वही उसकी रुचि हो जाती है। वह तो मात्र कठपुतलीवत् अपनी बहिनके हाथकी यंत्र है। मञ्जुश्यामा श्रीराधाकी प्राण-प्रतिबिम्ब-स्वरूपिणी बहिन है। वह उसकी पूर्णतया अनुगामिनी है। उसकी राधा-सुख-स्पृहा सर्वथा अलौकिक है। वस्तुतः कोई किसीकी आदर्श बहिन हो सकती है, तो मञ्जुश्यामा ही। वह श्रीराधाके सुखके लिये ही खाती-पीती-सोती, श्वासतक लेती है। उसकी एक-एक श्वास राधा-सुखके लिये है। वह श्रीकृष्णसे मिलती है, उन्हें अपना समर्पण करती है, केवल राधा-सुखके लिये। वह राधारानीकी अनुमति पानेके उपरान्त ही श्रीकृष्णको अपना स्पर्श करने देती है। वह जानती है कि श्रीकृष्ण उसकी बहिनके प्राणनाथ हैं, परन्तु ज्योंही वे उसे स्पर्श करते हैं, तत्क्षण ही वह मूर्च्छित हो जाती है। उसमें स्वाभाविक ही सर्वस्वत्याग है। उसका सर्वस्व-त्याग ही उसका प्रेम है। उसका अलौकिक अप्रतिम त्याग ही उसके प्रेमका विकास है।

मञ्जुश्यामा स्वयंमें राधासे भिन्न कुछ भी नहीं है। मञ्जुश्यामाका 'स्व' राधा है, उसके 'स्व'का अर्थ भी राधाके 'स्व'का अर्थ है। यदि राधाका स्वार्थ उसे श्रीकृष्णकी किसी भी इच्छाकी पूर्तिका साधन बनाना है, तो वह तनिक भी हिचकिचाहटके बिना एक क्षणमें ही राधाका सुख-साधन बन जाती है।

राधारानीके स्वार्थकी सीमा असीम है। उसका स्वार्थ ही अपना सुख नहीं, श्रीकृष्णकी अभिरुचि है। श्रीकृष्णको जिसमें सुख मिले, श्रीराधारानीको उसमें ही सुख है। श्रीकृष्ण अखिल-भुवन-मोहन हैं; उनके चरण-रजकण सुर-मुनि-दुर्लभ हैं। वे अनन्त-सुख-समुद्र हैं, वे प्रेम-रस-माधुर्य-निधि हैं; परन्तु वे

श्रीराधाके अतिरिक्त अनेक रमणियोंके प्रति आकृष्ट होते हैं। वे रोते हुए श्रीराधासे कहते हैं -- "जीवनमें मैंने तुम्हें एक क्षणके लिये भी सच्चे प्यारका दान नहीं किया। यदि किया होता, तो मैं तुझ एकका ही होकर रहता। तुमने मेरे लिये सर्वस्व त्याग किया; मैं अनादि कालसे यही अनुभव करता था कि नेत्रोंका सौन्दर्य-सुख यदि मुझे कोई रमणी दे सकती है, तो वह मेरी प्रियतमा प्राणाधिका प्राणवल्लभा राधा ही दे सकती है। किन्तु मेरे मलिन मनमें, नेत्रोंमें मुझे जब अन्यत्र सुख मिलनेकी स्पृहा दृष्टिगोचर हुई तो मुझे अत्यधिक हीनताका अनुभव हुआ। पहली बार तो मैंने किसी प्रकार समाधान कर लिया; एवं साथ ही निश्चय भी कर लिया कि आगे अनन्त कालतक मुझमें यह लालसा जगेगी ही नहीं।"

यहाँ यह रहस्य खोलना परमावश्यक है कि प्रियतम श्रीकृष्णमें पहली बार किस रमणीके रूप-दर्शन-सुखको प्राप्त करनेकी स्पृहा जगती है ? रसिक साधक सदैव ध्यान रखें कि इस प्रेमराज्यमें अनन्त, निराविल, विशुद्ध आनन्द-रसका प्रवाह है; उच्छलन है। जबतक सागरमें अनेक एक-से-एक बढ़कर उत्तुंग लहरें नहीं उठें, वे परस्पर टकरावें नहीं, तबतक उसके रसमें उच्छलन कैसे होगा ? अनन्त आनन्द-रसका उच्छलन तो तभी सम्भव है जब परस्पर विरोधी दिशाओंसे रसकी उत्तुंग लहरें एक-से-एक बढ़कर वेगवती होकर उमड़ें, परस्पर टकरावें और तब उच्छलन हो। यह राधा-रस-भाव-समुद्र इसीलिये प्रथमतया तो अपनी ही अनेक कायव्यूह रूपा उर्मियोंमें विभक्त होता है। इनके साथ-साथ तो उसका लहराना भर होता है। ये सभी क्योंकि राधा-सुख-सुखिया वृत्तिवाली हैं, अतः इन लहरोंमें समान दिशाप्रवाह रहता है। किन्तु इनके साथ रस-समुद्रके लहरानेसे, टकराहट नहीं होनेसे, उच्छलन संघटित नहीं हो पाता; अपसर्पण भी नहीं होता। आनन्द-रसमें ज्वार होता है; परन्तु रस-सिन्धु तटसे अपसर्पित हो, भाटेकी दशाको प्राप्त हो, किनारा नहीं छोड़ता। प्रियतम प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण ही तो इस प्रेम-भाव-सिन्धुके सरस किनारे-तट हैं। रसिकशेखर श्रीकृष्णरूपी तटको आप्यायित करना ही तो राधा-सिन्धुका मात्र मन्तव्य है, उसके उद्दाम प्रवाहके लहरानेका हेतु है। तब यह श्रीकृष्ण-तट ही यदि एक ही दिशामें प्रवाहित होनेवाली लहरोंके लहरानेसे विहार-संतुष्ट हो जाय तो उच्छलन घटित नहीं होगा। फिर तो सिन्धुमें ज्वार आवेगा ही नहीं। अतः राधा-महाभाव-

सिन्धु ही स्वयंमें ही प्रतिस्पर्धी लहरकी संरचना करता है। आनन्द-महाभाव-सिन्धु तो अनेक होने सम्भव ही नहीं हैं। वह तो एकमेव अद्वितीय ही है। आह्लादिनी शक्ति राधा तो अनेक होनी संभव ही नहीं। वे तो एकमेव अद्वितीय ही हैं। फिर यह प्रतिस्पर्द्धी लहर अन्य सिन्धुगत तो हो ही नहीं सकती। यह राधाकी कायव्यूहरूपा होती तो प्रिया-प्रियतम-मिलनके समय प्रियामें समा जाती। परन्तु कायव्यूहरूपा नहीं होकर प्रतिस्पर्धी लहर है, अतः राधासे प्रकट होकर भी राधाके विरुद्ध-गुण-धर्मी स्वभावका आश्रय ले उससे प्रतिस्पर्धी, समान उत्तुंग हो उठती है।

इसी लहरको वैष्णव रस-शास्त्रोंने चन्द्रावली नामसे अभिहित किया है। चन्द्रावली श्रीराधासे भिन्न नहीं है। श्रीराधा महाभाव-सूर्य हैं, इसीलिये वे भानुपुत्री हैं। वे बृषभानु-तनया हैं। श्रीचन्द्रावली चन्द्रभानु गोपकी पुत्री हैं। इनकी माता चन्द्रकला हैं। किन्तु चन्द्रमा भानुके प्रकाशसे ही प्रकाशित होता है। अतः निकुञ्जमें – अनादि गोलोकमें रासमण्डलमें श्रीकृष्णके वामांगसे जैसे श्रीराधाकी उत्पत्ति होती है, ठीक वैसे ही श्रीराधाके नख-चन्द्रोंकी ज्योत्स्ना ही परमातिपरम सुन्दर आकार लेकर चन्द्रावलीके रूपमें प्रकट होती है, और अपने परमातिपरम सौन्दर्यसे श्रीकृष्णको आह्लादित, चमत्कृत करती उनके दक्षिण भागमें स्थित हो जाती है। यहाँ वैष्णवोंमें मतभेद है। गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी तथा पुष्टिमार्गीय सम्प्रदायके वैष्णव जहाँ श्रीराधाकी स्थिति श्रीकृष्णके दाहिने भागमें मानते हैं तथा चन्द्रावलीजीको वामभागमें स्थापित करते हैं, वहीं गौडीय सम्प्रदायके लोग श्रीराधाको वाम भागमें ही स्थान देते हैं और चन्द्रावलीजीकी श्रीकृष्णके दक्षिण भागमें स्थिति अनुभव करते हैं। आश्चर्य है, पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी भावना अनेकांशमें गौडीय सम्प्रदायके अनुकूल चलते हुए भी उन्हें सदैव ही श्रीराधाकी अनुभूति श्रीकृष्णके दक्षिणांगमें ही हुई है। यहाँ उनका पुष्टिमार्गसे सामञ्जस्य हो जाता है।

जब गीतावाटिकाका श्रीराधाकृष्ण-साधना-मन्दिर निर्मित नहीं हुआ था, मैंने एकबार पू.गुरुदेवसे पूछ लिया था – "पू.गुरुदेव ! आप स्वयं ही तो श्रीराधा हैं ! अतः आपकी समाधिके स्थानपर श्रीराधाकृष्णमन्दिरका निर्माण क्यों नहीं कराया जाय ?"

उस समय पू. गुरुदेवने तुरन्त ही मेरी भावनाका विरोध करते हुए कहा था – 'देखो ! जीवनभर मैं श्रीपोद्दार महाराजकी चिताके दक्षिण दिशामें ही रहा

हूँ, मुझे उनके दक्षिणांगमें ही रखना।' उनकी भावनानुसार श्रीपोद्दार महाराजका शरीर भी चिन्मय था और उनके इस चिन्मय कलेवरका सम्पूर्ण नियन्त्रण नित्यनिकुञ्जेश्वर रासेश्वर श्रीकृष्ण ही करते थे। वे ही उनके मुखसे बोलते थे, नेत्रोंसे देखते थे, हाथोंसे संस्पर्श करते थे। श्रीपोद्दार महाराज सच्चिदानन्दकन्द रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके कलेवर रूपमें चिन्मय धाम ही थे।

इतना विषयान्तर एवं विस्तार मुझे एकमात्र यही संकेत करनेके लिये करना पड़ा है कि श्रीकृष्ण सर्वप्रथम यदि किसी भी राधा-इतर ब्रजांगनापर आकृष्ट होते हैं, तो वे ब्रजांगना यूथेश्वरी चन्द्रावली हैं। किन्तु चन्द्रावली-कुञ्जमें काल व्यतीत करनेके पश्चात् जब परितापग्रस्त प्रियतम श्रीकृष्ण श्रीरासेश्वरीके सम्मुख अपनी अनन्य प्रेमच्युति एवं हीनताका प्रकाश करते हैं, उस समय रासेश्वरी ही उनके अजस्र प्रवाहित अश्रु-स्रोतको पौंछती हुई उन्हें ढाढ़स देकर अपने अंकमें उसी उत्साहसे समालिंगित करती हुई कहती हैं – चन्द्रावली बहिन निस्सन्देह अनन्य सुन्दरी हैं और मुझ कुरूपासे उनकी संतुलना की ही नहीं जा सकती। फिर भी वे मेरी आत्मा एवं मेरी ही सुन्दरतम कल्पना-मूर्त्ति हैं। जब मैं अपनी कुरूपताका अनुभव करती हुई किसी अतुलनीय सौन्दर्यकी परिकल्पना करती हूँ, हे प्राणवल्लभ ! तुम्हें सुख देनेको समुत्सुक होती हूँ तो वह मेरी परिकल्पना ही सुमूर्त्त होकर मेरी चन्द्रावली सखी बनकर जीवन्त हो जाती है।'

यहाँ इन दो-तीन पंक्तियोंमें श्रीकृष्ण यही कहते हैं कि "तुम्हें स्मरण होगा कि मैंने अपनी च्युतिका (तुम्हारी उक्ति सुनकर ही) मन-ही-मन समाधान कर लिया था और मुझे निश्चय था कि आगे भविष्यमें अनन्त कालतक भी मुझमें यह लालसा जगेगी ही नहीं। किन्तु यह मेरा नितान्त भ्रम ही था.......... । वह वैसी ही सुखकी लालसा पुनः जग ही उठी।"

इसी पुनः जगी प्रियतम श्रीकृष्णकी लालसा-पूर्त्तिको लेकर ही ये पाँच लीलाएँ पूज्य गुरुदेवने पू.सावित्री बाईकी साधनाको दिशा देनेको लिखाई हैं।

यहाँ यह ध्यान रहे कि श्रीकृष्णमें यह जो सौन्दर्य-लालसा जगती है, वह प्राकृत पुरुषोंके समान नारीदेहाकर्षण सर्वथा, सर्वांशमें नहीं है। जो श्रीकृष्ण स्वयं मन्मथ-मन्मथ हैं, उनका मन किसी सच्चिदानन्दसान्द्रांग सौन्दर्यपर ही समाकर्षित होना संभव है। वह सौन्दर्य निराविल विशुद्ध सच्चिदानन्दतत्वका ही विलास है और अघटनघटनापटीयसी भगवान्‌की चिच्छक्ति ही उस सच्चिदानन्द

तत्वसे किसी अचिन्त्य अनिर्वचनीय सौन्दर्य-समुच्चयका सृजनकर सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रको समाकर्षित करती है। यह विशुद्ध आनन्दका ही विलास है। अवश्यमेव इसकी भाषा प्राकृत है। शब्द प्राकृत हैं, परन्तु ये प्राकृत शब्द जिस सत्यको प्रकाशित करनेका मन्तव्य रख रहे हैं, वह मन्तव्य परमातिपरम निर्मल, विशुद्ध, निराविल आनन्दोच्छलन-मन्त्र है।

यह पूर्वतः उल्लेख किया जा चुका है कि श्रीराधाजीकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी ही छाया-स्वरूपा हैं। वे उनसे भिन्न कुछ भी नहीं हैं। पूज्य गुरुदेव अपने पिछले नाटक **अनुराग-परीक्षा लीला**का समापन ही इस गीतिकासे करते हैं:

लै न सकै सुख दै न सकै जो
खेलि नित्य रस होरी।
सोइ सुवादन देन सोइ पिय
भये साँवरी छोरी।

जब श्रीकृष्ण अपनी प्रिया किशोरीको अपने नित्य-निकुञ्जेश्वर रूपमें सुख देनेमें सर्वथा असमर्थ होते हैं, और नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा भी जहाँ अपनी राधारूपा महाभावमयी भावधारामें नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णको, वे प्रकृत भावसे जैसा सुख चाहते हैं, दे सकनेमें असमर्थ होती हैं, तो वह विशुद्ध प्रेम-आस्वादन देने और लेनेके लिये श्रीकृष्ण स्वयं ही मञ्जुश्यामा नाम्नी छोरी बनकर कीर्त्तिदाकी कोखसे छायारूपमें जन्म ले लेते हैं। अतः मञ्जुश्यामा देवी कीर्त्तिदाकी पुत्री होते हुए भी वेदवर्णित समस्त अवतारोंकी निधान, सबकी अविनाशी बीज, नित्य सनातन, स्वयं ज्योतिस्वरूपा परमेश्वरी हैं। उनके एक-एक लोमकूपमें अनन्तानन्त कामदेव स्थित हैं, नित्य जन्मते हैं और विलीन होते हैं। श्रृंगार उनके सच्चिदानन्दमय रूपको सजा नहीं सकता, उनके निरावृत अंग ही उनकी सच्चिदानन्दमयी प्रखर सौन्दर्यधाराको प्रकाशित कर सकते हैं। इसीलिये श्रीराधारानी अपने प्राणपति सच्चिदानन्दकन्दविग्रह श्रीकृष्ण को अपनी ही स्वरूपभूत रूपमाधुरीसे चमत्कृत कर देनेके लिये अपनी छोटी बहिनको कहती हैं – "अत्यधिक गरमी है, बहिन ! आज तू मुझे कम-से-कम वस्त्र धारण कराना और तू भी कम-से-कम पहनना।" नित्य निकुञ्जेश्वरीकी आँखें स्नेहसे छलक रही हैं और वे धीरे-धीरे ...... ।(मञ्जुश्यामा-अपनी छोटी बहिनके अंग निरावृत कर देती हैं) इसके पश्चात् वे अपनी अनुजाको विशाल

पंखेकी डोरी खींचती रहनेका समादेश देकर अपने पास ही बैठाये रखती हैं। श्रीकृष्णकी मञ्जूश्यामाके प्रति उत्थित सौन्दर्य-भोगकी लालसाकी संपूर्त्ति ही श्रीराधाका मनोरथ है।

उपरोक्त वृत्तान्तको पढ़कर यदि कोई प्राकृत-भावाग्रही पाठक इस सम्पूर्ण विवरणको प्राकृत कामयुक्त भावसे ग्रहण करेगा, तो निश्चय ही दुर्भावग्रस्त होगा। इसीलिये इन लीलाओंमें भोग-भाव-निवृत्त, विशुद्ध-चित्त, अतिशय श्रद्धा-सम्पन्न रसभाव-मर्मज्ञ लोगोंका ही प्रवेशाधिकार है। उन्हें ही इन लीलाओंमें अवगाहन करना चाहिये। साधारण आस्तिकजन भी यदि इन्हें पढ़ें तो यह दृढ़ अवधारणा रखें कि भगवती राधा तथा उनकी छोटी बहिन ही नहीं, ब्रजकी सम्पूर्ण सृष्टि ही विशुद्ध सच्चिदानन्दमयी है। नारदादि मुनिगण, ब्रह्मादि देवगण, उद्धव-जैसे परम ज्ञानी भी जहाँ तृण एवं गुल्म बननेकी कामना करते हैं, ब्रह्मविद्या जिन राधा-मञ्जुश्यामादिके भावोंको प्राप्त करनेके लिये तपस्यारत होती है, एवं सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र जो श्रीमद्भगवद्गीतामें स्वयंको 'ब्रह्मकी प्रतिष्ठा' बतलाते हैं और सम्पूर्ण अध्यात्म जगत् जिसे स्वीकार करता है वे जिस रूपपर भ्रमरवत् आकृष्ट होते हैं, वह रूप साधारण प्राकृत नारीका मल-मूत्रमय देहगत विकारी रूप नहीं है। वे अंग, जिनकी झलक पानेको सच्चिदानन्दकन्द लालायित हैं, वे अंग कामोत्पादक नारी-अंग नहीं हैं। वे विशुद्ध सच्चिदानन्द सान्द्रांग हैं और भगवान् श्रीकृष्णका यह आकर्षण भी मात्र विशुद्ध रसोच्छलन, आनन्दकन्दका आनन्दविलास मात्र है।

भगवान् श्रीकृष्णका नाम पढ़ते ही पाठकके मनमें यह परिकल्पना मूर्त्त होनी ही चाहिये कि वे रज-वीर्याश्रित शरीर कदापि-कदापि नहीं हैं। वे स्वयं परब्रह्म, विराटोंके विराट, सबके स्वामी, सबके काम्य, साक्षात् भगवान् हैं। उनके रोम-रोममें अनन्त ज्ञान, अनन्त वैराग्य, अनन्त धर्म, अनन्त बल, अनन्त श्री, एवं अनन्त ऐश्वर्य नित्य समाहित है। वे किसी भी हेतुसे कभी भी च्युत नहीं हो सकते। वे नित्य अच्युत हैं और मञ्जुश्यामा, राधा, ललितादि सभी गोपियाँ उनकी ही विलक्षण स्वरूपभूत आह्लाद शक्तियाँ हैं। अपनी स्वरूपभूत शक्तियोंसे ही उनका यह निराविल विशुद्ध रस-विलास है। सदैव ऐसी दृढ़ पकड़ रखकर ही रसिक पाठकोंको इन लीलाओंका अवगाहन करना चाहिये। किमधिकम्। वैष्णवजन स्वयं विज्ञ हैं।

।। राधा-मनोरथकी दूसरी लीला।।

{नित्य निकुञ्जमें प्रिया-प्रियतम विराजित हैं। निकुञ्जकी शोभाका क्या कहना है ? वाणीमें आ ही नहीं सकती। अब स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन अनन्तैश्वर्यनिकेतन सर्वलोकमहेश्वर नित्यानिर्वचनीयाचिन्त्य विरुद्धधर्माश्रयगुणविभूषित अखिलरसामृतमूर्त्तिकी सन्धिनी शक्ति ही निकुञ्जके रूपमें नित्य विराजमान है, तो उसकी शोभा अनुभवगम्य ही है, अस्तु।}

सहसा प्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णका कमल-मुख उदास-सा प्रतीत हुआ। नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा तत्क्षण बोल उठीं – "प्रियतम ! आज तुम उदास-से क्यों दीख रहे हो ? "

प्रियतम श्रीकृष्णने उत्तर दिया – "नहीं-नहीं, मेरे प्राणोंकी रानी ! तुम्हें भ्रम हो गया।"

नित्यनिकुञ्जेश्वरी बोलीं – "प्रियतम ! भ्रम नहीं, तुम मुझे बता दो, क्यों उदास हो ?"

प्रियतम श्रीकृष्णकी आँखोंसे आँसूकी दो बूँदें गिर पड़ीं। फिर तो नित्यनिकुञ्जेश्वरी राधाके नयनोंसे भी अश्रुका प्रवाह चल पड़ा। जैसे-तैसे नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाने अपनेको संयत किया, फिर बोलीं – "प्रियतम ! बता दो !"

नित्यनिकुञ्जेश्वरने उदासी-भरी वाणीमें केवल इतना कहा– "प्रियतमे ! सुनकर तुम्हें अत्यन्त दुःख होगा।"

नित्यनिकुञ्जेश्वरी बोलीं – "कदापि नहीं, तुम अविलम्ब

मुझे कह दो।"

प्रियतम रो पड़े और बोले – "मुझे प्राणेश्वरी ! अब अपने प्रति घृणा हो गयी। जीवनमें मैंने तुम्हें एक क्षणके लिये भी सच्चे प्यारका दान नहीं किया। यदि किया होता तो मेरे चित्तमें जो वृत्ति उत्पन्न हुई, वह होती ही नहीं। तुमने मेरे लिये अपना सर्वस्व त्याग किया। अनादि कालसे मैं यही अनुभव करता था कि नेत्रोंका सौन्दर्य-सुख यदि मुझे कोई रमणी दे सकती है तो मेरी प्रियतमा प्राणाधिका प्राणेश्वरी प्राणवल्लभा राधा ही दे सकती हैं। किन्तु मेरे मलिन मनमें, नेत्रोंमें मुझे अपनी हीनताका प्रथम बार अनुभव हुआ। तुम्हें स्मरण होगा पहली बार तो मैंने अपने मनका समाधान कर लिया था, और मुझे निश्चय था, कि अब आगे अनन्त कालतक मुझमें यह लालसा जगेगी ही नहीं । किन्तु यह भी मेरा नितान्त भ्रम ही था...........। उसी सुखकी लालसा पुनः जग ही उठी।"

यह कहते-कहते प्रियतम श्रीकृष्ण अत्यन्त आकुल होकर प्राणेश्वरी राधाके अंकमें सिर रखकर सुबकी भरकर रोने लगे। नित्यनिकुञ्जेश्वरीकी आँखोंसे भी आँसूकी धारा निरन्तर चल रही है। अन्तर इतना ही है – सो भी इस सत्यको जान सकीं केवल नित्यनिकुञ्जेश्वरी ही – कि उनकी अश्रुधारा सुखके आवेशकी है।

नित्यनिकुञ्जेश्वरी राधा जैसे-तैसे अपनेको सँभालकर बोलीं – "प्रियतम ! अनादि कालसे मैं नित्य यही अनुभव करती हूँ कि मैंने तुमसे केवल सुख लिया ही लिया। क्षणभर

भी कभी तुम्हें अपनी ओरसे कोई सुखदान न कर सकी। पर मेरे देवता ! चाहती अवश्य हूँ कि ऐसा कर सकूँ। अवश्य ही वह होता नहीं। किंतु तुम विश्वास करो, न जाने मेरा कौनसा सुकृत उदय हुआ और सचमुच तुम्हारी बात सुनकर मेरे कण-कणमें सुखका संचार हो गया। प्रियतम ! जीवनका यह प्रथम अवसर है कि आज मैं तुम्हारी यह सेवा करनेमें परमोल्लास अनुभव कर रही हूँ। और अभी-अभी मैं इसकी व्यवस्था भी कर देती हूँ। किंतु प्रियतम ! अपनी बुद्धिसे ही तुम्हें कुछ निवेदन कर दूँ। रसकी नाट्यशालामें तुम रमण हो और मैं रमणी हूँ। रमणीका अभिनय, रमणीका पाठ मुझे ही सीखना-सिखाना है।"

इतना कहकर नित्यनिकुञ्जेश्वरी बड़ी मधुर भाषामें प्रियतमसे कुछ कहने लगीं। कहकर मुसकुरा उठीं और पुनः बोलीं – "प्रियतम ! किंतु मुझे लगता है कि तुम भूल जाओगे और मेरी शिक्षाका जहाँ अनादर हुआ नहीं, कि रस अधूरा ही रहेगा।"

प्रियतम श्रीकृष्णने हँसकर कहा – "नहीं, नहीं, अक्षरशः पालन होगा।"

श्रीराधा हँस पड़ीं। कुछ देर सोचती रहीं और फिर बोलीं – "......... बस, नीलमकी माला, नीलमकी माला यह रटते रहना भला। अन्यथा हमारा मनोरथ और तुम्हारी लालसा दोनों मिलकर भी आधा ही रस दे सकेंगे।"

प्रियतम श्रीकृष्ण जिस प्रकार विराजित थे, विराजित रहे। और श्रीराधा शय्यापर लेट गयीं। कुछ क्षणके पश्चात्

नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकी अनुजा
श्रीमञ्जुश्यामाजी

उन्होंने पुकारा – "बहिन ! इधर आओ।" निकुञ्जका द्वार खुला और मञ्जुश्यामा भीतर आयी। श्रीराधा बोलीं – "बहिन! तू मुझे किञ्चित् शीतल जल पिला। आज मुझे अत्यधिक गरमीका अनुभव हो रहा है।" उसने कनकझारीसे अत्यन्त शीतल जल लेकर नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाको पिलाया और उसके समीप ही कुसुम शय्यापर बैठ गयी। उसके मुखपर प्रस्वेदकण थे। नित्यनिकुञ्जेश्वरीने अपने हाथोंसे उसे पोंछा। कुछ देरके पश्चात् बोलीं – "अत्यधिक गरमी है, बहिन! आज तू मुझे कम-से-कम वस्त्र धारण कराना और तू भी कम-से-कम पहनना।"

नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकी आँखें स्नेहसे छलक रही हैं और वे धीरे-धीरे........। उसकी आँखें नित्यनिकुञ्जेश्वरीके साथ जुड़ी रहीं। कुछ क्षणोंके पश्चात् नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा पुनः पूर्ववत् लेट गयीं। और लेटे-लेटे बोलीं – "बहिन ! तू यहीं बैठकर इस कुसुमसे निर्मित विशाल पंखेकी डोरीको खींचती रह। फिर कदाचित् मुझे थोड़ी नींद आ जाय।" उसने वैसा ही किया।

थोड़ी देरमें नित्यनिकुञ्जेश्वरीकी आँखें झँपने लगीं और वे बायीं करवट लेकर निद्रित-सी हो गयीं। इस समय नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण अतिशय प्यारभरी आँखोंसे एक क्षण नित्यनिकुञ्जेश्वरीके मुखारविन्दकी ओर देखते हैं और दूसरे क्षण मंजुश्यामाके मुखकी ओर। जब प्रियतम श्रीकृष्णको यह भान हो गया कि नित्यनिकुञ्जेश्वरी मुझे रसमय चर्चा करानेके लिये ही बायीं ओर करवट लेकर

तन्द्रित हो गयी हैं तो एक बार वे भावके आवेशमें कुछ क्षणोंके लिए विह्वल हो उठे और टप-टप उनकी अश्रुबूँदें प्रियतमा श्रीराधाके उन्मुक्त कुन्तलोंपर पड़ने लगीं। इतनेमें मंजुश्यामाने पूछा–"बहिन सो गयी दिखती है।"

प्रियतम श्रीकृष्णने अपने दुकूलसे अपना अश्रु-मार्जनकर यह कहा – "हाँ री ! ऐसा ही लगता है।" वे इतना कहकर एकटक उसकी ओर देखने लगे। इसके पश्चात्.............।

वह तत्क्षण मूर्च्छित हो गयी। उसी समय नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकी आँखें खुलीं, और वे मन्द-मन्द मुसकुरा उठीं। प्रिय‹.म श्रीकृष्णके मुखारविन्दपर भी हँसी आ गयी। नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाने हँसकर कहा – "प्राणेश्वर ! आखिर मेरी शिक्षा भूल गये न ?" प्रियतम श्रीकृष्ण गद्गद् कण्ठसे बोले – "प्राणाधिके ! सचमुच भूल ही गया..........। प्राणेश्वरी राधाने प्रियतम श्रीकृष्णके कण्ठमें अपनी दोनों भुजाएँ डालकर यह कहा – "कोई चिन्ताकी बात नहीं, कल........। इसके अनन्तर प्रिया श्रीराधा मञ्जुश्यामाके उन्मुक्त कुन्तलोंपर हाथ फेरकर बोलीं – "बहिन ! उठ तो सही"। वह तत्क्षण उठ पड़ी। उसकी आँखोंमें केवल विस्मय था। प्रिया-प्रियतम दोनों अपनी आँखोंमें अपरिसीम स्नेह लिये उसे देख रहे हैं।

———

।।राधा मनोरथकी तीसरी लीला।।

सूर्यके अस्ताचल जानेमें छः घड़ीका विलम्ब है। नित्यनिकुञ्जेश्वरी वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा मञ्जुश्यामाको साथ लिये वनपथसे आवासकी ओर लौट रही हैं। वे अन्यमनस्क हैं और मञ्जुश्यामा भी। श्रीराधा गिरिवर-सेतुको पार करके उत्तर-पश्चिमके कोनेकी ओर मुड़ीं। उस पुष्पित वकुलके नीचे आकर सहसा चौंक उठीं। बोलीं – "अरी ! यह क्या ! ओढ़नी तो मैं भूल आयी ! इस प्रकार निरावरण लौट रही हूँ।" अवश्य ही कञ्चुकीका आवरण श्रीराधाके वक्षस्थलपर था ही।

मञ्जुश्यामा मानो समाधिसे जग उठी। अचरजमें भरकर बोली – "हैं ! मुझे भी इसका कोई भान नहीं रहा, बहिन ! विचित्र ही बात है। आजतक ऐसी बेसुध तो मैं कभी हुई ही नहीं। पर कोई चिन्ता की बात नहीं, बहिन ! तू मेरी ओढ़नी ओढकर चली चल।" श्रीराधाने किञ्चित् उदासीकी मुद्रामें कहा – "मैं यों ही चली चलूँगी। कञ्चुकी है ही।" श्रीराधाने पुनः यह कहा –"नहीं, बहिन ! इसमें तेरे लिये बहुत चिन्ताकी बात है.......।"

मञ्जुश्यामाने कुछ सोचकर यह कहा– "अच्छा, तू बता, किस स्थानपर वह पड़ी होगी। मैं अभी दौड़कर ले आती हूँ। तू यहीं बैठी रह।"

श्रीराधाने कहा – "अनुमानतः इन्दुलेखा-कुञ्जमें।"

मञ्जुश्यामाने फिर तो एक पलका भी विलम्ब नहीं

किया और उसी दिशामें दौड़ पड़ी। दस पद जानेके बाद किञ्चित् रुकी। पीछे लौटकर उसने अपनी ओढ़नी बहिन श्रीराधाकी गोदीमें फेंक दी। फेंककर बड़े वेगसे पुनः दौड़ी। दो-तीन पलोंमें दृष्टिसे ओझल हो गयी। नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा उसी दिशामें अपना मुखारविन्द किये विराजित रहीं। किंतु सहसा उनकी अञ्जलि बँध गयी और नेत्रोंसे टप-टप आँसूकी बूँदें झरने लगीं। मानो वे कुछ प्रार्थना कर रही हों।

मञ्जुश्यामा दौड़ती-दौड़ती इन्दुलेखा-कुञ्जमें पहुँच गयी। अपनी बुद्धिसे उसने अनुमान लगाया कि ओढ़नी कहाँ हो सकती है, वह वहीं पहुँची। उसका अनुमान सत्य था। ओढ़नी वहीं पुष्पशय्यापर पड़ी थी। उसने झट-से उसे उठाया। इतनेमें देखती है कि निकुञ्जद्वारपर नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण खड़े हैं। उनकी आँखें सजल हैं और वे एकटक उसकी ओर देख रहे हैं।

प्रियतम श्रीकृष्ण बोले – "अरी ! कैसे आयी।"

मञ्जुश्यामाने सरलता भरी वाणीमें उत्तर दिया – "बहिनकी ओढ़नी छूट गयी थी, लेने आयी हूँ।"

प्रियतम श्रीकृष्णने अतिशय प्रसन्नताकी मुद्रामें यह कहा – "बहुत अच्छा किया। किंतु एक सावधानीकी बात मुझे तुम्हें और कह देनी है।" मञ्जुश्यामा खड़ी-खड़ी ही बोली – "कहो "।

प्रियतम श्रीकृष्ण उसी पुष्पशय्यापर विराज गये और बोले – "तू बैठ जा। शान्तिसे सुन ले"। मञ्जुश्यामा उनके समीप ही बैठ गयी। और वे बतलाने लगे ....।

चर्चा होते-होते ही मञ्जुश्यामा मूर्छित होकर गिर पड़ी। बड़ी कठिनाईसे प्रियतम श्रीकृष्ण उसे चेत करा सके। वह उठी। अत्यन्त सरलतासे उसने किञ्चित् प्यारभरा उपालम्भ दिया और फिर ओढ़नी लेकर श्रीराधाके पास पहुँच गयी। नित्यनिकुञ्जेश्वरीने ब्योरेवार सारी बातें पूछीं। मञ्जुश्यामाने ज्यों-की-त्यों सब-कुछ कह दिया।

नित्यनिकुञ्जेश्वरीके मुखपर उदासी आ गयी। मञ्जुश्यामाने पूछा – "क्यों बहिन ! क्या बात हुई ?"

नित्यनिकुञ्जेश्वरीने कहा – "रात्रिमें मध्यरात्रि बीतनेके अनन्तर तू मेरे पास आना। मैं तुझे बता दूँगी।" दोनों बहिनें अपने आवासपर पहुँच गयीं............।

उस दिन बड़ी कठिनाईसे श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामा यमुना-तटके निकुञ्जपर पहुँच पायीं। प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलन हुआ। मञ्जुश्यामा ठीक मध्यरात्रिके अनन्तर अपनी बहिनके पास पहुँची। अतिशय सरलतासे उसने पूछा – "बहिन ! बता।"

उस समय नित्यनिकुञ्जेश्वरी और नित्यनिकुञ्जेश्वर हँस-हँसकर कुछ बातें अत्यन्त धीरे-धीरे कर रहे थे जिससे कोई सुन न सके। मञ्जुश्यामा जिस समय पहुँची थी उस समय नित्यनिकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्ण कुछ उदास-से हो गये, किंतु नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा बोली थीं – "चिन्ता नहीं, कल।" मञ्जुश्यामा जिस समय पहुँची उसके कानोंमें यह 'कल' शब्द पड़ गया था। पर उसने कुछ भी न कहकर बहिन श्रीराधाको केवल वह बात बतलानेको प्रेरणा दी थी।

नित्यनिकुञ्जेश्वरीने केवल इतना ही कहा – "बहिन ! तू अभी जाकर अशोकमञ्जरीके पास सो जा। मैं कल बतलानेकी चेष्टा करूँगी।"

मञ्जुश्यामा पार्श्वके निकुञ्जमें आकर अशोकके पास बैठ गयी। वहाँसे वह जब चाहे बहिन श्रीराधाको देख सकती थी। अशोकमञ्जरीने कहा – "आ बहिन ! हमलोग बैठें।" और अत्यधिक रसमयी चर्चा आरम्भ हुई ....।

।। राधा–मनोरथकी चौथी लीला।।

मध्याह्नका समय है। राधासरोवर प्रियतमा-प्रियतमके अवगाहनकी लीलासे उद्भासित है। फूले हुए कमलोंकी शोभा उन अनन्त ब्रजसुन्दरियोंकी आँखोंकी सुख-सामग्री बन रही है। सहसा कमलके पुष्पोंको तोड़-तोड़कर कन्दुक-निर्माणकी लीला आरम्भ हुई। दो-चार पलोंमें ही एक-एक कन्दुक सबके हाथोंमें है। और अब उसे फेंक-फेंककर खेलनेकी होड़ लगी है। दो दलका निर्माण हुआ। एक ओर अकेले प्रियतम श्रीकृष्ण और दूसरी ओर नित्यनिकुञ्जेश्वरी अपनी बहिन मञ्जुश्यामाको लेकर खड़ी हैं। अबतक सभीके अंग वक्षस्थलतक जलमें डूबे थे। पर इस लीलाके लिये सभी ग्रीवापर्यन्त जलमें उतर आये।

नित्यनिकुञ्जेश्वरीने अपनी बहिनसे कहा – "देख, बहिन ! प्रियतम श्रीकृष्ण बड़े चतुर हैं। वे मुझे हरानेपर

तुले हुए हैं। यदि तू सर्वथा मेरे समीप रहेगी तो मैं हार जाऊँगी। इसलिये थोड़ी-सी मुझसे दूर खड़ी हो जा।"

मंजुश्यामाने ज्यों-का-त्यों अपनी बहनके आदेशका पालन किया। खेलके हार-जीतकी शर्त बड़ी निराली थी ......। हार-जीतकी निर्णयकर्त्री और खेलकी सञ्चालिका ललिता हैं।

ललिता बोलीं – "देखो श्रीकृष्ण ! और देख, बहिन राधा ! तुम दोनोंको जब मैं आज्ञा दूँगी बस तत्क्षण कन्दुक फेंक देना है। और इस प्रकार फेंकना है कि कन्दुक तुम दोनोंके परस्पर सिरपर ही आए। अधिक-से- अधिक दो हाथ चारों ओरकी छूट मिल सकती है। यदि कन्दुक दो हाथकी सीमासे बाहर आयेगा तो इसमें तुम दोनोंको कुछ दण्ड सहना पड़ेगा। दण्डके सम्बन्धमें मैं निर्णय पीछे दूँगी। और फेंकते समय यदि हमारी आज्ञाके अनन्तर तुम दोनोंमें कोई भी जानबूझकर विलम्ब करोगी या करोगे, उसके बदले भी कुछ नगण्य-सा दण्ड सहना पड़ेगा। इसका निर्णय भी पीछे दूँगी। अब प्रियतम श्रीकृष्णका कन्दुक यदि तुम अपने हाथमें पकड़ पाओगी तो तुम्हारी जीत होगी। प्रियतम श्रीकृष्ण पकड़ पायेंगे तो उनकी जीत होगी। और क्रीड़ामें तुम दोनों समान बलशालिनी-बलशाली मानी जाओगी, माने जाओगे। इसके अनन्तर मैं कोई अन्य नियम बनाकर तुम दोनोंके बलकी परीक्षाके लिये फिरसे कन्दुक-क्रीड़ा प्रारंभ करूँगी। किन्तु यदि तुम दोनोंमेंसे कहीं कोई हार गया या हार गयी या दोनों हार गये फिर यह दण्ड सहना पड़ेगा। श्रीकृष्णको

तो जलमें डुबकी लगाकर श्वास रोककर और मेरे द्वारा कमलके पुष्पोंकी डोरीसे पीठकी ओर अपने दोनों बँधे हुए हाथोंको ज्यों-का-त्यों रखकर हमारी बहन राधाके दस पद-नखचन्द्रोंका चुम्बन करना पड़ेगा। और यदि बहिन राधा भी हारी हुई है तो जलबिन्दु लेकर अपने भालसे छुलाकर वह तुम्हारा तिलक कर देगी। यह तो हुआ दोनोंके ही हार जानेकी स्थितिमें। और दोनोंमें से किसी एकके जीत जानेकी स्थितिमें..........।"

नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधा बोलीं – "देख ललिता ! दो-चार बारकी तो छूट होनी चाहिए अभ्यासके लिए। इसके पश्चात् हार-जीतका निर्णय तू करना।"

ललिताने कहा – "ठीक है, तीन बार अभ्यासके लिए छूट दे रही हूँ "। और खेल प्रारंभ हो गया।

पहली बारमें श्रीराधा कन्दुकको पकड़ नहीं पायीं पर मञ्जुश्यामाने पकड़ लिया। उधर प्रियतम श्रीकृष्ण भी नहीं पकड़ सके। दूसरी बारमें भी मञ्जुश्यामाने ही पकड़ी। उधर श्रीकृष्णको भी सफलता मिल गयी। तीसरी बारमें भी मञ्जुश्यामाने ही पकड़ा। उधर श्रीकृष्ण भी पकड़ सके।

ललिता बोलीं – "अब आगे हार-जीतमें निर्णयके साथ खेल है।"

अब पहली बार श्रीकृष्ण नहीं पकड़ सके। इधर श्रीराधाने कन्दुकको पकड़ लिया। दूसरी बार भी श्रीकृष्ण नहीं पकड़ सके। उधर मञ्जुश्यामाने पकड़ लिया। इस प्रकार नौ बार श्रीकृष्ण हार गये और नवौंबार मञ्जुश्यामाको

सफलता मिला। श्रीराधा भी नहीं पकड़ पायीं। सरोवरके जल-तलपर उल्लासकी लहर गूँज उठी। सखियोंने और वनके समस्त पक्षियोंने मञ्जुश्यामाकी जय-जयकी घोषणाकी। केवल श्रीकृष्णका पालित शुक मौन रहा।

प्रियतम श्रीकृष्णने हँसकर शुकको सम्बोधित करके कहा – "नहीं-नहीं प्रिय कीर ! तू भी जय बोल दे। वास्तवमें तो अन्यायकी जय हो रही है। प्राणेश्वरी राधा तो दोके साथ मुझे हरा रही हैं। क्योंकि मैं एकाकी हूँ और स्वयं निर्णयकर्त्रीजी महारानी ललिता प्रत्येक बार असत् पक्षका समर्थन कर रही हैं। क्योंकि कन्दुक प्रत्येक बार दो हाथकी सीमासे बाहर आया था। अतएव तू भी जय कह दे। मेरा आदेश मानकर ही सही "।

कीर बोल उठा – "मञ्जुश्यामाकी जय "।

प्रियतम श्रीकृष्ण पुनः बोले – "कीर ! पुनः बोलो, ललितादेवीके अन्यायकी जय।" तोता वैसे ही बोल उठा।

नित्यनिकुञ्जेवरी हँसकर उड़ती हुई सारिकासे बोलीं– "अरी ! सारिके ! तू बोल दे –'सदा सत्य-प्रतिपालक, बालब्रह्मचारी, स्वप्नमें भी किसी रमणीका चिन्तन न करने वाले, अनन्त श्रीविभूषित ब्रजेन्द्रनन्दन महाराजकी जय'।" सारिका वैसे ही बोल उठी।

श्रीराधाने हँसकर पूछा – "क्यों, अब तो प्रसन्न हो ?"

प्रियतम श्रीकृष्ण भी उच्चस्वरसे हँसने लगे और बोले – "क्यों ललितादेवी ! हारनेका दण्ड भोगना है क्या?"

ललिता मुसकुराती हुई हँसकर बोलीं – "ठीक है,

तुम्हारे अनन्य पक्षपाती कीरको बुला लो। वह मेरे बाँये हाथपर बैठ जायगा। वह भी देख ले कि मेरा निर्णय सत्य था, है, कि धूर्तशिरोमणि उसके पालक महाराजका ! और मैं इस ग्यारह बारकी हार-जीत भी अवलम्बित कर देती हूँ, अग्रिम ग्यारहों बारकी हार-जीतपर। यदि उसमें राधा या मञ्जुश्यामा जीत गईं तो बाईस बारका दण्ड तुमको अन्यथा बाईस बारका दण्ड इनको भोगना पड़ेगा।"

श्रीकृष्ण हँसे, बोले – "ठीक है "।

कीर उनके संकेतसे आकर ललिताके वामहस्तपर विराज गया। और क्रीड़ा प्रारम्भ हुई। इस बार बारहों बारमें केवल मञ्जुश्यामा जीती। क्योंकि नित्यनिकुञ्जेश्वरी भी ग्यारहों बार अतिशय परिश्रम करके भी कन्दुक न पकड़ सकीं। वही हाल उधर प्रियतम श्रीकृष्णका भी हुआ।

ललिताने कहा – "कीर ! तुम्हीं निर्णय बतला दो कि कन्दुक दो हाथकी सीमामें गया था कि नहीं।"

वह धीरेसे बोला – "ललिताजीने कोई अन्याय नहीं किया है।"

प्रियतम श्रीकृष्ण हँसे और बोले – "अच्छा, जब प्राणेश्वरीकी छोटी बहिन इतनी बलशालिनी है तो एक सहायिका मेरी ओर भी कर देनी चाहिये।"

श्रीराधा हँसी, बोलीं – "ठीक है, तुम जिसे चाहो ले लो, अपनी ओर।"

श्रीकृष्णने कहा –"ठीक है, रूपमञ्जरीको मेरी ओर कर दो। "

वैसा ही हुआ और क्रीड़ा प्रारम्भ हुई। आश्चर्यकी बात इस बार तीन बार नित्यनिकुञ्जेश्वरी कन्दुक पकड़नेमें सफल हुईं और आठ बार मञ्जुश्यामा। और उधर रूपमञ्जरी और श्रीकृष्ण दोनों ही अपनी पूरी शक्ति लगाकर कन्दुक एक बार भी नहीं पकड़ पाये।

ललिता बोलीं – "कीर ! मेरे निरीक्षणके न्याय-अन्यायका तू निर्णय कर दे।"

कीर बोला – "मुझे भ्रम हुआ कि एक बार सम्भवतः ललिता ठीकसे नहीं देख सकीं और कन्दुक चाहे दो-एक अंगुल ही हो, मेरे नाथ श्रीकृष्णके श्रीअंगोंकी दूरी कन्दुकसे दो हाथसे अधिक रही।" ललिता बोलीं -- "अच्छा ! इस एक भ्रमके बदले मैं तीन बार अवसर देती हूँ पुनः श्रीकृष्णको। यदि वे पकड़ सकेंगे तो उनकी जीतको मैं छः बार कर दूँगी। एक बार भी पकड़ पायें तो भी।"

वैसा ही हुआ। रूपमञ्जरीकी पूरी सहायता लेकर भी श्रीकृष्ण कन्दुक एक बार भी नहीं पकड़ सके। और इधर तीनों बार नित्यनिकुञ्जेश्वरीने कन्दुकको पकड़ लिया। सरोवरका जल गूँज उठा– "नित्यनिकुञ्जेश्वरी, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा महारानीकी जय ! जय !! जय !!!" से ।

स्वयं प्रियतम श्रीकृष्ण भी बड़े उल्लसित चित्तसे ऊँचे मनोहर स्वरसे कह रहे हैं – "मेरी नित्यप्रियतमा नित्य प्राणाधिका नित्यप्राणवल्लभा नित्यप्राणेश्वरी नित्यनवनिकुञ्जेश्वरी नित्यवृन्दावनेश्वरी नित्यवृषभानुनन्दिनी श्रीराधा और उनकी सहोदरा मञ्जुश्यामाकी जय-जय-जय ! सदा जय-जय-जय!"

अब हारके मनोहर दण्ड-ग्रहणका खेल प्रारम्भ हुआ! ललिता बोलीं – "आठ पहरतक इस क्षणसे श्रीकृष्ण तुम्हारे करयुगलपर और.......... पर हमारी बहिन राधाका अधिकार है। वह अभी इसी क्षणसे उसका उपयोग कर सकती है।" नित्यनिकुञ्जेश्वरी हँसी और बोलीं – "आओ, पधारो ! मेरे देवता ! और आ री रूपमञ्जरी ! प्रियतम ! अपने पीताम्बरकी चार किनारीमें से दोको तुम पकड़ लो और दोको रूपमञ्जरी पकड़ लेगी। पीताम्बर जलको छूता रहेगा। जिससे बोझका अनुभव कम हो। और मैं अपनी बहिनको अंकमें धारणकर उस झूलेपर बैठाऊँगी। बैठाकर आगे-आगे चलूँगी। मेरे आगे और ये सभी सखियाँ चलेंगी सरोवरका अवगाहन करती हुई। मेरे पीछे तुम दोनों चलोगे इसे झूला झुलाते हुए।" ऐसा ही हुआ। कुछ पल हँसते, जल बिखेरते सरोवरमें सभी उसी प्रकार चले। प्रियतम श्रीकृष्ण हँसे और बोले – "प्राणेश्वरी! मेरी कलाई व्यथित हो रही है।" श्रीराधा हँसी, बोलीं – "अच्छा, थोड़ी देर मैं पकड़कर चलती हूँ। तुम विश्राम कर लो।" वैसा ही हुआ।

इतनेमें ही हंसोंका दल बड़े मधुर स्वरमें बोल उठा। इन्दुलेखाने बतलाया – "देख बहिन राधा ! ये हंस कह रहे हैं कि "नित्यनिकुञ्जेश्वरी महारानीकी जय हो। कुछ पलोंके लिये हमारे प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके बदले हममेंसे दो अपने चञ्चुसे पीताम्बरकी किनारी पकड़ लें, इतनी सी कृपा हो।" नित्यनिकुञ्जेश्दरी तत्क्षण बोलीं – "क्या हानि है। हम लोग हंसोंके पास चले चलें। वहाँ उन्हें यह सुख दे दूँगी।"

कहकर कुछ क्षण चलती रहीं। फिर बोली – "अरी बिशाखे! तू मेरे बदले दोनों छोरोंको पकड़ ले ; और ललिता बहिन ! तू आ। चार हंसोंका हम लोग चयन कर लें। वे चारों चञ्चुसे पकड़कर चलेंगे।" कहकर वैसी ही व्यवस्था करके ललिताको लेकर चल पड़ीं। सभी उल्लासमें भरी हंसोंको देख रही हैं। इधर प्रियतम श्रीकृष्णकी लीला आरम्भ हुई.......। किंतु तत्क्षण मञ्जुश्यामा मूर्च्छित होकर पीताम्बरकी पालकीसे गिर पड़ी। इतनेमें ही ऊपर कीर बोल उठा–"नित्यनिकुञ्जेश्वरी वृषभानुनन्दिनीके प्रियतम मेरे नाथ ब्रजेन्द्रनन्दनकी जय हो। अतिकाल होगया है, नाथ ! उधर भी ध्यान हो, बट-वृक्षकी ओर।" तत्क्षण उस कीड़ाका विराम करती हुई नित्यनिकुञ्जेश्वरी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाने यह कहा – "हंस! कल..........। कल तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगी।"

\- - - -

।। राधा–मनोरथकी पाँचवीं लीला ।।

निकुञ्जके मध्याह्न-भोजनके अनन्तर प्रियतम श्रीकृष्ण गहरी नींदमें सो गये। नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाने नींदका बहाना कर रखा था। जब उन्हें अनुभव हुआ कि प्रियतम सो गये हैं तो तत्काल उठ पड़ीं। और पार्श्ववर्त्ती निकुञ्जमें पधारीं। वहाँ बैठी हुई हैं उनकी बहिन मञ्जुश्यामा और उसके पास ही बैठी हुई है अशोकमञ्जरी। दोनों हँस-हँसकर बात कर रही हैं। श्रीराधाके आते ही मञ्जुश्यामा उनसे लिपट

गयी और बोली – "क्यों बहिन ! कैसे आयी ?"

श्रीराधाने अत्यन्त धीमे स्वरमें यह कहा – "आयी तो हूँ किसी विशेष कार्यसे, बहिन !"

मञ्जुश्यामाने कहा – "बता।"

श्रीराधा बोलीं – "तू कर सकेगी क्या ?" वह बोली– "तू बता तो सही।"

नित्यनिकुञ्जेश्वरी उसे निकुञ्जद्वारपर ले गयीं। वहाँसे सोये हुए प्रियतम श्रीकृष्णके सम्पूर्ण अंगोंका अत्यन्त स्पष्ट दर्शन हो रहा था। प्रियतम श्रीकृष्ण चित सोये हैं। दैवयोगसे वंशी उनकी कटिके पास पीठके नीचे ऐसी दबी हुई है कि उसका तीन हिस्सा तो पीठके नीचे चला आया है और एक हिस्सा दाहिनी ओर दीख रहा है। दाहिनी ओर शय्यासे सटा हुआ ही निकुञ्जका द्वार है। उस तरफ बहुत कम स्थान है। बायीं ओर शय्यापर पर्याप्त स्थान है। श्रीराधाने मञ्जुश्यामाको सब बातें समझाकर यह कहा – 'तू धीरेसे चली जा और जैसे मैं तुम्हें समझा चुकी हूँ वैसे बैठकर धीरे-धीरे वंशीको निकालकर उसे लेकर चली आ।"

मञ्जुश्यामा बड़े उत्साहसे चली। राधा बहिनने उसे जैसे बताया था, उसी युक्तिसे वंशीको निकालनेका प्रयास करने लगी। उसका प्रयास प्रायः सफल होने जा रहा था। केवल चार-पाँच अंगुल वंशी पीठके नीचे रह गयी थी। इतनेमें श्रीकृष्ण जग पड़े। और फिर............।

लगभग एक पहर बीत गया था। मञ्जुश्यामा अपनी बहिनकी गोदीमें सिर रखकर फूट-फूटकर रो रही थी।

श्रीराधा पूछ रही थीं कि – "तू बता क्यों रो रही है।" पर मञ्जुश्यामाने बात नहीं बताई। जैसे-तैसे उसे पुचकारकर नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रियतम श्रीकृष्णके समीप आयीं और संकेतमें केवल इतना-सा कहा – "कल"।

।। राधा–मनोरथकी छठी लीला ।।

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा अपने आवासके कक्षमें विराजित हैं। उनके समीप उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा बैठी है। श्रीराधाका मुख उदास है। मञ्जुश्यामा बोली – "क्यों बहिन ! तू उदास क्यों है।"

श्रीराधाने उत्तर दिया – "री ! क्या कहूँ, सम्भवतः आज वनमें न जा पाऊँगी और प्रियतम श्रीकृष्णके दर्शन न हो सकेंगे।" इतना कहते-कहते उनकी आँखें भर आयीं। कुछ पलोंके अनन्तर बोलीं – "बहिन ! मन बहलानेके लिये मैं तुझे जैसा कहूँ तू कर लेगी ?" वह बोली – "अवश्य, तू बता।" श्रीराधाने कहा – "देख ! तेरा मुख सर्वथा मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके समान है। मैं तुझे पुरुष वेषमें सजा देती हूँ। और उस दिन भैया श्रीदामने जो वंशी लाकर तुम्हें दी थी वह तू ले आ। फिर मैं तुम्हें नृत्य सिखाऊँगी। वंशी बजाना तो मुझे आता नहीं जो सिखा सकूँ। पर तू रह-रहकर उसमें फूँक भर देना। इस प्रकार आजका दिन कट सकता है।"

मञ्जुश्यामा बोली – "तू अभी मुझे श्रीकृष्णके समान सुसज्जित कर दे। मैं नाच भी लूँगी और देख ! कदाचित् मैं बंशी भी बजा दूँ।"

आश्चर्यमें भरकर श्रीराधाने पूछा – "तू कैसे बंशी बजा देगी ?"

मञ्जुश्यामाने बतलाया – " देख ! गत धनतेरसकी बात है। मुझे एक स्वप्न हुआ था। मुझे ऐसा भान हुआ मानो चार भुजासे विभूषित भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी आकाशमें खड़ी हैं। और मुझे कह रही हैं कि – "अरी मञ्जुश्यामे ! जिस किसी दिन आकुल होकर तुम्हारी बहन श्रीराधा तुम्हें पुरुष वेषमें सज्जित करके अपने करकमलोंसे तुम्हारे होठोंपर बंशी रख दें, उस समय यदि तू चाहेगी तो यह मंत्र पढ़कर ठीक ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके समान बंशी बजा सकेगी। "यह कहकर वे तो उधर अंतर्धान हुईं और मेरा स्वप्न टूट गया। किन्तु बहन ! वह मंत्र मुझे अब भी ज्यों-का-त्यों स्मरण है। इसीसे कह रही हूँ कि कदाचित् बजा सकूँ।"

श्रीराधाको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। बड़े उल्लाससे उन्होंने मञ्जुश्यामाको ठीक प्रियतम श्रीकृष्णके वेशमें सजाया ......। कुछ ही पलोंमें श्रीराधाने अनुभव किया कि सचमुच मानो प्रियतम श्रीकृष्ण ही शृंगार धारण करके उनके सामने खड़े हों। बड़ी प्रसन्नता हुई उनको और उन्होंने श्रीकृष्ण बनी हुई मञ्जुश्यामाके पैरोंमें नूपुर बाँधा। पहलेका नूपुर श्रीकृष्णके नूपुरके अनुरूप नहीं था। नित्यनिकुञ्जेश्वरीने कक्षके द्वारको बंद कर लिया जिससे कोई भीतर आ न सके।

वे स्वयं सुसज्जित थीं ही और नृत्यका पाठ देती हुई कुछ क्षणोंके लिए नाचीं। तत्क्षण मञ्जुश्यामाने ठीक-ठीक उसका अनुकरण करके दिखला दिया। राधाका रोम-रोम पुलकित हो गया। उसे कंठसे लगाकर परमानंदमें निमग्न होकर बोलीं – "बहिन! मुझे ऐसा लगता है मानों तुममें मेरे प्रियतम श्रीकृष्णका आवेश हो गया। अतएव अब मैं देखना चाहती हूँ कि तू अपने मनसे बिना शिक्षाके नाच सकती है या नहीं ?" मञ्जुश्यामा बोली -- "बहिन! आवेशकी बात तो मैं समझती नहीं, पर मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि तू चाहे तो मैं नाचकर दिखला दूँ। संभवतः कोई दैवी शक्ति काम कर रही हो। मैं हूँ तो तुम्हारी बहिन मञ्जुश्यामा ही। किन्तु ऐसा हो सकता है भगवतीने इसी उद्देश्यसे वह स्वप्न मुझे दिखलाया हो।"

श्रीराधा बोलीं – "अच्छा, बहिन! तू नाच तो सही।"

मञ्जुश्यामाने श्रीकृष्णके वेषमें नृत्य आरंभ किया। कुछ ही पलोंमें उसे देखकर श्रीराधा समाधिस्थ होगयीं। श्रीकृष्ण बनी हुई मञ्जुश्यामाने श्रीराधाके कंठमें अपनी भुजा डालकर उनको प्रकृतिस्थ किया।

श्रीराधा बोलीं – "देख बहिन! मुझको ठीक-ठीक अनुभूति हुई कि जैसे प्रियतम मेरे समक्ष नृत्य कर रहे हों। और वह नृत्य इतना सुन्दर था कि प्रियतम श्रीकृष्णको अबतक इस प्रकार नृत्य करते हुए संभवतः मैं कभी देख ही नहीं पाई हूँ। अब तू वह मंत्र पढ़कर बंशी बजानेका प्रयास तो कर। कदाचित् उसमें भी तुझे पूरी-पूरी सफलता मिल जाए।"

मञ्जुश्यामाने ....ग्यारह बार उस मंत्रको जपकर बंशीमें फूँक मारी। तत्क्षण उसकी अँगुलियाँ चलने लग गईं, ठीक उसी प्रकार, जैसे श्रीकृष्णकी चलती हों। परम उन्मादी सुमधुर स्वर बंशीसे निस्सृत होने लगा।

श्रीराधाके मुखसे निकला "अहा !" साथ ही वे तत्क्षण मूर्च्छित हो गईं। आधी घड़ी मूर्च्छाके अनन्तर मञ्जुश्यामाके अंकमें वे जगीं और उनकी आँखोंसे अश्रुधारा बह चली। गद्गद् कण्ठसे वे बोलीं "बहिन ! मञ्जुश्यामे ! आज मैं सचमुच अनन्त कालतकके लिये निहाल हो गई। मेरे जीवनका दुःख अब सदाके लिए मिट गया। देख ! मैं एक क्षणके लिए भी जब प्रियतम श्रीकृष्णसे दूर हो जानेका अनुभव करती हूँ तो मेरे प्राण रोने लगते हैं। और अत्यधिक वेदना, असह्य पीड़ा होनेपर भी ये प्राण न जाने क्यों नहीं निकलते। ऐसे अवसरपर आज इस क्षणतक मेरी जो दुर्दशा हुई है, उसे मेरे अतिरिक्त कोई नहीं जानती। आज मुझे एक सुन्दर, परम सुन्दर अमोघ अप्रतिम उपाय मिल गया, जिससे मेरे जीवनके दिन कट जायेंगे। मेरा यह भाग्य नहीं है कि मैं सदा प्रियतम श्रीकृष्णके समीप रह सकूँ। परन्तु तेरी-जैसी बहिन पाकर आज मैं सचमुच निहाल हो गई। पर एक बात अवश्य है..... ।"

इतना कहते-कहते श्रीराधाका मुख पुनः उदास हो गया। मञ्जुश्यामा बोली – "तू भविष्यकी चिन्ता क्यों करती है ! अभी तो बारह वर्षतक डरकी बात नहीं है। जब बारह वर्ष पूरे होंगे तब, न ! मुझे तो लगता है कि ये बारह वर्ष कभी

अनन्त कालतक पूरे होंगे ही नहीं। नित्य बारह वर्षकी अनुभूति. .... होती ही रहेगी।''

सुनते ही राधाकी आँखोंमें पुनः उल्लासका संचार हुआ और बोलीं – ''यह बात कैसे होगी बहिन ?''

मञ्जुश्यामाने उल्लसित चित्तसे कहा – ''देख ! उस दिन जब भगवती पौर्णमासी हम दोनोंको आशीर्वाद देकर विदा हो रही थीं तब मैं द्वारतक उन्हें पहुँचाने गई थी। मैंने धीरे-से उन्हें यह बात कही थी – ''माता ! बारह वर्षोंके अनन्तर ?'' उसके उत्तरमें वे हँसी थीं और मेरे होठोंका चुम्बन करते हुए बोली थीं – ''अरी ! बारह वर्ष पूरे होंगे तब, न ?''

इसीका अर्थ बहिन ! मैंने तो संशयरहित चित्तसे यह समझ रखा है कि यह बारह वर्षकी पहेली.... वे लोग सुलझा नहीं सकेंगे।'' श्रीराधा अपनी बहिन मञ्जुश्यामाको कण्ठमें भरकर सुखमें डूब गयीं।

उसी दिन सन्ध्याके समय ललिताने न जाने क्या सोचकर वनसे लौटते हुए प्रियतम श्रीकृष्णको यह बात बतला दी कि आज रात राधा बहिनने, मञ्जुश्यामाने किवाड़ बंद करके कैसी नाचनेकी, बंशी बजानेकी लीला की।

.........संकेतवटके समीप पहुँचनेके अनन्तर श्रीराधाका ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णसे मिलन हुआ और परिकरोंके सहित वे दोनों रासमण्डलमें पधारे। रासवेदीकी शोभा जिसकी आँखोंमें अभिव्यक्त हो जाय बस, वही देख सकती है, देख सकता है। वाणीके द्वारा उसका वर्णन उसकी शोभा घटानेमें

ही हेतु बनेगा। अस्तु, अतिशय सुन्दर मंचपर प्रिया-प्रियतम विराजित हैं। प्रियतमा श्रीराधाकी बाँयी ओर उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा अतिशय मनोहारिणी वेशभूषामें सुसज्जित बैठी है। प्रियतम श्रीकृष्णने मन्द-मन्द मुसकुराकर यह कहा – "प्राणेश्वरी ! मैंने सुना है कि तुम्हारी बहिन ऐसा सुन्दर नृत्य कर सकती है कि वैसा मैं भी नहीं कर सकता।" सुनते ही श्रीराधाके अचरजकी सीमा न रही और वे बोलीं– "प्रियतम! तुम्हें यह बात किसने कही ?"

प्रियतम श्रीकृष्ण हँसकर बोले – "किसीने कही होगी।" श्रीराधाको अनुमान होगया कि यह काम ललिताका है। प्रियतम श्रीकृष्णने फिर कहा – "प्राणेश्वरी ! हमारी बड़ी इच्छा है कि मैं एक बार देखूँ तो सही।"

श्रीराधा बोलीं – "कभी अकेलेमें दिखला दूँगी।"

ललिताने हँसकर कहा – "अरी ! हम लोग भी देख लें तो क्या हानि है ?" श्रीराधा मुसकुराई, और अपनी बहिन मञ्जुश्यामाकी ओर देखने लगीं। मञ्जुश्यामाकी आँखोंमें पर्याप्त संकोच भरा है।

इतनेमें श्रीकृष्ण बोल उठे – "अरी ! तू नाच करके सदाके लिए मुझे खरीद ले। मैं एक बार देख तो लूँ।" प्रियतम श्रीकृष्णकी आँखोंमें प्रेमके अश्रु परिपूरित हो गये।

श्रीराधाने बड़े स्नेहसे अपनी बहिनको पुचकारकर कहा – "बहिन ! थोड़ी देर नाच दे। प्रियतम श्रीकृष्णको सुख मिल जायेगा। इससे अधिक और क्या चाहिए।" कहते-कहते श्रीराधाकी वाणी प्रेमसे रुद्ध हो गई।

मञ्जुश्यामा बड़े असमंजसमें पड़ी। उसे अत्यधिक लज्जाका अनुभव होरहा था। पर उस ओर अपनी बहिनकी रुचिका अनादर करना भी उसने आजतक सीखा ही नहीं। क्या करे, बेचारी समझ ही नहीं पा रही थी।

श्रीराधाको उसकी स्थितिका अनुभव हुआ और वह बोलीं – "चल ! थोड़ी देर पहले मैं नाचती हूँ , फिर प्रियतम श्रीकृष्ण नृत्य करेंगे, और तब थोड़ी देरके लिये तू नाच देना।"

इस प्रकारकी चर्चाके अनन्तर तीनों ही रास मण्डलमें उतरे। ललिता आदिने वाद्यके द्वारा सहयोग देना आरंभ किया। श्रीराधाका नृत्य हुआ। प्रियतम श्रीकृष्ण नाचे, और फिर उसी तालबंधपर मञ्जुश्यामाके पदके नूपुर पहले धीरे-धीरे बजने लगे। इसके बाद उल्लासमें भरकर वह भी नाच उठी। एक साथ सबकी आँखोंकी पलकें ज्यों-की-त्यों स्थिर-सी हो गईं। अहा ! ऐसा अप्रतिम मधुर नृत्य !..........

इसके अनन्तर परमोल्लासके साथ सामूहिक रास नृत्य हुआ। आज उसमें भी मञ्जुश्यामाका स्थान सबकी आँखोंमें सर्वप्रथम है। अब रात्रि पहर भर ही बच रही है और प्रिया-प्रियतम शयन-कुञ्जमें पधार रहे हैं। दैनन्दिन क्रमके अनुसार सम्पूर्ण सेवा होनेके अनन्तर निकुञ्जका द्वार बंद हो गया। पार्श्वकी कुञ्जमें आज मञ्जुश्यामा एकाकिनी बैठी है। मानों गहरी चिन्तामें निमग्न हो ....।

उस ओर नित्यनिकुञ्जेश्वर और श्रीराधामें बड़ी सरस चर्चा चल रही है................।

नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाने भूर्जपत्रका टुकड़ा उठाया

और उसपर फूल की डन्ठीसे तरल मृगमदमें डुबा-डुबाकर कुछ लिखने लगीं। और लिखकर प्रियतम श्रीकृष्णके हाथोंमें दे दिया। उसे लेकर प्रियतम श्रीकृष्ण पार्श्ववर्ती कुञ्जमें म-जुश्यामाके पास पधारे। मञ्जुश्यामाके हाथमें उस भूर्जपत्रके खण्डको दे दिया। मञ्जुश्यामा बोली – "ठीक है, बहिन राधाकी अभिलाषा ही मेरी अभिलाषा है।" कहकर वह गम्भीर हो गयी............।

भावसमाधि टूटनेके अनन्तर श्रीकृष्णको तो अपने स्वरूपका भान हो गया। किंतु आधी घड़ी प्रतीक्षा करनेके पश्चात् भी मञ्जुश्यामाकी मूर्छा नहीं टूटी। प्रियतम श्रीकृष्ण अत्यधिक चिन्तित हो गये और उन्होंने प्राणेश्वरी राधा को पुकारा। वे तत्क्षण आयीं।

श्रीकृष्णने आदिसे अन्ततक सम्पूर्ण घटनाको विस्तारसे सुनाया। श्रीराधाकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह रही थी और श्रीकृष्णका कण्ठ प्रेमावेशसे रह-रहकर रुद्ध हो जाता था। आधी घड़ी इसमें और बीत गयी। किन्तु मञ्जुश्यामाकी मूर्च्छा नहीं टूटी। प्रियतम श्रीकृष्ण और भी चिन्तित हुए। श्रीराधा मुसकुराईं और बोलीं – "अच्छा, मैं उपाय बतलाती हूँ।".........। उपाय हुआ.........। मञ्जुश्यामा प्रकृतिस्थ होनेकी मुद्रामें आयी। नित्यनिकुञ्जेश्वरी तत्क्षण पधार गयीं पार्श्ववर्ती कुञ्जमें ....। श्रीकृष्ण भी उनके पीछे चले गये।

वहाँ बड़ी सरस चर्चा आरंभ हुई। नित्यनिकुञ्जेश्वरीने प्रियतम श्रीकृष्णसे यह कहा – "प्रियतम ! तुम थोड़ी देर ललिताकी कुञ्जमें चले जाओ...........।" प्रियतम

श्रीकृष्णने वैसा ही किया।

उनके चले जानेके अनन्तर नित्यनिकुञ्जेश्वरीने मञ्जुश्यामाको पुकारा। वह आयी। नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधाने उसे हृदयसे लगाया और दोनों बहिनोंमें चर्चा छिड़ गयी....।.श्रीराधा बोलीं – "तू इस प्रकार मूर्च्छित क्यों होती है ?" मञ्जुश्यामाने उत्तर दिया – "क्या कहूँ, देख बहिन ! आधे क्षणके लिये भी यदि मैं तुमसे अलग हो जाती हूँ, मेरे जीवनका सम्पूर्ण रस ही समाप्त हो जाता है। इसको लेकर दोनों बहिनोंमें बड़ी रसमयी बात होने लगी..........। नित्यनिकुञ्जेश्वरी बोलीं – "री ! तू ही देख इस लज्जाके प्रश्नका क्या उत्तर है ?"

मञ्जुश्यामाकी आँखें भर आयीं, बोली – "देख ! लज्जाकी तो मैने अनन्त कालतकके लिये जलाञ्जलि दे दी है। तुम्हारा दर्शन-सुख, तुम्हारी सेवाका सुख – इनके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिये। सेवासुखकी वृत्ति यदि न होती तो आज प्रियतम श्रीकृष्णसे तू पूछ सकती है, उन्होंने क्या अनुभव किया............। किंतु अन्तमें मुझे अपनी हीनताका बोध हुआ, और अनन्त अपरिसीम अपनी मलिनताका बोध हुआ, और फिर बोध हुआ तुमसे अलग हो जानेके असह्य दुःखका। मैं अपनेको सँभाल न सकी और मूर्च्छित हो गयी। आगे भी जबतक सँभाल सकूँगी तबतक तो कोई बात नहीं. ....।

किंतु बहिन ! मुझे असम्भव लगता है कि मैं अन्ततक सँभाल सकूँ।" श्रीराधा बोलीं – "अच्छा, तू निरन्तर मेरे

पास बैठी रह और फिर........।" मञ्जुश्यामा बीचमें ही बोल पड़ी – "फिर तू देखना, आधे क्षणके लिये भी अनन्त कालतक मैं मूर्च्छित नहीं होऊँगी।" श्रीराधाकी आँखोंसे झर-झर अश्रुप्रवाह बह चला। मञ्जुश्यामाको कण्ठसे लगाकर लगभग एक घड़ी रोती रहीं। फिर बोलीं – "अच्छा चल बहिन, पहले ललिताकुञ्जकी लीला देखें।" दोनों ही छिपकर गयीं और सब कुछ देखा ....। इसके बाद दोनों पहले वाली कुञ्जमें ही लौट आयीं।

कुछ देरके अनन्तर प्रियतम श्रीकृष्ण उस कुञ्जमें पधारे। श्रीराधा बोलीं – "बहिन ! थोड़ी देरके लिये तू उस कुञ्जमें बैठ जा।" मञ्जुश्यामा पार्श्ववर्ती कुञ्जमें चली गयी। उसके जानेके बाद प्रिया-प्रियतमकी आधी घड़ी बड़ी रसभरी बातें होती रहीं। सहसा श्रीराधाने मञ्जुश्यामाको पुकारा। वह आयी ....।

एक ओर श्रीराधा अपनी बहिन मञ्जुश्यामाको दाहिनी ओर लिये बैठी हैं। दोनों बहिनें हँस रही हैं। दूसरी ओर हाथ जोड़े श्रीकृष्ण मन्द-मन्द हँसकर बड़ी रसमयी कविताका पाठ कर रहे हैं...................। सम्पूर्ण निकुञ्ज,निकुञ्जका कण-कण सच्चिदानन्दमयी,महाभावमयी, रसराजमयी ज्योतिसे उद्भासित है...............।
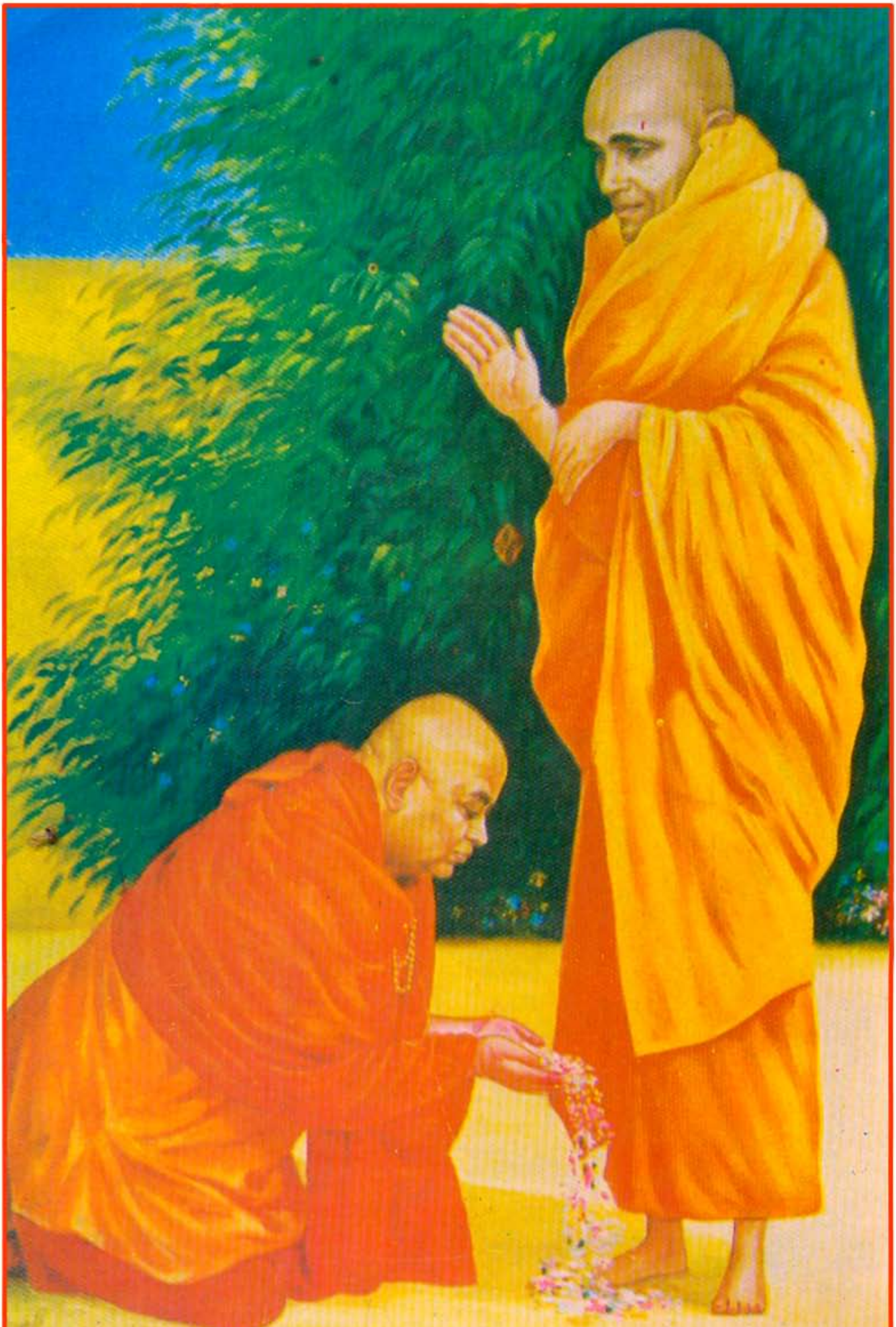
———